वैद्य शिवनारायण मिश्र भिषग्रत्न द्वारा
प्रकाश औषधालय के प्रकाश आयुर्वेदीय प्रिंटिंग प्रेस कानपुर मे
मुद्रित और प्रकाशित.

१०—१९२२—१,

११—१९२३—१,

५—१९३०—१,
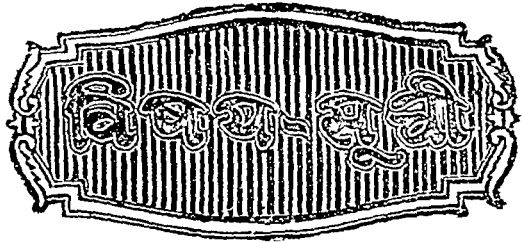
भूमिका (ले० प्रोफेसर हरिश्चन्द्र मिश्र एम० ए०)

मनुष्यों की भावुकता, उनके हृदयों की तरंगें, कुटिलों की नीचता, उदार हृदयों की सहृदयता, वीरों का आत्मसमर्पण, कायरों की भीरुता—केवल इन सब भावों का ही पता उपन्यासो में नही मिलता है—वरन् किसी समयविशेष की समाज का पूरा चित्र नेत्रो के सामने भी उपन्यास द्वारा प्रकट किया जाता है।

यह तो साधारण उपन्यासों की बात रही जो कि केवल काल्पनिक होते हैं। यदि ऐसा उपन्यास हस्तगत हो जो कि वास्तविक घटनाओं के आधार पर लिखा गया हो तो पाठकों की रुचि कही अधिक अच्छी हो जाती है। ऐतिहासिक उपन्यासों का प्रभाव पाठकों के चित्त पर अधिक स्थायी और फलदायक होता है। यह उपन्यास जो पाठकों के विनोदार्थ विशेष प्रयत्न से अनुवादित होकर प्रकाशित किया जा रहा है एक ऐसा ऐतिहासिक उपन्यास है जिसकी घटनायें पाठकों के लिये विशेष रूप से रुचिकर होनी चाहियें।

बंगाल मे अगरेज़ों के भारतीय राज्य की नीव डाली गई। बंगाल की धन सम्पत्ति से इस जाति ने फ्रांस को पराजित करके देशीय राज्यों पर अपना प्रभुत्व जमाया। अँगरेज़ प्लासी की लड़ाई के पूर्व (१७५७) कलकत्ते मे वाणिज्य-व्यवसाय में तत्पर थे। वाणिज्य से राज्य मिला। जिस अलीवर्दी खां की कृपाकटाक्ष के लिए अँगरेज़ घण्टों दरबार मे प्रतीक्षा ,गरेज़ों वारम्बार झुक झुक कर सलाम करते थे उसी अली— क्लाइव के पौत्र सिराजुद्दौला को उन्हो ने राज्यके एक अवसर पर उनके मे अपना अधिकार जमाया। यह उस समय एजन्ट के पद पर लम्बी कथा है। यहां पर इतना का देखना पड़ा। क्लाइव के प्लासी की लड़ाई, जिम्ने अँगरेज सकता है कि नन्दकुमार ने

एक बहुत साधारण युद्ध था। जिस युद्ध में भारतीयों के रुधिर की नदियां बहना चाहिए थीं, जिस युद्ध में पराजय होने पर भी वैरी के दांत खट्टे कर देने थे, ऐसे इस युद्ध में केवल २२ मनुष्य अंगरेज़ों के और ५०० नवाब की ओर के मारे गए। बंगालियों ने मुक़ाबिला करना तो दूर रहा, अंगरेज़ों को उनकी नीति मे पूरी सहायता पहुँचाई। वीरत्व, स्वाभिमान तथा स्वावलम्बन का इससे अधिक अधःपतन क्या हो सकता है?

मान लिया कि सिराजुद्दौला की क्रूरता से भयभीत और पीड़ित होकर उस समय के राजा व उमराओं ने, सेठ साहूकारों ने, महानीतिज्ञ क्लाइव के सहयोग का स्वागत किया परन्तु प्लासी की लड़ाई के पश्चात् लगभग २५ वर्ष तक जो अन्याय बंगाल की प्रजा पर हुआ, उसको वे क्यों सहन करते गये? इसके कारणों का पता तत्कालीन समाज की दुरवस्था से ही पाया जा सकता है। जबतक कि समाज में स्वार्थी, लम्पट, व्यभिचारी, कायर, लोलुप तथा विश्वासघाती मनुष्यो की अधिक संख्या नहीं हो जाती तबतक ऐसी घटनाओं का होना, जो इस उपन्यास से विदित है, असम्भव है। इस पुस्तक मे बंगवासियों के समाज तथा उनके ऊपर जो अत्याचार हुये हैं उनका जीवित चित्र खींचा गया है।

इस उपन्यास में नायक और नायिका कई है, परन्तु
उल्लेख करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ।
हृदय तथा निस्वार्थी महात्मा कम
रामहरी ऐसे कुलांगारों का चित्र
बाबा ललितानन्द ऐसे साधु आजकल
जमाये हुए हैं। परन्तु यवनों के

इतने आक्रमणों के बीच में, सैकड़ों वर्ष उनके भारत में राज्य करने पर भी, अंगरेज़ों की पाश्चात्य सभ्यता भारतीय घरों में प्रविष्ट होने पर भी, सावित्री सदृश नारीरत्नों ही ने आज तक भारत की लाज रक्खी और कम से पातिव्रत धर्म में भारत का सिर, इस पतित अवस्था में भी उन्नत कर रखा है। सावित्री तुल्य स्त्रियां, और आराटून सदृश पश्चिमीय सज्जनों पर ही आशारोपण किये हुये भारतवर्ष जीवित है, नहीं तो निराशा का तमोच्छादित दृश्य हमारे नेत्रों के सन्मुख नाचता होता।

इस उपन्यास की रोचकता महाराज नन्दकुमार की कथा के कारण विशेष रूप से है और लेखक ने भी कदाचित इसी विचार से पुस्तक का नाम "महाराज नन्दकुमार की फांसी" रक्खा है, यद्यपि इस में उस समय के बंगसमाज का उल्लेख आवश्यकता से अधिक है। महाराज नन्दकुमार अपने समय के बंगाली वैष्णवों के नेता समझे जाते थे। ब्राह्मणों में कदाचित उनका इतना ऊँचा पद न हो क्योंकि वे एक ऐसे वंश में उत्पन्न हुए थे जिसमे कि दो पीढ़ी पहिले एक विवाह समगोत्री के यहां कर लिया गया था। महाराज नन्दकुमार एक साधारण स्थिति के मनुष्य से अपनी कार्य-कुशलता तथा बुद्धिवल द्वारा नवाव मीरजाफ़र के दीवान हो गए थे। अंगरेज़ों के साथ भी उनकी मैत्री प्रारम्भ में घनिष्ट थी। क्लाइव के वे विशेष कृपापात्र थे, यहां तक कि एक अवसर पर उनके मुक़ाविले मे वारन हेस्टिंग्स को, जो उस समय एजन्ट के पद पर थे, क्लाइव की गवर्नरी मे नीचा देखना पड़ा। क्लाइव के कृपापात्र होने का कारण यही हो सकता है कि नन्दकुमार ने

नवाब का नमक खाते हुए भी अंगरेज़ों की सहायता प्लासी के युद्ध के पूर्व की थी।

अंगरेज़ों से महाराज नन्दकुमार का वैरभाव उनके दीवानी के समय से बढ़ने लगा। उस समय उनका प्रयत्न यह था कि किसी प्रकार अंगरेज़ो का प्रभाव बंगाल से उठ जावे और ये लोग बंगाल से निकाल दिए जांय। महाराज नन्दकुमार नीतिज्ञ थे और उस समय की राजनीति मे हर प्रकार की चाले भारतवासी तथा अंगरेज सभी प्रयोग मे लाते थे। इस कारण अंगरेज़ी इतिहासों मे उनका नाम बहुत कुत्सित शब्दो मे लिखा गया। वे अँगरेज़ों की दृष्टि मे एक जालसाज़ व मक्कार मनुष्य दिखाये गये हैं। उनके जीवन के अन्तिम वर्षो मे कम्पनी के सभी कर्मचारी उनसे द्वेष मानने लगे थे। नन्दकुमार ने भी सार्वजनिक जीवन से अपना हाथ खीच लिया था, परन्तु कुटिल कालचक्र ने उन्हे शान्त न रहने दिया। फ्रांसिस इत्यादि नई कौंसिल के सदस्य इंगलैंड से आये और उन्हो ने हेस्टिंग्स के विरुद्ध कार्य्य प्रारम्भ किया। नन्दकुमार ने वारन हेस्टिंग्स से बदला लेने का यह अच्छा अवसर समझा, क्योंकि वे हेस्टिंग्स को अपना परम शत्रु समझते थे। इन नवागन्तुक कौंसिल के सदस्यों पर भरोसा करके और उनकी सहायता पर विश्वास कर के महाराज ने राजनीति की चौपड़ मे गहरा दांव लगाकर पांसा फेका। पांसा उलटा पड़ा और उनको अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ा। कहा जाता है कि नन्दकुमार पर जालसाज़ी का अभियोग इसलिए लगाया गया कि वे गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स पर रिश्वत का अभियोग लाये थे। यह कहां तक सत्य है, यह इस भूमिका मे नही बताया
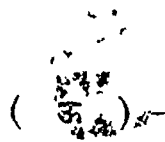
जा सकता। केवल इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इस बात के लेखबद्ध कोई प्रमाण नहीं मिलते। हां सन्देह अवश्य हो सकता है। इसके प्रमाण भी उस समय की परिस्थितियों ही में पाये जाते हैं। सारांश में मेरा यह मत है कि यदि महाराज नन्दकुमार उस समय के दांव-पेंच में फ्रांसिस के आने पर फिर से हाथ न डालते तो विश्वास है कि इस वैष्णव भक्त के प्राण अपवित्र जल्लाद के हाथ से न लिये जाते। इस उपन्यास में जो घटनाएँ नन्दकुमार के अभियोग के सम्बन्ध में लिखी गई हैं उनके कोई प्रमाण नहीं दिये गये है। वास्तव में घटनाएं इस से कहीं भिन्न थीं। हां प्रजा के ऊपर दुर्भिक्ष में तन्तुकारों पर तथा नमक वालों और किसानों पर जो अत्याचार लिखे गये हैं वे बहुत अंशों में सत्य है, अथवा सच्ची घटनाओं पर निर्धारित है। यों तो उपन्यास लेखकों की अत्युक्ति प्रसिद्ध ही है।

उपन्यास के उपसंहार में ग्रन्थकार ने कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जिनसे कि सम्भवतः पाठकों के चित्त में भ्रम उत्पन्न हो सकता है और उनको विश्वास हो सकता है कि महाराज नन्दकुमार की कथा आद्योपान्त अक्षरशः सत्य है। बापूदेव नवकिशोर से कहते हैं कि "तुम ऐसी चेष्टा करना जिस से देश के सच्चे इतिहास का संरक्षण कर सको" और ग्रन्थकार का कहना है कि यह पुस्तक जो नवकिशोर १०० वर्ष पूर्व लिख कर छोड़ गये हैं उसी के आधार पर है। यदि यह केवल उपन्यास की घटनाओं को वास्तविकता के भेष में रञ्जित करने की एक चाल नहीं है तो नवकिशोर की मूल पुस्तक को प्रकाशित करके श्रीयुत चण्डीचरण सेन ने भारतवर्ष के सच्चे

इतिहास को बड़ी भारी हानि पहुँचाई है। सच्चे इतिहास-प्रेमी तो इसी पर संतोष करें कि उपसंहार के अन्तिम वाक्य पाठकों को जिज्ञासा अवस्था में छोड़ने के लिये लिखे गये हैं और ग्रन्थकार ने इस प्रकार अपनी कुशलता का प्रमाण दिया है जैसा कि सब अच्छे उपन्यास-लेखकों का ढंग है।

महाराज नन्दकुमार की ऐतिहासिक कथा अंगरेजों की कई पुस्तकों में है। स्वयं बंगला में श्रीयुत सत्यचरण शास्त्री लिखित ऐतिहासिक पुस्तक मौजूद है। प्रमाणयुक्त हाल इन पुस्तकों से मिल सकता है। मेरे अनुमान में इस उपन्यास के लेखक का मुख्य उद्देश्य अठारहवीं शताब्दी के समाज तथा कम्पनी के प्रारम्भिक शासन-काल की उद्दण्डता का दिग्दर्शन कराना था और इस उद्देश्य में वे सफल हुये हैं।

इण्टर मीजिएट कालिज,
फ़ैज़ाबाद
जन्माष्टमी १६७६

हरिश्चन्द्र मिश्र, एम० ए०

अथवा

तत्कालीन बंगाल की सामाजिक अवस्था

अनाथ बालक

मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति के कुछ महीनों बाद एक दिन, रात के समय, मुर्शिदाबाद के राजमहल से कोस भर की दूरी पर, एक दुतल्ले घर में बैठे हुए दो व्यक्ति परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे।

दोनों व्यक्तियों में से एक व्यक्ति की अवस्था अनुमान से पैंतालीस अथवा पचास बरस के लगभग होगी। इसके परिधेय वस्त्र बड़े सुन्दर, सुसज्जित और मूल्यवान थे। वेश-भूषा और आकार-प्रकार से यह कोई प्रधान राजपुरुष प्रतीत होता था।

द्वितीय व्यक्ति की अवस्था प्रायः अस्सी वर्ष की होगी। पोशाक और बात चीत के रंग-ढंग से यह कोई ब्राह्मण पण्डित जान

पड़ता था। श्वेत केश और प्रशान्त मुखमण्डल को देखते ही दर्शक के हृदय में इसके प्रति प्रगाढ श्रद्धा का प्रादुर्भाव होता था।

बहुत कुछ वार्त्तालाप और वादानुवाद के अनन्तर, शेषोक्त वृद्ध ब्राह्मण ने कहा—"तुम्हारे ये सभी राजनैतिक कौशल व्यर्थ होंगे, इस जाल मे फँस कर अन्तत. तुम अपने प्राण खो बैठोगे।"

प्रथमोक्त व्यक्ति ने किंचित् हँसते हुए कहा—"आप तो बराबर यही कहते आते हैं। इस विषय मे अब अधिक तर्क-वितर्क करने से कोई लाभ नहीं। मै आपसे यह पूछता हूँ कि क्या आपने इस देश को छोड जाने का पूर्ण निश्चय कर लिया है?"

वृद्ध—हां अब एक दिन भी यहाॅ रहने को मेरा जी नहीं चाहता। अलीवर्दी की मृत्यु के बाद फ़ौरन ही मुझे बंगाल छोड जाना चाहिए था।

प्रथम—तो फिर कलकत्ता जाने से क्या लाभ होगा? निर्बल और निःसहाय जनों के प्रति जैसा अत्याचार यहां हो रहा है, वैसा ही वहां भी।

वृद्ध—इस स्थान के जुलाहे, सुनार तथा अन्यान्य व्यवसायी और श्रमजीवी सभी मेरे परिचित हैं। बाल्यावस्था से ये सब लोग मेरा आदर करते आये हैं, मुझ मे श्रद्धा रखते है; और मैं भी इन सब को बहुत प्यार करता हूॅ। अतएव इनका दुःख और कष्ट देख कर मेरा हृदय बहुत ही व्यथित और दुखित होता है। अपरिचित लोगों के दुख से हृदय को इतना अधिक दुख न होगा। कल हलधर की कन्या का मृत शरीर देखते ही प्रमदा मूर्छित हो कर गिर पडी थी। वह जनसाधारण, विशेषतः स्त्रियों के दुख का हाल सुन कर बडी दुखित होती है। उसे साथ लेकर मेरा अन्यत्र चला जाना ही उचित है, लोगों का

दुख देख कर उसके हृदय में कष्ट होता है। पहले यह विचार किया था कि सदा के लिए बंगाल छोड कर काशी चला जाऊँगा। परन्तु प्रमदा की शारीरिक अवस्था ऐसी है कि इस समय उसे साथ ले दूर देश को जाना दु:साध्य है। अतएव काशी न जाकर कल ही कलकत्ते चला जाऊँगा, और कालीघाट के आस पास किसी स्थान पर रहूँगा।

प्रथम—तो मुझे क्यों बुलवाया है?

वृद्ध—देखो, सिराज की मृत्यु के बाद आज पांच छ: बरस से बराबर मैं तुम से जिस मार्ग का अवलम्बन करने के लिए कहता आया हूँ, तुमने आज तक उस मार्ग का अवलम्बन नही किया। तुम सचमुच मोहान्धकार मे डूबे हुए हो, अपने हृदय मे स्थित मोहान्धकार के कारण हिताहित को समझने में सर्वथा असमर्थ हो रहे हो। दिव्य-दृष्टि से मुझे दिखाई दे रहा है कि तुम अपना मृत्युबाण आप ही तैयार करते हो। आज मैं तुम से एक अन्य अनुरोध करता हूँ—(पार्श्वस्थित बिछौने पर सोते हुए एक तीन बरस के बालक की ओर देख कर) इस बच्चे के प्रतिपालन का कोई उपाय करो। इसके पिता-माता कोई नहीं हैं, यह सर्वथा निराश्रय है। इसके पिता के पास जो कुछ धन-माल था, वह सब सभाराम के यहां रख दिया गया। परन्तु सभाराम यदि आज इसे अपने घर मे रखे तो अंगरेज़ लोग सभाराम के पुत्र को भी हलधर का साथी समझ बैठेंगे। हलधर के संग कौन था, वास्तव मे इसे वे लोग आज भी निश्चय रूप में नहीं जान सके हैं।

प्रथम—हलधर के मामले के सम्बन्ध मे अंगरेज़ लोग शायद मेरे ही ऊपर सन्देह कर रहे हैं। क़ासिमबाज़ार की रेशमवाली कोठी के साहबलोगों ने शायद यह कहा है कि मेरा नौकर चेताननाथ हलधर के साथ था। परन्तु मैं इस मामले के सम्बन्ध में 'सत्य-कृष्ण' कुछ भी नहीं जानता। यदि इस बालक को मै अपने घर में रखूँ तो वे लोग

अवश्य ही सन्देह करेंगे कि हलधर के मामले में मैं भी शामिल था। इसलिए इसके पालन-पोषण में जो कुछ खर्च होगा वह सब मैं दूँगा. परन्तु फ़िलहाल आप इसे मेरे यहां न रख कर कहीं अन्यत्र रख देने की चेष्टा करें।

वृद्ध—(क्रोधपूर्वक घृणा और असन्तोष का भाव प्रकट करते हुए) तो तुम इस निराश्रय बालक को आश्रय देने मे असमर्थ हो, इसे अपने यहां रखने में डरते हो?

प्रथम—वर्त्तमान में जैसी कुछ अवस्था है, उससे असमर्थ हो रहा हूँ। मैं ज़ाहिरा अंगरेजों से किसी प्रकार की शत्रुता नहीं करना चाहता। नवाब मीरजाफर मे यह शक्ति नहीं कि अंगरेज़ों की अनिच्छा की दशा मे वह मुझे दीवान के पद पर प्रतिष्ठित रख सके। अंगरेज़ चाहें तो इसी समय मुझे पदच्युत कर सकते हैं।

वृद्ध—प्रजा के ऊपर जो अत्याचार हो रहा है, यदि उसका निवारण न कर सके तो तुम्हारे इस दीवानी-लाभ से लाभ ही क्या? यही न, कि तुम्हें अपने लिए एक पद मिल गया। इसके अतिरिक्त तो कोई लाभ दिखाई देता नहीं।

प्रथम—क्या एक ही दिन मे सब अत्याचार दूर किया जा सकता है? धीरे ही धीरे दूर हो सकेगा।

वृद्ध—एक ही दिन में यह सब अत्याचार दूर नहीं हो सकता है, यह ठीक है। परन्तु क्या कोई सहृदय व्यक्ति इन समस्त क्रूर आचरणों को देख कर तुम्हारी तरह चुप बैठा रह सकता है? तुम सर्वथा हृदयहीन हो। क्या तुमने बारम्बार मुझसे यह नहीं कहा था कि दीवानी प्राप्त हो जाने पर वर्त्तमान अत्याचार को दबाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करूँगा? नराधम! इस तीन बरस के पितृ-मातृ-

हीन अनाथ बालक की दुरवस्था को देखकर तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता? धिक्कार तुम्हारे जीवन को! और धिक्कार तुम्हारी दीवानी को!

प्रथम—मैं आपके चरणों पर हाथ रख कर कहता हूँ कि रेशम की कोठी के अंगरेज़-व्यापारियों के अत्याचार को दूर करने के लिए प्राणपण से उद्योग करूँगा। परन्तु कौशल से काम लेना पड़ेगा।

वृद्ध—हृदय हीन! पाखण्डी! यदि तुम्हारे हृदय होता तो तुम "राजनैतिक कौशल", "राजनैतिक कौशल" चिल्ला कर देर न लगाते। इन निराश्रय, निर्बलों के कष्ट निवारणार्थ इसी क्षण प्राण-विसर्जन करने के लिए तैयार हो जाते।

प्रथम—(कुछ हँस कर) आप तो सिराज की मृत्यु के बाद, आज सात बरस से मुझे "नीच", "पाखण्डी", "अधम" आदि सुललित शब्दों से विभूषित करते रहे हैं, परन्तु आपके उपदेशानुसार कार्य करके मीरकासिम की कैसी दुर्दशा हुई, ज़रा सोचिए तो सही।

वृद्ध—क्या मेरे उपदेशानुसार चल कर मीरकासिम की दुर्दशा हुई है? यदि तुम्हें थोड़ा भी ज्ञान होता तो तुम सहज ही समझ सकते थे कि मीरकासिम की दुर्दशा उसकी निर्दयता का ही अवश्यम्भावी फल है। "यतो धर्मस्ततो जय."। मैंने मीरकासिम को कभी क्रूर और निष्ठुर आचरण का उपदेश नहीं दिया। मैंने क्या उससे यह कहा था कि वह इस प्रकार की निन्दनीय नर-हत्या के द्वारा अपने हाथों को कलङ्कित करे? नितान्त कायरों की भांति उसने कई एक निरस्त्र अंगरेजों का प्राण-बध करके अत्यन्त घृणित और गर्हित काम किया। मै सदा ही उससे सत्य और न्याय का पथ ग्रहण करने के लिए कहता रहा। यदि न्याय-पथ से भ्रष्ट न होता तो वह कभी न हारता। अन्याय के मार्ग का अवलम्बन करके मनुष्य आपही अपनी शक्ति का ह्रास करता है। मोहान्धकार के कारण तुम इसे नहीं समझ सकते।

अवश्य ही सन्देह करेंगे कि हलधर के मामले में मै भी शामिल था। इसलिए इसके पालन-पोषण मे जो कुछ ख़र्च होगा वह सब मैं दूँगा. परन्तु फिलहाल आप इसे मेरे यहां न रख कर कहीं अन्यत्र रख देने की चेष्टा करें।

वृद्ध—(क्रोधपूर्वक घृणा और असन्तोष का भाव प्रकट करते हुए) तो तुम इस निराश्रय बालक को आश्रय देने मे असमर्थ हो, इसे अपने यहां रखने मे डरते हो ?

प्रथम—वर्त्तमान में जैसी कुछ अवस्था है, उससे असमर्थ हो रहा हूँ। मै ज़ाहिरा अंगरेजों से किसी प्रकार की शत्रुता नहीं करना चाहता। नवाब मीरजाफर मे यह शक्ति नहीं कि अंगरेजों की अनिच्छा की दशा मे वह मुझे दीवान के पद पर प्रतिष्ठित रख सके। अंगरेज़ चाहें तो इसी समय मुझे पदच्युत कर सकते हैं।

वृद्ध—प्रजा के ऊपर जो अत्याचार हो रहा है, यदि उसका निवारण न कर सके तो तुम्हारे इस दीवानी-लाभ से लाभ ही क्या ? यही न, कि तुम्हें अपने लिए एक पद मिल गया। इसके अतिरिक्त तो कोई लाभ दिखाई देता नही।

प्रथम—क्या एक ही दिन मे सब अत्याचार दूर किया जा सकता है ? धीरे ही धीरे दूर हो सकेगा।

वृद्ध—एक ही दिन मे यह सब अत्याचार दूर नहीं हो सकता है, यह ठीक है। परन्तु क्या कोई सहृदय व्यक्ति इन समस्त क्रूर आचरणों को देख कर तुम्हारी तरह चुप बैठा रह सकता है ? तुम सर्वथा हृदयहीन हो। क्या तुमने बारम्बार मुझसे यह नहीं कहा था कि दीवानी प्राप्त हो जाने पर वर्त्तमान अत्याचार को दबाने के लिए प्राणपण से प्रयत्न करूँगा ? नराधम ! इस तीन बरस के पितृ-मातृ-

हीन अनाथ बालक की दुरवस्था को देखकर तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता? धिक्कार तुम्हारे जीवन को ! और धिक्कार तुम्हारी दीवानी को !

प्रथम —मैं आपके चरणों पर हाथ रख कर कहता हूँ कि रेशम की कोठी के अंगरेज-व्यापारियों के अत्याचार को दूर करने के लिए प्राणपण से उद्योग करूँगा। परन्त कौशल से काम लेना पडेगा।

वृद्ध—हृदय हीन ! पाखण्डी ! यदि तुम्हारे हृदय होता तो तुम "राजनैतिक कौशल", "राजनैतिक कौशल" चिल्ला कर देर न लगाते। इन निराश्रय, निर्बलों के कष्ट निवारणार्थ इसी क्षण प्राण-विसर्जन करने के लिए तैयार हो जाते।

प्रथम—(कुछ हँस कर) आप तो सिराज की मृत्यु के बाद, आज सात-बरस से मुझे "नीच", "पाखण्डी", "अधम" आदि सुललित शब्दों से विभूषित करते रहे हैं, परन्तु आपके उपदेशानुसार कार्य करके मीरक़ासिम की कैसी दुर्दशा हुई, जरा सोचिए तो सही।

वृद्ध—क्या मेरे उपदेशानुसार चल कर मीरकासिम की दुर्दशा हुई है? यदि तुम्हें थोडा भी ज्ञान होता तो तुम सहज ही समझ सकते थे कि मीरकासिम की दुर्दशा उसकी निर्दयता का ही अवश्यम्भावी फल है। "यतो धर्मस्ततो जय."। मैंने मीरकासिम को कभी क्रूर और निष्ठुर आचरण का उपदेश नहीं दिया। मैंने क्या उससे यह कहा था कि वह इस प्रकार की निन्दनीय नर-हत्या के द्वारा अपने हाथों को कलङ्कित करे? नितान्त कायरों की भांति उसने कई एक निरस्त्र अंगरेजों का प्राण-बध करके अत्यन्त घृणित और गर्हित काम किया। मै सदा ही उससे सत्य और न्याय का पथ ग्रहण करने के लिए कहता रहा। यदि न्याय-पथ से भ्रष्ट न होता तो वह कभी न हारता। अन्याय के मार्ग का अवलम्बन करके मनुष्य आपही अपनी शक्ति का ह्रास करता है। मोहान्धकार के कारण तुम इसे नहीं समझ सकते।

प्रथम—(कुछ हँस कर) प्रभु, क्षमा कीजिएगा। मीरकासिम ने सम्पूर्ण रूप से आप के उपदेशानुसार कार्य नहीं किया, इसीसे आज निर्वासित अवस्था में भी वह अपने मन को किसी अंश में सान्त्वना प्रदान कर सका है। यदि सम्पूर्ण रूप से आप ही के उपदेश पर चलता तो उसे इस थोड़ी सी मानसिक तुष्टि से भी वंचित रहना पड़ता!

वृद्ध—कौन सी मानसिक तुष्टि के द्वारा वह अपने मन को समझाने में समर्थ हुआ है?

प्रथम—और कुछ नहीं, सिर्फ यही कि सिंहासन-च्युति होते होते अन्ततः वह कुछेक शत्रुओं का प्राण-नाश करने में समर्थ हुआ। इस मानसिक तुष्टि से उसे वंचित नहीं होना पड़ा। परन्तु आपके उपदेशानुसार यदि वह न्याय-पथ का अवलम्बन करता तो उन कुछेक दुष्टों का भी प्राण-वध करने में समर्थ न होता।

वृद्ध—नीच कहीं के! वास्तव में तुम्हारा अन्तरात्मा नरक जैसा मलिन हो रहा है। कैसे दुख की बात है! शास्त्र के गूढ़ तत्व को समझने में तुम तनिक समर्थ न हुए। तुम्हारे साथ अधिक बात-चीत करके मैं अपना समय व्यर्थ नष्ट नहीं करना चाहता। अस्त्रहीन अवस्था में शत्रु-पक्ष के आदमियों का प्राण-नाश करके मीरक़ासिम ने नितान्त कायरों का काम किया, और अपने नाम को कलङ्कित कर लिया।

प्रथम—मैंने माना कि मुझे शास्त्र का ज्ञान नहीं; परन्तु आपके उपदेशानुसार चलकर मीरक़ासिम का कौन सा भला हुआ?

वृद्ध—मीरक़ासिम का बहुत कुछ भला हुआ। क्या तुम्हें नहीं कि मीरक़ासिम कौन था? सिंहासनासीन होने के पहले ... भी सिराज और मीरजाफ़र ही की तरह नर-पिशाच था। यदि ऐसा न होता तो वह अपने ससुर की हत्या करके राज्य प्राप्त करने

की चेष्टा क्यों करता? परन्तु सिंहासनासीन होने के बाद उसने अपने सारे जीवन में मेरे जिस एक उपदेश का प्रतिपालन किया है, उसी के कारण परलोक मे निश्चय ही उसे सद्गति प्राप्त होगी, बंगाल के इतिहास में चिरकाल तक उसका नाम स्वर्णाक्षरों में अङ्कित रहेगा; भावी वंशज उसके जीवन के समस्त कलङ्कों को भूल जायंगे; संसार में वह एक प्रजा-हितैषी राजा प्रसिद्ध होगा; उसके नाम का स्मरण आते ही क्या हिन्दू क्या मुसलमान, बंगाल के समस्त निवासियों के हृदय मे कृतज्ञता का स्रोत बहने लगेगा। मानव-जीवन में इसकी अपेक्षा विशेष वांछनीय और क्या है? न्याय का राज्य स्थापित करने के लिए, सत्य का आधिपत्य जमाने के लिए जो मनुष्य प्राण विसर्जन करते हैं, वही देवता है।

प्रथम—(नीचे को सिर झुकाये बहुत देर तक सोच-विचार करने के बाद गहरी सांस लेकर) तो फिर अब आपको मुझसे और कुछ नही कहना, मै जा सकता हूॅ?

वृद्ध—हां, मैं तुम से और कुछ नहीं कहना चाहता। सिर्फ़ यही पूछने के लिए बुलाया था कि इस असहाय बालक के प्रतिपालन का भार अपने जिम्मे ले सकते हो या नही। किसी ने इसे आश्रय देने का साहस नही किया। जिससे कहो, वही कहता है कि यदि हम इसे आश्रय देंगे तो अँगरेज लोग हमे हलधर का साथी समझ कर फाँसी दे देंगे। परन्तु मैं तुमसे यह निश्चय कहता हूॅ कि जिन लोगों ने इस तीन बरस के अनाथ, पितृ-मातृ-हीन बच्चे को आश्रय देना अस्वीकार किया है, परमेश्वर स्वयं उनके लिए फाँसी का फंदा तैयार कर रहे है, नन्दकुमार! आज तुम्हारे लिए फाँसी का फंदा निश्चित हो चुका।

प्रथम—मैं आप के प्रति पिता से भी अधिक भक्ति और श्रद्धा रखता हूॅ। आप मेरे गुरु है, देवता है, मुझे श्राप देते हैं?

वृद्ध—मै दिन रात तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ। जब तक इस शरीर में प्राण रहेंगे, श्राप देना तो दूर, स्वप्न में भी तुम्हारा अहित नहीं चाहूँगा। परन्तु ईश्वर के न्याय-विचार से भविष्य में तुम्हें जो फल भोगना पड़ेगा, वही मै तुम से कह रहा हूँ।

प्रथम—(कुछ हँस कर) देश भर में किसी ने भी तो इस बालक को आश्रय देना स्वीकार नहीं किया, तो क्या ईश्वर के विचारानुसार सारे देशवासियों को फाँसी होगी ?

वृद्ध—इस असहाय बालक को आश्रय देना अस्वीकार करने के कारण देश के सभी लोगों को ईश्वर के निकट अपराधी बनना पड़ेगा। परन्तु इस अपराध के लिए कौन किस रूप में दण्डित होगा, यह मनुष्य के जानने की बात नहीं। जिस देश में एक का दुख दूर करने के लिए दूसरे हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते हैं, उस देश में क्रम क्रम से एक न एक दिन सभी को दुख भोगना पडता है। बंगदेश नरपिशाचों से परिपूर्ण हो रहा है, इसके दुर्दिन समीप हैं, शीघ्र ही इसका नाश होनेवाला है।

प्रथम—तो गुरुदेव, आप सारे देशवासियों को श्राप दे रहे है ?

वृद्ध—मैं देश का अहित नहीं चाहता। परन्तु जब देश का एक आदमी दूसरे का दुख दूर करने की कोई चेष्टा नहीं करता तो निश्चय ही इस देश का अधःपतन होगा। हलधर की जो दशा हुई है, एक दिन सब की वही दशा होगी।

प्रथम—(कुछ हँस कर) जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, ईश्वर के विचारानुसार यदि उनका अधःपतन हो तो समझिये कि वह विचार न्यायसंगत हुआ। परन्तु आप के मुँह से आज यह एक नये ही क़िस्म का विचार सुन रहा हूँ। जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, उन्हें भी कोई दण्ड मिलेगा या नहीं, इस विषय में तो आप ने कुछ नहीं

कहा। वरन् जो बेचारे ग़रीब आदमी अपने अपने जान माल और इज्जत आबरू के भय से अत्याचारी के हाथों से अत्याचार-पीड़ितों की रक्षा नहीं कर पाते, पहले उन्हीं को दण्डित होना पड़ेगा, क्या यह ईश्वर का न्यायसंगत विचार होगा ?

वृद्ध—जो लोग अत्याचार कर रहे हैं, वे ईश्वरीय दंड से कदापि नहीं बच सकते। परन्तु तुमने जो इस समय देश के एक प्रधान राज-पुरुष होकर इस अत्याचार को रोकने का प्रयत्न नहीं किया, इसके लिए सब से पहले तुम्हीं को दंडित होना पड़ेगा। जो लोग संसार के प्रचलित दुख और अत्याचार को दूर करने का उद्योग नहीं करते, वे अवश्य ही उस दुख और अत्याचार में सहायता देते हैं।

प्रथम—यह तो अद्भुत विचार है ! मै निरपराधी हूँ, और इस अत्याचार को दूर करने के लिए कितनी ही चाले चल रहा हूँ, तिस पर पहले मुझे ही दंडित होना पडेगा ?

वृद्ध—यह विचार चाहे अच्छा हो या बुरा, पर इसी अकाट्य ईश्वरीय नियम के द्वारा संसार शासित हो रहा है। जब तक तुम्हारे हृदय का मोहान्धकार दूर न हो जाय, तुम इसके गूढ़ रहस्य को नहीं समझ सकते। मैं निश्चय कह रहा हूँ कि तुम विनाश के पथ पर चल रहे हो। यदि अपना कल्याण चाहो तो अपनी इन सारी राजनैतिक चालबाजियों को छोड़ कर प्रकट रूप मे अत्याचार को दबाने पर कमर कसो। साध्वी स्त्री की आंखों के आंसू दावाग्नि की तरह प्रज्वलित होकर समस्त बंगाल को भस्मीभूत कर डालेंगे। पतिंगे की तरह तुम इस दावाग्नि की ज्वाला मे पतित होकर अपने प्राण खोओगे। नन्द-कुमार, अब देर करने का काम नहीं। आसन्न-मृत्यु से अपनी रक्षा करो। परमेश्वर ने साधारण जनों की अपेक्षा तुम्हें अधिक शक्ति और

अधिक क्षमता प्रदान की है। निर्बल और निःसहाय जनों का दुख दूर करने मे इस शक्ति और क्षमता का सदुपयोग करो।

इतना कह कर वृद्ध चुप हो रहा। महाराज नन्दकुमार नीचे को सिर डाले बहुत देर तक सोच-विचार करते रहे।

कुछ देर बाद वृद्ध के चरणों में प्रणाम कर वह अपने स्थान को चले गये।

एकान्त चिन्ता

आधी रात का समय है। स्वच्छ, सुनील आकाश में उदित होकर चन्द्रमा अत्यन्त गम्भीर भाव से संसार के प्रति दृष्टिपात कर रहा है। सारा जगत् चन्द्र की शीतल सुहावनी किरणों से समुज्वल हो रहा है। प्राणी मात्र निस्तब्ध हैं, चारों ओर सन्नाटा है। इसी समय, बंगाल के सूबेदार मीरजाफ़र के दीवान, महाराज नन्दकुमार अत्यन्त चिन्ताकुल अवस्था मे राजमार्ग से होकर अपने स्थान को लौट रहे हैं। बीच बीच मे ऊपर को नेत्र उठाकर वह चन्द्रमा की ओर देखते जाते हैं।

चन्द्र के आलोक से केवल बाह्य जगत् ही आलोकित होता है। मनुष्य का हृदय-स्थित मोहान्धकार चन्द्रालोक से दूर नहीं होता। जो चन्द्र के चन्द्र हैं, जो प्रकाश के प्रकाश हैं, जो ज्योति के ज्योति हैं, उनके पवित्र विकाश के बिना आन्तरिक जगत् कदापि आलोकित नहीं

होता, उनके पावन प्रकाश के बिना हृदयस्थित अन्धकार का नाश नहीं होता।

चिन्ताकुल-हृदय महाराज नन्दकुमार अपने घर पहुंचते ही अपने शयन-गृह की खिडकी मे बैठ कर मन ही मन विविध चिन्तायें करने लगे। हृदय में इस प्रकार के प्रश्न उपस्थित होने लगे।

"क्या वास्तव मे मैं विनाश पथ पर जा रहा हूं? गुरुदेव के मुंह से तो कभी झूठी बात नहीं निकलती। उन्होंने जिस किसी से जो कुछ कहा, समय पर, वह सभी सत्य हुआ। तो क्या उन्हीं के उपदेशानुसार कार्य करूं? परन्तु उनके उपदेशानुसार कार्य करने पर धन-मान और पद-प्रभुत्व की आशा को एकदम तिलाञ्जलि देनी पडेगी—इससे लाभ ही क्या होगा? कोई लाभ नहीं दीखता। गुरुदेव की सारी बातें पहेली सी जान पडती है। उनकी किसी बात का आशय समझ मे नहीं आता, किसी बात का अर्थ हृदयङ्गम नहीं होता। तो क्या वे जो कुछ कह रहे हैं, वही सत्य है? क्या मैं अपने हृदयस्थित मोहान्धकार के कारण ही उसे नहीं समझ सकता? तो फिर मेरे हृदय का यह मोहान्धकार कैसे दूर होगा, कब दूर होगा?

"यद्यपि गुरुदेव की अन्यान्य बातों का अर्थ मेरी समझ मे नहीं आया, तथापि उनकी अन्तिम बात का अर्थ तो सहज ही समझ मे आ गया। मेरा यह दीवानी-पद वास्तव मे अस्थाई है। कल ही मैं पदच्युत हो सकता हूं—पदच्युत होने की अनेक सम्भावनायें है—मेरी नियुक्ति के सम्बन्ध मे अंगरेजो ने अत्यन्त अनिच्छापूर्वक अनुमति दी है—जरा सी त्रुटि देखते ही वे मुझे पदच्युत कर देंगे—त्रुटियों का अभाव नहीं है। मालगुजारी वसूल करने के लिए हजार चेष्टायें करता हूं, पर नहीं वसूल होती। उधर अंगरेज लोग कहते है कि मैं मालगुजारी वसूल करके स्वयं हजम कर लेता हूं। मालगुजारी वसूल न होने की

दशा में नवाब ने अंगरेजों को जो रुपया देने का वचन दिया है, वह भी अदा न हो सकेगा। अन्ततः इन्हीं कारणों से अंगरेज़ मुझे पदच्युत कर देंगे।

"गुरुदेव की कोई बात मिथ्या नहीं। वस्तुतः मालगुज़ारी वसूल करने में मुझे सैकड़ों आदमियों पर अत्याचार करना पड़ेगा। उन्होंने जो कुछ कहा, सभी सत्य है। अपने पद की रक्षा के लिए अत्याचार करके मालगुज़ारी वसूल करनी पड़ेगी; परन्तु पद फिर भी नहीं बना रह सकता। परिणाम में सिर्फ़ अपने अत्याचार के पाप का फल भोगना शेष रह जावेगा।

"दीवानी तो यह रहने की नहीं। अच्छा तो दीवानी जाय तो जाय, मैं गुरुदेव के कहने पर चलूगा। अंगरेजों से खुले शब्दों में यह कहूँगा कि आपलोग जुलाहों के प्रति ऐसा अत्याचार नहीं कर सकते—गुरुदेव ने ठीक ही कहा है। यदि अत्याचार का अवरोध न किया तो मेरा जीवन वृथा है। गुरुदेव ने ठीक ही कहा है—इस कायर मीरजाफर की दीवानी ग्रहण करके मुझे भी अंगरेज व्यापारियों के अत्याचार में सहायता देनी पडी। अत्याचारी राजा के नौकर को भी अत्याचार करने के लिए बाध्य होना पडता है। मैं क्या नवाब का दीवान हूँ? मैं तो एक प्रकार से अंगरेजों का दीवान हो रहा हूँ। अंगरेज़ कौन हैं? सिर्फ थोड़े से व्यापारी मात्र। वे क्या इस देश के राजा हैं? तो फिर वे प्रजा पर ऐसा अत्याचार क्योंकर कर सकते हैं? मैं नवाब का दीवान हूँ। इस राज्य का वास्तविक राजा नवाब ही है। अन्ततः यदि नवाब मेरी बात पर ध्यान नहीं देगा तो मैं दिल्ली के बादशाह के पास से दीवानी की सनद प्राप्त करने की चेष्टा करूँगा। एक बार उद्योग करके देखता हूँ; देखूं, नवाब को अंगरेज़ों के विरोध के लिए तैयार कर सकता हूँ या नहीं? फ़रासीसों की सहायता

मिल जाय तो अभी अभी अंगरेज़ों को देश से बाहर निकाल सकता हूँ। अवश्य ही मैं फरासीसों से सहायता मांगूंगा। नवाब को यही राय दूंगा। परन्तु गुरुदेव तो फरासीसों से सहायता मांगने के लिए भी मना करते हैं। वे कहते हैं कि फ़रासीसों से सहायता लेना अच्छा न होगा। बाद में क्या वे भी अंगरेज़ व्यापारियों की तरह अत्याचार फैलावेंगे? अच्छा तो करूँ क्या? गुरुदेव कहते हैं कि अपने निज के बाहुबल पर निर्भर रहो। मुझ में बल ही क्या है? गुरुदेव की इस बात का अर्थ समझ में नहीं आता। वे कहते हैं, "मानसिक बल के द्वारा असाध्य भी साध्य हो सकता है।" वे कहते हैं, "नवाब के मतामत की प्रतीक्षा व्यर्थ है, दिल्ली-सम्राट् की अनुमति अनावश्यक है, फ़रासीसों से सहायता लेने का भी कोई काम नहीं। अत्याचार-निवारण के हेतु एक बार प्राणों की भेंट के लिए तैयार हो जाओ, अवश्य ही सफलता प्राप्त होगी।" गुरुदेव की यह बात समझ में नहीं आती। देश के सभी आदमी अंगरेज़ों की वाणिज्य-कोठियों मे नौकरी पाने के लिए लालायित हो रहे हैं, प्राणपण से इसी की चेष्टा में लीन हैं। ये भला अंगरेजों को देश से बाहर निकालने के लिए अग्रसर होंगे? कभी नहीं। तो गुरुदेव की इस बात का कोई अर्थ नहीं। वे कहते है, "तुम प्राण-विसर्जन के लिए तैयार हो जाओ, अपना उदाहरण लोगों के सामने रक्खो, देश के सैकडों आदमी तुम्हारा अनुसरण करेंगे, दूसरे का मुंह मत ताको।" परन्तु मुझे निश्चय है कि एक आदमी भी मेरा अनुसरण नहीं करेगा। भला बंगाली लोग! नौकरी इनके जीवन का सर्वस्व है! सभी नवकृष्ण मुंशी के पथ का अवलम्बन करेंगे। अंगरेज़ों का आश्रय लेकर देश मे अत्याचार फैलावेंगे।

"तो फिर वास्तव में कौशल के अतिरिक्त कोई उपाय नहीं। फ़रासीसों की सहायता लेकर युद्ध करना पडेगा—अथवा यह न सही

तो षडयन्त्र के द्वारा अंगरेज़ लोगों में आपसी फूट संगठित करनी पड़ेगी। गुरुदेव ने कहा है कि इस मार्ग का अवलम्बन करने से राजनैतिक जाल में फँस कर प्राण खोना पड़ेगा। परन्तु इस कौशल-पथ के अतिरिक्त और कोई मार्ग तो देख ही नहीं पडता। दो ही उपाय है—युद्ध या कौशल। सो युद्ध के लिए कोई साधन नहीं, बंगाली युद्धक्षेत्र मे कदम नहीं रखेंगे। अन्तत कौशल ही के पथ का अवलम्बन करना पड़ेगा। परन्तु कैसी आफ़त है, गुरुदेव बारम्बार इस पथ का परित्याग करने के लिए कहते हैं! गुरुदेव की आज्ञा का उल्लङ्घन किये बिना इस पथ को ग्रहण करने का कोई उपाय नही। उनकी यह आज्ञा कहाँ तक युक्तिसंगत है, कुछ समझ मे नहीं आता। अस्तु, गुरुदेव की आज्ञा का अर्थ समझूं या न समझू, मैं निश्चय इसी मार्ग का अवलम्बन करूँगा। परन्तु नही नही, गुरुदेव की आज्ञा का उल्लङ्घन नही करूँगा। मेरा यह दीवानी-पद बहुत दिन नही रहेगा। अंगरेज व्यापारी अवश्य ही मुझे पदच्युत करने की चेष्टा करेंगे—यह पद सर्वथा अस्थाई है। सवेरा होते ही मै उस निराश्रय बालक को लाकर अपने घर में रखूंगा। अंगरेज लोग सन्देह करें तो करें। मै गुरुदेव की आज्ञानुसार कार्य करूँगा। ऐसा करने मे मृत्यु भी हो जाय तो अच्छा।"

इस प्रकार चिंता करते करते महाराज नन्दकुमार को नींद आने लगी; उठ कर बिछौने पर पड रहे।

मनुष्य यह समझता है कि उच्च पद लाभ कर के सुख शांति की प्राप्ति होती है। वह यह नहीं सोचता कि उच्च-पदस्थ लोगो को हर घडी चिंता की ज्वाला में दग्ध होना पडता हैं। महाराज नन्दकुमार को अच्छी तरह नींद नही आई। अर्धनिद्रित अवस्था में उन्होंने स्वप्न देखा, "कलकत्ता कौंन्सिल के वाट्सन साहब कितने ही सैनिकों को साथ लेकर आरहे हैं, मुझ से मालगुजारी की वसूली का हिसाब तलब किया

है। हिसाब को देखने पर उसमें ग़बन बता कर वे मुझे बन्दी के रूप में कलकत्ते भेजने को तैयार हुए हैं। अंगरेजों की रेशम की कोठी के गुमाश्ते रामहरी चट्टोपाध्याय को उन्होंने नवाब की दीवानी के पद पर नियुक्त किया है। देश के लोग रामहरी को दीवानी के काम पर नियुक्त होते देख 'ही-ही' करके हँस रहे हैं। नवाब मीरजाफ़र ने रामहरी की नियुक्ति के सम्बन्ध मे प्रबल प्रतिवाद आरम्भ किया है।" स्वप्न के अन्त में जाग कर देखा, प्रभात हो गया। विस्तर से उठकर उन्होंने सोचा,—गुरुदेव की आज्ञा का प्रतिपालन करूँगा—उस निराश्रय बालक को ले आने के लिए अभी आदमी भेजता हूँ ?

नन्दकुमार ! प्राणपण से इस प्रभात-प्रतिज्ञा के प्रतिपालन की चेष्टा करो। रात्रि के अन्त मे प्रतिदिन आकाशमण्डल के बीच उदित होकर भगवान सूर्यनारायण मोहान्धकार में डूबे हुए नर-नारियों से कहते हैं—"ऐ मनुष्यो ! तुम्हारे हृदय का मोहान्धकार दूर करने के लिए, तुम्हारे चरित्र के संशोधन के लिए जगत्पिता ने आज पुनः तुम्हें एक नूतन सुयोग प्रदान किया है। उन्हीं के आदेश से आकाश में उदित होकर मैं तुम्हें जगाता हूँ और उनकी आज्ञा से तुम्हें सूचित करता हूँ।"

पाठक और पाठिकाओ ! यदि अपने चरित्र का संशोधन करना हो, यदि अपने हृदय को पवित्र बनाना हो, यदि अपने अन्तरस्थित मोहान्धकार को दूर करना हो तो प्रतिदिन के प्रभात उपदेश का प्रति-पालन करने की चेष्टा करो। संसार की चिन्ता और संसार का कोलाहल कानों मे प्रविष्ट होने के पहले ही जाग कर सुनो कि प्रतिदिन का प्रभात तुमसे क्या कहता है। यदि प्रभात उपदेश के सदुपयोग से तुमने अपने को वंचित रक्खा, तो तुम्हारे हृदय के समुन्नत होने की आशा बहुत ही कम है।

प्रातःक्रिया को समाप्त करके महाराज नन्दकुमार अभी दरबार में नहीं आये थे, कि दरबार गृह में सैकड़ों आदमियों की भीड़ लग गई। दीवानी महल से भीड़भाड़ का कोलाहल सुनाई देने लगा। मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारीगण अपनी अपनी तहवील का हिसाब किताब लेकर दीवानख़ाने के पार्श्वस्थ कमरे में घुसते ही सदर के नायब, मुहर्रिर, पेशकार आदि को नज़र भेंट देने लगे। हिसाब चुकता करते वक्त सदर के अमले वाले, किसी प्रकार की आपत्ति उठा कर, झगड़े में न डालदें, इस आशंका से थोड़ी बहुत पूजा चढ़ाकर पहले इन्हें राज़ी कर लेना पड़ता था। कितने ही जमींदार अपनी अपनी मालगुजारी का रुपया स्वयं ही लेकर आये हैं, परन्तु उनमें से जिन्होंने अभी तक अमले वालों को भेंट नहीं चढ़ाई, उन्हें बैठने का हुक्म नहीं मिला, बेचारे खड़े हैं। नवाब सरकार में नौकरी के प्रार्थी होकर अनेकानेक भद्र युवक दीवान के दर्शनों की आशा में नजर हाथ में लिए दीवानख़ाने के सम्मुखस्थ द्वार पर खड़े हैं। इनमें से जिन्होंने दीवानख़ाने के ड्योढ़ीवान् और सिपाही प्यादों को पान-तमाखू के लिए कुछ दे दिलाकर उनकी कृपा को ख़रीद लिया है, वे तो भीतर घसने पाये; बाकी सब आजकल के, पेशकारी और डिप्टी कलेक्टरी के उम्मेदवारों की तरह सिर पर पगड़ी बाँधे दीवानख़ाने के सामने घास पर टहल रहे हैं। ब्राह्मण पण्डित "महाराज की जय हो, महाराज की जय हो"—कहते हुए महल के भीतर घुसते जा रहे हैं, इन लोगों से किसी को कुछ मिलने की आशा नहीं है, इसलिए इन्हें अन्दर जाने से कोई नहीं रोकता। ये लोग भीतर पहुँच कर निर्दिष्ट उच्च स्थान पर बैठते जाते हैं। सैकड़ों प्रजा जन अपने अपने आवेदनपत्र हाथ में लिए महल के सामने खड़े हैं। उस समय इस देश में, काशी के पण्डों की तरह, वकील मुख्तारों का दौरदौरा नहीं था। वकील मुख्तार थे ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने प्रार्थनीय विषय को स्वयं निवेदन करता था। वकील मुख़्तारों

के पंजे में फँस कर किसी को अपना सर्वनाश नहीं करना पडता था। जो दो चार रुपये ख़र्च होते थे, वे अमले वालों की नज़र भेंट में। अमले वाले थोड़े ही मे सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु वकीलो के वडे पेट को कोई नही भर सकता, चाहे लंकाधिपति के उद्यान के सारे फल-मूल ही बटोर कर क्यों न दे दें।

प्रातःक्रिया समाप्त करके अन्यान्य दस बारह व्यक्तियों के सहित महाराज नन्दकुमार ने जैसे ही दरबार-गृह मे प्रवेश किया, सब उठकर खड़े हो गये। ब्राह्मण पण्डितों ने हाथ उठा उठा कर "महाराज का कल्याण हो", "महाराज का कल्याण हो"—कहते हुए आशीर्वाद दिया। अन्यान्य सब लोगों ने सम्मानपूर्वक सिर झुका कर अभिवादन किया।

महाराज के सभासीन होते ही पण्डितों के अगुआ हरिदास तर्क-पंचानन ने सामने आकर शास्त्रालाप शुरू किया, अन्यान्य पण्डितगण भी चुप नही रहे। पण्डितों मे इस प्रकार का नियम नहीं था कि वे क्रम क्रम से एक एक करके अपना अपना वक्तव्य सुनावें। चार पांच पण्डित मिल कर एक साथ ही चीत्कार कर उठते थे। समय रहता था थोडा, उतने ही मे सभी को अपनी अपनी विद्या प्रकट करनी पडती थी। थोडी ही देर बाद महाराज राजकार्य मे लग जाते थे, अतएव जल्दी के मारे सभी उपस्थित पण्डित एक साथ ही चिल्ला उठते थे। इनका वाक्‌युद्ध आरम्भ होने पर सारा महल गूंज उठता था, कोलाहल मच जाता था। निदान आरम्भ में धर्म्मालोचना की पुकार मची, बाद मे नीति-शास्त्र की चर्चा छिडी। तर्क-पंचानन महाशय ने कहा—"महाराज! हमारे शास्त्रकारों ने कहा है, कौशल से राजकार्य चलाना चाहिए—कौशल के विना कोई राजकार्य सम्पन्न नही होता—शत्रु को पराजित करना हो, जनसाधारण को मुट्ठी में रखना हो, तो राजपुरुषों को विविध कौशल का अवलम्बन करना उचित है। मन्त्रि-प्रवर चाणक्य ने इसी मार्ग

प्रातः क्रिया को समाप्त करके महाराज नन्दकुमार अभी दरबार में नहीं आये थे, कि दरबार गृह में सैकड़ों आदमियों की भीड़ लग गई। दीवानी महल से भीड़भाड़ का कोलाहल सुनाई देने लगा। मालगुजारी वसूल करने वाले कर्मचारीगण अपनी अपनी तहवील का हिसाब किताब लेकर दीवानखाने के पार्श्वस्थ कमरे में घुसते ही सदर के नायब, मुहर्रिर, पेशकार आदि को नज़र भेट देने लगे। हिसाब चुकता करते वक्त सदर के अमले वाले, किसी प्रकार की आपत्ति उठा कर, झगड़े में न डालदें, इस आशंका से थोड़ी बहुत पूजा चढ़ाकर पहले इन्हें राज़ी कर लेना पड़ता था। कितने ही जमींदार अपनी अपनी मालगुजारी का रुपया स्वयं ही लेकर आये हैं, परन्तु उनमें से जिन्होंने अभी तक अमले वालों को भेट नहीं चढ़ाई, उन्हें बैठने का हुक्म नहीं मिला, बेचारे खड़े हैं। नवाब सरकार में नौकरी के प्रार्थी होकर अनेकानेक भद्र युवक दीवान के दर्शनों की आशा में नजर हाथ में लिए दीवानखाने के सम्मुखस्थ द्वार पर खड़े हैं। इनमें से जिन्होंने दीवानखाने के ड्योढ़ीवान् और सिपाही प्यादों को पान-तमाखू के लिए कुछ दे दिलाकर उनकी कृपा को खरीद लिया है, वे तो भीतर घुसने पाये; बाकी सब आजकल के, पेशकारी और डिप्टी कलेक्टरी के उम्मेदवारों की तरह सिर पर पगड़ी बाँधे दीवानखाने के सामने घास पर टहल रहे हैं। ब्राह्मण पण्डित "महाराज की जय हो, महाराज की जय हो"—कहते हुए महल के भीतर घुसते जा रहे हैं, इन लोगों से किसी को कुछ मिलने की आशा नहीं है, इसलिए उन्हें अन्दर जाने से कोई नहीं रोकता। ये लोग भीतर पहुँच कर निर्दिष्ट उच्च स्थान पर बैठते जाते हैं। सैकड़ों प्रजा जन अपने अपने आवेदनपत्र हाथ में लिए महल के सामने खड़े हैं। उस समय इस देश में, काशी के पण्डों की तरह, वकील मुख्तारों का दौरदौरा नहीं था। वकील मुख्तार थे ही नहीं। प्रत्येक व्यक्ति अपने अपने प्रार्थनीय विषय को स्वयं निवेदन करता था। वकील मुख्तारों

के पंजे में फँस कर किसी को अपना सर्वनाश नहीं करना पडता था। जो दो चार रुपये ख़र्च होते थे, वे अमले वालों की नज़र भेंट मे। अमले वाले थोड़े ही में सन्तुष्ट हो जाते हैं। परन्तु वकीलों के बड़े पेट को कोई नहीं भर सकता, चाहे लंकाधिपति के उद्यान के सारे फल-मूल ही बटोर कर क्यों न दे दें।

प्रातःक्रिया समाप्त करके अन्यान्य दस बारह व्यक्तियों के सहित महाराज नन्दकुमार ने जैसे ही दरबार-गृह में प्रवेश किया, सब उठकर खडे हो गये। ब्राह्मण पण्डितों ने हाथ उठा उठा कर "महाराज का कल्याण हो", "महाराज का कल्याण हो"—कहते हुए आशीर्वाद दिया। अन्यान्य सब लोगों ने सम्मानपूर्वक सिर झुका कर अभिवादन किया।

महाराज के सभासीन होते ही पण्डितों के अगुआ हरिदास तर्क-पंचानन ने सामने आकर शास्त्रालाप शुरू किया, अन्यान्य पण्डितगण भी चुप नही रहे। पण्डितों मे इस प्रकार का नियम नहीं था कि वे क्रम क्रम से एक एक करके अपना अपना वक्तव्य सुनावें। चार पांच पण्डित मिल कर एक साथ ही चीत्कार कर उठते थे। समय रहता था थोडा, उतने ही मे सभी को अपनी अपनी विद्या प्रकट करनी पड़ती थी। थोडी ही देर बाद महाराज राजकार्य मे लग जाते थे, अतएव जल्दी के मारे सभी उपस्थित पण्डित एक साथ ही चिल्ला उठते थे। इनका वाक्‌युद्ध आरम्भ होने पर सारा महल गूंज उठता था, कोलाहल मच जाता था। निदान आरम्भ में धर्म्मालोचना की पुकार मची, बाद मे नीति-शास्त्र की चर्चा छिडी। तर्क-पंचानन महाशय ने कहा—"महाराज! हमारे शास्त्रकारों ने कहा है, कौशल से राजकार्य चलाना चाहिए—कौशल के बिना कोई राजकार्य सम्पन्न नही होता—शत्रु को पराजित करना हो, जनसाधारण को मुट्ठी में रखना हो, तो राजपुरुषों को विविध कौशल का अवलम्बन करना उचित है। मन्त्रि-प्रवर चाणक्य ने इसी मार्ग

का अनुसरण किया था। विष्णु शर्मा ने भी हितोपदेश में स्थान स्थान पर कौशलमार्ग को ग्रहण करने के लिए ही लिखा है। यथा:—

"साम्ना दानेन भेदेन, समस्तैरथ वा पृथक्।
साधितुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन॥"

तर्क-पंचानन जी इस श्लोक को पूरा नहीं कह पाये थे कि वाचस्पति महाशय बोल उठे—हां हां, वह पहले वाला श्लोक छोड़ दिया—

"विजेतुं प्रयतेतारीन् न युद्धेन कदाचन।
अनित्यो विजयो यस्माद् दृश्यते युद्धमानयोः॥"

महाराज नन्दकुमार इन दोनों श्लोकों को सुन कर बोले—"महाशय, कोई कोई कहते हैं कि कौशल से कुछ भी लाभ नहीं होता।"

तर्क-पंचानन, वाचस्पति और विद्यावागीश एक साथ ही चिल्ला उठे—

"यथा काल कृत्योद्योगात् कृषी फलवती भवेत्।
तद्वन्नीतिरियं देव! चिरात् फलति न क्षणात्॥"

पण्डितों के मुंह से कौशल की यह व्याख्या सुनते ही महाराज नन्दकुमार को गत रात्रि की सारी बातें याद आईं। पंडितों को सम्बोधन करके कहने लगे—"महाशय! शास्त्र का मतामत कुछ समझ में नहीं आता। बापूदेव शास्त्री कहते है कि "राज-धर्म पालन करने के लिए राजा को चाहिये कि वह संतान की भांति प्रजा का प्रतिपालन करे और सदा ही सत्य और न्याय के पथ पर चले। नीतिशास्त्रविशारदों ने जिन बातों को राजनैतिक कौशल में गिना है, वे ठगी और धोखेबाजी

के सिवा और कुछ नही। न्यायण
अवलम्बन सर्वथा त्याज्य है।”
अधःपतन की अवस्था मे
व्याख्या मे जिन
प्रवञ्चनामूलक व्यत
लेकर राज्य-शास
जिस प्रकार
कौशलावल
का अनु
ही साध
है—“
रज्जु
नही

जङ्गल मे टूटा फूटा घर

ाढ का महीना है। दिन ढल चुका है। मूसलाधार पानी है। इसी समय—'हा विधाता! भाग्य मे इतना क्लेश !' कह कहकर अपने भाग्य को धिक्कारती हुई एक अत्यन्त स्त्री आमों की एक टोकरी सिर पर रक्खे ज़ोर से दौडी जा है। थोडी दूर जाकर वह एक घास फूस से घिरे हुए सून-सान के भीतर प्रवेश करने लगी। स्त्री की अवस्था अठारह बरस से धिक न होगी। वह निहायत मैले और फटे पुराने वस्त्र पहिने है, ख पर शोक, दुख और दरिद्रता के चिह्न अङ्कित हो रहे हैं। उसका रीर गोरा नही श्याम है; तथापि उसकी सुन्दरता में कोई सन्देह नहीं। जान पडता है, दरिद्र अथवा किसी मानसिक क्लेश के कारण उसके मुख पर की आभा जाती रही है। देखने मे वह अत्यन्त कृश और दुर्बल जान पडती है, परन्तु वह जिस तेज़ी से दौडी जा रही है, उसे देख कर कोई यह नही कह सकता कि उसके शरीर मे बल नहीं है। कुछ देर तक नज़र ठहरा कर देखने से मुखकमल पर स्त्री-जाति-सुलभ लज्जा, नम्रता और सरलता के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। परन्तु इन समस्त सद्भावों के अतिरिक्त—एवं इन से भी अधिक उत्तम और मधुर—न जाने कौन से अनुपम और अपूर्व सौन्दर्य का भाव उसके मुखमण्डल पर वर्त्तमान है कि उसे देखते ही सहृदय दर्शकों का मन मुग्ध हो जाता है और उनके हृदय में उसके प्रति स्नेह, दया और प्रेम के भाव का प्रादुर्भाव होने लगता है।

रमणी जिस टूटे फूटे घर के भीतर प्रवेश कर रही थी वह घर आरमीनियनो और फ्रांसीसियों की सैदाबाद वाली रेशम की कोठी से आध कोस के फासले पर था। इस समय फ्रांसीसियों और आरमीनियनों की रेशम की कोठिया सैदाबाद में थीं और अंगरेज़ों की कासिमबाज़ार में। अभी पूरा एक साल भी नही हुआ था कि लार्ड क्लाइव ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी के लिए बंगाल, बिहार और उडीसा की दीवानी हासिल की थी।

जिस घर मे रमणी ने प्रवेश किया, यह उजाड सा प्रतीत होता है। सारा घर झाड-झंखाड से परिपूर्ण है। भीतर बाहर सब जगह लम्बी लम्बी घास खडी है। वृक्षों के सडे गले पत्तों से घर की सारी ज़मीन ढकी हुई है। कही पर भी मनुष्य के पावों के चिह्न नही दिखाई देते। घर के आंगन में भी घास जमी है, जान पडता है महीनों से इस घर को झाडने बुहारने की चेष्टा किसी ने नहीं की। घर के समग्र टूटे-फूटे अंशो को देखने से सहज ही यह अनुमान होता है कि पहले यह घर दो खण्डों मे विभक्त था। बाहरी खण्ड में चार पाँच घरों के टूटे-फूटे छप्पर अधगिरे पड़े हैं। इन में मिट्टी के लम्बे लम्बे चबूतरों को देख कर बोध होता है कि पहले यहाँ शायद जुलाहे लोग रहते थे और यहाँ ये लोग वस्त्र बुना करते थे। मकान के पिछले खण्ड में भी कोई पाँच छः कोठरियाँ हैं। प्रायः सभी कोठरियों की छत भूमिसात हो चुकी है। सिर्फ़ एक छोटी सी कोठरी की छत अभी तक नहीं गिरी है। परन्तु यह कोठरी भी बरसात मे रहने योग्य नहीं। छत का खड-फूस मड चुका है। बूदें पडीं कि चूना शुरु हुआ। मेह बरसता है तो कोठरी भी बरसती है। चारों ओर की दीवारें भी अधगिरी खडी हैं। इस कोठरी में सिर्फ एक दरवाजा है। भीतर एक छोटी सी कोठरी और है। देखने मे किसी साधारण गृहस्थ की रसोई सी जान पड़ती है।

रमणी हांफते हांफते इस छोटे से घर में घुस गई। घर के भीतर से किसी ने अत्यन्त कातर स्वर से कहा—"सावित्री, बडा शीत है! तू कहां गई थी?"

रमणी दौडते हुए आने के कारण थक गई थी। हांफते हुए कहने लगी—"पिता! घर मे आज एक मुट्ठी भी चावल नहीं हैं। तुम्हें पथ्य कहां से दूंगी, बड़ी चिन्ता में हूँ। सैदाबाद के बाज़ार में बेचने के लिए कुछ आम लिये जा रही थी; यदि कोई ले लेता तो उन्हीं पैसों से चावल ख़रीद लाती। परन्तु रास्ते में मेह बरसने लगा। तुम्हें ज्वर मे छोड गई थी। यदि मेह में भीग जाते तो तुम्हारा जीवन संकट में पड जाता, इस मारे वही से लौट पडी। दौडती हुई आ रही हूँ। उठो, मेरी गोदी में सर रख लो और पांव समेट कर पड रहो।"

वृद्ध ने कांपते कांपते कहा—"हा ईश्वर! मेरी बेटी के भाग्य में इतना कष्ट बदा था! बेटी, मैं कुछ नहीं खाऊँगा बडा जा—आ—डा—है।"

कोठरी मे मेह का पानी आ रहा था। चटाई के ऊपर एक फटी पुरानी कथरी पडी हुई थी, वृद्ध उसी पर लेटा हुआ था। रमणी ने दोनों हाथो से वृद्ध को उठाया और ऐसे स्थान पर बिठा दिया, जहां पर छत से पानी नही गिरता था। कथरी समेत चटाई को उठा कर कोठरी के एक कोने में रख दिया। वृद्ध से बहुत देर तक बैठा न रहा गया, कन्या की गोद मे सर रख लिया, और हाथ पांव समेट कर धरती पर पड रहा। कन्या के कपड़े भी भीग गये थे। पिता को ज़ोर का जाडा लग रहा था। उढाने के लिए कोई दूसरा वस्त्र न था। अतएव जाड़े को दूर करने के लिए वह वृद्ध की पीठ पर हाथ फेरने लगी।

कुछ देर बाद मेह थम गया। संध्या हो गई। चारों ओर अन्धकार छा गया। रमणी झाड़ू लेकर कोठरी का पानी बाहर फेंकने लगी। पुनः चटाई बिछा कर वृद्ध को उसके ऊपर लिटा दिया। घर में तेल नहीं था, दीपक न जला सकी। बाहरी खण्ड के छप्परों का खड-फूस मेह में भीग गया था, जलाने योग्य न था। अतएव रमणी घर के इधर उधर से ढूंढ-ढाढ़ कर थोडा सा सूखा कूडाकरकट बीन लाई और पिता के बिछौने के बगल मे आग जलाई। अपने और पिता के भीगे हुए वस्त्रों को आग की आँच में सुखाने लगी।

कोठरी के एक कोने मे चूल्हा था। वहीं पर दो मिट्टी की हाँडियां और दो घडे रक्खे हुए थे। तेजस-पात्रों मे सिर्फ एक पीतल की घटी थी। घर में सिर्फ एक मुट्ठी चावल है, और कुछ नहीं। पिता को पथ्य कहां से दूँगी—रमणी इसी चिन्ता मे व्यस्त है। दोनो आखो से बुद बूद आँसू टपक रहे हैं। सवेरे भी घर में काफी चावल नहीं थे। प्रायः स्त्रियो मे यह एक परम्परागत विश्वास है कि अन्न रखने के पात्र को कभी सूना न करना चाहिये। इसीलिए सवेरे बर्तन मे जो दो तीन मुट्ठी चावल थे, उनमे से दो मुट्ठी लेकर पिता को भात बना दिया और एक मुट्ठी चावल बरतन मे रहने दिये थे। स्वयं उसने सारे दिन कुछ नहीं खाया था। बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर सावित्री ने इन्हीं रक्खे हुए चावलों को राँध कर पिता को पथ्य दे देना निश्चित किया। चूल्हे में आग जलाकर वह भात राँधने लगी।

कुछ देर बाद अकस्मात् घर के बाहर लालटेन का उजाला दिखलाई दिया। देखते देखते चार पाँच आदमी इस छोटे से घर के भीतर घुस पड़े। इनमें से जो आदमी सब के आगे था, उसका नाम था रामहरी चट्टोपाध्याय। यह अङ्गरेज़ों की क़ासिमबाज़ार वाली रेशम की कोठी का गुमाश्ता था। सावित्री इसे पहले से पहिचानती थी। इसके साथ के अन्यान्य तीन चार आदमी कोठी के प्यादे थे।

इन्हें देखकर युवती चिल्ला उठी। भय और त्रास के मारे उसका सारा शरीर कांपने लगा।

क़ासिमबाज़ार की कोठी मे रामहरी चट्टोपाध्याय को कोई कोई रामहरी बाबू कह कर पुकारते थे। परन्तु कोठी के साहब लोग इन्हें सिर्फ "बाबू" कहा करते थे। कोई कोई नवागत अंगरेज़ "बाबू" न कह कर "बे बून" कहते थे।

घर मे घुसते ही रामहरी ने युवती का हाथ पकड़ लिया, और कहा—"चल तुझे क़ासिमबाज़ार की कोठी को चलना पड़ेगा।" युवती उसके पांव पकड़ कर ज़मीन पर लेट गई, और कातर स्वर से कहने लगी—"चटर्जी महाशय आप मेरे पिता हैं, इस संसार में मेरा कोई नही है, मुझे क्षमा कीजिये, मेरी रक्षा कीजिये।"

रामहरी—आज मैं तेरी एक न सुनूंगा। चल तो चल, नही तो मेरे आदमी तुझे पकड़ कर ले चलेंगे।

सावित्री—मेरे महाराज, मेरे पिता आप ही मेरे धर्म के रक्षक हैं, आप ही मेरे धर्म के पिता हैं।

रामहरी—चुप रह। सरकारी काम के वक्त ये बातें अच्छी नही लगती। अपना भला चाहे तो सीधे चली चल। नहीं तुझे घसीट ले चलूंगा। आज तुझे हर्गिज़ नहीं छोड़ने का। तीन दिन से तुझे समझाता हूँ, खुशामद करता हूँ, पर तेरे मन में एक नहीं गड़ती।

युवती निराश हो गई। समझ लिया कि यह कुलांगार ब्राह्मण मुझे किसी तरह नही छोड़ेगा, इस नरपिशाच के हृदय में लेशमात्र भी दया नहीं है। अब सावित्री को क्रोध आया, प्रचंड कोपाग्नि से उसके दोनों होंठ कांपने लगे। हृदयावेग से उत्तेजित हो वह कहने लगी—

"रे पापी! तू ने षडयंत्र करके मेरा सारा धन-माल लूट लिया, मेरे भाई और स्वामी को जेल में ठेल दिया। दुष्ट! अब क्या मेरा धर्म भी लेना चाहता है? सब तो गया—भाई गया, मां गई, स्वामी गया—अब अपना धर्म भी दे डालूँ? अभी अभी आत्महत्या करके अपने सारे दु:खों का अन्त किये लेती हूँ। यह कह कर युवती उन्मत्त की भांति, सामने पडी हुई लकडी हाथ में लेकर ज़ोर ज़ोर से अपने माथे में मारने लगी। रामहरी ने आगे बढ़ कर उसका हाथ पकड लिया।

युवती का आर्त्तनाद उसके पिता के कानों में पहुँचा। वृद्ध बेचारा रोग, शोक और क्षुधा की पीडा के मारे अधमरा पडा था। अत्याधिक दुर्बलता के कारण कुछ दिनों से वह प्रायः अचेतन्य अवस्था मे रहता था। इस वक्त भी बेहोशी की हालत मे आँखे मूँदे पडा था। कन्या का आर्त्तनाद सुन कर जाग उठा। रामहरी ने सावित्री के सम्बन्ध में जो षडयंत्र रचा था, उसे कल उसने सावित्री ही की जबानी सुना था। वह समझ गया कि रामहरी मेरी कन्या को ज़बरदस्ती पकड ले जाने के लिए आया है। उस वक्त उसके मृतप्राय शरीर मे एकाएक नवशक्ति का संचार हुआ। प्रायः एक महीने से उसमें उठने की शक्ति नहीं थी। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात! हृदय का जोश कभी कभी मृतप्राय शरीर में भी बलप्रदान करता है। वृद्ध सहसा बिस्तरे से उठकर खडा हो गया, और हाथ बढा कर रामहरी को पकडने की चेष्टा की। परन्तु क्षण भर में वह काँपते-काँपते ज़मीन पर गिर पडा, और पुनः एकदम बेहोश हो गया। रामहरी के साथियों ने खींचते-घसीटते सावित्री को घर के बाहर निकाला। वह मूर्छित हो गई। उसी मूर्छित अवस्था में दो आदमियों ने उसे उठाकर अपने कन्धों पर रख लिया और क़ासिमबाज़ार का रास्ता पकडा।
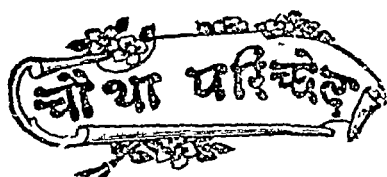
क़ासिमबाजार में रेशम की कोठी

पाठक और पाठिकाओं मे प्रायः सभी ने कासिमबाज़ार का नाम सुना होगा। परन्तु ईसवी सन् १७६६ में—अर्थात् इस उपन्यास मे उल्लिखित घटनाओं के समय यह कासिमबाज़ार जैसा गौरवान्वित और समृद्धिशाली था, इस समय उसका लेशमात्र भी नही। कासिमबाज़ार के उस समस्त गौरव और उस सारी समृद्धि का लोप हो गया है। आस पास सघन जंगल से घिरा सुनसान डाबर पडा हुआ था।

दिन रात हज़ारों आदमियों की भीडभाड, दौडधूप, चिल्ल-पुकार से परिपूर्ण; बगाल के सर्वप्रधान व्यापारीय नगरों में परिगणित; भागीरथी, गंगा और जलंगी—तीन नदियों की धाराओं से परिवेष्टित तात्कालिक कासिमबाजार का प्रकृतगौरव आज कल्पना-शक्ति को भी परास्त कर रहा है। व्यापार के लिए आये हुए देश-देशान्तर के लाखो आदमी यहाँ एकत्रित होते थे। अंगरेज़, फ़रासीस, डच और आरमीनियन व्यापारियों की उच्च अट्टालिकाये; भागीरथी में बहती हुई असंख्य व्यापारीय नावें, स्थान स्थान पर स्तूपाकार मे रक्खी हुई ढेर की ढेर विक्रेय वस्तुएँ; नदी के पार्श्वस्थित मालगोदाम मे अनेकानेक रेशम के कारखाने; देशी जुलाहों तथा भिन्न भिन्न कारीगरों की श्रेणीबद्ध दूकानें और दूकानो के सामने लटकते हुए रंगविरंगे रेशमी वस्त्र इस नगर को एक अपूर्व शोभा से सुसज्जित कर रहे थे। मनुष्य की चिल्लाहट, दलालों की दौड-धूप, विविध देशो के विलास-प्रिय लोगों की सुन्दर सुन्दर पोशाकें;

वेशविन्यास की सजधज; अर्थोपार्जन के लिए अर्थलोलुप व्यापारियों के विविध उद्योग और परस्पर एक दूसरे के साथ प्रवञ्चनामूलक व्यवहार मानवहृदय की घोर विशयासक्ति एवं स्वार्थपरता का परिचय प्रदान करते थे, और प्रत्यक्षरूप मे यह प्रमाणित कर रहे थे कि अर्थोपार्जन के मार्ग में मनुष्य बड़े से बड़े कष्टों को उठाने, बडी से बडी विपत्तियों को झेलने और बडी से बडी लांछनाओं को सहने से परांमुख नहीं होता।

अँधेरी रात मे नदी के पार्श्वस्थित भवनों में जलते हुए दीप दूरस्थित दर्शकों को असंख्य सितारे से जगमगाते प्रतीत होते थे। संध्या के बाद अँगरेज़ों के कन्टून्मेंट में बजने वाले अंगरेज़ी बाजों की झनकार तथा निकटस्थ ग्रामों के तंतुकार एवं अन्यान्य गृहस्थों और वैष्णव धर्मावलम्बी पुरुषों के यहां बजनेवाले शंख-घड़ियाल, खंजडी-करताल की ध्वनि भागीरथी की धारा के कलकल शब्द से सयुक्त होकर एक अपूर्व सुमधुर संगीत की सृष्टि करती थी। चारों ओर के समग्र स्थान उससे गूंज उठते थे। सुनने वाले के कानों में मानों अमृत बरसता था।

परन्तु क़ासिमबाज़ार की यह अतुल सुखसामग्री, यह अपूर्व सजधज, यह मनोहर दृश्य सौ बरस बीतते बीतते कैसे लुप्त हो गया? दुराचारी रमणी के यौवन की भाँति कासिमबाज़ार का समस्त गौरव इस थोड़े से समय में क्योंकर नष्ट हो गया? जिस प्रकार परमासुन्दरी कुलटा स्त्रियां यौवन के अन्त में विविध सौन्दर्य्य-शोभा से हीन हो कुकर्मों से उत्पन्न होनेवाले विभिन्न रोगो के कारण घोर विरूपता को प्राप्त होती हैं, वही दशा कासिमबाज़ार की हुई! और क्यों न होती? क़ासिमबाज़ार क्या पवित्र काशी धाम की तरह कोई तीर्थस्थान थोड़े ही था? भिन्न भिन्न देशों के साधु सज्जन क्या यहा सत्संग लाभ करने या सत्कथाओं को सुनने के लिए थोड़े ही आते थे! काशी धाम में श्री गंगा के किनारे पर बैठ कर हज़ारों धर्मानुरागी प्रातःकाल के समय जिस प्रकार

विविध भक्तिपूर्ण छन्दों का गायन और परम पवित्र वेद-शास्त्र का अध्ययन करते हैं, उस प्रकार क्या कभी कासिमबाज़ार में भी भागीरथी के किनारे धर्म-शास्त्र की चर्चा हुई थी ? नहीं, यहां धर्म का नाम ही नहीं था। धर्म-शास्त्र की पैठ ही नहीं थी। यहां तो हर घडी यही उद्योग था, यही चेष्टा थी कि कौन किसे धोखा देकर दो पैसे प्राप्त करे, कौन किसे ठग-मूंड कर अपना पेट भरे।

क्या नदी, क्या समुद्र, क्या गांव, क्या नगर, धर्मानुष्ठान का पवित्र संसर्ग सभी को अमर बना सकता है। जिस किसी भी वस्तु अथवा जिस किसी भी स्थान के साथ धर्म और सदाचार सम्बन्धी भाव, संस्कार या घटना सम्बद्ध रही है, उस वस्तु अथवा उस स्थान ने धर्म के पवित्र संसर्ग से अमरत्व लाभ किया है। परम सच्चरित्रा साध्वी स्त्रियां जिस प्रकार यौवन के अन्त मे भी दुराचारिणी कुलटाओं की भांति विरूपता को प्राप्त नहीं होतीं वरन् यौवन का अन्त हो जाने पर प्रौढ़ और वृद्धावस्था मे स्नेह, दया और पवित्रता की ज्योति से उनका चेहरा और भी अधिक जगमगाने लगता है, जन साधारण उन्हें देवी की भांति पूजते और उनका अत्यन्त सत्कार करते हैं; इसी प्रकार साधु महात्माओं के पवित्र सम्मिलन के स्थानों का सौन्दर्य कभी नष्ट नहीं होता, उनका महत्व चिरस्थाई होता है, उनके माहात्म्य का कभी ह्रास नहीं होता। ऐसे स्थान सदा के लिए अमर होकर काल के आक्रमणों को परास्त करते रहते हैं।

परन्तु पाठक! क़ासिमबाज़ार का लोप—क़ासिमबाज़ार की वर्तमान अवस्था तुम्हें क्या उपदेश देती है? कासिमबाज़ार का यह अधःपतन केवल वेश-विन्यास के साजसामानों से परिपूर्ण, धर्मशून्य मानव-जीवन की असारता को प्रतिपादित करता है। पाठिकाओ! क़ासिमबाज़ार की वर्तमान दुर्दशा को देख कर तुमने कौन सी शिक्षा

ली ? जिस प्रकार पिता एवं पतिहीना बाल-विधवायें पति की मृत्यु के अनन्तर जब उनके छोड़े हुए प्रभूत, ऐश्वर्य और धन सम्पत्ति की अधिकारिणी होती हैं तो सैकड़ों धूर्त्त, ठग और दुराचारी मनुष्य उनके धन और धर्म को नष्ट करने के अभिप्राय से उन्हें कुपथ की ओर घसीट ले जाते हैं और धीरे धीरे उनका सर्वस्व हरण कर युवावस्था के अन्त तक उन्हें दर-दर की भिखारिणी बना डालते हैं; उसी प्रकार राजशासन से शून्य, देश के नवाब और देश के निवासियों से अरक्षित, अतुल ऐश्वर्यशाली क़ासिमबाज़ार के धन-ऐश्वर्य को हस्तगत करने की लोभ-लालसा से देश-देशान्तर के अर्थ-लोलुप व्यापारी उसकी छाती पर आ डटे थे, और विविध प्रकार के कुकर्मों, दुष्पापों एवं अत्याचारों से उसकी छाती को कलंकित कर—उसके सारे धन-वैभव को हड़प कर उसे भिखारी बना चले गये। पवित्र सलिला भागीरथी ने उसे कलंकित समझ उसका संसर्ग छोड़ दिया, और वहां से हट कर वह अन्यत्र प्रवाहित होने लगी। क़ासिमबाज़ार गंगा के सामीप्य से भी हाथ धो बैठा।

ईसवी सन् १७६६ के जुलाई महीने में, जब कि कासिमबाज़ार में असंख्य आदमियों की बस्ती थी और वहां विविध प्रकार के पाप और अत्याचारों का दौर-दौरा था, एक दिन संध्या के आठ बजे बंगकुलांगार रामहरी के साथी सावित्री को कन्धों पर रक्खे अंगरेज़ों की रेशम की कोठी के पास आ उपस्थित हुए।

कोठी के दाहिने पार्श्व में एक छकनला दालान था। कोठी के असिस्टेन्ट डवसन् साहब इसी दालान में रहा करते थे। इन कन्धरों ने सावित्री को लाकर डवसन् साहब के दालान के बरांडे में उतारा। सावित्री अभी तक बेहोश थी। क़ासिमबाज़ार पहुँचते ही आदमियों के कोलाहल से जाग पड़ी, अचैतन्यता जाती रही, आँखें खोल कर देखा

कि किसी दालान के वरांडे मे पडी हूँ, एक आदमी पास खडा है। भय के मारे शरीर कांपने लगा। बारम्बार मन ही मन कहने लगी—"हे विपद्-भंजन विश्वम्भर ! इस अनाथ की रक्षा करो !"

रेशम की कोठी के गुमाश्ता रामहरी बाबू जिस अभिप्राय से सावित्री को लाये थे और जिस प्रकार सावित्री के पिता की यह दुर्दशा हुई थी, उसे बतलाने के लिए पहले कुछ ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख करना आवश्यक है।

पाठक और पाठिकाओं मे बहुतों का यह विश्वास है कि मुसलमान राजाओं के शासनकाल मे प्रजा के ऊपर घोर अत्याचार होता था। हम भी इसे स्वीकार करते हैं कि मुसलमान राजागण बड़े अत्याचारी थे। उनके अत्याचार से प्रजा को बड़े बडे क्लेश भोगने पडे थे, इसमें कोई सन्देह नही, परन्तु उनके अत्याचार के अन्तर्गत कोई कौशल नही देख पड़ता था। उनका अत्याचार सिर्फ एक प्रकार की असभ्योचित निर्दयता थी। कौशलपूर्ण क्रमबद्ध अत्याचार, विक्रेय वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित करके व्यापार की जड में कुठाराघात, विविध चालों, फ़रेबों से जनसाधारण के धन का अपहरण—इत्यादि कुप्रथाओं से मुसलमानी शासन कभी नही कलंकित हुआ। उनकी असभ्योचित कोपाग्नि में पड कर समय-समय पर देश के कितने ही धनी मानियो को अपना सर्वस्व नष्ट कर देना पडा, कितनों ही को धर्म खोना पडा, कितनों ही को जाति-भ्रष्ट होना पडा! अपनी दुर्दमनीय भोग-लालसा को तृप्त करने के लिए समय-समय पर उन्होंने कितनी ही भद्र महिलाओं के प्रति अत्यन्त कुत्सित और घृणित अत्याचार करके अपने हाथों को कलंकित किया। परन्तु ग़रीब मज़दूरों को, दुर्बल व्यवसायियों को, तन्तुकार आदि शिल्पियों और कारीगरों को उनके अत्याचार से कभी नहीं पीडित होना पडा। इन

लोगों के प्रति अत्याचार की बात तो दूर रही, अनेकानेक जुलाहे तथा अन्यान्य कारीगर लोग मुसलमान राजाओं के निकट अपने अपने शिल्प-नैपुण्य का परिचय देकर पुरस्कार स्वरूप उनसे जागीरें प्राप्त करते रहे।

परन्तु पलासी-युद्ध के बाद जब बंगाल पर अंगरेज़ व्यापारियों का आधिपत्य स्थापित हुआ, और जब से मुर्शिदाबाद के नवाब अंगरेजों की मुट्ठी में रहने लगे, एवं कायर मीरजाफ़र ईस्ट इण्डिया कम्पनी के तात्कालिक अर्थलोलुप कर्मचारियों के निकट इक़रारनामा लिख कर नवाब की गद्दी पर बैठा, उस समय से देशी व्यापार के मूल में कुठाराघात हुआ। विविध प्रकार की विक्रेय वस्तुओं पर एकाधिकार स्थापित हो गया। देशी व्यापारियों के प्रति दिनोदिन घोर अत्याचार होने लगा। तन्तुकार इत्यादि शिल्पी और कारीगर अपना अपना व्यवसाय और घर-द्वार छोड़कर इधर उधर भागने लगे।

सिराजुद्दौला की सिंहासन-च्युति के समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने कभी स्वप्न में भी यह नहीं सोचा था कि भविष्य में इस विस्तीर्ण भारत साम्राज्य के शासन का भार हमारे हाथों में आ जायगा। अतएव पलासी-युद्ध के बाद जब मीरजाफ़र बंगाल का सूबेदार हुआ तो अंगरेज़ों ने उसके निकट यह प्रस्ताव किया कि आप हमारी व्यापारीय कोठियों के साहबों और गुमाश्तों के काम-काज में किसी प्रकार का हस्तक्षेप न कर सकेंगे। वरन् यदि कभी दूसरा कोई उन्हें सताने आवे या उनके कार्य में बाधा डाले तो आपको उनकी सहायता करनी होगी। कायर मीरजाफ़र ने इस प्रस्ताव को मंजूर कर लिया। अंगरेज़ों की व्यापार की कोठियों के साहबों और गुमाश्तों ने देश के जुलाहों इत्यादि सभी श्रेणी के कारीगरों पर घोर अत्याचार करना शुरू किया।* इसका एक विशेष कारण यह था कि इस समय इंगलैण्ड

*Vide Note (1) in the appendix.

के प्रतिष्ठित घरानों के अँगरेज़ भारतवर्ष में नहीं आते थे। तात्कालिक इंगलैण्डीय समाज के अनुदार और अर्थलोलुप व्यक्ति ही, जिन्हें स्वदेश मे भोजन नही जुटता था और जो हर तरह के कुकर्मों मे लीन रहते थे, धन के लोभ से इस देश में आते थे। रुपया इकट्ठा करने के लिए उन्हें कोई भी कुकर्म करने में संकोच नही होता था।§ ये लोग देशी तन्तुकारो को ज़बरदस्ती, मजबूर करके, दादनी (पेशगी रुपया) देते थे, अनिच्छा रहते हुए भी तन्तुकारो को इस प्रकार दादनी का रुपया लेकर निर्दिष्ट समय के भीतर, निर्दिष्ट सख्यक वस्त्र बुनकर देने के लिए इक़रारनामा लिख देना पडता था।* परन्तु उनके बुने हुए वस्त्रों का मूल्य निश्चित करते समय अंगरेज़ लोग अथवा उनकी कोठियों के गुमाश्ता गण जिस वस्त्र का वास्तविक मूल्य १००) होता, उसके ४०) से ज्यादह नही देते थे। असहाय तन्तुकारों को इस प्रकार के अत्याचार से छुटकारा पाने की कोई आशा न थी। देश के नवाब थे मीरजाफर। वे पहले ही यह इकरार कर चुके थे कि हम अंगरेज़ों की वाणिज्य-कोठियो के साहबों और गुमाश्तों के काम-काज मे किसी तरह का दख़ल न देंगे। अतएव ग़रीब तन्तुकार चुपचाप यह अत्याचार सहते रहे। इस समय कासिमबाज़ार मे फ़्रासीसी, डच और आरमीनियन लोगों की भी रेशम की कोठियां थीं। अभी तक तन्तुकार लोग अपने बुने हुए वस्त्रों को उनके हाथ भी बेच सकते थे। परन्तु अब अंगरेजों ने तन्तुकारों से कहा कि वे फ़्रांसीसियो और डचों के हाथ कपडा न बेचें। यदि कोई व्यक्ति अंगरेजों के इस निषेध को न मानकर फ़्रांसीसियों अथवा डचों के हाथ कपड़ा बेच देता तो अंगरेज़ों की फ़ैक्टरी के साहब और गुमाश्ता लोग उसके लिए गुरुतर दण्ड का विधान करते थे।‡ कभी उसका

§Vide Note (2) in the appendix.
*Vide Note (3) in the appendix.
‡Vide Note (4) in the appendix.

घरबार लूट लेते थे और कभी उसकी स्त्रियों को अपमानित करते थे। इसी तरह कितने ही तन्तुकारों को जातिभ्रष्ट होना पड़ा, अतएव इस दशा में अनन्योपाय होकर उन्होंने कपड़ा बुनने का व्यवसाय एकदम छोड़ दिया और मूड़ मुड़ाकर वैरागी बन गये।

फ्रांसीसी अथवा डच लोगों के हाथ कपड़ा बेचने पर जुलाहे लोग सहज ही उसका उपयुक्त मूल्य पा सकते थे, परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों के भय से वे कभी दूसरों के हाथ कपड़ा नहीं बेचने पाते थे। इधर अंगरेज़ों की कोठियों के बंगाली गुमाश्ता तथा अन्यान्य देशी धूर्त, जुलाहों से रुपया ऐंठने के अभिप्राय से उनके ऊपर इस प्रकार के झूठे अभियोग आरोपित करते रहते थे कि उन्होंने गुप्त रूप से फ्रांसीसियों अथवा डचों के हाथ कपड़ा बेचा है। कोठी के साहब लोग इस प्रकार के अभियोगों को सुनते ही उनके सत्यासत्य का अनुसंधान न करके तत्काल ही उनके यहां सिपाही भेजते थे। सिपाही लोग उनका घरबार लूट लेते थे, उनकी स्त्रियों का धर्म नष्ट करके उन्हें जातिभ्रष्ट कर डालते थे।

क़ासिमबाज़ार के आस पास हज़ारों जुलाहों की बस्ती थी, परन्तु ऐसा कहा जाता है कि मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति के बाद ईसवी सन् १७६६ में एक बार एक ही रात में कोई सात सौ जुलाहे अपना अपना गाँव छोड़ कर भाग गये थे।

सावित्री के पिता सभाराम बसाक बड़े प्रसिद्ध तन्तुकार थे। इनके समान अच्छा वस्त्र बुननेवाले तन्तुकार बहुत थोड़े थे। जिस ज़माने में अलीवर्दीखां बंगाल के सूबेदार थे, उस ज़माने में सभाराम ने एक बहुत सुन्दर वस्त्र बुन कर नवाब को भेंट किया था। अलीवर्दीखाँ ने इनके शिल्पनैपुण्य से प्रसन्न हो पुरस्कार-स्वरूप इन्हें पांच सौ बीघे की जागीर प्रदान की थी। मुर्शिदाबाद के सेठ घराने के सब लोगों

के पहिनने के लिए सारे वस्त्र सभाराम ही [illegible] ताथा समय पर विवाह, नामकरण इत्यादि उत्सवों के उपलक्ष [illegible] से हज़ारों रुपया पुरस्कार पाते थे। इस प्रकार सभाराम ने बहुत धन इकट्ठा कर लिया था। परन्तु नवाब के यहां से पांच सौ बीघे की जागीर पाने के बाद सभाराम ने साधारणतः वस्त्र बुनने का व्यवसाय छोड दिया। अब वे सिर्फ़ सेठ घराने और नवाब घराने के आदमियों के लिए हर साल थोडा सा अच्छा कपडा बुनते थे, और उसी से उन्हें साल मे दो तीन हज़ार रुपया मिल जाता था। ईस्ट इण्डिया कम्पनी को दीवानी की सनद प्राप्त होने के बाद अंगरेज़ों की कासिमबाजार की रेशम की कोठी के अध्यक्ष को कही खबर मिली कि सभाराम बहुत अच्छा कपडा बुनता है; बस, सभाराम पर सनीचर की नजर घूमी। परन्तु सभाराम को अब बुढ़ापे ने घेर लिया था, चलने फिरने की शक्ति न रही थी। उनके तीन पुत्र कालाचांद, गोराचाद और रायचांद एवं दामाद नवीनपाल—ये ही चारों उनका व्यवसाय चला रहे थे। अंगरेजों की कोठी के गुमाश्ता रामहरी कई एक सिपाही-प्यादों को साथ लेकर एक दिन सभाराम के मकान पर आये, और उनके दामाद तथा पुत्रों से १००) दादनी लेने के लिए कहा। सभाराम के दामाद और पुत्रों ने दादनी लेना अस्वीकार किया। परन्तु गुमाश्ता ने उनकी एक न सुनी। दादनी का रुपया हाथ में देकर इकरारनामे पर उनके दस्तखत ले लिये। इस इक़रारनामे में क्या लिखा था, वह भी सभाराम के दामाद और पुत्रों को पढकर नहीं सुनाया। रामहरी गुमाश्ता दादनी का रुपया दे इक़रारनामे पर दस्तख़त ले कोठी को वापस गये। परन्तु इस इकरारनामे मे यह लिखा था कि दो महीने के भीतर दो हजार रेशमी थान बुन कर देंगे। दो महीने बीतते ही सभाराम के तीनों पुत्र और दामाद कोठी में तलब किये गये। अध्यक्ष साहब ने उनसे इक़रारनामे मे अंगीकृत

घरबार—
इस हज़ार थान देने के लिए कहा। उन लोगों ने अचम्भे में आकर कहा—"धर्मावतार भला दो महीने के भीतर क्या कोई इतना कपडा बुन सकता है?" इतने मे कोठी के गुमाश्ता रामहरी चट्टोपाध्याय, साहब से कह उठे—"धर्मावतार! ये लोग बडे बदमाश है, इन्होंने सारा कपडा सैदाबाद के आरमीनियन और फ्रांसीसी व्यापारियों के हाथ बेच लिया है। दो हज़ार क्या, दो महीने में ये पाँच हज़ार थान तैयार कर सकते हैं।" साहब ने हुक्म दिया, इन चारों को कैद करलो और इनके घर का सारा माल-असबाब कुर्क और नीलाम करके दादनी का रुपया वसूल करो। रामहरी को मालूम था कि सभाराम के घर मे बहुत रुपया है। अतएव साहब का हुक्म सुनकर मन ही मन सोचने लगे कि आज तो इन लोगों के घर को लूट कर खूब माल मारूँगा। तीन बार 'हरि नाम' का स्मरण किया। और सिपाही प्यादों को साथ ले मन ही मन आनन्द मनाते सभाराम का घर लूटने चले। इधर सिपाहियों के पहुँचने के दो तीन मिनट पहिले सभाराम के एक आत्मीय व्यक्ति ने सभाराम की स्त्री को इस विपत्ति की सूचना दी। उस समय अंगरेज़ों की कोठी के सिपाही का नाम सुन कर भय और त्रास के मारे गर्भवती स्त्रियों का गर्भपात होता था! सभाराम की स्त्री ने अपनी कन्या और बहुओं को साथ ले भागने की चेष्टा की। सभाराम से चला फिरा भी नहीं जाता था। सावित्री ने झट-पट पिता को गोदी उठाया और भाग कर एक निकटस्थित जंगल की झाडियों के भीतर घुस गई। परन्तु सब लोगों के एक ही तरफ को भागने से सब के पकड जाने की आशंका थी, अतएव सभाराम की स्त्री और बहुएं सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारियों की कोठी की तरफ भागीं। घर से बाहर होते ही देखा कि गुमाश्ता और सिपाही उनके घर की तरफ चले आ रहे हैं। डर के मारे उनके होश हवास जाते रहे, उन्मत्त की भाँति दौडने लगीं।

उन्हें भागते देखकर सिपाहियों ने उनका पीछा किया। बेचारी अनाथा स्त्रियां बचने का कोई उपाय न देख कर, भागीरथी की धारा मे कूद पड़ी। पवित्र सलिला भागीरथी ने उनकी समस्त सांसारिक यन्त्रणाओं को दूर किया, असहाय अबलाओं को अपने उदर में छुपा लिया। क्या बंगीय कुलांगार रामहरी, क्या वे निर्दयी सिपाही और क्या अर्थलोलुप अंगरेज़ वणिक! अब उनके प्रति कोई अत्याचार न कर सकता था। इस संसार के अत्याचारियों के हाथों से छूट कर अब वे अनन्त काल के लिए उन अनन्त मंगलमय परमेश्वर की अमृतमयी गोद मे जा विराजी।

गुमाश्ता बाबू ने सिपाहियों को साथ ले सभाराम के सूने घर में प्रवेश किया। घर का सारा माल असबाब बाहर निकाल कर बेचने के लिए कासिमबाज़ार भेज दिया। परन्तु सभाराम का गुप्त धन कहां रखा है इसका पता न लगा। उस समय देश के लोग रुपये को घर के भीतर मिट्टी मे गाड़ रखते थे। इन लोगों ने सभाराम के सारे मकान को तोड़ताड़ कर धरती को खोदना शुरू किया। परन्तु सारे दिन परिश्रम करने पर भी रुपये का पता न लगा। अंगरेज़ों की कोठी के गुमाश्ता और सिपाहीगण इसीलिए जब किसी व्यक्ति का घर लूटने जाते थे तो पहले उसके यहा की स्त्रियों को रोक रखते थे। सोचते थे कि जहां स्त्रियों को मारना पीटना और अपमानित करना आरम्भ किया कि वे तुरन्त ही गड़े हुए रुपये का पता बता देंगी। जिन समस्त हतभागिनी स्त्रियों को इस प्रकार इन लोगों के हाथों पतित होना पड़ता था, उनके प्रति ये लोग जैसा निष्ठुर आचरण करते थे, उसके स्मरणमात्र से हृदय विदीर्ण होता है। उन समस्त अत्याचारों का उल्लेख करके हम भाषा को कलुषित नहीं करना चाहते। वे अश्लीलता से परिपूर्ण है, सभ्यता और सुरुचि की सीमा का उल्लंघन किये बिना उनका उल्लेख असम्भव है।

सारे दिन सभाराम का घर खोदने पर भी रामहरी को गुप्त धन का पता न मिला। अन्त में सर्वथा निराश हो कोठी को लौट आये, और मन ही मन सोचने लगे कि सभाराम के पुत्रों और दामाद को मारने-पीटने से वे अवश्य ही गुप्त धन का पता बता देंगे। निदान उन्होंने उन्हें मारना शुरू किया। मार की चोट से व्यथित हो गोराचांद और रायचाद ने अपनी मानवलीला को समाप्त कर अत्याचार के हाथों से मुक्ति पाई। कालाचाद और नवीनपाल अपने इकरार को तोडने के अपराध में कलकत्ता जेल भेजे गये।

इधर सावित्री अपने पिता को लेकर दो दिन और दो रात निराहार जंगल के भीतर छिपी रही। बाल्यावस्था से ही वह पिता के प्रति असीम श्रद्धा रखती थी और उनका बहुत ही आदर करती थी। पिता ही को वह अपना जीवन-सर्वस्व जानती थी, उन्हीं को अपना आराध्य देवता मानती थी। इस अभिप्राय से कि सावित्री को कभी मुझ से अलग न होना पड़े, सभाराम ने सावित्री का विवाह करके अपने दामाद नवीनपाल को अपने ही पास रख लिया था।

दो दिन और दो रात के बाद सावित्री ने पिता को लेकर कही अन्यत्र भाग जाने का निश्चय किया। परन्तु अभी तक उसे कुछ पता नहीं था कि मेरी माता, भौजाई और भाई कहां है और उनकी क्या दशा है। बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर वह अपने उसी छोड़े हुए घर को लौट आई। घर में घुसते ही देखा कि सारा घर खुदाखुदाया पड़ा है, सभी कोठरियों की ज़मीन खुदी हुई है, जगह जगह पर गड्ढे हैं। अन्न का एक दाना भी बाकी नहीं है। दो दिन और दो रातें निराहार बीती थी। सोचने लगी कि क्षुधा से पीडित पिता को भोजन कहां से लाऊँ। बहुत कुछ सोचा-विचारी के अनन्तर निश्चय किया कि भागते वक्त तन पर जो दो तीन गहने रह गये थे उन्हीं को बेच कर सैदाबाद के

बाज़ार से चावल ख़रीद लाऊँ। यह सोच कर पिता को अकेला घर में रखा और स्वयं सैदाबाद की तरफ चल दी। चलते चलते रास्ते में सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारी आराटून साहब की मेम की आया मिल गई। आया का नाम था बदरुन्निसां। यह स्त्री आराटून साहब की मेम के लिए कपड़ा खरीदने के हेतु अब से पहले सभाराम के यहां प्रायः आया करती थी। अतएव इसके साथ सभाराम के परिवार की सभी स्त्रियों का विशेष मेल-जोल था। बदरुन्निसां सावित्री को देखते ही उसका गला पकड़ कर रोने लगी। सावित्री भी रोने लगी और रोते ही रोते पूछा—"मेरी मां और भौजाइयां कहां हैं, कुछ मालूम है? क्या वे तुम्हारी कोठी मे भाग आई हैं?"

बदरुन्निसा ने लड़खड़ाती हुई आवाज़ से कहा—"कल तुम्हारी माता और भौजाइयों की लाशें नदी मे उतरा रही थीं। मैंने अपनी आँखों उन तीनों की लाशें देखी है। तुम्हारे भाई गोराचांद और रायचांद को साहब के आदमियों ने इतना मारा कि वे मर गये। तुम्हारे पति और बड़े भाई को कलकत्ते की जेल मे भेज दिया है।"

यह हाल सुनते ही सावित्री शोकावेग से मूर्छित होकर गिर पड़ी। बदरुन्निसां उसके सिर को गोदी में रख कर रास्ते के एक किनारे बैठ गई। कुछ देर बाद सावित्री को होश आया और वह पुनः सिर पीट-पीट कर रोने लगी। बदरुन्निसां ने उसे बहुत कुछ समझाया-बुझाया और कहा—"इस खुले रास्ते मे रो-पीट कर गड़बड़ न मचाओ। तुम्हारे घर का गुप्त धन शायद उन लोगों को नहीं मिला है; अतएव सम्भव है, वे तुम्हें पकड़ ले जाकर गुप्त धन का पता पूछने की चेष्टा करें। परन्तु शोक से सावित्री के कान बहिरे हो रहे थे। बदरुन्निसां क्या कह रही है, वह कुछ न समझ सकी। अन्ततः बदरुन्निसा खींचते

खींचते उसे फिर उसके घर लिवा ले गईं और उसके सिर पर पानी छोड़ने लगी। सावित्री बारम्बार अचेत हो जाती थी, कभी कभी बेहोशी बहुत बढ़ने लगती थी। बदरुन्निसां ने सोचा कि यदि कुछ खायेगी नहीं तो इसका शरीर और भी दुर्बल हो जायगा, फिर इसी व्यथा में मृत्यु हो जाय तो आश्चर्य नहीं। यही सोच कर उसने सावित्री को पिता के पास लिटा दिया और स्वयं उनके भोजनों का कुछ प्रबन्ध करने के लिए आराट्टन साहब की कोठी पर आई। आराट्टन साहब की मेम ने बदरुन्निसां की ज़बानी जब आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुना तो उनका स्त्री-जाति-सुलभ कोमल हृदय विदीर्ण होने लगा, तुरन्त ही उन्होंने दो-तीन रुपये का सामान—चावल, दाल इत्यादि—मंगवाया, और बदरुन्निसां को साथ करके तीन-चार आदमियों के साथ सभाराम के घर पर भेज दिया। परन्तु सावित्री को इस वक्त भोजन बनाने या खाना खाने की फुर्सत कहां? सारी सुध भूली है, शोकाग्नि से हृदय दग्ध हो रहा है। बदरुन्निसां उसे बारम्बार, समझाने-बुझाने लगी। परन्तु इस प्रकार के दारुण दुख में हज़ार समझा-बुझा कर भी मनुष्य के हृदय को धीरज बंधाना दुःसाध्य है।

वृद्ध सभाराम को अभी तक कुछ हाल नहीं मालूम हुआ। कुछ देर में उन्होंने कहा—"सावित्री गला सूख रहा है, एक घूंट पानी दो।" उस समय पिता की दुरवस्था देखकर सावित्री का हृदय और भी अधिक शोकाकुल होने लगा। उठ कर पिता को पानी दिया और उनके लिए भात रांधने लगी। तैयार करके पिता को भोजन कराया। स्वयं कुछ नहीं खाया। बदरुन्निसां मुसलमान थी, सावित्री के पास बैठ कर अपने हाथ से उसके मुंह में कौर दे नहीं सकती थी। सावित्री जब भात बनाने लगी, बदरुन्निसां वहां से हट कर दूर जा बैठी; और वहीं बैठे बैठे सावित्री से भात खाने के लिए अनुरोध करती रही। सावित्री

किसी तरह खाने को तैयार न हुई। अन्त में बदरुन्निसा ने कहा—"बेटी, यदि तुम लंघनों के मारे मर गईं तो तुम्हारे इन वृद्ध पिता को कौन घूंट भर पानी देगा?" बदरुन्निसां ने जब बारम्बार ऐसा कहा तो अन्ततः सावित्री ने गिनती के दो-तीन चावल पानी में डालकर वही पानी पी लिया। तब तक संध्या हुई। बदरुन्निसां ने घर में एक दीपक जला दिया, और फिर वह अपने स्थान को चली गई।

भोजन के बाद सभाराम का चित्त कुछ शान्त हुआ। वह सावित्री से पूछने लगे—"बेटी, तुम्हारी मां और भाई कहां हैं, कुछ पता लगा?" सावित्री अपने को न सँभाल सकी, फूट फूट कर रोने लगी। माता, भाई और भौजाइयों की मृत्यु का सारा वृत्तान्त पिता को कह सुनाया। सुनते ही सभाराम शोक से मूर्छित हो गये। बस, इसी वक्त से सभाराम प्रायः पागल से हो रहे। सदा ही अपने तन की सुध-बुध भूले रहते थे। बीच-बीच मे कभी-कभी कुछ होश आ जाता था।

इसी दशा में पिता के सहित सावित्री इस टूटे-फूटे घर में रहने लगी। ईसवी सन् १७६६ के जनवरी महीने में उनके ऊपर यह विपत्ति पड़ी थी। जनवरी से जुलाई तक वे दोनों इसी घर में रहे। अपने पास जो दो-चार आभूषण थे, उन्हें बेच-बाच कर सावित्री अपने और पिता के भोजनों का प्रबन्ध करती रही। बीच-बीच में आरादून साहब की मेम कुछ सहायता देती थीं। बदरुन्निसां दूसरे-तीसरे दिन आकर उनकी ख़बर ले जाती थी। सारा गांव ऊजड हो चुका था। सभाराम की जागीर मे जो कितने ही जुलाहे तथा अन्यान्य आसामी बसते थे, वे सभी घर छोड़ कर भाग गये थे। जुलाई मास के आरम्भ में अर्थात् सन् ११७२ (१७६६ ई०) के आषाढ महीने में, जब कि सावित्री को भोजनों का बड़ा कष्ट हो रहा था, एक दिन अपने घर के निकट स्थित

बाग़ में से कुछ आम तोड़ कर बाज़ार मे बेचने जा रही थी। रास्ते मे मेह बरसने लगा तो घर लौट आई। उसी दिन रात को सिपाही प्यादों के साथ आकर रामहरी ने उसे धर पकड़ा।

पाठकों को याद होगा कि रामहरी ने सावित्री को पकड़ते वक्त कहा था कि "सरकारी काम" है, आज तुझे हर्गिज़ न छोड़ूंगा। साहब लोगों का कोई भी काम होता, रामहरी उसे सरकारी काम कहा करते थे। परन्तु कौन से 'सरकारी काम' के लिए वह सावित्री को पकड़ ले गये थे उसे हम नीचे लिखते है।

इसके पहले भारतवर्ष के भावी गवर्नर-जनरल वारन् हेस्टिंग्स कासिमबाज़ार की फेक्टरी के असिस्टेन्ट थे। वारन् हेस्टिंग्स अर्थ-लोलुप थे अवश्य, परन्तु वे इन्द्रियासक्त नहीं थे। विशेपतः जब वे कासिम-बाज़ार में थे तो उनकी स्त्री भी उनके साथ थीं। क़ासिमबाज़ार ही में उनकी पहली स्त्री और उसके गर्भजात बालक का प्राणान्त हुआ था। वारन् हेस्टिंग्स के बाद लफ़्टैन्ट ड्वूसन यहां के असिस्टैन्ट नियुक्त होकर आये। यह तो ठीक नहीं मालूम कि ये वारन् हेस्टिंग्स ही के बाद यहां आये थे; परन्तु उपन्यास में उल्लिखित इस घटना के समय ड्वूसन साहब ही फेक्टरी के असिस्टैन्ट थे। यह कुछ विपयी और लम्पट थे। फेक्टरी के गुमाश्ता लोगो को इनके लिए देशी स्त्रिया जुटाना पड़ती थी। यदि कभी कोई बंगाली गुमाश्ता इस तरह का कुकर्म करने में आनाकानी करता था तो यह फौरन् उसके ऊपर रिपोर्ट तानकर उसे बरखास्त करवा देने की चेष्टा करते थे। बंगाली लोग चाकरी के भक्त ठहरे। संसार में ऐसा कौन सा कुकर्म है, चाकरी के लिए जिसे करने में बंगालियो को संकोच हो? चाकरी बंगालियों का प्राण है, चाकरी उनका जीवन-सर्वस्व है, चाकरी उनकी उपास्यदेवी है। विशेपत. इस समय जिन्हें ईस्ट इण्डिया कम्पनी की रेशम की कोठियों अथवा नमक की गोदामों में,

चाकरी मिल जाती थी, वे तो मानों देश के नवाब ही बन जाते थे। निदान कासिमबाज़ार की कोठी में जिस समय जो गुमाश्ता रहता था, उसे डवूसन साहब की इन समस्त कुक्रियाओं में सहायता देनी पड़ती थी।

इन दिनों रामहरी कासिमबाज़ार की कोठी के गुमाश्ता थे। इन्हें अपने कर्त्तव्य का कुछ विशेष ज्ञान था! "सरकारी काम" पूरा करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करते थे।

डवूसन साहब के इन समस्त कुकर्मों में सहायता पहुँचाने को वह "सरकारी काम" समझते थे। परन्तु इन दिनों क़ासिमबाज़ार के चारों तरफ़ के गांव प्रायः ऊजड हो चुके थे, अतएव रामहरी को उपर्युक्त "सरकारी काम" चलाने में बड़ी दिक़्क़त पड़ रही थी।

एक दिन डवूसन साहब ने रामहरी से कहा—"साला बदमाश तुम कुछ काम का आदमी नहीं, तुम को बरख़ास्त करने होगा।"

रामहरी ने देखा, बडी आफ़त आई। साहब को सन्तुष्ट करने के लिए इधर-उधर स्त्री के खोज मे दौडने-धूपने लगे, चार-पांच दिन लगातार चक्कर काटते रहे, पर काम न हुआ। ऐसी दशा में रामहरी ने कहीं दूर जाकर स्त्री तलाश कर लाने के लिए साहब से एक हफ़्ते की छुट्टी मांगी। परन्तु डवूसन साहब ने छुट्टी नहीं दी। ज़रूरी कार्य ठहरा, इतना बिलम्ब सहन न हुआ। इसके बाद एक दिन रविवार को तीसरे पहर के वक्त जब डवूसन साहब गिर्जे से लौटे, रामहरी को बुला भेजा। रामहरी कांपते-कांपते साहब के सामने आ उपस्थित हुए। साहब ने गुस्से में आकर कहा—"बदमाश तुझे याद नहीं, चार दफ़े हम तुमको

* * * *

कहीं चाकरी न चली जाय,—इस भय से रामहरी के प्राण कांप गये। "थैंक यू सर" (Thank you Sir) "वेरी गुड सर" (Very good Sir)—कह कर रामहरी, साहब के कमरे से बाहर निकले। मन ही मन स्थिर किया, जो कुछ हो—कोई न कोई उपाय करना ही पडेगा। बहुत कुछ खोजा-खाजी के बाद पता मिला कि सभाराम के गिरे-पड़े मकान में उनकी लडकी सावित्री रहती है। निदान सावित्री के पास दौड लगानी शुरु की। विविध प्रकार के प्रलोभन देने लगे। परन्तु सावित्री वास्तव में सत्यवान् की स्त्री सावित्री ही की तरह सच्चरित्रा रमणी थी। किसी तरह भी धर्मत्याग के लिए तैयार न हुई, वरन् वहां से भाग जाने का उपाय सोचने लगी; परन्तु मृतप्राय पिता को छोड कर भागती कैसे! अन्ततः अहर्निशि केवल परमेश्वर का ध्यान करने लगी। जभी रामहरी की बात याद आती, तभी चिल्ला उठती—"हे दीनबन्धु, हे विपद्भञ्जन भगवान! मेरे धर्म की रक्षा करो।" दो तीन दिन लगातार रामहरी सावित्री के पास आये, बहुतेरा समझाया, बहुतेरी खुशामद की; परन्तु जब देखा कि सावित्री किसी तरह क़ब्जे में नहीं आती; किसी उपाय से धर्म-त्याग करने के लिए तैयार नहीं होती तो मन ही मन निश्चय किया कि कोठी से दो-तीन सिपाही प्यादों को साथ लाकर ज़बरदस्ती इसे साहब के पास पहुँचाऊँगा। निदान आज उन्होंने सावित्री को ज़बरदस्ती पकड लाकर डब्सन साहब की कोठी के बरामदे में ला बिठाया। डर के मारे सावित्री का शरीर कॉप रहा है, मन ही मन ईश्वर को पुकार रही है, बारम्बार कहती है—"विपद्भंजन भगवान्! मेरी रक्षा करो।"

रात के आठ बजे सावित्री को बरामदे में रखकर रामहरी डब्सन साहब के कमरे में गये और उन्हें इस शुभ-सम्वाद की सूचना दी। साहब बड़े प्रसन्न हुए। फ़ौरन कह उठे—"ले आओ।"

परन्तु पाठक ! संसार के समस्त कार्य उस न्यायवान् परमेश्वर के द्वारा परिशासित होते हैं। कार्य-जगत् मे जगत्पिता का अपूर्व कौशल विद्यमान है। पापीजनों को कुकर्म से विरत रखने के लिए, निःसहाय निर्बलों को निर्दय पापियो के अत्याचार से बचाने के लिए कार्य-कारण-श्रृङ्खला के द्वारा मङ्गलमय भगवान् उन दुष्ट पापियों के हाथ-पाव बांध रखते हैं।

रामहरी सावित्री को अन्दर लिवा ले जाने के लिए जैसे ही कमरे के बाहर आये, देखा कि कोठी के प्रधान कार्याध्यक्ष फ्रांसिस साइक साहब बरामदे में खड़े है। साइक साहब मे कोई इन्द्रिय दोष नही था, वरन् वे सदा ही अन्यान्य साहब लोगों की कुवासनाओं और कुव्यवहारों का दमन करने के लिए यथासाध्य चेष्टा करते थे। रामहरी को देखते ही साइक साहब ने कहा—"यह स्त्री कौन है?" रामहरी के होश उड गये। घबराकर कह उठे—"धर्मावतार! अंधेरी रात मे यह वैष्णवी रास्ता भूल गई थी। मै उधर से निकला, और इस प्रकार की दुरवस्था मे ग्रस्त देखकर मै इसे अपने साथ लेता आया। आज मेरे घर रहेगी, सवेरे अपने अखाड़े को चली जायगी।"

साइक साहब इस वक्त बड़े व्यस्त हैं, बहुत ज़रूरी काम से आये है। रामहरी का उत्तर सुनकर चुपचाप भीतर को चल दिये। डब्सन साहब के कमरे के दरवाज़े पर ज़ोर से आवाज़ देने लगे—"लफ़्टैन्ट डब्सन, लफ्टैन्ट डब्सन!" भीतर से आवाज़ आई—"कम इन मिस्टर साइक।" (Come in Mr. Sykes) मिस्टर साइक ने अन्दर घुसते ही कहा—"लफ्टैन्ट डब्सन, तुमको अभी, इसी क्षण, दीनाजपुर जाना पड़ेगा। पचास गोरा और दो सौ सिपाही लेकर तुरन्त ही दीनाजपुर चले जाओ। कन्टूनमेन्ट में मेजर सेड्ली को मैंने सामान तैयार रखने के लिए लिख दिया है। सम्भवतः वे सब प्रबन्ध

कर चुके होंगे। तुम अब क्षण भर की भी देर न करो। दीनाजपुर में आरमीनियन व्यापारी कारापिट आराटून के नमकगोदाम में प्रायः तीस हज़ार मन नमक मौजूद है। उससे बहुतेरा अनुरोध किया गया कि वह अपना सारा नमक ट्रेडिंग कम्पनी के हाथों बेंच दे। परन्तु वह किसी तरह इसके लिए राज़ी नहीं हुआ। अन्ततः हम लोगों ने उसे दो रुपया फ़ी मन के हिसाब से नमक का मूल्य देना स्वीकार किया, वह इस पर भी राज़ी नहीं। तुम वहां जाओ, पहले तो उसके निकट एक बार फिर दो रुपयां फ़ी मन के हिसाब से मूल्य देने का प्रस्ताव करो, यदि तब भी न स्वीकार करे तो उसका गोदाम तोड कर वहां का सारा नमक अपने गोदाम में जमा करलो। उसके गुमारता के पास दो रुपया मन के हिसाब से मूल्य भेज दिया जावेगा।"

डब्सन साहब ने कहा—"अच्छा तो आप घर जाइये, मैं अभी रवाना होता हूँ।" परन्तु साइक साहब बडी लाग से काम करते थे। वे कहने लगे—"तुम्हें रवाना करके घर जाऊँगा, नौकरों को बुलाकर सामान बाँधने के लिए कहो।" डब्सन साहब ने देखा, जब तक मैं रवाना नहीं हो जाऊँगा, साइक साहब यहां से नहीं हटेंगे। तत्काल ही नौकरों को सामान बांधने की आज्ञा दी। बाहर आकर रामहरी के एक लात जमाई और कहने लगे—"साला, साइक साहब को नहीं देखता, हटाओ जल्दी।"

साहब का सुचारु पदाघात प्राप्त होते ही रामहरी ने चटपट सावित्री से कहा—"अरे भाग—भाग—बहुत कुछ कहने-सुनने पर आज साहब ने तुझे छोड़ दिया।" सावित्री अभी तक बेहोश पड़ी थी। यह बात कान में पड़ते ही उसके शरीर में नवशक्ति का संचार हुआ। औंधे मुँह वहां से भाग निकली। अँधेरी रात थी, चारों ओर घोर ... छाया था। किधर को दौड़ रही थी, कुछ पता न था।

"हे परमेश्वर, आज तुम्ही ने रक्षा की; हे परमेश्वर आज तुम्हीं ने रक्षा की।"—यही कहते कहते सावित्री अविराम दौड़ती चली जाती थी।
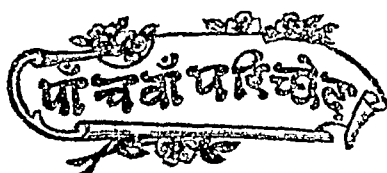
लूट या व्यापार

ईसवी सन् १७६५ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने नमक के व्यापार के सम्बन्ध में जो नियम प्रचारित किये उनका सविस्तार उल्लेख न करने पर हमारे पाठक इस परिच्छेद में उल्लिखित घटनाओं के मर्म अच्छी तरह न समझ सकेंगे। अतएव आरम्भ में हम उन ऐतिहासिक बातों का ही उल्लेख करते हैं।

मुसलमान-कुल-तिलक, बंगाल के अन्तिम सूबेदार, उदारचेता, न्यायपरायण, प्रजा-हितैषी नवाब मीरक़ासिम जिस लिए अंगरेज़ों की कोपाग्नि में पतित हुए थे, और जिस प्रकार उन्हें सिंहासनच्युत होना पड़ा था, वह सम्भवतः सभी पाठकों को ज्ञात है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारियों ने अपने अपने व्यापार की विक्रेय वस्तुओं के ऊपर, देश-प्रचलित-प्रथा के अनुसार महसूल देना अस्वीकार किया। मीरकासिम ने जब यह देखा कि अंगरेज़ लोग किसी तरह महसूल देने के लिए तैयार नहीं होते, तब उन्होंने सोचा कि ऐसी दशा में सिर्फ़ गरीब बंगालियों से ही महसूल वसूल करना सर्वथा अन्याय है। वह उस वक्त देश का राजा था। किस प्रकार वह एक श्रेणी की प्रजा को महसूल

अदायगी से मुक्त रखता और दूसरी श्रेणी की प्रजा से महसूल वसूल करता? न्यायपरता के अनुरोध से उसने महसूल लेने की प्रथा को एकदम उठा देने का निश्चय किया। परन्तु इस पर ख़ीष्ट धर्मावलम्बी सुसभ्य अंगरेज़ कह उठे कि बंगालियों से महसूल ज़रूर लेना पड़ेगा। अखृष्टान मीरक़ासिम अंगरेज़ों के इस नूतन खृष्ट-धर्मोचित व्यवहार का मर्म समझने में सर्वथा असमर्थ था। अंगरेज़ी राजनीति के गूढ़ तत्वों का उसे क़तई ज्ञान न था, अतएव वह उनके इस प्रकार के प्रस्ताव से सहमत न हुआ। इसी पर अंगरेज़ों से उसका विवाद छिड़ा और अन्ततः अँगरेज़ों के षडयन्त्र में फँस कर उसे सिंहासनच्युत होना पड़ा।*

ईसवी सन् १७६४ में मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति का सम्वाद जब विलायत पहुँचा तो ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डाइरेक्टरों ने सोचा कि हमारे कलकत्ते के कर्मचारियों ने जिस प्रकार का अन्याय-व्यवहार आरम्भ किया है, और देशी व्यापारियों के प्रति वे जैसा कुछ अत्याचार कर रहे हैं, उससे बंगाल में हमारे आधिपत्य का सर्वथा लोप हो जायगा। इन डाइरेक्टरों में सालविन् नामक एक अंगरेज़ विशेष न्यायपरायण थे। यह क्लाइव के परम शत्रु थे। इनका विश्वास था कि क्लाइव को धर्मा-धर्म का कुछ भी ख़याल नहीं रहता, धन के लोभ में वह सभी तरह के कुकर्मों से अपने हाथों को कलंकित कर सकता है।‡

इन्हीं के भय से क्लाइव को दुबारा भारतवर्ष में आने की इच्छा न होती थी, परन्तु मीरक़ासिम की सिंहासनच्युति के बाद डाइरेक्टरों ने क्लाइव को पुनः भारतवर्ष में भेजना स्थिर किया। इधर क्लाइव ने स्वयं उपयाचक होकर, ईसवी सन् १७६४ की छब्बीसवीं अपरेल को

*Vide Note (5) in the appendix.
‡Vide Note (2) in the appendix.

डाइरेक्टरों के पास इस आशय का एक पत्र भेजा* कि यदि मुझे पुनः बंगाल को भेज दिया जाय तो मैं कम्पनी के कर्मचारियों को नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार में लिप्त न होने दूँगा। निदान इस प्रकार का वचन देकर क्लाइव पुनः भारतवर्ष में आये।

क्लाइव को भारतवर्ष मे भेजने के बाद तुरन्त ही, अर्थात् ईसवी सन् १७६४ की पहली जून को कम्पनी के डाइरेक्टरों ने कलकत्ता-कौंसिल को एक लम्बा चौडा पत्र‡ लिखा। इस पत्र मे इस विषय का उपदेश दिया गया था कि कम्पनी के कलकत्ते के कर्मचारी नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में अमुक-अमुक उपायों का अवलम्बन करें। डाइरेक्टरों के इस पत्र मे यह आज्ञा दी गई थी कि कलकत्ते के गवर्नर तथा कौंसिल मुर्शिदाबाद के वर्त्तमान नवाब से मेल करके, और उनकी राय से, नमक, तमाखू और सुपारी के व्यापार-सम्बन्धी नियम संस्थापित कर लें। नवाब के हानि-लाभ के प्रति विशेष लक्ष्य रखें, और देश के व्यापारियों तथा देश के जनसाधारण का जिससे कोई अनिष्ट न हो, इसका पूरा ख़याल रख कर नियमावली तैयार करें।

परन्तु उस समय अंगरेज़ लोग तो सिर्फ धन के लोभ से इस देश मे आते थे। उन्होंने इन समस्त उपदेशों के सर्वथा विपरीत आचरण किया। क्लाइव ने भी अपने वचन को बिल्कुल भुला दिया। नवाब की राय लेना तो दूर रहा, उनसे बात भी न पूछी गई। ईसवी सन् १७६५ की दसवीं अगस्त को इन लोगों ने अपने स्वार्थ-साधनार्थ और बंगाल के धन सम्पत्ति को लूटने के अभिप्राय से नमक, तमाखू तथा सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में बड़े भयानक नियम§ प्रचारित

*Vide Note (6) in the appendix.
‡Vide Note (7) in the appendix.
§Vide Note (8) in the appendix.

किये। इन नियमों के अनुसार कार्य आरम्भ होते ही देश का सर्वनाश होने लगा। चारों ओर हाहाकार मच गया। देशी प्रजा के दुःखों की सीमा न रही।

क्लाइव और उनकी कौंसिल के मेम्बरों ने कलकत्ते में ट्रेडिंग एसोसियेशन नामक एक वणिक-सभा स्थापित की। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रायः सभी अंगरेज़ कर्मचारी इस वणिक-सभा के मेम्बर हुए। यह नियम बनाया गया कि देश में जितना नमक, तमाखू और सुपारी पैदा होगा, सब का सब देशी लोगों को पहले वणिक-सभा के हाथों बेंच देना पड़ेगा। बाद में वणिक-सभा इन समस्त विक्रेय वस्तुओ को देशी व्यापारियों के हाथ बेचेगी। देशी व्यापारी इस प्रकार वणिक-सभा के पास से नमक, तमाखू और सुपारी ख़रीद-ख़रीद कर देश के जनसाधारण के हाथ बेचा करेंगे। देशी व्यापारी देशी आदमियों के पास से ये वस्तुयें कदापि न ख़रीद सकेंगे।

मूल्य के सम्बन्ध मे यह नियम हुआ कि वणिक-सभा इस देश के नुनेरियों (नमक तैयार करनेवालों) के पास से ७५) फ़ी सैकड़ा मन के हिसाब से नमक ख़रीद करेगी, बाद में २००) फ़ी सैकड़ा मन के हिसाब से वह नमक देशी व्यापारियों के हाथ बेचेगी। देशी व्यापारी २००) फ़ी सैकड़ा मन के हिसाब से नमक ख़रीद-ख़रीद कर, उसके ऊपर निर्दिष्ट लाभ रख कर, देश के जनसाधारण के हाथ बेचेंगे।

पाठक! ज़रा विचार कीजिये, यह लूट थी या व्यापार? बंगाल में इस समय शायद १।) फ़ी मन के भाव में नमक बिकता था। जनसाधारण को दो पैसे में प्रायः एक सेर नमक मिलता था। परन्तु उपर्युक्त नियमों के अनुसार अब एक ओर तो देश के नमक तैयार करनेवाले नुनेरियों और महाजनो को १।) के बजाय ।।।) फ़ी मन के भाव में नमक वणिक-सभा के हाथों बेचना पड़ा, और दूसरी ओर देश के जन-

साधारण को १।) के स्थान में सात रुपया, साढ़े सात रुपया फी मन के भाव में नमक ख़रीदना पडा। सभी को नमक की ज़रूरत ठहरी। जब देशी व्यापारियों को वणिक-सभा के पास से ४) फ़ी मन के हिसाब में नमक ख़रीदना पड़ा तो वे यदि उसे सात रुपया, साढे सात रुपया फी मन के भाव में न बेचते तो लेते ही क्या? निदान वणिक-सभा के अपरिमित मुनाफ़े के लिए देश के समस्त जन-साधारण को क्षतिग्रस्त होना पडा।

अंगरेज़ी वणिक-सभा नमक के व्यापार पर इस प्रकार का एकाधिकार संस्थापित करके देश का धन बटोरने लगी। ग़रीबों में हाहाकार मच उठा। कितने ही बेचारे नमक खरीदने मे सर्वथा असमर्थ हुए, और वे एक काष्ट-विशेष का कोयला पानी में डाल कर उसी कोयला-मिश्रित खारी पानी से नमक की ज़रूरत रफा करने लगे। परन्तु नमक की मंहगी और उसके कारण गरीबों को नमक के न मिलने से जो कष्ट हुआ, वह एक सामान्य कष्ट था। इसी से सारे कष्टों का अन्त न हुआ, इसी से सारी मुसीबतें दूर न हुईं। 'नमक-व्यापार के उपलक्ष में इन दिनों बंगालियो को नित नई मुसीबतें, नित नई विपत्तियां, झेलनी पडीं। बंगालियों में जैसी असाधारण सहनशीलता वर्त्तमान रही है, जिस प्रकार अविचलित चित्त से वे लगातार कष्टों को बर्दास्त करने की शक्ति रखते है, जिस प्रकार हंसते हुए वे अपने अपमान को सहन कर लेते हैं; उससे हमारे तात्कालिक पूर्वज, पितामह, प्रपितामह इत्यादि, अनायास ही उन समस्त दडों को सहन करने में समर्थ होते थे। परन्तु इस नमक-व्यापार के साथ ही साथ अन्यान्य विविध प्रकार के अत्याचारों का सूत्रपात हुआ।

क्लाइव की कौंसिल के सुयोग्य मेम्बर फ़्रांसिस साइक इन दिनों कासिमबाज़ार की रेशम की कोठी के कार्याध्यक्ष थे। उन्होंने मुर्शिदाबाद

के नवाव को बाध्य करके उनकी तरफ से, उनके हस्ताक्षर-युक्त कितने ही परवाने* जारी करवाये। इन समस्त परवानों के द्वारा नमक बनानेवाले जुनेरियों और नमक-महाल के ज़िमीदारों को हुक्म दिया गया कि उन्हें कलकत्ते की अङ्गरेज़ी वणिक-सभा के निकट इस आशय के इक़रारनामे लिख देने पड़ेंगे कि वे जितना भी नमक तैयार करेंगे, सब का सब अङ्गरेज़ी वणिकसभा के हाथों वेचेंगे। उसके अतिरिक्त और किसी के हाथ चे एक पैसे का नमक न वेच सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार का इकरारनामा लिखे विना नमक तैयार करे अथवा इकरारनामा लिखने मे देर करे तो उसे यथोचित दण्ड दिया जायगा।

मुर्शिदाबाद के नबाव इस वक्त अंगरेज़ों की मुट्ठी में थे। नवाव स्वयं अभी नावालिग थे। महाराज नन्दकुमार इस समय नवाव के दीवान नहीं थे, अंगरेज़ों ने उनकी जगह पर मोहम्मद रज़ा ख़ां को नियुक्त किया था। रज़ा ख़ां अंगरेज़ों की प्रसन्नता का आकांक्षी था। अंगरेज़ व्यापारियों के अनुरोध से उसी ने, देशीय जन-साधारण के सर्वनाश की परवाह न कर, इस प्रकार के परवाने जारी किये थे। महाराज नन्दकुमार यदि इस समय दीवान के पद पर नियुक्त होते तो देश की यह दुर्दशा कदापि न होती।

ये परवाने जारी होने के वाद अंगरेज़ों की नमक-गोदाम के साहव और गुमाश्तागण विना ही किसी अपराध के देश के सैकड़ों आदमियों को पकड़ मंगाते और यह दोष लगाकर उन्हें दण्डित करते कि इन्होंने विना ही इक़रारनामा लिखे नमक तैयार किया अथवा परवाने के आदेश का उल्लंघन किया है। जिन लोगों ने इक़रारनामा लिख दिया था उनके ऊपर भी समय समय पर इस प्रकार के अभियोग उपस्थित होने लगे कि इन्होंने गुप्त रूप से अन्यान्य लोगों के हाथ नमक वेचा है। जो लोग

*Vide Note (9) in the appendix.

वणिक्-सभा के पास से नमक खरीदते थे, वे समय समय पर इस अपराध के लिए दण्डित होते थे कि इन्होंने नियत मूल्य से अधिक मूल्य में नमक फरोख़्त किया है। देश के जिन आदमियों के यहां कभी सात पीढ़ियों से नमक की ख़रीद-फ़रोख़्त का कारबार नहीं हुआ था, वे तक समय समय पर इस अपराध में जेल भेजे जाने लगे कि इन्होंने व्यवहार के लिए गुप्त रूप से नमक ख़रीद किया है। इन अभियोगों की सत्यता-असत्यता के सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं होता था। जहां एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति पर अभियोग उपस्थित किया कि अभियुक्त पकड लिया जाता था। चालाकी और दम-पट्टी से किसी व्यक्ति को पकड लाने पर बंगाली गुमाश्तों और साहब लोगों को कुछ न कुछ लाभ हो जाता था। अभियुक्त को या तो अर्थ-दण्ड देना पडता था, अथवा जेल जाना होता था। अवस्था-विशेष में किसी किसी अभियुक्त का घरबार लूट लिया जाता था और उसके घर की स्त्रियों को विविध अश्लीलता-पूर्ण अपमान और घृणित अत्याचार सहन करने पडते थे। वस्तुतः इस समय के बाद बहुत दिनों तक नमक के एकाधिकार व्यापार के द्वारा बंगालियों को जो घोर अत्याचार सहना पडता था, वह शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। नमक की कोठी के गुमाश्ता अथवा नमक के दरोग़ा गांव में आ रहे हैं,—यह बात सुनते ही गांव के सब आदमी घरबार छोड स्त्री पुत्रों को लेकर गांव से निकल भागते थे।

ईसवी सन् १७६९ की अठारहवीं सितम्बर को क्लाइव और उनकी कौंसिल के मेम्बरों ने नमक, तमाखू तथा सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में और भी कई कठोर नियम* प्रचारित किये। नवाब के हानि-लाभ अथवा जन-साधारण की सुविधा के प्रति भूल कर दृष्टि न डाली गई। परन्तु पीछे कहीं डाइरेक्टर-गण इन नियमों को अस्वीकार न कर दें,

*Vide Note (10) in the appendix.

के नवाब को बाध्य करके उनकी तरफ़ से, उनके हस्ताक्षर-युक्त कितने ही परवाने* जारी करवाये। इन समस्त परवानों के द्वारा नमक बनानेवाले नुनेरियों और नमक-महाल के ज़िमीदारों को हुक्म दिया गया कि उन्हें कलकत्ते की अङ्गरेज़ी वणिक-सभा के निकट इस आशय के इक़रारनामे लिख देने पड़ेंगे कि वे जितना भी नमक तैयार करेंगे, सब का सब अङ्गरेज़ी वणिकसभा के हाथों बेचेंगे। उसके अतिरिक्त और किसी के हाथ वे एक पैसे का नमक न बेच सकेंगे। यदि कोई व्यक्ति इस प्रकार का इकरारनामा लिखे बिना नमक तैयार करे अथवा इक़रारनामा लिखने में देर करे तो उसे यथोचित दण्ड दिया जायगा।

मुर्शिदाबाद के नबाव इस वक्त अंगरेज़ों की मुट्ठी मे थे। नवाव स्वयं अभी नाबालिग़ थे। महाराज नन्दकुमार इस समय नवाव के दीवान नहीं थे, अंगरेज़ों ने उनकी जगह पर मोहम्मद रज़ा ख़ां को नियुक्त किया था। रज़ा ख़ां अंगरेज़ों की प्रसन्नता का आकांक्षी था। अंगरेज़ व्यापारियों के अनुरोध से उसी ने, देशीय जन-साधारण के सर्वनाश की परवाह न कर, इस प्रकार के परवाने जारी किये थे। महाराज नन्दकुमार यदि इस समय दीवान के पद पर नियुक्त होते तो देश की यह दुर्दशा कदापि न होती।

ये परवाने जारी होने के बाद अंगरेज़ों की नमक-गोदाम के साहब और गुमारतागण बिना ही किसी अपराध के देश के सैकड़ो आदमियों को पकड़ मंगाते और यह दोष लगाकर उन्हें दण्डित करते कि इन्होंने बिना ही इक़रारनामा लिखे नमक तैयार किया अथवा परवाने के आदेश का उल्लंघन किया है। जिन लोगों ने इक़रारनामा लिख दिया था उनके ऊपर भी समय समय पर इस प्रकार के अभियोग उपस्थित होने लगे कि इन्होंने गुप्त रूप से अन्यान्य लोगों के हाथ नमक बेचा है। जो लोग

*Vide Note (9) in the appendix.

वणिक्-सभा के पास से नमक खरीदते थे, वे समय समय पर इस अपराध के लिए दण्डित होते थे कि इन्होंने नियत मूल्य से अधिक मूल्य में नमक फरोख्त किया है। देश के जिन आदमियों के यहां कभी सात पीढ़ियों से नमक की ख़रीद-फ़रोख्त का कारबार नहीं हुआ था, वे तक समय समय पर इस अपराध में जेल भेजे जाने लगे कि इन्होंने व्यवहार के लिए गुप्त रूप से नमक ख़रीद किया है। इन अभियोगों की सत्यता-असत्यता के सम्बन्ध में कोई विवेचन नहीं होता था। जहां एक व्यक्ति ने किसी दूसरे व्यक्ति पर अभियोग उपस्थित किया कि अभियुक्त पकड लिया जाता था। चालाकी और दम-पट्टी से किसी व्यक्ति को पकड लाने पर बंगाली गुमाश्तों और साहब लोगों को कुछ न कुछ लाभ हो जाता था। अभियुक्त को या तो अर्थ-दण्ड देना पडता था, अथवा जेल जाना होता था। अवस्था-विशेष मे किसी किसी अभियुक्त का घरबार लूट लिया जाता था और उसके घर की स्त्रियों को विविध अश्लीलता-पूर्ण अपमान और घृणित अत्याचार सहन करने पडते थे। वस्तुतः इस समय के बाद बहुत दिनों तक नमक के एकाधिकार व्यापार के द्वारा बंगालियों को जो घोर अत्याचार सहना पडता था, वह शब्दों में प्रकट नहीं किया जा सकता। नमक की कोठी के गुमाश्ता अथवा नमक के दरोग़ा गांव में आ रहे हैं,— यह बात सुनते ही गांव के सब आदमी घरबार छोड स्त्री पुत्रों को लेकर गांव से निकल भागते थे।

ईसवी सन् १७६९ की अठारहवी सितम्बर को क्लाइव और उनकी कौंसिल के मेम्बरों ने नमक, तमाखू तथा सुपारी के व्यापार के सम्बन्ध में और भी कई कठोर नियम* प्रचारित किये। नवाब के हानि-लाभ अथवा जन-साधारण की सुविधा के प्रति भूल कर दृष्टि न डाली गई। परन्तु पीछे कहीं डाइरेक्टर-गण इन नियमों को अस्वीकार न कर दे,

*Vide Note (10) in the appendix.

इस आशंका से इस प्रकार का निश्चय किया गया कि नमक, तमाख और सुपारी के व्यापार से वणिक-सभा को जो मुनाफ़ा होगा, उसमें से चौथाई ईस्ट इंडिया कम्पनी को मिलेगा और बाकी मुनाफ़ा, गवर्नर कौंसिल के मेम्बर, सेनाध्यक्ष और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के छोटे बड़े सभी कर्मचारी अपने अपने पद-मर्यादा के अनुसार आपस में बांट लेंगे निदान इस व्यापार के लाभ से प्रायः कोई भी कर्मचारी वंचित न रहा खृीष्ट-धर्म प्रचारार्थ जो दो धर्मयाजक (Chaplains) उस वक्त कलकत्ते मे रहते थे, उन्हें भी थोडा थोडा अंश मिलता था।*

नमक के व्यापार पर इस प्रकार का एकाधिकार स्थापित होने के ठीक पहले कारापिट आराट्रन नामक एक आरमीनियम व्यापारी के दीनाज पुरवाले गोदाम में तीस हज़ार मन नमक जमा था। कारापिट आराट्रन को जब यह मालूम हुआ कि अंगरेज़ों ने देश का सारा नमक ख़रीद कर, अत्यधिक मूल्य में देशी व्यापारियों के हाथ बेचने के अभिप्राय से स्थान स्थान पर नवाब के हस्ताक्षर-युक्त परवाने जारी करवाये हैं, तब उन्होंने अपने वहा के नमक की बिक्री बन्द कर रखी। उन्होंने सोचा कि इस नियम का अमलदरामद होने पर हमें नमक का व्यापार क़तई छोड देना पड़ेगा, परन्तु इस साल उपर्युक्त नियम प्रचारित होने पर, नमक का मूल्य पांचगुना बढ़ जायगा, अतएव उस बढ़े हुए मूल्य में अपना सारा नमक बेंच देने से कम से कम इस साल हमें काफ़ी मुनाफ़ा हो सकेगा मन ही मन ऐसा निश्चय कर आराट्रन साहब ने अपने गुमाश्ता को नमक का गोदाम बन्द रखने की आज्ञा दी। परन्तु अंगरेज़ लोग उनकी गोदाम के नमक को हडप कर लेने के अभिप्राय से विविध अवैध उपायों का अवलम्बन करने लगे। सोचा कि तीस हज़ार मन नमक आराट्रन के गोदाम में जमा है, इस वक्त यदि एक रुपया फ़ी मन के

*Vide Note (11) in the appendix.

हिसाब से ख़रीद करलें तो बाद में बंगाली व्यापारियों के हाथ पांच रुपया फ़ी मन के भाव मे बेचने पर एक लाख बीस हज़ार रुपया मुनाफा होगा। वणिक-सभा के अध्यक्ष वेरेलस्ट और साइक साहब इस आरमीनियन व्यापारी का नमक हस्तगत करने के लिए विविध उद्योग करने लगे। अन्त मे उन्होंने आराटून साहब को दो रुपया फ़ी मन के हिसाब से नमक का मूल्य देना स्वीकार किया। परन्तु आराटून साहब दो रुपया मन के हिसाब मे भी नमक-बेचने को राज़ी न हुए। तब अँगरेज़ो ने उनका गोदाम तोड कर ज़बरदस्ती सारा नमक ले लेने का निश्चय किया*। वाणिज्य-लाभ द्वारा धन-संचय ही उनका एकमात्र खीष्टीय-धर्म ठहरा। वणिक-सभा के अध्यक्ष वेरेलस्ट और साइक साहब ने आराटून साहब का गोदाम तोड कर सारा नमक हस्तगत कर लेने के लिए कितने ही गोरों और सिपाहियों के सहित लफ्टैन्ट डवसन को दीनाजपुर भेजा। डवसन साहब ने दीनाजपुर पहुँच आराटून साहब के नमक-गोदाम को तोड कर वहां का सारा नमक अपने कब्ज़े मे कर लिया। आराटून साहब ने अनन्योपाय हो अन्त मे वेरेलस्ट और साइक साहब के गुमाश्ता के ऊपर कलकत्ते के मेयरकोर्ट मे दावा दायर किया।

मेयरकोर्ट की कार्य-प्रणाली और आराटून साहब के मुक़दमे का वृत्तान्त यथास्थान सविस्तार रूप में लिखा जायगा। आगे के परिच्छेद मे हम उस अनाथा, आश्रयहीना, अत्याचार-पीडिता सावित्री की जो दुर्दशा हुई, उसी का उल्लेख करते है। सम्भवतः हमारे सहृदय पाठक सावित्री का हाल जानने के लिए विशेष उत्सुक होंगे।

---

*Vide Note (12) in the appendix.

पितृ-वियोग

विकट अँधेरी रात है, अविराम मूसलाधार मेंह बरस रहा है। प्राणीमात्र का शब्द सुनाई नहीं देता, सिर्फ ज़ोर-ज़ोर से बादल तड़प रहा है। बिजली के क्षणस्थाई प्रकाश में क्षण-क्षण के बाद सिर्फ दो-चार गृहस्थों की, पथ-पार्श्व-स्थित पर्णकुटियां दिखाई दे जाती हैं। परन्तु वे किन गृहस्थों की कुटिया है, अथवा किस गांव की कुटियां है—यह निश्चित करना दुःसाध्य है। इस भयावने अंधकार से आच्छन्न अँधेरी रात में, प्रबल आंधी मेंह के समय, एक अष्टादश-वर्षीया युवती ऊपर को मुंह उठाये दौड़ी चली जा रही है। किधर को जाती है, यह उसे कुछ भी नहीं मालूम।

परन्तु जो निराश्रय के आश्रय है, जो निरुपाय के उपाय हैं, जो अनाथ के नाथ हैं, जिनका करुणा-वारि ज्ञानी, मूर्ख, धनी, निर्धनी, सभी के सिर पर समभाव से बरस रहा है, वह क्या आज बन्धु-बान्धव-हीना युवती की सुध भूल जावेंगे? निर्दय बंगीय कुलांगार रामहरी की तरह रेशम की कोठी के बंगाली गुमाश्तागण इस दुखिनी रमणी की दुर्दशा को देख कर यदि तनिक भी दुखित न हो तो न हों, स्वार्थपरायण अंगरेज़ व्यापारी असितांगों को वन्य-पशु अथवा जंगली जन्तु समझ कर साधारण खेल-कूद में भी उन्हें इस प्रकार के कष्ट और क्लेश दे सकें तो दे सकें; पर मंगलमय भगवान की दृष्टि में श्वेतांग और असितांग दोनों समान हैं, उनकी सुधामयी गोद सभी के लिए प्रसारित है। वह सदा ही पीड़ित की पुकार सुनते हैं और विपन्न को विपदा से त्राण करते हैं।

सावित्री ! डरो नही, जगन्माता इस विपन्न अवस्था में तुम्हे न भूलेंगी। जिनकी कृपा से आज तुम्हारे धर्म की रक्षा हुई, जिनकी दया से आज तुमने उस नरपिशाच लफ्टेन्ट डवसन् के हाथों से मुक्ति पाई, वे अब भी तुम्हारे साथ हैं, वे तुम्हें तुम्हारे घर ही की तरफ ले जा रही हैं।

देर तक दौड़ते-दौड़ते सावित्री इतनी थक गई कि अब आगे बढने की शक्ति न रही। सारे दिन लंघन हुआ है, तिस पर पर्वत के समान दुख का भारी भार छाती पर रखा है, फिर शरीर में बल कहा से आवे ? इस ओर जब अपने दुख की आशका किसी अ'श में दूर हुई तो पिता की दुरवस्था का स्मरण हो आया। सोचने लगी कि सम्भवत मेरे पिता की मृत्यु हो चुकी होगी। हृदय में दु.सह शोकाग्नि प्रज्वलित हो उठी, मन ही मन कहने लगी—"हाय ! हाय ! मृत्युकाल मे पिता को न देख सकी, उनके मुह मे एक बूंद पानी भी न डाल पाया, मरते समय भगवान का नाम सुनाने के लिए कोई भी उनके पास न रहा !"

यह चिन्ता सावित्री के हृदय को विशेष व्यथित करने लगी कि मृत्यु के समय पिता के कानों मे पतितपावन परमेश्वर का पवित्र नाम न पहुंचा। हमारे देश मे यह एक सुदृढ धार्मिक विश्वास है कि मनुष्य अपने जीवन में हजारों पाप-कर्मों में लिप्त रहने पर भी मृत्यु के समय भगवान् के पवित्र नाम को सुनकर मुक्तिलाभ करने में समर्थ होता है। इसी विश्वास से प्रेरित हो सावित्री का हृदय अधिकाधिक व्यथित होने लगा। पिता की दुरवस्था को सोच-सोच कर वह अत्यन्त कातर होने लगी।

इतने में फिर एकाएक बिजली चमकी। विद्युतालोक में सामने की तरफ रास्ते के एक किनारे पर एक पर्ण-कुटी दिखाई दी, सावित्री

ज़रा ठिठकी। परन्तु वह किसकी कुटी है, यह पूछने का साहस न हुआ। सोचने लगी, क्या जाने यदि यह घर अगरेज़ों की रेशम की कोठी के किसी सिपाही या प्यादे का हुआ तो सम्भव हे वह मेरा धर्म नष्ट करने के लिए तैयार हो। वस्तुतः उस समय अंगरेज़ों अथवा अंगरेज़ो की रेशम की कोठी के किसी सिपाही प्यादा या गुमारता का नाम सुनकर देश के समस्त जन साधारण के हृदय में एक ही साथ भय और घृणा के भाव का संचार हो जाता था। सावित्री दबे पांव उस घर के पास आ खडी हुई। इतने मे मेंह भी कुछ थम गया। घर के भीतर से रोगी का आर्त्तनाद सुनाई दिया। कुछ देर में एक वृद्ध रमणी की आवाज़ सुनाई दी। वृद्धा कह रही है--"न होता इस देश से भाग चलती, तूने इस प्रकार अंगूठा काटा ही क्यों?" लड़खड़ाते हुए स्वर मे एक दूसरी स्त्री ने उत्तर दिया—"मां! भाग जाने के लिए जगह कहां है? कल सुना है, ज़िले-ज़िले में नमक की कोठियां क़ायम कर ली है, कितने ही आदमियो को बेगार में पकड़ रहे हैं। यह संसार छोड़ कर कहीं जा सके, तभी निस्तार है।"

सावित्री इनके पारस्परिक वार्त्तालाप को सुन कर समझ गई कि यह सैदाबाद के आराट्टन साहब की कोठी में काम करने वाली रामा जुलाहिन का घर है। उस वक्त उसके मन में किंचित आशा का संचार हुआ। यह भी जान लिया कि रास्ता नहीं भूली हू, ईश्वर की दया से बराबर सीधे रास्ते पर चली आ रही हूं। सावित्री बाहर से—"रामा की मां, रामा की मां" कह कर आवाज़ देने लगी। रामा की मां ने कोई उत्तर नहीं दिया। उसने सोचा कि इस प्रबल आंधी-मेंह में, भयावनी अँधेरी रात में, मुझे कौन पुकारने आवेगा, भूतों अथवा दैत्य-दानवों के अतिरिक्त क्या कहीं मनुष्य इतनी रात को चलते फिरते हैं?

रामा की मां का यह विश्वास था कि जब से अंगरेज़ इस देश में आये हैं, यहा दो प्रकार के भूतो का दौरात्म्य आरम्भ हुआ है। रात्रि के पहिले भाग में तो देशी भूतों का दौर-दौरा रहता है; परन्तु रात्रि के पिछले भाग मे, निस्तब्ध निशा में सिर्फ विलायती भूतों का डका बजता है। अतएव रामा की मां ने सावित्री को विलायती भूत समझ कर कोई उत्तर न दिया। कितनी ही दफे रामा की मां को पुकारने पर भी सावित्री ने कोई जवाब न पाया। अन्त में कातर स्वर से कहा—"रामा की मां, मैं हूं सावित्री, बड़ी आपदा मे फँसी हूँ, दरवाज़ा खोल कर मुझे घर में ले लो।" इतने में रामा उठकर बैठ गई और कहने लगी—"मा, सभाराम की लड़की सावित्री शायद मेंह में भीग रही है, जल्दी से दरवाज़ा खोलकर उसे घर ले आओ। इतनी रात को जाने कहा से आ रही है? मुझे मालूम होता है, सभाराम ज्यादा बीमार हो गये हैं, इसीलिये मुझे बुलाने आई है।"

रामा की मां ने चुपके चुपके रामा के कान मे कहा—"मैं उसे अपने घर में नही घुसाऊँगी, जैसा करेगी वैसा भोगेगी। मैंने दो, तीन बार उसे रामहरी बाबू के साथ गुप्तरूप से वार्त्तालाप करते देखा है। शायद अपना धरम खो चुकी है! क़ासिमबाज़ार में किसी साहब अथवा बगाली बाबू के पास गई होगी, इस वक्त घर लौटी जा रही है।"

रामा ने धीरे से कहा—"नही मा, सावित्री ऐसी नहीं है। प्राण चले जायँ पर ऐसा काम कभी न करेगी। उसका बाप शायद ज़्यादा बीमार हो गया है, इसीलिए मुझे बुलाने आई है। एक दिन उसने रोते रोते मुझसे कहा था—'रामा! पिता को किस समय क्या हो जाय कुछ ठीक नहीं, बुलाऊँ तो चली आना।' मां, तुम दरवाज़ा खोल कर उसे अन्दर बुला लो।"

रामा की मा—"तू चुपचाप पडी रह। मै इस वक्त दरवाज़ा नही खोल सकती।"

रामा—"अच्छा तो तुम न खोलो, मैं खोल दूंगी।"

यह कहते हुए रामा ने हाथ की पीड़ा के कारण काँपते-काँपते उठ कर दरवाजा खोला। सावित्री ने घर के भीतर प्रवेश किया। घर मे उजाला नहीं है, अंधकार से परिपूर्ण एक छोटी सी कोठरी है, उसी में एक तरफ रामा का बिस्तर है, और दूसरी तरफ उसकी वृद्धा माता लेटी हुई है। सावित्री ने जैसे ही घर के भीतर क़दम रक्खा रामा की मा ने उसके प्रति घृणा का भाव प्रकट करते हुए पूछा —"ऐं, तू इतनी रात को कहां से आ रही है? कासिमबाज़ार गई थी जान पडती है?"

सावित्री ने रोते-रोते लडखड़ाते हुए स्वर से कहा—"रामा की मा, अपनी विपत्ति तुम्हे क्या सुनाऊँ—आज रामहरी बाबू कई एक आदमियों को साथ ले मेरे घर आये और मुझे पकड़ कर क़ासिमबाज़ार ले गये। रामा की मां, मेरे भाई-भावज सभी नष्ट हो चुके। अच्छा होता यदि भगवान् मुझे भी मृत्यु दे देता। गले मे फाँसी लगा कर अथवा गगा मे डूबकर मर जाने की इच्छा होती है। परन्तु फिर सोचती हूं—यदि मैं मर गई तो पिता को एक घूंट पानी कौन देगा! उफ़! न जाने, पिता की आज क्या दशा हुई होगी! रह-रह कर मेरे जी में उठता है कि पिता अब है नहीं!"

सावित्री के इन कातर वाक्यों को सुन कर रामा का दयार्द्र हृदय पानी पानी हो गया। रामा सर्वथा अशिक्षित थी, अपना नाम भी लिखना नहीं जानती थी, शारीरिक बल उसमे बहुत अधिक था; आजकल वह कुछ कमज़ोर हो गयी है। संसार में रामा किसी

से नहीं डरती थी, उसमें अत्यन्त साहस था, परन्तु इस वक्त उसमें वह साहस नहीं है। अत्याचार से पीडित हो वह अपने मानसिक बल-पराक्रम से हाथ धो चुकी है। सावित्री की कातरोक्ति को सुन कर रामा कह उठी—"एक दिन साला रामहरी कहीं अंधेरी रात में मिल जाय तो मार ही डालूं। यही साला तो साहब-सूबेदारों को परामर्श दे-दे-कर सब की जान खा रहा है।"

रामा की बात सुन कर उसकी मां कह उठी—"अरे, चुप, चुप। कहीं ये बातें रामहरी बाबू के कानों में पहुची तो तेरा सिर काट लेगा। तू सभी को अपना मिलापी समझ कर सबके सामने जो मन में आता है, बक डालती है।" रामा की मा के ऐसा कहने का मतलब यह था कि सावित्री शायद रामहरी से ये सब बातें कह देगी। रामा का हृदय बहुत ही सरल था। सावित्री के सरलता-परिपूर्ण वाक्यों को सुन कर रामा ने उसकी सारी बातों पर विश्वास कर लिया था। परन्तु रामा की मा ने सावित्री की एक बात पर भी विश्वास नहीं किया। यौवन-काल में रामा की मा बड़ी प्रसिद्ध दुराचारिणी थी, उसका मन बहुत ही मैला था। सावित्री की कातर उक्तियों को सुन कर वह मन ही मन विविध प्रकार के सन्देह करने लगी, और अन्त में यह निश्चय किया कि सावित्री स्वेच्छापूर्वक अपना सर्वस्व बेचने के लिए कासिमबाजार गई थी, आंधी-मेह में इधर आ फँसी तो मक्कर करके रोने-धोने लगी। पापान्धकार में निमग्न, विविध दुराचारों से कलंकित, रामा की मां का पापी हृदय भला यह समझने में कैसे समर्थ हो सकता था कि सावित्री की सच्ची कातरोक्ति का प्रत्येक शब्द उसके हृदय ही से निकल रहा है, और उसके करुणाजनक विलाप के प्रत्येक वाक्य से सत्यता और सरलता के भावों का प्रादुर्भाव हो रहा है। जब तक हृदय पवित्र न हो मनुष्य किसी

रामा को इस प्रकार जाने के लिए तैयार देख कर उसकी मा ज़ोर से चिल्ला कर कहने लगी—"अरे तुझे क्या हो गया है? अभागिन कहीं की—तुझे ज्वर चढा है, इस मेंह में भीग कर जल्दी ही मरना चाहती है क्या?"

रामा ने अपनी मा की बात पर ध्यान न दिया। उसने घर के बाहर निकल कर सावित्री से कहा—"चल चल, अब क्यों बैठी है आ जल्दी आ।" सावित्री रामा की मा की बातें सुन कर अभी तक हतबुद्धि सी बैठी थी। रामा के बारम्बार बुलाने पर वह घर के बाहर निकली और उसके साथ अपने घर की तरफ चल दी।

रामा सरल-हृदया तो थी ही, पर तदतिरिक्त एक विशेष गुण उसमें यह था कि इन्द्रिय-दोष किसे कहते हैं, यह स्वप्न में भी वह नहीं जानती थी। बाल्यकाल में उसके पिता की मृत्यु हो गई थी। उसकी मां बडी दुराचारिणी थी। रामा को उसने कुछ विशेष लाड-प्यार से नहीं पाला। अनादर और अवहेलना के साथ रामा का प्रतिपालन हुआ। बाल्यकाल से ही उसने कष्टों को सहन करने की शिक्षा पाई। इसी कारण दूसरे का दुख देखते ही उसका हृदय पानी-पानी हो जाता। किसी तरह का कोई शौक उसे नहीं। पागलों की तरह इधर-उधर दौडती धपती रहती और विविध गीत गा-गाकर अपने हृदय का आनन्द प्रकट किया करती थी। पास-पडोस में कोई बीमार पडे और आधी रात के वक्त भी रामा से दवा लाने के लिए अथवा वैद्य को बुला देने के लिए कहा जाय तो वह तनिक भी आलस्य या आनाकानी न करके हँसते हुए वहां को चल देती। यह सोचकर अथवा इस अभिप्राय से वह कभी कोई काम नहीं करती थी कि इस प्रकार के परोपकारी कामों से पुण्य सञ्चय होगा अथवा लोग मेरी प्रशंसा करेंगे और मुझे अपना कृपापात्र

मनावेंगे। रामा सर्वथा अशिक्षित थी, किसी विषय का चिन्तन अथवा मनन करने की शक्ति उसमें नहीं थी। कितने ही लोग उसे "रामा पगली" कह कर पुकारा करते थे। परन्तु कौन उसे अच्छा कहता है, कौन बुरा,—यह उसने स्वप्न में भी कभी नहीं सोचा। दूसरे का दुःख देख कर उसका हृदय बहुत ही दुखित होता था, अतएव केवल हृदयावेग से प्रेरित हो वह दूसरे का दुख दूर करने के लिए प्राणपण से चेष्टा करती थी, परन्तु जब अपने को कोई दुख होता, तब किसी से सहायता नहीं मागती थी। पहिले उसके शरीर में बहुत बल था, परन्तु आज-कल वह दुर्बल हो रही है।

बाएं हाथ में बांस की लाठी लिये रामा आगे आगे जा रही है पीछे-पीछे सावित्री चली जाती है। परन्तु सावित्री से चला नहीं जाता। रामा दो-चार क़दम चलकर वारम्वार सावित्री के लिए ठिठक रहती है। उसका दाहिना हाथ विल्कुल वेकार हो रहा है, बहुत सूजा हुआ है।

रामा के चले जाने के बाद उसकी मां मन ही मन सोचने लगी,—रामा अपना नाश कर चुकी है, सावित्री बड़ी सुन्दरी है, अतएव रामा का मन उसके प्रति आकृष्ट हो गया है।

कितनी ही दूर चलने के बाद सावित्री ने रामा से पूछा—"रामा तुम्हारे दाहिने हाथ में क्या हुआ है?"

रामा—क्या बताऊँ बड़ी बेवकूफी की। (हाथ का अंगूठा दिखा कर) इस अंगूठे को हँसिये से काटा। किसी अच्छे हथियार से एक ही दफे में काट डालती तो इतना दुख न होता। हँसिये से दो चोटों में कट सका, इसीलिए इतनी पीड़ा हो रही है!

सावित्री—(बहुत अचम्भे में आकर) तो यह हाथ का अंगूठा काटा क्यों?

रामा—हम लोगों की इस कोठी के जुलाहो पर जो विपत्ति पड़ी है वह तुम्हें नहीं मालूम ?

सावित्री—नही तो, मैंने कुछ नहीं सुना। पिता की बीमारी के मारे मैं तो प्रायः घर के बाहर निकल ही नही पाती हूँ। दिन रात उन्हीं की शुश्रूषा में व्यस्त रहती हूँ।

रामा—कोठी में काम करनेवाले समस्त जुलाहों में से कोई पचास आदमियों ने अपने अपने हाथ का अंगूठा काट डाला है। आजकल नवाब एकदम कम्पनी बहादुर का गुलाम हो रहा है। कम्पनी के आदमी सब का सर्वनाश कर रहे है। उस दिन हमारी कोठी के सारे जुलाहों को अंगरेज़ो के आदमी पकड़ ले गये थे*। कम्पनी के बड़े साहब ने कहा—"तुम लोग आराट्टून साहब की कोठी में काम नही करने पाओगे। हमारी कासिमबाज़ारवाली कोठी मे तुम्हें काम करना पड़ेगा।" आराट्टून साहब हम लोगों को न रोक सके। उनकी आंखो से आँसू बहने लगे, और वे कहने लगे—"महाराज नन्दकुमार हैं नहीं, रज़ा खाँ दीवान है। कम्पनी के आदमी जो चाहें, करें।"

सावित्री—तो फिर इसके लिए अंगूठा क्यों काटा ?

रामा—आज सत्तरह दिन हुए, कम्पनी के आदमी हम लोगों से कासिमबाजार की कोठी में काम ले रहे है। काम के वक्त जमादार पास बैठा रहता है। काम में ज़रा भी भूल हो जाय, तो बेत फटकारने लगता है। तमाखू तक नही पीने देता। तिस पर महीने में सिर्फ १॥) तनख्वाह मिलेगी, सो भी महीना समाप्त होने के बाद। इन्हीं दामों मे से छः पैसे गमहरी बाबू अपनी दस्तूरी के काट लेंगे। जमादार और प्यादों की दस्तूरी एक आना है। अनुमान से कोई साढे पांच

*Vide Note (13) in the appendix.

आना एक रुपया अथवा छः आना एक रुपया मिलेगा। सो भी दूसरे महीने में। बताओ तो सही, खायें क्या? यहां इस कोठी में महीने में २॥) तो तनख्वाह मिलती थी, और हिन्दू-मुसलमानों के सभी त्योहारों पर मेमसाहब हर किसी को दो दो आना त्योहारी देती थी। तिस पर भी कभी किसी के घर खाने को न हो तो मेमसाहब उसे अपने यहां से चावल दिये जाने की व्यवस्था करती थीं। अब ऐसा मालिक कहा मिलेगा? मेमसाहब मानो साक्षात् लक्ष्मी थी! हम लोगों पर बड़ी दया रखती थीं।

सावित्री—तो अंगूठा क्यों काटा? क्या साहबलोगों ने अंगूठे काट दिये?

रामा—साहब लोग क्यों काटते? हम लोगों ने आप ही काट लिये हैं। जब किसी तरह नहीं छोड़ते थे तब हमलोगों ने अपने अंगूठे काट कर साहब से कहा—हुजूर हमारे अंगूठा नहीं है, हम रेशम बुनने में असमर्थ हैं।

सावित्री—तो क्या साहब ने इस पर तुम सब लोगों को छोड़ दिया?

रामा—पहिले पहिल जिन दो आदमियों ने काटा था उन्हें तो छोड़ दिया। परन्तु अब जब कितने ही आदमी अपने अंगूठे काटने लगे हैं तो बड़ा गड़बड़ मच उठा है। क्या हो, कुछ मालूम नहीं। आखिर जब अंगूठा नहीं है तो रेशम बुना कैसे जावेगा? लाचार साहब को छोड़ना ही पड़ेगा।

रामा की ये बातें समाप्त होते-होते वे दोनों सभाराम के घर आ पहुंचीं। सावित्री के कपड़े पहिले ही भीग चुके थे। अब भी रास्ते में थोड़ा थोड़ा पानी बरसता रहा था, अतएव रामा के कपड़े भी

भीग गये। उसे बुखार भी था, शीत के मारे कांपते-कांपते बोली—"सावित्री, देख तो, थोडी आग जला सकती है? बडा जाड़ा लग रहा है।"

सावित्री ने अन्धकार मे घर के भीतर घुस कर देखा कि उसके पिता के कपडे पानी में भीग रहे है; शरीर ठढा हो रहा है, ज़ोर से सांस चल रही है। सावित्री बारम्बार 'पिता', 'पिता' कह कर आवाज़ देने लगो, परन्तु सभाराम अचैतन्य अवस्था मे पड़े थे, कोई उत्तर न मिला। तब सावित्री ने बाहर से थोडा सा सूखा कूडा करकट इकट्ठा कर के आग जलाई। पिता के शरीर पर से भीगे हुए कपडों को हटाकर अलग रखा, और उनके शरीर को गरम करने के अभिप्राय से अपने हाथ आग में सेंक-सेंक कर उनके शरीर पर फिराने लगी। परन्तु पिता की अचैतन्यता दूर न हुई। सावित्री ने आज तक कभी किसी की मृत्यु नही देखी थी। मरते वक्त लोगों की कैसी हालत होती है, इसे वह नही जानती थी। अतएव उसने यह न जान पाया कि मेरे पिता का मृत्युकाल उपस्थित है। परन्तु रामा ने मृत्यु-शैय्या पर पडे हुए हजारों रोगियों की सेवा शुश्रूषा की थी। गांव में जब कभी कोई ज्यादा बीमार पडता अथवा मरने को होता तो उसके घर वाले रात को उसके पास बैठने या जागरण करने के लिए रामा को ही बुलाते थे। रामा सिर्फ रोगियों की शुश्रूषा ही करती हो सो नही, वरन् रोगी की मृत्यु हो जाने पर उसका दाह-संस्कार कराने के लिए बाज़ार से सर पर लाद कर, ईंधन लाती थी; चिता तयार करती थी। विशेष परिश्रम का काम लोग रामा से ही कराया करते थे। किसी किसी रोगी की मृत्यु-शय्या के पास वह लगातार सात-सात रात जागी है। सभाराम को गहरी सांसें भरते देख कर रामा उनका हाथ पकड कर नाड़ी देखने लगी। रामा को नाडी का ज्ञान हो गया था। रोगी की नाडी को देख कर वह उसके मृत्यु-काल की देर-अदेर को जान सकती थी।

सभाराम की नाड़ी को देख कर रामा ने चटपट सावित्री से कहा—"सावित्री, अब क्या देखती हो? तुम्हारे पिता का मृत्युकाल उपस्थित है, इनके प्राण निकलना ही चाहते हैं। जल्दी जल्दी नारायणक्षेत्र की तैयारी करो, वृद्ध सभाराम का नारायणक्षेत्र न हुआ तो ठीक नहीं। देखो धीरज बांधे रहना, रोना धोना मत। नींब का पेड़ तो तुम्हारे घर में हई है, मैं जाकर बेल और तुलसी की डाले लाती हूं।" यह कहती हुई रामा चटपट घर के बाहर निकली।

सावित्री चौक उठी, सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। आंखों में आंसू भर कर बारम्बार पुकारने लगी—"पिता! पिता!" पर कोई उत्तर न पाया।

नारायणक्षेत्र की रचना करने में जिन जिन वृक्षों की डालें आवश्यक होती हैं, रामा क्रम क्रम से उन सभी का संग्रह करने लगी। दाहिना हाथ अगर तन्दुरुस्त होता तो रामा को कोई तकलीफ न होती. केवल बांए हाथ से काम करने में कठिनता पड़ती थी, समय भी अधिक लगता था। बड़े कष्टपूर्वक बांए हाथ से रामा ने तुलसी का एक पौदा जड़ से उखाड़ लिया, क्रम क्रम से अन्यान्य वृक्षो की डालें भी तोड़ लाई और घर के आंगन में नारायणक्षेत्र की रचना प्रारम्भ की। थोड़ी देर में पुनः कोठरी के भीतर जाकर उसने सभाराम की हालत देखी। इस बार सभाराम को बड़े कष्टपूर्वक सांस लेते देख कर रामा ने कहा—"लो सावित्री, अब इन्हें बाहर निकाल लेना चाहिये, उठाओ तो।"

सावित्री हतबुद्धि हो रही थी। रामा बारम्बार उससे पिता को पकड़ कर उठाने के लिए कहने लगी। रोते-रोते सावित्री ने पिता के सर को हाथों पर उठा लिया। रामा ने बांए हाथ से उनकी दोनों टांगें पकड़ीं। बड़े कष्ट से दोनों ने सभाराम को घर के बाहर निकाला

और जिस स्थान पर नारायणक्षेत्र की रचना की थी, वहीं पर ला रखा। सभाराम मृतक के समान मृत्तिका पर पड़ रहे। आकाश स्वच्छ हो गया था, बादल विलीन हो चुके थे, चन्द्र का प्रकाश फैला हुआ था। सावित्री बारम्बार पिता को पुकारने और करुण स्वर में कहने लगी—"पिता, अब मुझे तुम्हारी बातें कहां सुनने को मिलेंगी, भला मृत्युकाल में कुछ तो कहते!"

रामा ने कहा "सावित्री, अपने पिता के कानों के पास भगवान् के नाम का उच्चारण करो। मैंने देखा है, कितने ही मनुष्य नारायण-क्षेत्र पर पहुँच कर भी भगवान का नाम सुनकर जाग उठते हैं।"

सावित्री बारम्बार पिता के कानों के पास कहने लगी—"भगवान्, भगवान्, विपद्भजन भगवान् - दयामय परमेश्वर, हे हरे, हे हरे, हे राम, हे राम।"

कितनी ही देर तक कानों के पास रामनामोच्चारण होने पर सभाराम की आखें खुल गईं, वह टकटकी बांध कर सावित्री के मुंह की तरफ देखने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ मानो वे कोई भयंकर स्वप्न देखते-देखते सहसा जाग उठे हैं।

सावित्री ने पुकारा—"पिता!" वृद्ध के दोनों होंठ हिलने लगे। जान पड़ा कि वह कुछ कहना चाहता है; परन्तु बात मुंह से न निकली, आंखें मुंदने लगीं।

सावित्री ने फिर कहा—"पिता!—पिता! मुझे यहीं छोड़ चले? पिता! कुछ तो कहो। मैं हूं तुम्हारी सावित्री।"

"वृद्ध ने आखें खोल कर बड़े कष्टपूर्वक कहा—जा—ता—हलधर—मो—ह—र—।"

इसके कुछ ही क्षणों बाद सभाराम का चेहरा बिगड़ने लगा। यही उनका अन्तिम समय था। समस्त शारीरिक वेदनाओं को पार करके, उनके आत्मा ने स्वर्गलोक को प्रस्थान किया। देखते-देखते सभाराम का शरीर प्राण-शून्य हो गया।

अत्यन्त ही दीन-दुखी के वेश में बंगाल के एक सुविख्यात तन्तुकार सभाराम ने इस संसार से कूच किया। उनके बुने हुए वस्त्र नवाब के राजमहलों की शोभा बढ़ाते रहे। बंगाल की सभी समृद्धि-शालिनी भद्र महिलाएं उनके नाम से परिचित थीं। लंघनों का कष्ट भोगकर आज उन सभाराम की मृत्यु हो गई। पाच हज़ार स्वर्ण-मुद्रायें आज भी सभाराम के शयनगृह में गड़ी हुई हैं, परन्तु इस संसार में सम्पत्ति ही से सारे कष्टों का निवारण नहीं होता।

मनुष्य के हृदय में स्थित स्वार्थपरता, ईर्ष्या, द्वेष और हिंसा सदा ही विष का वमन करते रहते हैं। इस कालकूट-विष के स्पर्श मात्र से सामाजिक वायु विषाक्त होती रहती है। अतएव जब तक इस संसार से स्वार्थपरता और ईर्ष्या-द्वेष का नाम न मिटे कोई सुख-शान्ति को प्राप्त करने की आशा नहीं कर सकता। किसने आज नितान्त दीन हीन के वेश में सभाराम को इस ससार से विदा किया? सभाराम की अन्तिम अवस्था के असह्य क्लेशों का मूल कारण कौन था? इन प्रश्नों के उत्तर में कोई-कोई कहेंगे कि क़ासिमबाजार के अंगरेज व्यापारी इसके मूल कारण थे; कोई कहेंगे कि वही बंगीय कुलांगार रामहरी चट्टोपाध्याय इसका मूल कारण था; क्योंकि उसी के परामर्श से अंगरेज़ों ने सभाराम के पुत्रों को दादनी का रुपया लेने के लिए बाध्य किया था। परन्तु पाठक! एक बार भली भांति कार्य-कारण-शृङ्खला पर विचार कीजिये और पूर्णरूप से उसकी आलोचना कीजिये। तात्कालिक बंगीय समाज में पारस्परिक सहानुभूति का सर्वथा अभाव और समाज प्रचलित

व्यक्ति विशेष की घोर स्वार्थपरता ही सभाराम की इस दुर्दशा का एकमात्र मूल कारण थी। रामहरी क्योंकर ऐसे कुत्सित चरित्र और निन्दित आचरण को प्राप्त हुआ था? पाठक! बंगाल की तात्कालिक सामाजिक अवस्था ने एक रामहरी क्या, ऐसे सैकड़ों रामहरी पैदा किये थे! बंगालियों की स्वार्थपरता जनित कायरता और पारस्परिक सहानुभूतिशून्यता अंगरेज़ों के उस अवैध आधिपत्य संस्थापन का मूल कारण हो रही थी। समाज-प्रचलित स्वार्थपरता और पाप-परायणता समय समय पर दावाग्नि की तरह प्रज्वलित हो कर समाज के समग्र नर-नारियों को इसी प्रकार भस्मीभूत कर डालती है। खोटी समझ के आदमी यह सोचते हैं कि संसार में दूसरों के दुख से, दूसरों के कष्ट से, हमारी क्या हानि हो सकती है। हमारे स्त्री-पुत्रों को कोई कष्ट न हो; बस, यही काफी है। परन्तु जिस प्रकार जब किसी गांव के एक कोने में अथवा किसी एक घर में आग लगती है, तो अपने पास-पड़ोस में स्थित अन्यान्य घरों को भी जलाकर ख़ाक कर डालती है; इसी प्रकार समाज में स्थित किसी एक श्रेणी के दुराचरण और पापाचार से उत्पन्न दुख-दरिद्र की आग से समस्त मानव समाज को दग्ध होना पड़ता है। पाठक! यदि सुख से रहने की अभिलाषा रखते हो, यदि अपने कल्याण की कामना करते हो तो अपने आप को भूल कर दूसरों का दुख दूर करने की चेष्टा करो। समाज में प्रचलित सर्व प्रकार के पापाचारों के साथ अविराम युद्ध करने के लिए तैयार रहो। जब तक इस संसार में पाप और अत्याचार का अस्तित्व रहेगा, जब तक इस संसार में व्यक्तिविशेष की स्वार्थपरता सामाजिक सहानुभूति के बन्धन को छिन्न-भिन्न करती रहेगी, तब तक दावाग्नि की तरह प्रज्वलित उस पापाग्नि के आक्रमण से कोई भी अपनी रक्षा करने में समर्थ न होगा।

इस समय यदि वंगीय समाज में पारस्परिक सहानुभूति का अभाव न होता, एक का दुख देख कर दूसरे का हृदय व्यथित होता, अत्याचारी के अत्याचार से हर कोई अपने पड़ोसी की रक्षा करने को उद्यत होता; तो क्या आज सभाराम की यह दुर्दशा होती, तो क्या आज बंगाल सभाराम जैसे उत्कृष्ट वस्त्रनिर्माता तन्तुकारों से सूना हो जाता, तो क्या आज मुर्शिदाबाद प्रायः तन्तुकारों से ख़ाली नज़र आता?

संसार के विकट विपद्-जाल से विमुक्त होकर और सारे कष्ट-क्लेशों को पार कर, सभाराम ने सुधामय सर्वेश्वर की सुधामयी गोद में आश्रय लिया। दुखिनी, अनाथा कन्या सावित्री पिता के मृत शरीर को गोद में रख कर धरती पर बैठ रही। वह रोती नहीं है, आँख से आंसुओं की एक बूँद भी नहीं गिरती है। पाठक यह ख़याल करेंगे कि सावित्री के हृदय में पितृप्रेम नहीं। परन्तु बात ऐसी नहीं है। शोकाकुल अवस्था में विलाप करने के लिए अवकाश की आवश्यकता होती है। दुखिनी सावित्री को विलाप करने का अवकाश ही नहीं है। जिसके ऊपर शोक पर शोक, चोट पर चोट, दुख पर दुख, क्लेश पर क्लेश और कष्ट पर कष्ट पड़ रहे हैं, उसे आँसू गिराने का समय कहाँ? फिर मनुष्य की आँखों में जल ही कितना संचित रह सकता है? सावित्री की आँखों में अब जल नहीं रहा है, उसकी आँखें सूख गई हैं। विपत्ति के बोझ से दब कर हृदय सर्वथा अचल हो रहा है। बालक की छाती पर यदि एक छोटा सा मिट्टी का ढेला आ गिरे तो शरीर में पीड़ा पहुँचने के कारण वह ज़ोर से रो उठता है; परन्तु यदि पर्वत के समान भारी बोझ उसकी छाती पर रख दिया जाय तो वह चूं भी न कर सकेगा। जितने परिमाण के दुख-शोक में रो-धो कर और विलाप-परिताप करके, मनुष्य अपने हृदय के भार को हलका किया करते हैं, उससे हज़ार गुना दुख-शोक सावित्री के हृदय को पीस रहा है। पर्वत के समान दुख का भारी बोझ

उसकी छाती पर रखा हुआ है। इसीलिए सावित्री से न रोया गया, उसकी आँखों से आँसू नहीं गिरे। इस वक्त उसी दुख-भार में दबे हुए हृदय से स्नेह, दया और ममता को बाहर निकाल कर सावित्री केवल कठिन कर्त्तव्या-कर्त्तव्यज्ञान के द्वारा परिचालित हो रही थी।

सावित्री अपने पिता की इकलौती कन्या थी। बाल्यकाल से वह बड़े स्नेह और आदर के साथ पाली गई थी। निम्नश्रेणी के गृहस्थों के यहां जिस प्रकार बचपन ही से कन्याओं को विविध गृह-कार्य करने पड़ते हैं, उस प्रकार सावित्री को कभी नहीं करने पड़े। उसके तीन भौजाइयां थीं। वे ही घर का सब कामकाज करती थीं। सभाराम और उनके पुत्र सावित्री को बहुत ही प्यार करते थे। उन्होंने बचपन में सावित्री को बँगला पढ़ना सिखा दिया था। कीर्तिवास की रामायण, काशीरामदास का महाभारत, मुकुन्दराम की कविकंकण, चंडी इत्यादि उस समय की पाठ्य पुस्तकों को सावित्री बड़ी रुचि से पढ़ा करती थी। कभी-कभी सभाराम के पास बैठ कर ये पुस्तकें उन्हें पढ़ कर सुनाती थी। इन समस्त पुस्तकों के प्रतिपादित धार्मिक सिद्धान्त सावित्री की नस-नस में भिद चुके थे; अतएव रात को जब उसके पिता की मृत्यु हुई तो उसने सोचा कि यदि रातो-रात पिता के मृत शरीर का दाह-संस्कार प्रारम्भ न हो सका तो उनकी परलोक-गत आत्मा का अनिष्ट होगा।

ऐसा सोच कर बड़े कातर स्वर में उसने रामा को सम्बोधन करके कहा—"रामा! रात थोड़ी रह गई है। यदि रातो-रात पिता का दाह प्रारम्भ न हुआ तो उनका शव बासी हो जावेगा। बड़ा पाप पड़ेगा। इहलोक में, अन्तकाल में, मेरे पिता की यह दुर्गति हुई; अब क्या परलोक में भी उनकी दुर्गति होगी! क्या करूं बताओ। कहां से ईंधन लाऊँ, कैसे चिता तैयार करूँ? हा विधाता! मेरे

एक नहीं, दो नहीं, तीन तीन भाई थे। मेरे पति की ओर इशारा करके, मेरे पिता कहा करते थे इस वक्त मेरे चार पूत हैं। आज उनके वे चारों पूत कहां गये? यदि वे आज यहां होते तो क्या पिता की आज यह दशा होती? रामा! न तो मेरे भाई रहे न पति, सब अपनी अपनी राह गये। अब जो कुछ हो सो तुम्हीं हो। तुम्हीं मेरे भाई और तुम्हीं मेरे दादा। ऐसा उपाय करो, जिससे रात ही में पिता का दाह-संस्कार प्रारम्भ हो सके।"

हम पहले ही कह चुके हैं, दूसरे के कातर वाक्यों को सुन कर रामा का हृदय पानी-पानी हो जाता था। विशेषतः जब कोई व्यक्ति नम्र वचनों में रामा से कोई काम करने के लिए कहता तो वह जी-जान से उसे पूरा करने का प्रयत्न करती थी। परन्तु डरा-धमका कर अथवा कठोर वाक्य कहकर त्रिकाल में भी रामा से कोई कुछ काम नहीं ले सकता था।

रामा ने सावित्री को धीरज देते हुए कहा—

"घबड़ाओ मत। अभी इनका अग्नि-संस्कार कराती हूँ। मैं जीती बनी रहूँ और मेरे बूढ़े सभाराम का शव बासी हो जाय? देखो, तुम धीरज बाँधे रहना, बीच में रो-धो कर मुझे रंज न दिलाना।"

यह कह कर, किंचित सोच-विचार के बाद, रामा झट से एक आम के पेड़ पर चढ़ गई, और उसमें जितनी सूखी-सूखी डालें थीं, सब को उसने बांए हाथ से तोड़-तोड़ कर ज़मीन पर गिरा दिया। इसी प्रकार कोई एक घण्टे के भीतर आम के दो तीन पेड़ों की सूखी डालें तोड़-तोड़ कर काफ़ी ईंधन इकट्ठा कर लिया। बाद में चिता तैयार की और सवेरा होने के प्रायः दो घण्टे पहले ही सभाराम के मृत-शरीर का दाह-संस्कार प्रारम्भ कर दिया। सावित्री ने पिता के मुख में

अग्नि का समावेश किया। जिस वक्त सभाराम का शरीर प्रायः अध-जला हो चुका था, तब कहीं रात का अन्त हुआ। ऐसे दारुण दुःख में भी मन ही मन सावित्री को किंचित् आनन्द प्रतीत होने लगा, उसके इस क्षणिक आनन्द का एकमात्र कारण यही था कि रात ही में उसके पिता की अन्त्येष्टि-क्रिया आरम्भ हो गई।

इधर सबेरा होते ही रामा की मां जैसे ही बिछौने से उठी, गुस्से के मारे रिसाती-चिल्लाती आराट्टन साहब की कोठी पर आई, और जिस कमरे मे बदरुन्निसां तथा आराट्टन साहब की मेम बैठी थी वहा जाकर हाथ नचाते नचाते, कहने लगी—"देखो, आयाजी, सभाराम की लडकी सावित्री ऐसे बैर पडी है कि उसके मारे इस मुहल्ले के लोग नही रहने पावेगे। कल रात को वह क़ासिमबाजार मे किसी साहब-सूबा के पास गई थी। कोई आधी रात के वक्त वह मेरे घर आई और रामा को साथ लिवा ले गई। मेरी रामा पागल रही हो, चाहे मूर्ख रही हो, उसमे ये सब औगुन अभी तक नही थे। परन्तु रात वह सावित्री के साथ चली गई, सारी रात वापिस नहीं आई; अब देखो इतना दिन चढ चुका, अभी तक नहीं लौटी। मैं अभी सभाराम के घर जाकर रामा को, चुट्ट पकड कर घसीटे लाती हूँ।"

आराट्टन साहब की स्त्री और बदरुन्निसा रामा की मां की बातें सुनकर चकित हो रहीं। उन्होंने उसकी बातों पर तनिक भी विश्वास नही किया। आराट्टन साहब की स्त्री ने कहा—"रामा की मा क्या स्वप्न तो नहीं देख रही है कि सावित्री तेरे घर आकर रामा को लिवा ले गई? सावित्री को मैं बाल्य-काल से अच्छी तरह जानती हूँ, उसकी रहन-सहन को खूब पहिचानती हूँ। सावित्री रात में क़ासिमबाज़ार गई और बाद में तेरी रामा को लिवा ले गई—इसे तो मैं कदापि नहीं मान सकती।"

रामा की मां—मेमसाहब, आप दूसरों के रंग ढंग को नहीं समझती। सभी को भलामानस मान बैठती है। मैं आदमी की सूरत देखकर उसके पेट का हाल जान लेती हूँ। लोगों का रंग-रवैया देखते देखते मेरे तीन पन बीत गये।

बदरुन्निसां—सचमुच सावित्री रात तेरे घर आई थी। अच्छा नो मुझे ख़बर क्यों नहीं दी?

रामा की मां—आयाजी! आपको खबर देने के लिए उसने मुझसे कई बार कहा अवश्य; परन्तु आप जानती है, ऐसे आदमियों को कहीं शरम होती है? तरह-तरह के मक्र करने लगी, रोना पीटना शुरू कर दिया। मै क्या अब फिर कभी उसकी बातों मे आऊँगी?

बदरुन्निसां—तेरे पास आकर उसने क्या कहा था?

रामा की मां—और क्या कहती! रो-रो कर कहने लगी—"आज रामहरी बाबू कई आदमियों को साथ लेकर मेरे घर आये। मुझे पकड कर क़ासिमबाजार ले गये। मैं वहां से भाग आई। मेरे पिता की, न मालूम, क्या दशा हुई होगी। मुझे डर लग रहा है, रामा से कहो, मुझे मेरे घर तक पहुंचा दे।"

आराट्न साहब की स्त्री ये बातें सुनते ही घबड़ा कर बोली—"उफ़! गज़ब हो गया। जान पटता है, अभागा रामहरी फिर इस अनाथा सावित्री को सता रहा है।" इसके बाद मेमसाहब बदरुन्निसां को सम्बोधन करके कहने लगीं—"मां, सावित्री का क्या हाल है, पता तो लगाओ। और कुछ न होगा, तो हम लोग अपनी कोठी में उसके लिए एक छप्पर डलवा देंगे। अपने बूढ़े बाप को साथ ले, वह हमारे ही यहां आ रहे।"

आराट्न साहब की स्त्री बदरुन्निसां को मां कहा करती थी। बदरुन्निसां ने जल्दी जल्दी कपड़े पहिन कर रामा की मां को साथ लिया और सभाराम के घर की राह ली।

रास्ते मे रामा की मां कहने लगी—"आयाजी ! हमारी मेम-साहब लोगों का रंग ढंग नहीं पहिचानती ! अभी मानों बच्ची ही है, कुछ जानती ही नही, तुम तो बूढ़ी हो गईं। तुम इन सब बातों को अच्छी तरह समझ सकती हो।"

बदरुन्निसां मन ही मन सावित्री के दुख का चिन्तन कर रही थी। रामा की मां के कथन पर उसने विशेष कुछ ध्यान न दिया। चुपचाप आगे को चलती रही। रामा की मां ने अपनी बातों के उत्तर में बदरुन्निसां को बिल्कुल खामोश देखकर सोचा कि बदरुन्निसां भी सावित्री को कुलटा और दुराचारिणी समझ चुकी है। परन्तु बदरुन्निसां का अन्तरात्मा रामा की मां की तरह अपवित्र न था। उसने कभी स्वप्न मे भी सावित्री के चरित्र पर सन्देह नहीं किया था।

कुछ देर में दोनों ने सभाराम के घर पहुँच कर देखा कि सावित्री और रामा सभाराम की मृत-देह का दाह-संस्कार कर रही हैं। बदरु-न्निसां सावित्री के दुख और निराशापूर्ण मुख को देख कर अपने आंसुओं को न रोक सकी। उसकी दोनों आंखों से अश्रु धारा बह निकली। परन्तु रामा की मां चकित हो सावित्री की ओर देखने लगी। थोड़ी देर बाद रामा की मां ने बदरुन्निसां के कानों के पास अपना मुंह ले जाकर चुपचुपाते हुए कहा—"इसका कुछ भेद मालूम नहीं होता। कहीं इन दोनों ने सलाह करके बूढ़े सभाराम को खुद ही तो नहीं मार डाला, कि इसे मार कर हम दोनों कहीं को निकल चलें ?"

रामा की मां की यह बात सुन कर बदरुन्निसां अपने गुस्से को न संभाल सकी और उसे ज़ोर का धक्का देकर बोली—"हराम-

ज़ादी कहीं की चल, दूर हो यहां से। कुकर्म करते-करते तेरी उमर बीत गई, इसीलिए तू सब को बुरा समझती है।"

रामा की मा चुप रह गई, मुंह खोल कर कुछ न कह सकी। बदरुन्निसां आराटून साहब के घर की मालकिन ठहरी। मेमसाहब माता के समान उनका आदर करती है—यह सोच कर रामा की मां को प्रकट रूप से तो कुछ कहने का साहस न हुआ, पर मन ही मन कहने लगी—"हां, मैने तो उमर भर कुकर्म किये है, तुम बडी कही की सती हो।" अस्तु, बदरुन्निसां की फटकार सुन कर आज के बाद कभी रामा की मा सावित्री के विरुद्ध कोई बात अपनी ज़बान पर नही लाई, और ऊपरी बातों मे सदा ही सावित्री के प्रति प्रेम प्रकट करती रही।

हमारे पाठक सम्भवतः यह सोचेगे कि रामा की मां बडी दुष्टा थी। परन्तु इस उन्नीसवी शताब्दी की सभ्यता के प्रकाश में भी यदि शिक्षित कहलाने वाली अनेका-नेक वंगीय भद्र महिलाओं के चरित्र की आलोचना की जाय तो वे ठीक 'रामा की मां' प्रमाणित होती हैं। जब शिक्षित समुदाय मे भी सैकडों 'रामा की माँ' पाई जाती है, तब उस अज्ञानान्धकार से आच्छन्न अठारवीं शताब्दी की अशिक्षिता रामा की माँ को हम किसी गुरुतर अपराध की अपराधिनी नही कह सकते। मनुष्य शिक्षित हो अथवा अशिक्षित, यदि उसका चरित्र पवित्र नही है—यदि उसका हृदय सद्भावों से परिपूर्ण नही है—यदि अहंकार और आहम्मन्यता उसके हृदय से दूर नही हुई है, यदि सत्य और न्याय के प्रति उसमे अनुराग नहीं है, तो वह अवश्य ही 'रामा की माँ' होकर पशु-जीवन व्यतीत करेगा, और पवित्र से पवित्र चरित्र को भी कलंकित करने की चेष्टा करेगा। परन्तु 'रामा की माँ' जैसे अशिक्षित मनुष्य दूसरे की डाट-फटकार के सामने सिर झुकाने को तैयार रहते हैं, और शिक्षित कहलाने वाले वंगीय युवक अपने मत का समर्थन करने के लिए तर्क

शास्त्र का आश्रय लेते हैं। ये किसी तरह ख़ामोश हो जाने वाले जीव नहीं। दोनों में यही अन्तर है।

आराटून साहब की पत्नी।

सभाराम की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हुई—उनका शरीर अग्नि में भस्मीभूत हुआ। इस संसार में उनका कोई चिन्ह बाक़ी न रहा—रहा सिर्फ़ उनके शिल्प-नैपुण्य का विश्वव्यापी यश, और उनकी अन्तिम अवस्था के दुखों की कहानी।

सावित्री हाथ में घड़ा लेकर तालाब से पानी भर लाई और चिता की अग्नि को बुझाने लगी। बाद में राख को उठा कर उसने चिता का स्थान साफ़ किया, और चिता के गड्ढे में मिट्टी भर कर उसे ज़मीन के बराबर कर दिया। रामा तुलसी के एक पौदे को समूल उखाड़ लाई और चिता के स्थान पर सावित्री ने उसे रोपण किया। तदनन्तर रामा और सावित्री दोनों स्नान के लिए भागीरथी के तट पर आईं। स्नान और तर्पण करके सावित्री अपने घर की तरफ़ चली। बदरुन्निसाँ अभी तक उसके साथ ही थी। वह भी सावित्री के साथ उसके घर आई। रामा स्नान कर के माँ के साथ अपने घर चली गई।

सावित्री अपने वृद्ध पिता के सहित जिस टूटे-फूटे घर में रहा करती थी, आज उस घर में उससे क़दम न रखा गया। पिता की

अन्तिम अवस्था का दुख याद आते ही उसका हृदय विदीर्ण होने लगा, वह तीव्र शोकावेग में हाहाकार कर के रो उठी। इस वक्त तक उसे रोने-पीटने का अवकाश नहीं मिला था, सिर्फ यही चिन्ता, संपूर्ण रूप से, उसके हृदय पर अधिकार जमाये रही थी कि किस प्रकार पिता की अन्त्येष्टि क्रिया को समाप्त करूँ। अब वह चिन्ता नहीं रही। पिता की अन्त्येष्टि क्रिया समाप्त हो चुकी। शोक और दुख ने अवकाश पाकर, तुरन्त ही बड़े ज़ोरों मे हृदय के भीतर प्रवेश किया। गुरुतर शोक-भार को सहन करने में असमर्थ हो सावित्री घर के दरवाज़े पर अचैतन्य हो गिर पड़ी। कुछ देर में जब होश आया तो, उठ कर वहीं बैठ रही।

बदरुन्निसां ने कहा—"बेटी! तुम अकेली यहां कैसे रहोगी? चलो, मेरे साथ चलो। हम अपनी कोठी के अहाते में तुम्हारे लिए एक छप्पर डलवा देंगी। बाद में परमेश्वर की दया से जब तुम्हारे बड़े भाई और स्वामी जेल से छूट कर आवें तब उनके साथ अपने घर आकर रहना।"

कहां रहूँगी? कैसे रहूँगी? किस प्रकार जीवन विताऊँगी? ये प्रश्न अभी तक सावित्री के हृदय में उत्पन्न नहीं हुए थे, और होते कैसे; पिता की मृत्यु के बाद तो उसे सिर्फ़ यह चिन्ता लगी रही कि किस प्रकार पिता की अन्त्येष्टि क्रिया को सम्पादन करूँ; इधर जब इस चिन्ता से छुट्टी मिली तो दारुण शोकाग्नि उसके हृदय को प्रज्वलित करने लगी। इसी व्यथा में वह अधीर पड़ी है। दूसरे, यह चिन्ता उसने पहले भी कभी नहीं की थी कि मैं किस प्रकार अपना जीवन विताऊँगी, किस प्रकार अपना पेट पालूँगी। घर-बार लुट जाने के बाद भी सावित्री ने कभी अपने सुख और अपने आराम की चिन्ता नहीं की। अपने को सर्वथा भूल कर वह सिर्फ इसी चिन्ता में लीन रहती

थी कि किस प्रकार अपने वृद्ध पिता का दुःख दूर करूं। बदरुन्निसां की बात सुन कर आज अपने लिए पहिले पहिल उसके हृदय में यह प्रश्न उपस्थित हुआ—कहा रहूँगी? अष्टादश वर्षीया युवती क्या अकेली इस निर्जन घर में निवास कर सकती है?— विशेषतः पूर्व रात्रि की घटना याद आते ही सावित्री का हृदय कांप उठा। सोचने लगी, क्या जानें दुष्ट रामहरी कही फिर न यहां आकर मेरे ऊपर आक्रमण करे? इसी आशंका से वह तुरन्त ही बदरुन्निसां के प्रस्ताव से सहमत हो गई, और उसके साथ आराट्न साहब की कोठी को चल दी।

कोठी के पास पहुँचते ही इन दोनों ने देखा कि आराट्न साहब की मेम अपने शयनगृह से थोड़े फ़ासिले पर कई एक मज़दूरों के द्वारा एक कुटी बनवा रही है। उसकी तैयारी में सिर्फ़ तीन ही चार घंटे की कसर है। सावित्री ने आराट्न साहब की मेम को पूर्व-रात्रि की सारी घटनाएं आद्योपान्त कह सुनाईं। मेमसाहब के हृदय में बडी दया थी, सावित्री की बातें सुनते सुनते उनकी आँखों से बूँद बूँद आँसू टपकने लगे।

इस सहृदया रमणी ने सावित्री के प्रति असीम दया प्रकट की। निर्दय रामहरी के पंजे से उसकी रक्षा करने के लिए अपनी कोठी में उसे रहने को जगह दी, कुटी बनवा दी। यह रमणी कौन थी, यह जानने के लिए हमारे पाठक विशेष उत्सुक होंगे। अतएव पाठकों की इस उत्सुकता को शान्त करने के लिए हम इन सदाशया रमणी (आराट्न साहब की मेम) और बदरुन्निसां के जीवन का संक्षिप्त इतिहास नीचे लिखते हैं।

बंगाल के सूबेदार अलीवर्दी खां के सिंहासनासीन होने के बाद ईसवी सन् १७४१ में मरहठों ने बंगाल पर चढ़ाई की। मीरहुसेनअली अलीवर्दी खां के एक विश्वस्त सेनानायक ने इस युद्ध में विशेष

वीरता और रणकुशलता का परिचय देकर मराठो को परास्त किया और अपने स्वामी अलीवर्दी खा की प्रसन्नता लाभ की। युद्ध के बाद अलीवर्दी खां ने इसे प्रधान सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त किया। मीरजाफर, मीरहुसेन का सगा छोटा भाई था। मीरहुसेन अपने भाई मीरजाफर को प्राणो से अधिक प्यार करता था। परन्तु विषयासक्त कायर पुरुष प्रायः घोर कृतघ्न हुआ करते हैं। मीरजाफर ने अपने बडे भाई मीरहुसेन को गुप्तरूप से विष देकर मार डाला। अलीवर्दी खां ने मीरहुसेनअली की मृत्यु के वास्तविक कारण को न जान पाया, और इस लिये उन्होंने मीरहुसेनअली की कारगुजारियों के पुरस्कार स्वरूप उनकी मृत्यु के बाद उनके छोटे भाई मीरजाफर को उनके पद पर नियुक्त किया। मीरजाफर ने प्रधान सेनाध्यक्ष के पद पर नियुक्त होते ही अपने भाई हुसेनअली की प्रधान प्रधान स्त्रियो को अपने महल में दाखिल कर लिया। हुसेनअली की दस बारह परम सुन्दरी विवाहिता स्त्रियां और कोई सौ से अधिक उपपत्नियां मीरजाफ़र के अन्तःपुर मे ले ली गई। परन्तु मीरहुसेनअली ने यौवन के आरम्भ मे एक ब्राह्मण कन्या का हरण कर के, मुसलमानी प्रथा के अनुसार, उसका पाणिग्रहण किया था। यही हुसेनअली की सर्वप्रधान पत्नी थी। हिन्दू स्त्रियां जातिभ्रष्ट हो जाने पर भी प्रायः दूसरा पति ग्रहण करने के लिए सहमत नहीं होतीं, सतीत्वधर्म का भाव इन में स्वाभाविक होता है। हुसेनअली के द्वारा इस ब्राह्मण स्त्री के गर्भ से एक पुत्र और एक कन्या जन्मी थी। अपने पति (मीरहुसेनअली) की मृत्यु के बाद सतीत्वधर्म की रक्षा के उद्देश से यह ब्राह्मण स्त्री अपने पुत्र और कन्या को साथ ले भाग निकली और मैदाबाद के निकटवर्ती किसी गांव में रहने लगी। इसके पुत्र का नाम मीरमदन और कन्या का नाम बदरुन्निसां था। कुछ दिन बाद इस ब्राह्मण स्त्री की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के समय उसके पुत्र मीर-

मदन की अवस्था अठारह बरस की थी और कन्या बदरुन्निसा की अवस्था चौदह बरस की थी। यौवन-प्राप्ति के बाद ही मीरमदन नवाब-सरकार मे सेनापति के पद पर नियुक्त हो गया, और बाद मे किसी प्रतिष्ठित घराने की मुसलमान कन्या के साथ पाणिग्रहण करके सुखपूर्वक जीवन बिताने लगा। मीरमदन मे सारे ढँग अपने पिता के से थे। पिता का वीरोचित स्वभाव, पिता की उदाशयता, पिता की उदारता, उस के जीवन के प्रत्येक कार्य मे परिलक्षित होती थी। परन्तु बदरुन्निसां अपनी मां के स्वभाव की थी। पिता की मृत्यु के बाद जब उसने अपनी विमाताओं को दूसरे के हाथों में जाते देखा, उसी वक्त से उसके हृदय में मुसलमानी आचार-व्यवहार के प्रति अत्यन्त अरुचि उत्पन्न हो गई।

मुसलमानों की बहु-विवाह-प्रथा को वह अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखती थी। यौवन के आरम्भ ही में उसने मन ही मन यह निश्चय किया कि चाहे आजीवन अविवाहिता रहूँ, पर किसी मुसलमान का पाणिग्रहण न करूंगी, अतएव बदरुन्निसा का विवाह नहीं हुआ। विवाह होने की कोई सम्भावना भी नहीं थी। वह ठहरी मुसलमान कन्या, कोई ब्राह्मण-वर उससे विवाह करने काहे को आता? बदरुन्निसां अपने सहोदर मीरमदन के घर पर रहती रही। मीरमदन के सिर्फ़ एक इकलौती कन्या थी। और कोई सन्तान न थी। बदरुन्निसां बड़े प्रेम से उस कन्या का प्रतिपालन करती थी, और उसे प्राणों से अधिक चाहती थी।

मीरमदन के साथ सैदाबाद के आरमीनियन व्यापारी सामुएल आराटून की गाढ़ी मित्रता थी। आराटून साहब प्राय: प्रति दिन मीर-मदन के मकान पर आते और उनके साथ खाते-पीते थे। सामुएल आराटून की स्त्री भी कभी कभी मीरमदन के घर पर आकर उनकी स्त्री एवं बदरुन्निसां के साथ एकत्र भोजन किया करती थीं।

कुछ दिन बाद सामुएल आराटून साहब की स्त्री का देहान्त हो गया। इस स्त्री के गर्भ से एक पुत्र उत्पन्न हुआ था। माता की मृत्यु के समय इस बालक की अवस्था सिर्फ चार बरस की थी। इसका नाम था कारापिट आराटून। मातृ-वियोग के अनन्तर कारापिट प्रायः मीर-मदन ही के घर पर रहा करता था। बदरुन्निसां सन्तान की भांति उसका लालन-पालन करती थी। मुसलमानों की स्त्रियां पर्दे के कारण कभी घर के बाहर नहीं निकलतीं, अतएव किसी को उन्हें देखने का अवसर नही मिलता। सामुएल आराटून ने आज तक कभी बदरुन्निसां को नही देखा था, परन्तु उसकी सहृदयता की प्रशंसा अपनी स्त्री की ज़बानी बहुत दफे सुनी थी। जब उनकी स्त्री का देहान्त हो गया और बदरुन्निसां उनके पुत्र कारापिट आराटून का प्रतिपालन करने लगी तो आवा-जाई विशेष बढ़ जाने पर बीच बीच में कभी कभी बदरुन्निसां उनकी नज़र पड़ जाती थी। उसकी स्नेहशीलता, सहृदयता और सच्चरित्रता को देख कर सामुएल आराटून उस पर बड़े विमोहित हुए। बदरुन्निसां की अवस्था इस वक्त तीस बत्तीस बरस के लगभग थी। देखने में वह बड़ी सुन्दर थी। दिनों दिन सामुएल आराटून का मन बदरुन्निसां के प्रति आकृष्ट होने लगा। विशुद्ध प्रेम में विलक्षण शक्ति होती है! आराटून साहब का हृदय-स्थित गुप्त प्रेम अस्पष्ट और अज्ञात रूप में बदरुन्निसां के मन को आकर्षित करने लगा। इन दोनों के पारस्परिक प्रणय के क्रमिक विकाश और परिवर्द्धन का इतिहास लिख-कर उपन्यास के आयतन को बढ़ाना व्यर्थ है। संक्षेप में केवल इतना ही कह देना काफी है कि बदरुन्निसां को सामुएल आराटून के साथ विवाह करने की इच्छा हुई। इधर आराटून साहब ने यह निश्चय किया कि बदरुन्निसां के साथ विवाह करके हम अवश्य ही इस संसार में सुख-शांति के अधिकारी होंगे, एवं फिर हमें और कुछ भी वांछनीय न रहेगा।

परन्तु देशाचार और लोकाचार कभी कभी अवस्था-विशेष में कितना कष्टदायक होता है कि जिसका कोई हद-हिसाब नहीं। आराटून साहब ने सोचा कि यदि हम बदरुन्निसां के साथ विवाह कर लेंगे तो अपने स्वदेशीय वणिक-समाज में हमारी बड़ी निन्दा और अवज्ञा होगी। हमारी सहधर्मिणी को अन्यान्य आरमीनियन व्यापारी गिर्जे में न घुसने देंगे। अतएव आराटून साहब बदरुन्निसां और मीरमदन के साथ मिल कर इन सब बातों पर विचार करने के लिए विविध परामर्श करने लगे। अन्त में यह निश्चय किया कि बदरुन्निसा को व्याह कर बंगाल छोड़ मदरास में जाकर रहेंगे और वहीं व्यापार करेंगे; परन्तु बंगाल छोड़ जाने से उनका व्यापारीय कार-बार एकदम नष्ट हो जाता और उनके धन-माल की बरबादी होती।

बदरुन्निसा ने देखा कि आराटून साहब मेरे लिए अपनी सारी जायदाद और धन सम्पत्ति को छोड़ने पर तैयार हैं। अतएव मन ही मन वह बहुत ही व्यथित होने लगी। बहुत कुछ सोच विचार के अनन्तर उसने एक दिन आराटून साहब से कहा—"मैं तुम्हारे घर में एक परिचारिका की भांति रहूँगी। तुम्हारे यहां की आया होकर मैं तुम्हारे बाल-बच्चों का लालन-पालन करूंगी। ऐसा होने पर तुम्हें किसी प्रकार का सामाजिक अपमान न सहना पड़ेगा। ईश्वर की दृष्टि में मैं तुम्हारी धर्मपत्नी होऊँगी, पर तुम्हारे स्वदेशीय वणिकों की दृष्टि में मैं तुम्हारे घर की दासी रहूँगी।

पवित्र प्रणय के अनुरोध से जब बदरुन्निसां इस प्रकार का त्याग स्वीकार करने के लिए तैयार हुई तो मीरमदन ने भी इसमें कोई आपत्ति न की। मीरमदन बड़े उदारचेता मनुष्य थे। परन्तु आराटून साहब यह सोच-सोच कर मन ही मन बड़े व्यथित होने लगे कि अपनी प्रणय-पात्री बदरुन्निसां को दासी की भांति हमें अपने घर रखना पड़ेगा।

परन्तु अन्त मे विवश हो उन्हें इसी उपाय का अवलम्बन करना पडा। बदरुन्निसां के मनोरंजनार्थ आराटून साहब ने मुसलमानी रीत्यानुसार उसके साथ विवाह किया, क्योंकि बदरुन्निसां अपने धार्मिक विश्वासों मे बडी पक्की थी। पतिप्राणा बदरुन्निसां पवित्र प्रणय के अनुरोध से, मानाभिमान को तिलांजलि देकर, अपने पति के घर की परिचारिका हुई और इस प्रकार का त्याग स्वीकार करके उसने अपने पति को सामाजिक अपमान और लोकनिन्दा के भय से मुक्त किया। पावन प्रणय की विलक्षण शक्ति को देखिये कि एक बडे प्रतिष्ठित घराने की बेटी, सेनापति मीरमदन की सहोदरा, बदरुन्निसां ने अपने पति के घर मे दास्यवृत्ति का अवलम्बन किया। मेरे सहोदर, सेनापति मीरमदन को किसी प्रकार की लोक-लज्जा न उठानी पड़े,—इस अभिप्राय से बदरुन्निसां ने आज तक कभी किसी के निकट अपने को सेनापति मीरमदन की बहिन बता कर परिचित नही किया। अपना परिचय देते हुए वह सदा यही कहा करती थी कि मै पहिले सेनापति मीरमदन के घर मे दासी के काम पर नियुक्त थी। लोग बदरुन्निसां को दुराचारिणी खयाल करते थे और उसे सामुएल आराटून साहब की उप-पत्नी समझते थे; परन्तु परमेश्वर की दृष्टि में वह आराटून साहब की धर्मपत्नी थी। पाठकों को याद होगा, जिस वक्त रामा की मां ने मन ही मन बदरुन्निसां की भर्त्सना की थी, उस वक्त उसने चुपके चुपके कहा था—"मैं ने उमर भर कुकर्म किये हैं और तुम बडी कही की सती हो।" रामा की मां के इस प्रकार कहने का कोई कारण था और वह यही कि वह जानती थी, बदरुन्निसां आराटून साहब की उप-पत्नी है।

बदरुन्निसां के इस गुप्त विवाह के दो बरस बाद, पलासी के युद्धक्षेत्र में उसके भाई सेनापति-मीरमदन ने अपनी मानवलीला को समाप्त किया। वे मीरजाफ़र की तरह विश्वासघाती नहीं थे। सिरा-

जुद्दौला को वह प्राय: कुकर्मों से बाज़ रखने का उद्योग किया करते थे और उसकी कुक्रियाओं को अत्यन्त घृणा की दृष्टि से देखते थे। कभी कभी वे स्पष्ट शब्दों में सिराज को, सन्मुख संग्राम में परास्त कर, सिंहासन-च्युत करने का भय दिखाया करते थे। परन्तु उसके विरुद्ध कोई गुप्त षड़यन्त्र रचने की चेष्टा उन्होने कभी नहीं की। वे ख़याल करते थे कि सिराजुद्दौला दुराचारी सही, पर आखिर मेरा मालिक ही है; अतएव विश्वासघातपूर्वक उसके नाश की चेष्टा करनी मेरे लिए न्याय और धर्म के सर्वथा विरुद्ध है।

सहृदय मीरमदन ने अपने स्वामी को विपत्ति से मुक्त करने के लिए पलासी युद्धक्षेत्र में अपने प्राण विसर्जित किये। उनकी स्त्री और कन्या एकदम अनाथा हो गईं। मीरजाफ़र ने सिंहासनासीन होकर सिराज और मीरमदन के महल की स्त्रियों को अपने अन्त:पुर में दाखिल कर लिया। बदरुन्निसां को जैसे ही मीरमदन के प्राणांत की खबर लगी, वह उनकी कन्या को अपने यहां लिवा लाई और सस्नेह उसका प्रतिपालन करने लगी। इस प्रकार मीरमदन की कन्या एरफ़न्निसां, उर्फ़ बेगमी बीबी, आराटून साहब के घर बदरुन्निसां की देखरेख में रही। बाल्यावस्था से ही इस कन्या को आरमीनियन लोगों का सहवास प्राप्त रहा, कुछ ही दिनों में इसने आरमीनियनों की भाषा भी सीख ली। फ़ारसी भाषा में लिखना पढ़ना इसने अब से पहिले ही सीख लिया था। इसका स्वभाव बहुत ही सरल और नम्र था। दूसरे का दुःख देख कर इसका हृदय द्रवीभूत हो उठता था। दर्शकगण इसके चिरहास्य-विराजित चेहरे को देख कर मुग्ध हो जाते थे, क्या शारीरिक सौन्दर्य के सम्बन्ध में और क्या मानसिक प्रकृति के सम्बन्ध में—सांसारिक भाव, सांसारिक आचरण तथा सांसारिक आडम्बर इसके जीवन में विशेष नहीं देखे जाते थे। यह सचमुच देव-कन्या सी जान

पड़ती थी। सामुएल आराटून अपनी कन्या की भांति इसे प्यार करने लगे और मन ही मन उन्होंने निश्चय किया कि अपने पुत्र कारापिट के युवा होने पर, जहा तक हो सकेगा, इस कन्या के साथ उसका विवाह करने की चेष्टा करेंगे। परन्तु इसके लिए उन्हे फिर अधिक उद्योग न करना पडा। कारापिट बाल्यावस्था मे एरफन्निसा के साथ एकत्र खेला करते थे, एक ही साथ खाते-पीते थे। यौवनावस्था मे, इन दोनों के हृदयो में, एक दूसरे के प्रति अकृत्रिम प्रेम का सचार हुआ। सामुएल आराटून की मृत्यु के एक बरस बाद कारापिट आराटून ने एरफ़न्निसां के साथ विवाह किया। विवाह के बाद एरफ़न्निसां का नाम हुआ एस्थार। आज इनका विवाह हुए पांच छः बरस हो चुकी हैं। इस बीच में एस्थार बीबी के गर्भ से दो पुत्र उत्पन्न हुए हैं।

कारापिट आराटून साहब की स्त्री आरमोनियन वश की नही है, ये मीरमदन की बेटी है, और बदरुन्निसा मीरमदन की सगी छोटी बहन है। मुसलमानो के शासन-काल में हिन्दू और मुसलमानो में परस्पर विशेष घनिष्टता थी। अतएव आराटून साहब की स्त्री यदि सावित्री के प्रति इतनी दया प्रकट कर रही है तो यह कोई आश्चर्य की बात नहीं। हिन्दू महिलाए मुसलमान कुलागनाओ के प्रति सदा ही सहानुभूति प्रकट किया करती थीं। मुसलमान लोग हिन्दुओं को पराजित जाति कह कर उनसे घृणा नहीं करते थे, वरन् हिन्दुओं को अपने समान समझ कर मित्र की भांति उनमें श्रद्धा रखते थे, और देश के शासन-कार्य-सम्बन्धी प्रधान-प्रधान पदो पर हिन्दुओं को नियुक्त करते थे।

आराटून साहब की सहधर्मिणी एस्थार बीबी ने अपने शयन-गृह के पार्श्व में सावित्री के लिए एक घर तैयार करवा दिया। हिन्दुओं के आचार-व्यवहार को वे अच्छी तरह जानती थीं। यह उन्हें मालूम था कि हिन्दुओं के यहां पिता-माता की मृत्यु के बाद उनका दाह-संस्कार

करने वाले को अपने हाथ से रसोई बनाकर भोजन करना पड़ता है। अतएव उन्होंने अपने हिन्दू नौकर के द्वारा सावित्री के लिए चावल, घी इत्यादि सामान मंगा रखा। सावित्री ने कल से कुछ नहीं खाया था। एस्थार बीबी बारम्बार उससे भोजन बनाने का अनुरोध करने लगीं। सावित्री ने अपने हाथों रसोई तैयार की, और उस छोटी सी कुटीर में बैठ कर भोजन किया। सावित्री के भोजन कर चुकने पर एस्थार बीबी ने स्नान करके स्वयं कोई तीन बजे के वक्त खाना खाया।
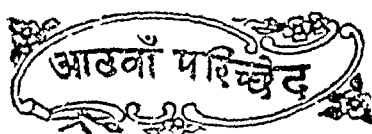
रामदास शिरोमणि का वैष्णवधर्म-ग्रहण।

इस प्रकार सावित्री आराट्न साहब के यहां रहने लगी। उसके दुख-निवारणार्थ एस्थार बीबी और बदरुन्निसां प्राणपण से उद्योग करने लगीं। परन्तु जैसा कि हम पहिले कह चुके हैं, धार्मिक बातों पर सावित्री का प्रबल विश्वास था। उसने अपने मन में सोचा कि यदि पिता का श्राद्ध न हुआ तो उन्हें मुक्ति प्राप्त होने की कोई सम्भावना नहीं। जब तक उनका श्राद्ध न होगा, तब तक सम्भवतः उन्हें नरक में रह कर दुःसह दुःख भोगना पड़ेगा। इस चिन्ता से उसका हृदय बहुत ही व्यथित होने लगा।

वह पुनः सोचने लगी—"हा! यदि अंगरेज़ों के अत्याचार से हम लोगों की यह दुर्दशा न हुई होती तो आज मेरे भाई पांच-पांच हज़ार रुपया खर्च कर पिता का श्राद्ध करते। परन्तु आज वे न जाने कहां चले गये? पिता की मृत्यु हो गई—उन्हें यह भी न मालूम है

सका !" इसी सोच मे सावित्री अकेली बैठी बैठी आसू बहाया करती थी कि गांठ मे एक पैसा नही, श्राद्ध करू तो कहा से ? एस्थार बीबी मेरे भरण-पोषण का खर्च दे रही है, फिर उनसे और श्राद्ध के लिए खर्च मांगूँ, सो कैसे ? हिन्दू शास्त्र के नियमानुसार कन्या को पिता की मृत्यु के बाद तीसरे दिन उसका श्राद्ध करना चाहिये। परन्तु तीन दिन तो बीत चुके, अब यदि महीने के भीतर भी किसी तरह पिता का श्राद्ध कर सकती तो भी अच्छा होता।

एक दिन इसी विषय का चिन्तन करते-करते सावित्री अत्यन्त शोकाकुल हो उठी। सहसा उन्मत्त की भाति चिल्ला कर कहने लगी—"हा ईश्वर ! मेरे पिता के भाग्य में यही बदा था ! उन्होंने तो कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया, फिर उनकी ऐसी दुर्दशा क्यो हुई ! हाय ! हाय ! पिता का श्राद्ध भी न हो सका !" यही कहते-कहते सावित्री अचेतन्य हो पृथ्वी पर गिर पडी।

दैवात् एस्थार बीबी इस वक्त सावित्री की कुटी की तरफ आ रही थी। सावित्री की कातरोक्ति ने उनके कानो में प्रवेश किया। दौड कर वे सावित्री की कुटी के पास आईं, वहां पहुँचने पर उन्होने देखा कि सावित्री अचेत पडी है।

कुछ देर बाद जब सावित्री चैतन्य हुई, एस्थार बीबी ने पूछा—"आज फिर तुम इतनी शोकाकुल हो रही हो, सो क्यों ?" सावित्री ने कोई उत्तर नहीं दिया।

एस्थार बीबी आग्रहपूर्वक बारम्बार कहने लगी—"यदि तुम्हारे दुख का कोई नया कारण हो तो मुझ से कहो। मैं यथाशक्ति उसे दूर करने का उद्योग करूँगी। मैं तुम्हें छोटी बहिन के समान प्यार करती हूँ। तुम्हें दुखी देख कर मुझे बडा दुख होता है।"

तब सावित्री ने कहा—"मेरे पिता का श्राद्ध न हुआ इस कारण मेरा हृदय बहुत ही दुखी हो रहा है। सुना है, जब तक श्राद्ध नहीं होता तब तक मृतक व्यक्ति को नरक मे रहना पडता है, श्राद्ध होने पर ही वह स्वर्ग को जा सकता है। ऐसी दशा में सम्भवतः मेरे पिता नरक में दुःसह दुख झेल रहे होंगे। वृद्धावस्था में असहनीय क्लेश भोग कर पिता की मृत्यु हुई, अब उन्हें नरक के दारुण कष्ट भी भोगने पड़ेंगे—इसी चिंता से मेरा हृदय व्याकुल हो रहा है।"

एस्थार बीबी ने कहा—यह बात तुमने अब तक मुझ से क्यों नही कही? श्राद्ध मे जो कुछ खर्च लगेगा, वह मैं दूँगी।

सावित्री—नहीं, नही। मैं आपको अधिक खर्च के लिए मजबूर नही कर सकती। तिस पर आप भी आजकल मुसीबत में हैं।

एस्थार—अच्छा तो श्राद्ध में कितना रुपया लगेगा?

सावित्री—मेरे ख़याल मे दस पद्रह रुपये मे काम चल सकता है।

एस्थार—मै इसी वक्त पंद्रह रुपये देती हूँ। श्राद्ध के लिए जो जो सामान चाहिए, सो बताओ, मैं अपने नौकर से मँगा दूँगी।

सावित्री—ब्राह्मण के बिना पूछे मैं नही बता सकती कि कौन कौन चीज़ चाहिए। अँगौछा वगैरह की ज़रूरत पडती है।

एस्थार—मैं अपने नौकर से ब्राह्मण को बुलवाती हूँ।

सावित्री—आप रामा को बुलवा लें, और उसी से ब्राह्मण को बुलवाएं। रामा इन सब बातों की जानकार है। श्राद्ध के अवसर पर वह प्रायः जहां-तहां काम-काज किया करती है।

आराट्टन साहब की स्त्री के आज्ञानुसार रामा ब्राह्मण को बुलाने गई। परन्तु सैदाबाद के आस-पास तीन-तीन कोस तक कही तंतुकारों के पुरोहित-ब्राह्मण का पता न लगा। पास पड़ोस के सभी गांवों के

तन्तुकार घर-बार छोड कर अन्यत्र भाग गये थे; अतएव उनके पुरोहित लोग भी उन्हीं के साथ चले गये थे। रामा ने लौट कर यह सब हाल आराटून साहब की स्त्री और सावित्री से कहा। सावित्री बडी निराश हुई। एस्थार बीवी सोचने लगी, अब क्या करें। इतने में बदरुन्निसा ने सावित्री से पूछा—"ये जो कितने ही भट्टाचार्य्य पण्डित हमारे सैदाबाद के पडोस में रहते हैं, इनसे काम नहीं चलेगा?"

सावित्री ने कहा—"काम तो चल सकता है, परन्तु हमलोग ततुकार है, नीची जाति के आदमी है, ये भट्टाचार्य्य पण्डित मुझे श्राद्ध-मंत्र पढ़ाना स्वीकार नहीं करेंगे।

बदरुन्निसा—अरे रुपये से तो शेर की आँखें तक खरीदी जा सकती है; रामा, तू कुछ ज्यादा रुपया देने कह, भट्टाचार्य्य महाराज तो दौड़े आवेंगे और श्राद्ध करवा जायंगे।

सावित्री— नहीं, वे लोग कदापि स्वीकार न करेंगे।

परन्तु रामा को आशा हुई। उसने सोचा कि कुछ ज्यादा रुपया देना मंजूर करने पर भट्टाचार्य पण्डित मिल सकते हैं ज़रूर। निदान वह तुरन्त ही हरिदास तर्कपंचानन के पास गई।

हम पहिले ही कह चुके हैं, रामा बड़े सरल स्वभाव की स्त्री थी। संसार के रंग-ढँग को वह तनिक भी नहीं समझती थी। तर्कपंचानन महाशय विद्यार्थियों से घिरे हुए बैठे थे। अन्यान्य दो-चार ब्राह्मण पंडित भी वहा मौजूद थे। रामा ने उन सब लोगो के सामने ही अपने मतलब की बात धांग दी। तर्कपंचानन महाशय रामा की बात सुन कर आगबबूला हो उठे। सामने पडे हुए खडाऊँ उठा कर रामा के सिर से जमाने को तैयार हुए, और चिल्लाकर कहने लगे—"नीच कहीं की; तू इतनी बढ़ गई। मुझसे तन्तुकारों का श्राद्ध कराने के लिए कहती है! मैं कभी शूद्रों का दान लेता हूं?"

रामा तनिक भी चीं-चपड न कर के चट-पट वहां से भाग खड़ी हुई। तर्कपंचानन ने देखा, शिकार हाथ से निकला जाता है, अतएव जैसे ही रामा ने पीठ घुमाई, तर्कपचानन जी ने दाहिने हाथ से कान पर जनेऊ चढ़ाते हुए, बाएं हाथ में पानी का लोटा लिया, और पेशाब के बहाने धीरे धीरे घर के बाहर आये। चटपट इशारे से रामा को पुकारा और कहने लगे—"अरे तू तो बडी पगली है, इतने आदमियो में कहीं ऐसी बाते कही जाती हैं? देख दो सौ रुपया दे तो मैं गुप्त रूप से श्राद्ध करवा आऊँगा। परन्तु खबरदार! किसी को जाहिर न होने पावे।

रामा के चरित्र का हाल पाठकों को भली भांति ज्ञात है। यदि कोई उससे नाराज़ होकर कुछ कहता तो वह उससे सीधे बात नही करती थी। तर्कपचानन की बातें सुनकर रामा गुस्से मे आकर कह उठी—"महाराज, अब आप अपने घर बैठें, हमें बहुत ब्राह्मण मिल जावेंगे।"

यह कहते हुए रामा झटपट रामदास शिरोमणि के पास पहुँची। शिरोमणि महाशय के पास भी दो-चार आदमी बैठे हुए थे। परन्तु अबकी दफे रामा ने किसी के सामने अपनी बात नहीं कही। कुछ देर वहा बैठी रही, जब वे अपरिचित आदमी सब चले गये तब रामा ने, विदेशी राजदूत की तरह, अपने मतलब की बात प्रकट करने के पहिले भूमिका बाधनी शुरू की। अत्यन्त विनम्रता प्रकट करती हुई बोली—"पण्डित जी महाराज, एक मतलब से आपके पास आई हूँ।"

शिरोमणि—कौन मतलब?

रामा—श्रीमान्—श्रीमान्—पण्डित जी महाराज, आप तो जानते ही हैं कि हमारे पुरोहित लोग सब देश छोड गये हैं।

शिरोमणि—हां, हां, छोड न जाते तो और करते क्या? उनके सब जजमान भाग गये तो वे यहां रह कर क्या करते?

रामा—पण्डित जी महाराज—हमारी जाति के मुखिया थे सभाराम वे मर गये। उनका श्राद्ध अभी तक नही हुआ। उनकी लड़की सावित्री उनका श्राद्ध करना चाहती है, पर कोई ब्राह्मण नही मिलता।

शिरोमणि—हां, हां, खूब समझा। तो मुझसे तन्तुकार का श्राद्ध कराने के लिए कहेगी? तीन पन बीत गये, कभी शूद्र का दान नही लिया। अब क्या चौथे पन में यह कुकर्म करूँगा?

रामा—महाराज आप से यह कहने की हिम्मत नही पडती। परन्तु करूँ क्या, बिना कहे बनता नहीं। पुरोहितो का कही पता नही लगता।

शिरोमणि—अच्छा तो, मुझे मालूम है, सभाराम के पास बहुत रुपया था। वह क्या अँगरेज़ों ने लूट लिया?

रामा—सब लूट लिया। एक पैसा भी न रह गया। श्राद्ध का ख़र्च हमारी मेमसाहब देगी।

शिरोमणि—अच्छा तो पांच सौ रुपया देने पर गुप्त रूप से श्राद्ध का मन्त्र पढ़ा सकता हूं। परन्तु खबरदार किसी को जाहिर न होने पावे।

रामा—महाराज भला ऐसी बाते कही ज़ाहिर करने की होती है। परन्तु मेमसाहब इतना रुपया क्यों देने लगी? हम लोग तो कोई दस-बारह रुपये मे सब काम निपटाना चाहते है।

शिरोमणि—जा तो एक सौ रुपया दे सकेगी?

रामा—नहीं पण्डित जी।

शिरोमणि—अच्छा तो जा, मैं तन्तुकारों का श्राद्ध नहीं करवा सकता।

रामा उदास हो उठ कर चल दी। इतने में शिरोमणि महाशय पुनः रामा से बोले—अच्छा तो दस रुपया दे। सभाराम का घर लुट गया है, उनका बड़ा लडका जेल में है, सावित्री बेचारी बड़ी विपत्ति में फँसी है; चलो इतना ही सही। मगर देख खबरदार! इस बात की कहीं चर्चा न हो।"

रामा—पण्डित महाराज, पांच रुपये से ज्यादा हम लोग नहीं दे सकेंगे।

शिरोमणि जी ने सोचा, आजकल तंगी का वक्त है, पांच रुपये भी हाथ से निकाल देना ठीक नहीं। अतएव रामा को जाते देख शिरोमणि जी कह उठे—"अरे सुन तो, श्राद्ध कौन दिन होगा?"

रामा—महाराज, आगामी मंगलवार को। सभाराम की मृत्यु को आज चौथा रविवार है। अट्ठाइस दिन हो गये। तीसवें दिन परसों मंगलवार को श्राद्ध होगा।

शिरोमणि—श्राद्ध का स्थान गंगा के उस पार रख सकेगी? क्योंकि गुप्त रूप से काम करना पड़ेगा।

रामा—महाराज, रातोरात गंगापार चलेंगे। एक पहर में श्राद्ध का काम समाप्त हो जायगा। श्राद्ध समाप्त होते ही पहिले मैं आपको इस पार उतार जाऊँगी। बाद में सावित्री को लिवा कर मैं भी चली आऊँगी।

यह बात सुन कर शिरोमणि जी बोले—अरे तू बडी होशियार है, तुझे क्या सिखाऊँ। अच्छा, जा, मैं श्राद्ध कराऊँगा। सभाराम की बेटी बेचारी बड़ी आफ़त में फँसी है। अब ज्यादा लोभ करना अच्छा नहीं। सभाराम का बड़ा बेटा जब जेल से छूट कर आवेगा तो मैं उससे अपना मन मना लूंगा।

रामा—महाराज, श्राद्ध के लिए क्या क्या सामग्री चाहिए, हम लोगों को तो कुछ मालूम नहीं। मूर्ख आदमी ठहरे, जो जो चीजें चाहिए, उन सब की एक फेहरिस्त बना दीजिए। कल बाज़ार से सब खरीद रखूगी।

शिरोमणि—श्राद्ध में जो जो सामान लगेगा सब मेरे घर मौजूद है। थोड़े से अंगोछे चाहिये, कुछ और चीजें भी चाहिये। खैर, वे सब चीज़ें मैं अपने साथ लेता आऊँगा। तुम्हें उनका सिर्फ मूल्य दे देना पड़ेगा।

ब्राह्मण मिल गया, रामा को बड़ी खुशी हुई। झटपट कोठी पर आई और मेमसाहब, वदरुन्निसा और सावित्री से उसने आद्यो-पान्त सारा वृत्तान्त कह सुनाया।

सावित्री ने कहा—रामा, तुमने वास्तव मे मेरे साथ बड़े भाई ही के से सलूक किये है। रातोरात पिता का दाह-संस्कार तुम्ही ने करवाया और आज उनके श्राद्ध का ठीक-ठाक भी तुम्ही ने लगाया।

मगलवार आया। प्रभात होते-होते सावित्री और शिरोमणि जी को साथ ले एक नौका पर सवार हो, रामा गंगापार उतर गई। सावित्री गंगा में डुबकी लगा कर भीगे वस्त्र पहिने-पहिने मंत्रपाठ करने लगी। शिरोमणि महाशय जो जो कहलाते गये सावित्री वह सब कहती गई। पर समझी कुछ भी नही, किसी भी शब्द का अर्थ उसकी समझ मे नही आया। बीच में जब "पिता" और "सभाराम" शब्द कहना पड़ा तो उसकी आंखों से आंसू टपक पड़े। कोई पहर भर दिन चढ़े तक श्राद्ध समाप्त हो गया। सावित्री ने बड़ी श्रद्धा-भक्ति के सहित शिरोमणि जी के चरणों मे प्रणाम कर उनकी पद-रज को ग्रहण किया। मन ही मन उसे दृढ विश्वास हुआ कि आज मेरे पिता प्रेतलोक को

छोड कर अवश्य ही स्वर्ग लोक में जा पहुँचे होंगे। अतएव मन ही मन हर्षित हो, शोक और दुख की अवस्था मे भी, विमल आनन्द का अनुभव करने लगी। एस्थार बीबी के प्रति उसका हृदय कृतज्ञता-रस से परिपूर्ण हो गया। रामा ने शिरोमणि महाशय को सामग्री के मूल्य के बावत सात रुपया और श्राद्ध की दक्षिणा पांच रुपया, कुल बारह रुपये दिये। शिरोमणि जी अँगोछे के खूँट में रुपये बांध कर और सामान वगैरह सब लेकर नाव पर सवार हुए। रामा पहिले शिरोमणि को इस पार उतार जाने के लिए उनके साथ नाव पर सवार हुई। सावित्री अकेली उस पार रही। वाद में रामा फिर उस पार जाकर सावित्री को भी लिवा लाई।

इधर रामा की मां ने इस श्राद्ध का सारा वृत्तान्त सुना। उसे किसी तरह यह पता लग गया कि आज थोडी रात रहे शिरोमणि पण्डित सावित्री को श्राद्धमन्त्र पढ़ाने के लिए गगा के उस पार गये हैं। शिरोमणि जी के साथ रामा की मां का पुराना वैर था। परन्तु रामा को इस वैर का कुछ भी पता नहीं था। रामा की मां सवेरे उठते ही फ़ौरन बाबा प्रेमदास के अखाडे में गई और बाबा कृष्णानन्द को आवाज़ देकर कहा—"वैरागी महाशय, ए, वैरागी महाशय! जल्दी से इधर आना, आज बहुत दिनों के बाद शिरोमणि पण्डित की क़लई खोलने का मौक़ा मिला है।

बाबा कृष्णानन्द ने विस्मित होकर पूछा—क्यों क्यो क्या हुआ?"

रामा की मां—देखो, यहां तो आओ, शिरोमणि महाशय, सभाराम की लडकी सावित्री को श्राद्ध-मंत्र पढ़ाने के लिए, गंगा के उस पार गये हैं। अभी कुछ ही देर में श्राद्ध की सामग्री लेकर लौटे आते होंगे। शिरोमणि ने तुम्हारे साथ कुछ उठा नहीं रखा, आज इनका भंडाफोड कर दो।

बाबा कृष्णानन्द यह बात सुन कर बड़े प्रसन्न हुए। रामा की मां को साथ ले तुरन्त ही नदी के किनारे जा पहुँचे और इधर-उधर टहलने लगे। पाठक! गुरु-दक्षिणा प्रदान करने का दृढ संकल्प कर आज बाबा कृष्णानन्द नदी के किनारे शिरोमणि पण्डित की प्रतीक्षा कर रहे थे।

बाबा कृष्णानन्द, रामा की मां और शिरोमणि पण्डित मे इससे पहिले जो झगडा हो चुका था, यदि यहां पर उसका उल्लेख न किया जायगा तो हमारे पाठक इस वैर-प्रतिशोध के मूल कारण को न समझ सकेंगे। बाबा कृष्णानन्द बंगाल के एक गरीब ब्राह्मण की सन्तान थे। इनका पहिला नाम था नवकिशोर चट्टोपाध्याय। बाल्यकाल में ही इनके पिता की मृत्यु हो गई। आठ बरस की अवस्था में इनकी माता ने इन्हें शिरोमणि पण्डित की पाठशाला में शास्त्राध्ययन करने के लिए भेजा। बारह बरस तक इन्होने शिरोमणि की पाठशाला में विविध शास्त्रों का अध्ययन किया। जब इनकी अवस्था बीस बरस की हुई, तब इन्होने न्याय, दर्शन और योगशास्त्र का अध्ययन आरम्भ किया। इनकी बुद्धि बडी पैनी थी। तर्क और विचार मे ये अपने सभी सह-पाठियों को समय समय पर परास्त करते रहते थे। सभी विद्यार्थियों में प्रधानता प्राप्त करते देख इनके सहपाठी इनसे बहुत जलते थे। शिरोमणि महाशय खुद भी यह आशंका करते थे कि नवकिशोर भविष्य मे मुझ से भी अधिक बढ जावेगा, और मेरे ऊपर भी प्राधान्य प्राप्त करेगा।

प्रायः दो बरसें बीत गईं, एक दिन नवकिशोर शिरोमणि की पाठशाला को जा रहे थे, दैवात् मेंह बरसने लगा। उस समय नव-किशोर निकट-स्थित रामा की मां के मकान के बरांडे में जाकर खडे हो रहे। रामा की मां उस वक्त घर मे नहीं थी। घर का दरवाज़ा

भी वन्द था। नवकिशोर के पीछे-पीछे उनका एक सहपाठी वामाचरन वन्द्योपाध्याय भी उसी समय पाठशाला को जा रहा था। नवकिशोर ने उसे नहीं देख पाया। वामाचरन, नवकिशोर की पाठशाला के सब विद्यार्थियों पर प्रधानता प्राप्त करते देख कर सदा ही उसके अनिष्ट का सुयोग ढूंढता रहता था। आज जो वामाचरन ने नवकिशोर को रामा की मां के मकान के बरांडे में खड़ा देखा, तो तुरन्त ही मेंह में भीगते-भीगते दौड कर वह शिरोमणि पण्डित के पास आया और प्रणाम कर के बोला—"गुरुदेव! आज से आपकी पाठशाला मे नही आऊँगा। मुझे अपनी पद-रज देकर विदा कीजिए।"

शिरोमणि जी ने घवडाकर पूछा—"क्यों, क्या हुआ?"

इन दिनों शिरोमणि महाशय की एक विधवा कन्या के नाम पर बहुत अपवाद उड रहे थे। इसलिए उन्होने ख़याल किया कि शायद उसी के सम्बन्ध मे कुछ झगडा उठा होगा।

बडी घवडाहट के साथ शिरोमणि महाशय बारम्बार पूछने लगे—"क्या हुआ, बताते क्यो नहीं?"

वामाचरन ने इधर उधर से बहुत कुछ घुमा फिरा कर कहा—"गुरुदेव! आपकी पाठशाला में प्रधान विद्यार्थी हैं नवकिशोर। परन्तु आज मैने उन्हें एक ऐसा कुकर्म करते देखा है कि उनके साथ, बैठने-उठने और खान-पान रखने से अवश्य ही हम लोगों को पतित होना पडेगा!"

यह सुन कर शिरोमणि का चेहरा तनिक बहाल हुआ। क्योंकि उन्होंने जिस बात की आशंका की थी, वह बात नहीं निकली। वामाचरन से पूछा—"अच्छा बताओ तो नवकिशोर ने किया क्या? उसके सम्बन्ध मे मुझे सन्देह तो पहिले ही से हो रहा था।"

वामाचरन बोले—"गुरुदेव ! नवकिशोर ने जो कुकर्म किया है, उसे सुनकर शरीर रोमाचित होता है। भला मैं उसे अपनी ज़बान से कैसे कहूँ ? आप मेरे गुरु हैं, पिता के तुल्य है। आपके सामने मै ऐसी बाते कैसे कह सकता हूँ। यदि आप चाहे तो मेरे साथ चलकर देख ले। इस वक्त नवकिशोर उसी कुलटा स्त्री, रामा की मां के घर बैठा उसी के साथ-साथ पान खा रहा है।"

शिरोमणि महाशय यह सुनते ही आगबबूला हो उठे और आपे से बाहर हो गये। इस वक्त उनके इतने अधिक क्रुद्ध होने का कोई कारण था, और वह यही कि उन्हें जो आशंका थी, वह दूर हो गई थी। बस, पलमात्र की देर न करके, वामाचरन को साथ ले फौरन सैदाबाद आये। इतने मे मेह भी थम गया। रामा की मां के मकान के पास आकर इन्होंने देखा कि नवकिशोर उस मकान के बरांडे से बाहर निकल रहे हैं। शिरोमणि महाशय उन्हें देखते ही गरज उठे, और हज़ारों गालियों की बौछार करते हुए बोले—"रे पापी, रे दुष्ट ! मैंने इतनी अधिक मेहनत करके बारह बरस लगातार तुझे शास्त्र की शिक्षा दी, वह सब तूने मिट्टी मे मिला दी ? बड़ा नीच निकला ! आज ही तुझे पाठशाला से निकाल बाहर करूँगा। तू तो जातिभ्रष्ट हो चुका। आज से कोई भी ब्राह्मण तुझे नहीं छुएगा, कोई भी तेरे हाथ का छुआ पानी नहीं पियेगा।"

नवकिशोर बेचारे चकित हो खड़े रह गये। सोचने लगे, क्या मामला है ? इधर शिरोमणि महाशय ने घर लौट कर सारे विद्यार्थियों को यह हाल कह सुनाया। दो ही घटे के भीतर नवकिशोर के कुकार्य की चर्चा सारे गाव में फैल गई, सब किसी को यह हाल मालूम हो गया। गांव के कितने ही आदमी कहने लगे—"नवकिशोर के इन दुराचरणों का हाल तो हम पहले ही से जानते थे, परन्तु हम तो किसी

की ऐसी बातों पर ध्यान नहीं देते। जिसकी जो इच्छा हो, करे, हमे क्या।" कोई कोई कहने लगे—"शिरोमणि महाराज अपनी आँखों देख आये हैं कि नवकिशोर रामा की मां के बिछौने पर बैठा हुआ उसके साथ एक ही पानदान से पान खा रहा था।" गांव का एक अन्धा वृद्ध ब्राह्मण, जिसे आज बारह बरस से कुछ भी सुझाई नहीं देता था, कहने लगा—अरे भाई, मेरी उमर इस गांव में सब से ज्यादा है। अब तो मेरी आखें जाती रही। जब आंखें थी तब मैंने न जाने क्या क्या कौतुक देखे थे। परन्तु भाई, किसी की बुराई चेतने या किसी की निन्दा करने की मेरी आदत नहीं। उमर भर मे न कभी ऐसा किया, न अब करूँगा। अरे इस बेईमान नवकिशोर को तो मैने अपनी आंखों से रामा की मां के साथ भोजन तक करते देखा है।"

पाठक! बारह बरस पहिले रामा की मां सैदाबाद में रहती भी नहीं थी। दूसरे, उस वक्त नवकिशोर की अवस्था सिर्फ़ सात या आठ बरस की थी। इस वृद्ध ब्राह्मण ने अब से बारह बरस पहिले नवकिशोर को रामा की मां के साथ भोजन करते देखा था!

नवकिशोर की वृद्धा माता यह हाल सुन कर मृतप्राय हो रही। लोकलज्जा के भय से गले में फांसी लगा कर अथवा गंगा में डूब कर मर जाने का विचार करने लगी। इधर गाव के सब ब्राह्मणों ने मिल कर नवकिशोर को बिरादरी से बाहर कर दिया। नवकिशोर की माता ने यह हाल सुन कर पहिले अपने पुत्र ही को दोषी समझा था। अतएव, दुख और क्रोध में अभिभूत हो उसने उसी वक्त नवकिशोर से कहा था—"रे अभागे! क्या आज अपना मुंह काला करवाने के लिए ही मैंने नौ महीने तुझे अपने पेट में रखा था? मैंने जनेऊ कात-कात कर तुझे पाला पोसा। स्वयम् लंघन किया, पर तुझे खिलाया। आज तूने उसका यह बदला दिया!" नवकिशोर से माता के यह वाक्य सहन न हुये।

वह तुरन्त ही आत्महत्या कर लेने पर उतारू हुये। पर माता ने उन्हें पकड रखा। भला माता का हृदय पुत्र की आत्महत्या को कैसे सह सकता था? निदान इसके बाद उनकी माता ने उनसे कुछ नही कहा। उन्हें गोद में लेकर बैठ रही। नवकिशोर ने माता के पाव पकड कर, शपथपूर्वक इस मामले की सारी हकीकत उनके सामने बयान की। धीरे-धीरे उनकी माता ने अच्छी तरह समझ लिया कि नवकिशोर क़तई निर्दोप है, मेह बरसते वक्त जब वह रामा की मा के मकान के बरांडे मे खडा हो रहा था, उस वक्त रामा की मा मकान में थी भी नही।

परन्तु नवकिशोर के निर्दोष होने पर भी गाव के लोगों ने उन्हें अपने समाज से निकाल बाहर किया। नवकिशोर की मां सोचने लगी कि अब क्या उपाय किया जाय, कैसे इस आफ़त से छुटकारा हो। बेचारी वृद्धा ब्राह्मणी गांव मे हर किसी के घर-घर जाकर पाव पकड-पकड कर, नवकिशोर के निर्दोष होने की बात कहने लगी। परन्तु एक-एक करके गांव के सब लोगों ने यही कहा—"नवकिशोर निर्दोप है, यह हम खुद बहुत अच्छी तरह जानते हैं; इसके सिवाय एक बात यह भी है कि इससे ज्यादा बुरे-बुरे कर्म करते हुए भी कितने ही आदमी हमारे समाज मे चल रहे है। परन्तु बात असली यह है कि समाज के दस आदमियों ने जब उसे समाजच्युत कर दिया तो मैं अकेला क्या करूं? समाज के अनुरोध से मुझे भी नवकिशोर को त्यागने के लिए बाध्य होना पडा है।" समाज के कौन से दस आदमियों ने नवकिशोर को समाजच्युत किया, नवकिशोर की वृद्धा माता इसका पता न लगा सकी। पता लगता ही कैसे, गांव के छोटे बड़े सभी यही कहते थे कि "अन्यान्य दस आदमियो ने नवकिशोर को समाजच्युत किया तो हमें भी उनसे सम्बन्ध तोडने के लिए बाध्य होना पडा, अन्यथा हम उन्हें कदापि नहीं छोड़ सकते थे।"

नवकिशोर की मां ने देखा कि अब समाज में चलने की कोई आशा नही। दिनोंदिन उसकी मानसिक व्यथा बढ़ने लगी। जब वह गंगाघाट पर स्नान करने जाती थी, तब उसे देखते ही गाव की अन्यान्य स्त्रियां अपना जल का घडा उठा कर अलग को सरक जाती थी। जो स्त्रिया कुछ विशेष कलहप्रिय और कटुवादिनी थी, वे नव किशोर की मां को देखते ही कह उठती थी—"अरे, देखो, कहीं मुझे छू न लेना। अभी स्नान करके निकली हूँ, जल का घडा लेकर घर जाना है।" इन बातो को सुन कर ब्राह्मणी की छाती सुलगने लगती थी।

एक दिन नवकिशोर की मा गंगा-घाट पर स्नान करने जा रही थी, और उधर से नवकिशोर के पडोसी जगन्नाथ विश्वास के घर की एक दासी गंगा-घाट से जल का घडा लिये घर को आ रही थी। नवकिशोर की मां ने जब उसे आते देखा तो उसके सामने से बच कर निकलने लगी। परन्तु हवा से उड कर कही नवकिशोर की मा की धोती का खूंट उस दासी के शरीर पर छू गया; बस, इतने ही में उसने झट जल का घडा ज़मीन पर पटक दिया और कहा—"यह जातिभ्रष्टा तो सारे गांव की जाति लेना चाहती है। मैं अपने मालिक के यहां पूजा के लिए जल लिये जाती थी, इस दुष्टा ने मुझे जान बूझ कर छू लिया।"

दासी यह चिल्लाते-चिल्लाते वहां से लौट कर गंगाघाट पर आई। घाट पर और भी दस-पन्द्रह स्त्रियां थीं। सभी एक होकर नवकिशोर की मां को बुरा-भला कहने लगीं। एक ने कहा—"घडे के पैसे इससे वसूल करो; दुष्टा से दूसरे घाट पर नहीं जाया जाता। रोज इसी घाट पर आकर हम सब को जलाया करती है।"

नवकिशोर की मा बेचारी मुँह दाब कर रह गई। उसके चेहरे का भाव देख कर ऐसा प्रतीत होता था मानो वह नीचे को सिर झुकाये

पृथ्वी माता से कह रही है—"जगन्माता पृथ्वी ! तुम फट जाओ, मैं तुम्हारे गर्भ में प्रवेश करूँ, इस संसार में अब नहीं रहा जाता !"

घाट पर उस वक्त जितनी स्त्रियां थी, उन सब में मृत छिदाम विश्वास की स्त्री कुछ विशेष अभिमानिनी और बहुभाषिणी थीं। बड़े आदमी के घर की विधवा ठहरी, हर रोज़ पाल्की पर सवार हो गंगा नहाने आया करती थीं। इन्होने हाथ नचाते-नचाते नवकिशोर की मां के पास आकर कहा—"सुन तो, तुझ से लोगों को मुँह कैसे दिखाया जाता है? गले में फांसी लगा कर मर क्यों नहीं जाती? क्या अब तू गांव के सब लोगों को जातिभ्रष्ट करके नरक में ठेलना चाहती है? हम लोगों की कोई तनिक भी निन्दा करे तो लज्जा के मारे मर जाती हैं। यह दुष्टा जाने कौन सा मुँह लेकर घाट पर स्नान करने आती है, कुछ समझ में नहीं आता।"

नवकिशोर की मां मन ही मन पहिले ही से मृत्यु की कामना कर रही थी। अतएव "गले में फासी" ये शब्द सुन कर, भगवान जाने, उसके हृदय में कौन से भाव का उदय हुआ। फिर उसने गंगा स्नान नहीं किया। तुरन्त ही वहां से घर चली आई; चारपाई की अदवाइन खोल कर रस्सी निकाली, और उसी वक्त फांसी लगा कर प्राण त्याग दिये। छिदाम विश्वास की विधवा ने इस निरपराधिनी वृद्धा ब्राह्मणी को मानो मृत्यु का मार्ग बता दिया। परन्तु छिदाम विश्वास की विधवा ने जिस वक्त यह कहा था कि—"हम लोगो की कोई तनिक भी निन्दा करे तो लाज के मारे मर जाती हैं, इस दुष्टा से जानें कैसे मुँह दिखाया जाता है।"—उस वक्त वहां पर उपस्थित सभी स्त्रियां मुँह दाब कर हँसने लगी थीं। श्यामाचरन सरकार की विधवा बहिन ने हँसते-हँसते गुरुप्रसाद की मां के कान में कुछ कहा; परन्तु क्या कहा, सो कुछ सुनाई न दिया। थोडी देर में छिदाम की स्त्री के चले जाने पर

उसने खुले शब्दों में यह कहा—"और इन्होंने कैसा अच्छा दाम पाया था!"

दो घंटे के बाद जब नवकिशोर घर आये तो देखा कि मा का मृत शरीर रस्सी में लटक रहा है। दोपहर का वक्त था, अभी त नवकिशोर ने कुछ खाया-पिया नहीं था। आजीविका का कोई प्रबन्ध होने के कारण क़ासिमबाज़ार की किसी दुकान में मुनीमी का काम मि जाने की तलाश में गये थे। परन्तु घर लौट कर देखा कि माता ने फां लगा कर प्राण त्याग दिये हैं। गाव का एक भी आदमी नवकिशोर माता के दाह-संस्कार में शामिल नहीं हुआ। सभी कहने लगे कि जा भ्रष्टा के दाह-संस्कार में सम्मिलित होने पर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा नवकिशोर के पास एक पैसा भी नहीं था, जिस से माता का दाह क के लिए ईंधन खरीदते। पिता के ज़माने की एक शाल उनके रक्खी थी। लकड़ी वाले की दूकान पर उसी शाल को गिरों रख वहां से लकड़ी लीं, और कई बार में उन लकड़ियों को अपने सिर लाद लाये। दोपहर के बाद कोई पांच घंटे ईंधन चीरने और चि बनाने में बीत गये। गांव के किसी आदमी ने रत्ती भर भी सहाय नहीं दी, बुला कर बात भी नहीं पूछी। नवकिशोर के बहनोई शिवदा वन्द्योपाध्याय तक अपनी सास की अन्त्येष्टि-क्रिया में शामिल नहीं हुये।

शिवदास वन्द्योपाध्याय की स्त्री ने अपनी माता के मृत शरीर देखने जाने के लिए अपने स्वामी से आज्ञा मांगी। परन्तु वन्द्योपाध्या महाशय हाथ में लाठी ले स्त्री को मारने दौड़े और कहने लगे—" घर में दो लड़कियां—एक आठ बरस की, एक सात बरस की—हैं, तू उ जातिभ्रष्टा के यहां जाना चाहती है, गांव के दस आदमी मुझे भी बि दरी से बाहर कर देंगे। लड़कियां जन्म भर कुआंरी रह जायँगी, मुझे नहीं सूझता?"

ब्राह्मणी ने स्वामी की फटकार सुनकर ज़बान तक नहीं हिलाई। वह चुपके-चुपके रोने लगी।

चिता तैयार करके संध्या के वक्त नवकिशोर ने गंगा के किनारे अकेले ही अपनी माता का दाह-संस्कार किया। उसके बाद वे खुद भी आत्म-हत्या कर लेने का विचार करने लगे, परन्तु उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन किया था,—आत्म-हत्या को घोर पाप समझते थे। अतएव बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर निश्चय किया कि निष्काम योग का साधन करेंगे,—ऐसा उपाय करेंगे, जिससे एकमात्र ईश्वर के प्रति लक्ष्य स्थापन करके वैराग्य-व्रत का अवलम्बन कर सकें। इसी निश्चय से नवकिशोर ने मूँड़ मुंडा कर बाबा प्रेमदास के वैराग्याश्रम में प्रवेश किया। बाबाजी महाराज ने वैराग्य धर्म में दीक्षित करते वक्त नवकिशोर का नाम रक्खा कृष्णानन्द। परन्तु आज इस घटना को दो बरसें बीत चुकी हैं, अभी तक नवकिशोर से किसी भी व्रत का साधन नहीं बन पड़ा है।

कृष्णानन्द नामधारी नवकिशोर आजकल हर रोज भगवद्गीता का पाठ करते हैं, श्रीमद्भागवत की भक्ति-कथाओ का श्रवण करते हैं, परन्तु उनके हृदय की पवित्रता नष्ट हो चुकी है, हजार चेष्टाएं करके भी वे अपने हृदय से हिंसा-द्वेष भाव को दूर करने में समर्थ नहीं होते हैं। ग्राम-निवासियों ने उनके प्रति जैसा अनुचित आचरण और आत्मीय-स्वजनो ने उनके प्रति जैसा निर्दय व्यवहार किया है, उससे उनके हृदय का यह द्वेप-भाव सहज ही दूर होनेवाला नहीं। आज दो बरसों से वे अपने हृदयस्थित हिंसा-द्वेष भाव को दूर करने के लिए बहुतेरी चेष्टायें करते रहे है, परन्तु जिस वक्त उन्हें अपनी माता की शोचनीय मृत्यु-घटना याद आ जाती है, उस वक्त समस्त ग्राम-निवासियों के प्रति उनके हृदय मे स्थित विद्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठती है, और

श्रीमद्भगवद्गीता के निष्काम योग तथा श्रीमद्भागवत के भक्तियोग की कथायें उस द्वेषाग्नि के धुएं के रूप में वायु के संग विलीन हो जाती है। वास्तव मे संसार के अत्याचारी मनुष्य ही अन्यान्य मनुष्यों को धर्मपथ में प्रवृत्त होने से रोकते है।

पाठक! आज कृष्णानन्द नामधारी नवकिशोर वैर-प्रतिशोध की इच्छा से प्रेरित हो अपने पूर्व गुरु शिरोमणि महाराज से बदला लेने पर उतारू हुए हैं। शिरोमणि जी ने ही नवकिशोर को जातिच्युत किया और उनकी इस करतूत के कारण ही नवकिशोर की मां को फासी लगा कर प्राण त्याग करना पड़ा। अतएव आज नवकिशोर उसका बदला चुकाने के लिए गंगा के किनारे खड़े हैं।

देखते ही देखते एक छोटी सी नाव गंगा के इस किनारे आ लगी। कई एक नये अगौछे और श्राद्ध की अन्यान्य सामग्री हाथ में लिये शिरोमणि महाशय ने जैसे ही नाव से उतर कर किनारे पर क़दम रक्खा कि बाबा कृष्णानन्द ने शिरोमणि महाराज का पहुँचा पकड़ कर कहा—"गुरुदेव, पहिचान पाया? मैं हूँ आपका अभागा शिष्य नव किशोर! आप मेरे गुरु थे। आज आपको गुरुदक्षिणा देने के लिए आपके इन्तज़ार में यहां खड़ा था। कहिये, सभाराम की कन्या को श्राद्धमन्त्र पढ़ाने गये थे?"

शिरोमणि के प्राण सूख गये; बारम्बार कहने लगे—"बेटा, मुझे क्षमा करो; मैं तुम्हारा गुरु था।"

वैर-प्रतिशोध की इच्छा मे प्रेरित बाबा कृष्णानन्द गुस्से में आकर कह उठे—"अरे दुष्ट तू मेरा गुरु था? तू मेरा साला था! साले यह देख, मेरी निरपराधिनी जननी की चिता है। आज तुझे घसीट कर पहले तेरे परम मित्र हरिदास तर्कपंचानन के पास ले चलूंगा।" य

कहते हुए बाबा कृष्णानन्द शिरोमणि के गले में अंगौछा डाल कर उन्हें घसीटते-घसीटते हरिदास तर्कपंचानन के यहां ले गये।

हरिदास तर्कपंचानन आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुन कर क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठे। मन ही मन कहने लगे—"बेटा ने मेरे मुंह का कौर निकाल लिया! इस श्राद्ध के लिए रामा पहिले मेरे ही पास आई थी। सभाराम के पास बहुतेरी स्वर्ण मोहरे थी, न जाने आज इस बूढ़े को कितनी मोहरे मिली होगी।" मन मे तो यह सोचा, परन्तु प्रकट रूप मे कहने लगे—"राधा माधव, राधा माधव! इस बूढे को धर्म-अधर्म का तनिक भी ख़याल न हुआ! इस श्राद्ध के लिए रामा जिस वक्त मेरे पास आई थी तो मैं उसे खडाऊँ लेकर मारने उठा था। भाग गई, नही तो खूब मारता। हरे राम, हरे राम! कलिकाल तेरी बलिहारी!" बाद मे शिरोमणि को सम्बोधन करके कहने लगे—"तुम इतने बूढ़े हुए, लोग तुम्हारा इतना आदर करते थे, सो तुम्हारे ये कर्म! तुमने तन्तुकार का दान लिया?"

दो घंटे के भीतर सारे गांव में यह चर्चा फैल गई कि शिरोमणि महाराज ने तन्तुकार का श्राद्ध करवाया। कितने ही कहने लगे—"सिर्फ श्राद्ध ही क्यो करवाया, तन्तुकार के घर मे भोजन तक बना कर खाया, उसके यहां से भोजन की दक्षिणा तक ग्रहण की!" अन्ततः गांव के सब ब्राह्मणों ने मिलकर शिरोमणि महाराज को विरादरी से बाहर कर दिया। विद्यार्थीगण शिरोमणि की पाठशाला से भाग कर अपने-अपने घर चले गये। शिरोमणि महाराज दो महीने तक घर-घर घूमे, पर समाज मे सम्मिलित न हो सके। नवकिशोर के घरबार था नहीं, इसलिये जातिच्युत होने के बाद वे मूँड मुडा कर वैरागियों के अखाड़े मे चले गये थे। परन्तु शिरोमणि महाशय के चार कन्यायें थी, स्त्री भी थी। दूसरे यह भी शिरोमणि को अच्छी तरह ज्ञात था कि वैरागियों का

अखाड़ा बहुत ही घृणित स्थान है, वहां सभी तरह के कुकर्म होते हैं। अतएव सोचने लगे कि स्त्री और कन्याओं को साथ ले वैरागियों के अखाड़े में दाखिल होना ठीक नहीं। परन्तु किसी न किसी समाज का आश्रय लिये बिना भी निर्वाह नही हो सकता। यदि आज स्त्री की मृत्यु हो जाय तो गांव का एक आदमी भी उसका दाह-संस्कार कराने नहीं आवेगा। यह सोचते हुए बेचारा वृद्ध ब्राह्मण बड़ी विपत्ति में फँसा। अन्त में मूँड़ मुड़ाने ही के मार्ग का अवलम्बन करना पड़ा। परिवार सहित शिरोमणि महाराज वैष्णवधर्म में दीक्षित हुए। गृहस्थ वैरागी बन कर अपने घर में ही रहने लगे। जात-वैष्णवों के साथ सामाजिक सम्बन्ध स्थापित किया। ऐसी ही घटनाओं से बंगाल में जात-वैष्णवों की संख्या धीरे-धीरे बहुत बढ़ गई थी।

जात-वैष्णव होने के बाद शिरोमणि महाराज को गुरुगीरी के व्यवसाय और श्राद्ध इत्यादि कर्मकाण्ड कराने से जो आमदनी होती थी, वह सब जाती रही। उनके पास पितामह के ज़माने की थोड़ी सी ब्रह्मोत्तर की ज़मीन थी, उसी की आय से बड़े कष्टपूर्वक दिन बिताने लगे; परन्तु गांव के लोगों ने यह ज़मीन भी उनके हाथ से निकलवा देने का उद्योग आरम्भ किया। विशेषतः शिरोमणि के पुराने शत्रु हरिदास तर्कपंचानन ने गांव के सब लोगों को बुला-बुला कर कहा कि पतित ब्राह्मण को ब्रह्मोत्तर की ज़मीन भोगने का कोई अधिकार नहीं है, अतएव इसके लिए ज़मींदारी अदालत में दरख्वास्त देनी चाहिये। गांव के लोगों ने यह दरख्वास्त दी थी या नहीं, यह तो हमें नहीं मालूम; पर इसमें सन्देह नहीं कि शिरोमणि महाशय ने अपनी अन्तिम अवस्था के दिन बड़ी तकलीफ में गुज़ारे थे। आगे चल कर शिरोमणि महाशय और बाबा कृष्णानन्द का क्या हाल हुआ, यह बाद में यथा-स्थान उल्लिखित होगा।
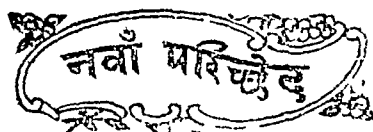
कलकत्ते की यात्रा

इस संसार में मनुष्य किसी न किसी विषय का अवलम्बन लिये बिना नहीं रह सकता। जो मनुष्य नितान्त आलसी हैं, जिनका हृदय सर्वथा निःसार है, जिनके जीवन का कोई निर्दिष्ट लक्ष्य नहीं, जो किसी प्रकार के सत्कार्य में लिप्त होने की इच्छा नहीं रखते, उनके जीवन का भी कोई न कोई अवलम्ब अवश्य है। जिस प्रकार की स्थिति मे रहने पर, जिस प्रकार के कार्य में दिन गुजरने पर, उन्हें कोई कष्ट नही प्रतीत होता, वरन् कुछ सुख जान पडता है, वही स्थिति और वही कार्य उनके जीवन का एकमात्र अवलम्ब हैं। परन्तु इस प्रकार के आलसी और निकम्मे मनुष्य प्रायः हृदयहीन देखे जाते हैं। इनका हृदय रसहीन और इनका अन्तरात्मा जडवत् हो जाता है। अतएव इनके जीवन में किसी विषय के लिए भी सजीव उत्साह दिखाई नहीं देता। हृदय ही उत्साह का उद्गम है। हृदय-गह्वर से ही उत्साह और इच्छाओं के स्रोत की धारा प्रवाहित होती है। अतएव जिनका हृदय-रस सूख गया है, उनकी जीवन-सरिता में स्रोत नज़र नहीं आता, और वह स्रोत-शून्य जीवन-सरिता जब मलिनता से परिपूर्ण हो जाती है, तब उससे प्रति क्षण भीषण विषाक्त वायु बाहर निकला करती है।

सावित्री अशिक्षिता है, पर वह हृदयहीना नहीं है। उसका हृदय-गह्वर स्नेहरस से परिपूर्ण है। यह स्नेह-रस क्रमशः वृद्धि को प्राप्त होकर ऊपर उठ रहा है, पर उसे प्रवाहित होने का अवसर नहीं मिलता; क्योंकि सामने पर्वत के समान विघ्न-बाधायें अडी हैं। परन्तु

प्राकृतिक नियम का उल्लंघन कदापि नहीं होता, वह किसी के टाले नहीं टलता। जब इस हृदय-गह्वर का स्नेहरस धीरे-धीरे और भी अधिक बढ़ जायगा, तब हृदयस्रोत अपने सामने स्थित पर्वत-सदृश विघ्न-बाधाओं को अतिक्रम करके वेग से प्रवाहित होने लगेगा, बाधाओं का पहाड़ उस स्रोत की धारा के साथ ही साथ बहा चला जायगा।

अब से पहिले सावित्री को दिन-रात सिर्फ यही चिन्ता थी कि किस प्रकार पिता का प्रतिपालन करूं, किस प्रकार उन्हें सुखी रखूँ। यही चिन्ता उस वक्त सावित्री के जीवन का एकमात्र अवलम्ब थी। परन्तु जब पिता का प्राणान्त हो गया, वह चिन्ता दूर हो गई! बाद में उसे यह चिन्ता लगी कि किस प्रकार पिता का श्राद्ध करूँ, श्राद्ध किये बिना उनके नरक-मुक्त होने की कोई सम्भावना नहीं। यह चिन्ता उसकी द्वितीय चिन्ता थी, और उस वक्त यही उसके जीवन का एकमात्र अवलम्ब थी। श्राद्ध हो गया, वह चिन्ता भी चली गई। अब,—क्या करूंगी?—यह प्रश्न उसके मन में उत्पन्न हुआ। यदि सावित्री हृदय-हीना होती तो उसका मन इस प्रश्न का उत्तर देता—"अब क्या करोगी, तुम स्त्री हो, कर ही क्या सकती हो? जब तक जिन्दगी है, आराट्टन साहब के यहा रहो। आराट्टन साहब की दयालु स्त्री तुम्हारे भोजन-वस्त्र का प्रबन्ध कर ही रही है, भविष्य में भी करती रहेंगी।" परन्तु सावित्री हृदय-हीना नहीं थी, अतएव उसके मन ने उसे यह उत्तर नहीं दिया। अठारहवीं शताब्दी की यह नीच-कुलोद्भवा अशिक्षिता रमणी हृदयावेग से प्रेरित हो जैसे दुःसाध्य कार्य में प्रवृत्त हुई, जैसे कष्ट और त्याग स्वीकार को उसने सहन किया, जैसे असाधारण साहस और वीरत्व को प्रकट करके उसने अपने हार्दिक उच्च भावों का परिचय दिया, आज इस बीसवीं शताब्दी के शिक्षाभिमानी युवकों में से कितनों के जीवन में वैसे उच्च भावों का परिचय मिलता है?

तब क्या यह समझना चाहिये कि शिक्षित अवस्था की अपेक्षा अशिक्षित अवस्था ही अच्छी? परन्तु सो बात नहीं। बात यह है कि जो शिक्षा हृदय को स्पर्श नहीं करती, जिस शिक्षा के द्वारा हृदय समुन्नत नहीं होता, वरन् जिसके द्वारा मानव-हृदय में क्रमशः स्वार्थपरता का बीज अंकुरित होता रहता है, उस शिक्षा से अशिक्षा कहीं अच्छी। जिसके हृदय नहीं है, जो हृदयहीन है, उसके जीवनोद्यान मे शिक्षा के द्वारा कोई सुफल नहीं फलता।

इस अशिक्षित सहृदया रमणी, सावित्री का हृदयावेग ही एकमात्र प्रेरक और नेता होकर इसे कर्तव्य के मार्ग मे परिचालित कर रहा है। पिता की चिन्ता दूर होते ही वह अपने स्वामी और बड़े भाई की विपत्ति के विषय का चिन्तन करने लगी। रात दिन इसी का उपाय सोचने लगी कि किस प्रकार अपने स्वामी और बड़े भाई को देख सकूं। यह सुन चुकी थी कि मेरे स्वामी और बडे भाई कलकत्ते की जेल मे भेज दिये गये है। अतएव मन ही मन विचार करने लगी कि यदि किसी तरह कलकत्ते पहुँच पाऊं तो अवश्य ही उनसे मिल सकूंगी। यह विचार कर अब वह एकान्त मे इन बातों की चिन्ता करने लगी कि 'कलकत्ता' न जाने यहां से कितनी दूर है, वहां जाऊंगी कैसे, किसके साथ जाऊँगी? दिन पर दिन जाने लगे, प्राय पांच छः महीने बीत गये। हेमन्त ऋतु व्यतीत हुई, शिशिर का आगमन हुआ। सावित्री अहर्निशि परमेश्वर से प्रार्थना करने लगी—"हे परमेश्वर! मुझे किसी तरह कलकत्ते पहुँचा दीजिए।" इस चिन्ता मे सावित्री का शरीर बिलकुल जीर्ण होगया, तनिक भी शक्ति न रही। परन्तु हृदय में इतना साहस है कि वह सोचती है—पैदल चल कर अनायास ही कलकत्ते पहुँच जाऊँगी। उसे कलकत्ते जाने मे यदि कोई बाधा दिखाई देती थी तो एकमात्र भय। सोचती थी, मार्ग में कहीं मुझे असहाय देख कर कोई दुष्ट

व्यक्ति मेरा धर्म नष्ट करने की चेष्टा न करे। यहां आराट्रन साहब की मेम ने आश्रय दे रक्खा है, अतएव जब तक यहां हूँ तब तक कोई मेरे धर्म को नष्ट करने का साहस नहीं कर सकता।

बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर उसने स्थिर किया कि असहाय स्त्रियों के धर्म की रक्षा भगवान स्वयम् करते हैं। भगवान् के चरणों में भक्ति रखने पर वे अवश्य ही मेरे धर्म की रक्षा करेंगे। सावित्री ने रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में अनेकानेक उपाख्यानों का पाठ किया है। उसने सोचा, कितनी ही साध्वी स्त्रियां कामासक्त दुराचारियों के पंजे में फँस कर भी भगवान् के अनुग्रह से अपने-अपने सतीत्व-धर्म की रक्षा करने में समर्थ हुई हैं। भगवान् ने स्वयम् उनके धर्म की रक्षा की है। उसने निश्चय समझ लिया कि असहाय स्त्रियों के सतीत्व-धर्म की रक्षा का भार ईश्वर के हाथ है। जब ऐसा है तो फिर कलकत्ता जाने में डर काहे का? निदान सावित्री ने कलकत्ता जाने का दृढ़ संकल्प किया और तुरन्त ही आराट्रन साहब की स्त्री और बदरुन्निसा के पास आकर अपना अभिप्राय प्रकट किया।

एस्थार बीबी ने कहा—"बेटी, कलकत्ता यहां से छः-सात मंज़िल है; तुम्हारी अठारह-उन्नीस बरस की अवस्था ठहरी, अकेली कैसे जाओगी? रास्ते में बड़े चोर-डकैत लगते हैं।"

सावित्री—मेरे पास रुपया पैसा कुछ होगा नहीं, फिर चोर-डकैत मेरा क्या करेंगे?

बदरुन्निसा—चोर डकैत यदि तुम्हारा धर्म नष्ट करें?

सावित्री—असहाय जनों की धर्म-रक्षा का भार परमेश्वर के हाथ है, हमारा शास्त्र यही कहता है। यदि वैरागिनी के वेश में जाऊं तो अच्छा होगा न?

बदरुन्निसा—नहीं, नहीं, हर्गिज़ नहीं। चोर-डकैत तो प्राय. किसी का धर्म नष्ट करते भी नही है। वे तो सिर्फ धन के भूखे होते है। धन ही छीनते है। परन्तु हिन्दू वैरागी तो बडे दुष्ट होते हैं।

सावित्री—नहीं, नहीं, आप ऐसा न कहें। धर्म के लिए जो सब कुछ छोड कर वैरागी हो जाते हैं, वे क्या फिर किसी प्रकार का कुकर्म भी कर सकते है?

बदरुन्निसा—सम्भव है, कोई कोई धर्म के लिए भी वैरागी होते हों; पर तुम्हारे हिन्दू लोग तो प्रायः जहा अपने जातिच्युत होने की सूरत देखते है, वहां झट वैरागी हो जाते है। आज लगभग दो बरसें हुईं; जगन्नाथ विश्वास की भौजाई, छिदाम विश्वास की विधवा स्त्री, वैष्णवी हो गई है। मैं पूछती हूँ, क्या वह धर्म के लिए वैरागिनी हुई है? जगन्नाथ विश्वास के जातिच्युत होने का उपक्रम हुआ था, इसलिए उन्होने अपनी भौजाई को चट वैरागियो के अखाडे में भेज दिया।

एस्थार—मा! उन वैरागी वैष्णवों की बातें जाने दो। सावित्री किस प्रकार कलकत्ते पहुँच सकती है मैं इसी का उपाय सोच रही हूँ। देखो, नमकवाले मुक़दमे के लिए साहब कलकत्ते जानेवाले हैं। उस दिन उनका जो पत्र आया है, उसमें लिखा है कि चैत्र मास में वे दीनाजपुर से यहां आनेवाले हैं, और बाद को बैसाख के आरम्भ ही में वे कलकत्ते जाना चाहते हैं। साहब के साथ हमारे कई एक हिन्दू कर्मचारी भी जायँगे। न होगा, मैं किसी एक हिन्दू वृद्धा स्त्री को सावित्री के साथ कर दूंगी। कहो तो, साहब के साथ सावित्री का कलकत्ते जाना अच्छा होगा न?

सावित्री—श्रीमती, ऐसा हो तब तो बहुत ही अच्छा।

बदरुन्निसां—हां, यह बहुत ठीक कहा। (एस्थार बीबी के कन्धे पर हाथ रख कर) आप तो सोच-विचार कर सभी बातों का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती है।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि आराट्टन साहब का दीनाजपुरवाला नमक-गोदाम वेरेलस्ट तथा साइक साहब के गुमाश्तों ने लूट लिया था। आराट्टन साहब इसी कारण, कुछ दिन हुए, दीनाजपुर गये है। कई दिन हुए, दीनाजपुर से उन्होने एक पत्र भेजा है, उसमें लिखा है कि चैत्र मास मे मैं मुर्शिदाबाद आकर वैसाख में वहा से कलकत्ते जाऊँगा, और वहां के मेयर कोर्ट मे मुकदमा दायर करूँगा। अभी तक कलकत्ते मे सुप्रीम कोर्ट की स्थापना नहीं हुई थी। मेयर कोर्ट के जज थे विलियम बोल्ट्स। अब से पहिले तीन बरस तक क़ासिमबाज़ार की फैक्टरी में रह कर इन्होंने देशी लोगों का रक्त चूस-चूस कर केवल अपने निज के व्यापार से नौ लाख रुपया कमाया था।*

ईसवी सन् १७६७ के मार्च महीने भर सावित्री आराट्टन साहब के लौटने की राह देखती रही। परन्तु इसी महीने के अन्त मे आराट्टन साहब का एक और पत्र आया। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि हम दीनाजपुर ही से मालदह, राजमहल होते हुए कलकत्ते चले जावेंगे, और मुकद्दमा फैसल न होने तक मुर्शिदाबाद नहीं लौटेंगे। इस मुक़दमे के लिए सम्भवतः एक साल से अधिक कलकत्ते में रहना पड़ेगा।

इस ख़बर को सुन कर सावित्री एकदम निराश हो गई। परन्तु उसने अपना निश्चय नहीं बदला, एकाकिनी कलकत्ते जाना स्थिर किया। आराट्टन साहब की स्त्री ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, परन्तु सावित्री ने अब न डरा गया। बदरुन्निसां ने कहा कि मैं आराट्टन

*Vide Note (14) in the appendix.

साहब को लिखूँगी कि वे ऐसा उपाय करें जिससे तुम्हारे पति और बड़े भाई जेल से मुक्त हो सकें। तुम स्त्री हो, वहां जाकर कुछ नहीं कर सकोगी। दूसरे, कलकत्ते का रास्ता बहुत खराब है, स्थान-स्थान पर विपत्ति की आशंका रहती है। परन्तु सावित्री ने यह कुछ नहीं सुना। अन्ततः एस्थार बीबी ने पचास रुपये राह खर्च के लिए सावित्री के हाथ मे दिये।

सावित्री ने कहा— मां! इतना रुपया साथ लेकर चलने पर सम्भव है, रास्ते में कोई विपत्ति आ पड़े।

उसने सिर्फ दस रुपये अपने पास रख कर बाकी रुपये एस्थार बीबी को लौटा दिये। यह सोच कर कि कपडों के अभाव में सावित्री को कोई कष्ट न हो, एस्थार बीबी ने अपने पास से उसे कई एक कपड़े दिये।

पति और भाई के उद्धारार्थ उन्नीसवर्षीया युवती सावित्री एकाकिनी कलकत्ते को रवाना हुई। बन्धु नहीं, बान्धव नहीं, धन नहीं, सम्पत्ति नहीं, सहाय नहीं, सामान नहीं, है तो सिर्फ एकमात्र भगवान् के श्रीचरणों का भरोसा। परन्तु विपत्ति के समय धन, सम्पत्ति, बन्धु-बान्धव कोई भी काम नहीं आते। उस वक्त एकमात्र विपद्भजन भगवान् के अतिरिक्त जीव की दूसरी गति नहीं। अतएव पाठक! सावित्री को हम एकदम निराश्रय, एकदम असहाय कदापि नहीं कह सकते। निर्धन के धन, अनाथ के नाथ, अशरण के शरण भगवान् उसके सदा सहाय हैं, संसार के स्वामी, जगन्मण्डल के राजाधिराज, भयभंजन विश्वम्भर जब उसके साथी हैं, तब उसे भय किस का?

बदरुन्निसां—हां, यह बहुत ठीक कहा। (एस्थार बीबी के कन्धे पर हाथ रख कर) आप तो सोच-विचार कर सभी बातों का कोई न कोई उपाय निकाल ही लेती हैं।

यह पहिले ही लिखा जा चुका है कि आराट्रन साहब का दीनाजपुरवाला नमक-गोदाम वेरेलस्ट तथा साइक्स साहब के गुमाश्तों ने लूट लिया था। आराट्रन साहब इसी कारण, कुछ दिन हुए, दीनाजपुर गये हैं। कई दिन हुए, दीनाजपुर से उन्होने एक पत्र भेजा है, उसमें लिखा है कि चैत्र मास में मैं मुर्शिदाबाद आकर वैसाख में वहा से कलकत्ते जाऊँगा, और वहा के मेयर कोर्ट में मुक़दमा दायर करूँगा। अभी तक कलकत्ते मे सुप्रीम कोर्ट की स्थापना नहीं हुई थी। मेयर कोर्ट के जज थे विलियम बोल्ट्स। अब से पहिले तीन बरस तक क़ासिमबाज़ार की फैक्टरी में रह कर इन्होंने देशी लोगों का रक्त चूस-चूस कर केवल अपने निज के व्यापार से नौ लाख रुपया कमाया था।*

ईसवी सन् १७६७ के मार्च महीने भर सावित्री आराट्रन साहब के लौटने की राह देखती रही। परन्तु इसी महीने के अन्त में आराट्रन साहब का एक और पत्र आया। इस पत्र में उन्होंने लिखा कि हम दीनाजपुर ही से मालदह, राजमहल होते हुए कलकत्ते चले जावेंगे, और मुक़दमा फ़ैसल न होने तक मुर्शिदाबाद नहीं लौटेंगे। इस मुक़दमे के लिए सम्भवत एक साल से अधिक कलकत्ते में रहना पड़ेगा।

इस ख़बर को सुन कर सावित्री एकदम निराश हो गई। परन्तु उसने अपना निश्चय नहीं बदला, एकाकिनी कलकत्ते जाना स्थिर किया। आराट्रन साहब की स्त्री ने बहुतेरा समझाया-बुझाया, परन्तु सावित्री से अब न टला गया। बदरुन्निसा ने कहा कि मैं आराट्रन

*Vide Note (14) in the appendix.

साहब को लिखूँगी कि वे ऐसा उपाय करें जिससे तुम्हारे पति और बड़े भाई जेल से मुक्त हो सकें। तुम स्त्री हो, वहा जाकर कुछ नहीं कर सकोगी। दूसरे, कलकत्ते का रास्ता बहुत खराब है, स्थान-स्थान पर विपत्ति की आशंका रहती है। परन्तु सावित्री ने यह कुछ नहीं सुना। अन्तत: एस्थार बीबी ने पचास रुपये राह खर्च के लिए सावित्री के हाथ मे दिये।

सावित्री ने कहा— मां! इतना रुपया साथ लेकर चलने पर सम्भव है, रास्ते में कोई विपत्ति आ पडे।

उसने सिर्फ़ दस रुपये अपने पास रख कर बाकी रुपये एस्थार बीबी को लौटा दिये। यह सोच कर कि कपडों के अभाव में सावित्री को कोई कष्ट न हो, एस्थार बीबी ने अपने पास से उसे कई एक कपड़े दिये।

पति और भाई के उद्धारार्थ उन्नीसवर्षीया युवती सावित्री एकाकिनी कलकत्ते को रवाना हुई। बन्धु नहीं, बान्धव नहीं, धन नहीं, सम्पत्ति नहीं, सहाय नहीं, सामान नहीं, है तो सिर्फ एकमात्र भगवान् के श्रीचरणों का भरोसा। परन्तु विपत्ति के समय धन, सम्पत्ति, वन्धु-बान्धव कोई भी काम नही आते। उस वक्त एकमात्र विपद्भंजन भगवान् के अतिरिक्त जीव की दूसरी गति नही। अतएव पाठक! सावित्री को हम एकदम निराश्रय, एकदम असहाय कदापि नहीं कह सकते। निर्धन के धन, अनाथ के नाथ, अशरण के शरण भगवान् उसके सदा सहाय हैं; संसार के स्वामी, जगन्मण्डल के राजाधिराज, भयभंजन विश्वम्भर जब उसके साथी हैं, तब उसे भय किस का?

गुरुगोविंद भक्त

चैत्र का महीना है। दुपहर का वक्त है। बड़ी तेज़ धूप है। पथिकगण सम्मुख-स्थित एक छोटे से बाज़ार में जा जा कर अपने-अपने भोजन का प्रबन्ध कर रहे हैं। बाज़ार में सिर्फ तीन दूकान हैं, पथिकों के ठहरने के लिए चार-पांच छप्पर पटे हुए हैं। जो पथिक पहले आ गये, उन्होंने किसी न किसी छप्पर के नीचे चूल्हा खोद कर भात राँधना शुरू कर दिया। जो ज़रा देर में आये, उन्हें रसोई बनाने के लिए छप्परों में जगह नहीं मिली, अतएव बाज़ार के बीचोबीच में स्थित वट-वृक्ष के नीचे वे अपना-अपना चूल्हा तैयार कर रहे हैं। बाज़ार में तीन चार वट-वृक्ष हैं। पथिकों का एक-एक दल एक-एक वट-वृक्ष के नीचे अपनी-अपनी रसोई बना रहा है, सब लोग परस्पर विविध वार्तालाप कर रहे हैं।

सावित्री से चला नहीं जाता। समस्त पथिकों से पीछे पड़ी है। वह बहुत थक गई है, और इसलिए बहुत धीरे-धीरे इस बाज़ार की तरफ़ आ रही है। उसका गला सूख गया है। बाज़ार के भीतर घुस कर वह चारों तरफ़ ताकने लगी। बैठ कर ज़रा दम लेने के लिए किसी वृक्ष की छाया देख रही है। सामने के दो वट वृक्षों के नीचे कितने ही अपरिचित आदमी बैठे हुए हैं। कोई-कोई अपने-अपने भोजन का प्रबन्ध कर रहे हैं। उसे इनके पड़ोस में जाकर बैठने का साहस न हुआ। कुछ दूर पर एक दूसरा वट-वृक्ष दिखाई दिया। उसके नीचे एक वैष्णव पुरुष और दो स्त्रियां बैठी हैं। स्त्रियां रसोई की तैयारी कर रही हैं, और

बीच-बीच मे परस्पर एक दूसरी को भला बुरा कहती जाती हैं। बाबा जी महाराज पार्श्व में बैठे हुए तम्बाकू पी रहे है। वैष्णवों के प्रति सावित्री को बडी श्रद्धा थी। विशेषतः वैष्णव महाशय के निकट दो स्त्रियां भी दिखाई दी, अतएव सावित्री इसी वृक्ष के तले जा बैठी। बाबाजी महाशय ने सावित्री को देख कर हुक्का हाथ में लिया और अपनी जगह से उठ कर उसके पास आ बैठे, पुनः हुक्के मे दम लगाने लगे। बहुत देर तक सावित्री के मुँह की तरफ ताकते रहे, बाद मे उसे सम्बोधन कर बोले—"बेटी! तुम कहां जा रही हो? मैंने पहिले तुम्हे कही देखा है।"

सावित्री—महाराज, मैं कलकत्ते जाऊँगी।

बाबा जी—तुम किसी गृहस्थ की कन्या जान पडती हो, कलकत्ते क्यों जा रही हो?

सावित्री—महाराज हम लोग बडी विपत्ति मे फँसे है। कम्पनी के आदमियों ने मेरे भाई को कलकत्ते की जेल मे भेज दिया है।

बाबा जी—तुम तन्तुकारो की लडकी हो क्या?

सावित्री—हां महाराज।

बाबा जी—तुम्हारे कोई नही है?

सावित्री—महाराज, मां बाप, भाई भौजाई सभी थे, पर अब कोई नही!

बाबा जी—तुम्हारे पति नही है, क्या विधवा हो?

सावित्री—महाराज, मेरे पति भी जेल मे हैं!

बाबा जी—आजकल ऐसा समय आ गया कि आचार-विचार तो क़तई हई नहीं। हरे कृष्ण, हरे कृष्ण! तुम्हारे पिता का नाम क्या था?

सावित्री ज़रा ठिठक रही। सोचने लगी कि अपना परिचय देना उचित नहीं। अन्त में सोचा कि वैष्णव महाराज बड़े धार्मिक हैं, इन्हें अपना परिचय देने में कोई हानि न होगी। ऐसा निश्चय कर कहा—

महाराज, मैं रभाराम बसाक की बेटी हूँ।

बाबा जी—ओह! रभाराम का नाम देश के छोटे बड़े सभी जानते हैं। ऐसा कारीगर अब कहां पैदा होगा! बाबा प्रेमानन्द अधिकारी ही तो तुम लोगों के गुरु थे न? (प्रेमानन्द का नाम लेते समय बाबाजी महाराज ने प्रणाम किया) मैं पहले उन्हीं के अखाड़े में था। मेरे भी वही गुरु थे। हम लोगों के अखाड़े के पास ही उनका अखाड़ा था। परन्तु श्रीवृन्दावन धाम से लौटने पर उनका स्वर्गवास हो गया।

सावित्री—महाराज, उनका अखाड़ा तो काटोया में था न? इधर दो बरस से उनकी कोई खबर नहीं मिली।

बाबा जी—हां, हमारा अखाड़ा भी काटोया में है। मैं इस वक्त बाबा भक्तराम के अखाड़े में हूं। फिलहाल तुम्हारे गांव के पड़ोस ही उदयचन्द चाप के यहां गया था। उदयचन्द मेरा शिष्य है। तुमने क्या काटोया के रास्ते से ही कलकत्ता जाने का निश्चय किया है।

सावित्री—महाराज, मैं रास्ता-वास्ता तो कुछ जानती नहीं पर सुना है, काटोया होकर जाने में सुभीता रहेगा।

बाबा जी—तो फिर हमारे साथ ही चलो। तुम्हारा मुँह तो सूख रहा है, यहां कुछ भोजन का प्रबन्ध नहीं करोगी? देखो उस दूकान पर नारियल बिकते हैं। पहिले थोड़ा सा जल-पान करके चित्त को शान्त कर लो, पीछे रसोई का प्रबन्ध कर लेना। इस धूप में नहीं [illegible] जायगा। दिन ढलने पर हमारे साथ ही साथ चलना।

बावाजी के संग दो स्त्रियां हैं। उनमें से एक की अवस्था प्राय पैंतालीस बरस से अधिक है। दूसरी की अवस्था पच्चीस बरस से ज्यादा न होगी। वयोधिका स्त्री भात बनाती है। दूसरी स्त्री बाहर से रसोई के लिए सारा सामान जुटा रही है। जल वगैरह ले-ले आती है। दूसरी स्त्री के किसी काम में यदि तनिक भी त्रुटि हो जाती है तो वयोधिका स्त्री उसे बहुत ही कड़े शब्दों में डाटने लगती है। परन्तु बावाजी महाराज जिस वक्त सावित्री के साथ बातचीत कर रहे थे, उस वक्त यह वयोधिका स्त्री बडे ध्यानपूर्वक टकटकी बाधे बावाजी तथा सावित्री की तरफ़ देख रही थी। उसके चूल्हे की आग बुझ गई है, पर इस ओर उसका ध्यान क़तई नहीं है। दूसरी स्त्री इस वक्त ताल से पानी लाने गई थी, लौटने पर उसने देखा, कि चूल्हे की आग बुझ गई है, उसकी संगिनी बड़े ग़ौर से बावाजी महाराज की तरफ ताक रही है। इसने उस वयोधिका स्त्री से कहा—"अरे देखो तो, चूल्हे की आग बुझ गई।" वयोधिका स्त्री ने खिरझिरा कर कहा—"बुझ जाने दे।" यह कह कर फिर से चूल्हा जलाने की चेष्टा करने लगी।

सावित्री ने तालाब पर जा कर स्नान किया। बाद में दूकान से एक नारियल ले आई। जलपान कर के तनिक शांत हुई।

बावाजी ने कहा—"तुम्हे अलग भोजन बनाने की कोई ज़रूरत नही, हमारी ही रसोई में पा लेना। तुम्हारे घराने के लोग तो हमारे शिष्य ही थे, हमारे साथ एकत्र भोजन करने में कोई दोष नहीं।"

बावाजी की यह बात सुन कर वयोधिका स्त्री की देह सुलग गई। वह, सावित्री के कुछ उत्तर देने के पहिले ही, कह उठी—"यहां भी भंडारा है क्या? तीन ही खुराक चावल तो मंगाये हैं।"

बाबाजी ने कहा—"छि छिः! ऐसी बात ज़बान से न निकालो। ठाकुर जी ने दया कर के रास्ते में एक अतिथि जुटा दिया, सो अतिथि सेवा करके पुण्य नही कमाओगी क्या?"

वयोधिका स्त्री बोली—"हां, हां, मैं जानती हूँ। जगह-जगह से तुम ऐसा ही पुण्य कमाया करते हो।"

बाबाजी का आचरण देख कर सावित्री को उन के प्रति विशेष श्रद्धा हुई। परन्तु बाबाजी के संग की दोनों स्त्रियां जब वारम्वार रिसाने-चिल्लाने लगीं तो मन ही मन उसे बड़ा क्रोध आया। भोजन के बाद बाबाजी पुनः सावित्री के पास आ बैठे, और विविध वार्त्तालाप करने लगे। परन्तु वे दोनो स्त्रियां सावित्री को बड़ी द्वेष-पूर्ण दृष्टि से देखने लगी। सरला सावित्री इस मामले के गूढ़ रहस्य को न समझ सकी।

बाबाजी—बेटी कलकत्ता बहुत दूर है। रास्ते मे बड़े चोर-डकैत लगते हैं। मै यह सोचता हूँ कि तुम काटोया से अकेली कैसे जाओगी। यदि किसी तरह तुम वहा पहुँच भी गईं तो तुम अपने आत्मीय जनों से न मिल सकोगी, बडी आफत में फँस जाओगी।

सावित्री—महाराज, हमारे सैदाबाद के आराटून साहब आजकल कलकत्ते ही में हैं। उनके पास जाऊँगी, वे मेरा सब इन्तज़ाम कर देंगे।

बाबाजी—नहीं बेटी, देखो ऐसा काम न करना। म्लेच्छ-जाति के आदमी का कोई विश्वास नहीं। वह तुम्हें जाति-भ्रष्ट कर सकता है।

सावित्री—नहीं महाराज, ऐसा न कहिये। मैं उनकी स्त्री को मां कह कर पुकारती हूँ। बचपन से वे हम लोगों पर सन्तान का सा स्नेह रखते है।

बाबाजी—म्लेच्छ-जाति के धर्म का कुछ ठीक है? तुम श्रीकृष्ण के चरणों में ध्यान लगाओ। घर बैठे ही पति-पुत्र सब कोई मिल जायेंगे। ठाकुर जी की दया से कौन सी बात दुर्लभ है? कृष्ण ही सब के स्वामी हैं। कृष्ण ही जगत के पति है। उन्हीं नवदूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर जिन्हे अपना पति मान लोगी, वे ही तुम्हारे पति होंगे।

बाबाजी के इस अन्तिम वाक्य का अर्थ सावित्री की समझ में रत्ती भर भी न आया। "नवदूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर जिन्हे अपना पति मान लोगी, वही तुम्हारे पति होंगे।"—इस बात का अर्थ क्या हुआ? सोचते-सोचते सावित्री ने स्थिर किया कि यह धर्म-शास्त्र की कोई भक्ति-वार्त्ता होगी। इधर इस वाक्य को सुनते ही बाबाजी के हार्दिक अभिप्राय के सम्बन्ध में उनके साथ की दोनों स्त्रियों को अब कोई सन्देह न रह गया। अत्यन्त क्रोधपूर्ण दृष्टि से दोनो बाबा जी की तरफ देखने लगीं।

बाबाजी ने पुन सावित्री से कहा—"बेटी, तुम कलकत्ता जाने का इरादा छोड दो। जिससे भक्तों के साथ रह कर सत्संग प्राप्त कर सको और विविध पुण्य-कथायें सुन सको, उसकी चेष्टा करो। श्रीकृष्ण की कृपा से क्या नही हो सकता। घर बैठे पति पाओगी। तुम गृहस्थ की बेटी ठहरी—इस दुर्गम मार्ग मे बड़ी विपत्तियों की आशंका है।"

सावित्री—महाराज, मेरे मां बाप कोई न रहे। अब मेरे भाई ही मेरे धर्म हैं, वही मेरे सत्सग हैं।

लज्जा के मारे सावित्री ने पति के नाम का उल्लेख नही किया।

बाबाजी—अच्छा, हम लोगों के साथ-साथ काटोया तक तो चलो, बाद में जैसा समझना वैसा करना। हमारे अखाड़े में दो-चार

दिन रहने पर सत्संग के द्वारा ठाकुर जी महाराज तुम्हारे मन की प्रवृत्ति को बदल भी सकते हैं। यदि श्रीकृष्ण के चरणों में तुम्हारा प्रेम है, और ठाकुर जी महाराज तुम्हें धर्म के रास्ते पर ले जाने की इच्छा रखते हैं, तो अवश्य ही धर्म-लाभ होगा।

दिन ढल आया। धूप की तेज़ी जाती रही। पथिक-गण अपना-अपना सामान ले-लेकर आगे को रवाना हुए। सावित्री भी इन बाबाजी के साथ साथ चल दी, दो दिन के बाद बाबा भक्तदास के अखाड़े में आ पहुँची।

बाबा भक्तदास के मस्तक और छाती पर मिट्टी का लेप है। सिर पर बाल नहीं हैं, बिल्कुल घुटा हुआ है। अखाड़े के बीचोबीच में एक बडा सा घर है। इस घर में बाबा भक्तदास तथा उनकी तीन चार सेवा-दासी रहती हैं। आसपास आठ नौ छोटे छोटे घर हैं, जिनमें एक एक वैष्णव अपनी अपनी सेवा-दासी के सहित रहता है। बाबा गुरुगोविंद के साथ की वयोधिका स्त्री पहिले ही से इस अखाड़े में रहती थी। यह बाबा गुरुगोविंद जी की सेवा-दासी है। इसका नाम है, कुञ्जेश्वरी। अखाड़े के सब लोग इससे परिचित हैं। परन्तु सावित्री तथा बाबाजी के साथ की दूसरी स्त्री आज पहिले-पहिल इस अखाड़े में आई हैं। जब बाबा भक्तदास ने इन दोनो का परिचय पूछा तो बाबा गुरुगोविंद ने अपने साथ की दूसरी स्त्री की तरफ इशारा करके कहा— "यह आपके शिष्य उदयचंद के छोटे भाई हरेकृष्ण की पत्नी है। हरेकृष्ण की मृत्यु के बाद से यह सदा ही नामामृत-पान में प्रमत्त रहती थी, सांसारिक काम-धन्धों में इसका तनिक भी मन नहीं लगता था। इस बार जब मैं उदयचन्द के यहां गया तो इसने एकदम संसार को छोड देने और वैराग्य लेकर साधु-संग में दिन बिताने एवं भक्तों की चरण-सेवा करने का मनोरथ प्रकट किया। उदयचन्द इसकी धर्मनिष्ठा को देख

कर बड़े प्रसन्न हुए। निदान अब यह वैरागिनी होने के लिए मेरे साथ आई है। और यह जो दूसरी स्त्री है, यह मुर्शिदाबाद के सभाराम बसाक की लड़की है। सभाराम का घर अँगरेज़ों ने लूट लिया। सभाराम की मृत्यु हो गई। उसका पुत्र जेल में है। यह अभी अल्पवयस्का है। कुछ बुरे आदमियों के बहकाने से कलकत्ते जाने को तैयार होगई थी, मुझे रास्ते में मिल गई, अपने साथ लेता आया। सभाराम बाबा प्रेमानन्द के शिष्य थे।" (प्रेमानन्द का नाम उच्चारण करते समय बाबा जी ने इस बार भी प्रणाम किया।)

बाबा भक्तदास इन नवागत दोनों स्त्रियों का परिचय सुन कर बोले—"अच्छा, इन्हें लिवाते लाये, यह अच्छा ही किया। इनके रहने के लिए कोई अलग मकान तो इस वक्त है नहीं, इस लिए फिलहाल इन्हें इसी घर में रख सकते हो।" बाबा भक्तदास की एक सेवा-दासी उस वक्त पास बैठी उनके पांव दाब रही थी वह बोली—"इस घर में जगह कहा से आवेगी? हमीं लोगों को काफी जगह नहीं है।"

बाबा भक्तदास बड़े नाराज़ होकर बोले—"तुमने वैष्णव धर्म किस लिए ग्रहण किया है! खाक नहीं समझती। कोई अतिथि अभ्यागत आजाय तो उसे घर में जगह देकर स्वयम् बाहर पड रहना चाहिए। घर में जगह नहीं काफ़ी है, तो क्या हुआ, तुम में से कोई बाहर रहे। वैष्णव के लिए घर क्या और बाहर क्या?"

भक्तदास की फटकार सुन कर वैष्णवी चुप हो रही।

सावित्री ने अखाडे में आकर वैष्णव और वैष्णवियों के जैसे जैसे घृणित व्यवहार देखे, उन सब का उल्लेख करने से पुस्तक अश्लीलता से पूर्ण हो जायगी, पाठिकाओं के लिए अपाठ्य होगी; इस लिए हम उनका उल्लेख नहीं करना चाहते। सावित्री बाबा गुरुगोविंद और बाबा भक्त-

दारोग के दुष्ट आशय को समझ कर बड़ी भयभीत हुई। "हे दयामय ईश्वर, हे दयामय ईश्वर! मेरे धर्म की रक्षा करो"—यह कह-कह कर भगवान् को पुकारने लगी। क्या करूँ—कुछ निश्चय न कर सकी। आराटून साहब की स्त्री ने जो दस रुपये उसे दिये थे, उनमें से पांच रुपये बदरुन्निसा ने उसके कपड़ों की गठरी में बांध दिये थे, और पांच रुपये उसकी ओढ़नी के खूंट में बाध दिये थे। बाबा गुरुगोविन्द ने रास्ते में एक जगह सावित्री से कहा था कि तुम्हारे पास जो रुपया पैसा हो, वह मेरे पास रख दो; सम्भव है तुमसे कहीं खो जाय। सावित्री ने उस वक्त ऊपर वाले खूंट में बंधे हुए पाच रुपये बाबा जी के हाथ में दे दिये। ये रुपये बाबा जी ने कोरे हज़म कर लिये।

जिस दिन सावित्री इस अखाड़े में आई, उसके दूसरे दिन बाबा भक्तदास, सावित्री तथा हरेकृष्ण की विधवा से मूँड मुडा कर भेष लेने का अनुरोध करने लगे। हरेकृष्ण की विधवा भेष लेने को तैयार होगई। पर सावित्री ने रोते-रोते कहा कि मैं कदापि भेष नही लूंगी। आप लोग यदि यहां से मुझे जाने नहीं देगे तो मै इसी वक्त आत्महत्या कर लूंगी।

यह बात सुन कर बाबा जी बहुत डरे। अखाड़े में कहीं इसने आत्महत्या कर डाली तो क़त्ल की ज़िम्मेदारी सिर पड़ेगी। बाबाजी ने सोचा, कौन इस आफ़त में फँसे। वैष्णव लोग प्राय कायर और डरपोक होते है। उन्होंने सावित्री से कहा—"भई, तू जा यहा से।" वह अपना कपड़ा-लत्ता उठा कर चटपट अखाड़े से बाहर निकली। बाबा गुरुगोविन्द के पास जो रुपये रख दिये थे, वह भी उसने नहीं मागे। और मांगने पर बाबा जी शायद रुपये लौटाते भी हर्गिज़ नहीं।

हरेकृष्ण की स्त्री ने उसी दिन मूंड मुँडा कर भेष धारण कर लिया। उसका पूर्व नाम था आदरमणि। अब बाबा भक्तदास ने उसका नाम रखा ललितमंजरी। विधवा होने के बाद इस स्त्री का चरित्र बहुत ही दूषित हो चला था, इसलिए इसके जेठ उदयचद घोष इसे वैष्णवों के दल में दाखिल कर देने की चेष्टा कर रहे थे। इस साल उनके दौहित्र के नामकरणोत्सव के अवसर पर बाबा भक्तदास के प्रतिनिधि-स्वरूप बाबा गुरुगोविन्द उनके यहां पधारे। यह मौका पाकर उदयचन्द ने इसे, वैष्णवी बना लेने के लिए, बाबा गुरुगोविन्द के साथ बाबा भक्तदास के अखाड़े में भेज दिया।

छिदाम विश्वास की स्त्री

बाबा भक्तदास के अखाडे से बाहर होते ही सावित्री वहां से भाग चली। मन ही मन स्थिर किया कि अब मार्ग में किसी के साथ बातचीत न करूँगी, और पथिकगण जिस रास्ते से कलकत्ते जा रहे होंगे, चुपचाप उसी रास्ते से उनके पीछे-पीछे चलती रहूँगी। अपने धार्मिक विश्वासों के सम्बन्ध में भी उसके हृदय में विविध प्रकार के सन्देह उत्पन्न होने लगे। सोचने लगी, क्या जो जो मैंने देखा वही वैष्णवधर्म है? वैरागी लोग ऐसे ऐसे कुकर्म करते हैं? बदरुन्निसा ने जो कुछ कहा था, उसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं। पाठकों को याद ही होगा कि बदरुन्निसा ने सावित्री से कहा था—"हिन्दू वैरागी बड़े दुष्ट होते हैं।

क्रमशः दो कोस तक चलने के बाद सावित्री बहुत थक गई। कुछ देर दम लिये विना आगे न चला गया। रास्ते के किनारे पर सामने एक बट-वृक्ष दिखाई दिया। उसी के तले बैठ कर सुस्ताने का विचार किया। परन्तु वृक्ष के पास आकर देखा कि एक वयोधिका स्त्री भिखारिणी के वेश में वहां बैठी है। बहुत ही फटे पुराने और मैले वस्त्र पहिने है। स्त्री की अवस्था अभी पूरे चालीस बरस की भी न होगी। परन्तु वात-जनित विकार के कारण उसमें चलने-फिरने की भी शक्ति नही है। दोनों हाथों में एक एक लाठी है। खड़े होने की ताकत नहीं है। दोनों लाठियों के सहारे, बैठे-बैठे, बड़े कष्ट-पूर्वक, एक स्थान से दूसरे स्थान को जाती है। नाक के नथुनों और होठों से रक्त बह रहा है। सावित्री को देखते ही वह स्त्री कह उठी—"बच्चा एक पैसा दे—दया कर के एक पैसा दे—कल से भूखी हूँ, कुछ खाने को नही पाया। गला सूख रहा है। भूख के मारे प्राण निकलते हैं।"

स्त्री की दुर्दशा देख कर सावित्री को बडी दया आई। परन्तु उसके पास एक भी पैसा नहीं था, सिर्फ़ वही पाच रुपये थे। अतएव सावित्री ने कहा—"मेरे पास पैसा नहीं है, रुपया है। यदि यहा कहीं से रुपया भुना सकू तो तुम्हें पैसा दे सकती हूँ। तुम्हारा दुख देखकर मुझे बडा दुख होता है। यदि ज्यादा रुपये मेरे पास होते तो तुम्हें एक रुपया ही दे देती।"

भिखारिणी ने कहा—"मां लक्ष्मी, परमेश्वर तुम्हारा भला करें, तुम्हारी आशा पूरी करें। यह सामने बाज़ार दिखाई देता है, वहां रुपया भुनाया जा सकता है; तुम बैठो, मैं निताई को बुलाती हूँ, वह तुम्हें रुपया भुना ला देगा।"

यह कहते हुए बड़े उत्साह के साथ भिखारिणी ने दोनो टेकनी हाथों में थाम, उन्ही टेकनियो के सहारे, इस पेड से कोई तीस-चालीस हाथ के फासिले पर एक कुटी के पास जा "निताई, निताई" कह कर पुकारना आरम्भ किया। कुटी के पश्चिम एक दूसरी कुटी थी। एक दस-बारह बरस का बालक उस कुटी से बाहर निकला। भिखारिणी उस बालक को साथ ले पुन. सावित्री के पास आई, और भुनाने के लिए इस बालक को रुपया देने को कहा। सावित्री ने बालक के हाथ में रुपया दिया। वह तुरन्त ही बाज़ार से रुपया भुनाने चला गया।

बालक के चले जाने पर भिखारिणी ने सावित्री से पूछा—"मां लक्ष्मी, तुम कहां जाओगी?"

सावित्री—मै कलकत्ते जाऊँगी।

भिखारिणी—बच्चा! एकाकिनी कलकत्ते जाओगी? कलकत्ता बहुत दूर है। मैं जानती हूँ, तुम घर मे किसी से लडाई-झगडा करके चली आई हो। ऐसा काम न करना। यह बुद्धि छोडो। मेरी यह दुर्दशा देखो। मेरे यहां बहुतेरा धन-माल था। कोई पचास साठ हज़ार रुपये का गहना मेरे तन पर था। न जाने क्यो, बाहर निकल खडी हुई। अब आज जो दुर्दशा है, उसे भगवान ही जानते है। यह देखो, फटा पुराना लत्ता पहिने हूँ। इसके सिवाय दूसरा लत्ता पास नही है। मैं अन्यान्य सैकडों आदमियो को कितने ही कपड़े दे डाला करती थी। सभाराम तन्तुकार के बुने हुए बत्तीस रुपये वाले रेशमी जोडे के सिवाय मैंने कभी सूती कपडा हाथ से नहीं छुआ।

स्त्री के मुँह से अपने पिता का नाम सुन कर सावित्री बडी चकित हुई। मन ही मन सोचने लगी कि इसका घर अवश्य ही हमारे गांव के पडोस में कहीं रहा होगा।

थोड़ी देर के बाद सावित्री ने उस स्त्री से पूछा—पहिले तुम्हारा घर कहां था ?

भिखारिणी—सैदाबाद के कुछ दूर उत्तर—वि—टोला में।

सावित्री—हमारा घर भी सैदाबाद के पास ही जुलाहों के टोला में है।

भिखारिणी—तुम्हारे बाप का नाम क्या ?

सावित्री—सभाराम बसाक मेरे ही पिता का नाम था। उनकी मृत्यु हो गई !

भिखारिणी—तुम सभाराम की बेटी हो ? (चकित और लज्जित होकर) तब तो तुम मुझे पहचान सकती हो। सैदाबाद के विश्वास-परिवार वालों का नाम सुना है ?

सावित्री—आपका मतलब किन विश्वासों से है ? सैदाबाद में तो बहुत विश्वास रहते हैं। छिदाम विश्वास, जगन्नाथ विश्वास आदि।

भिखारिणी—(रोते-रोते) यह जो तुमने पहिला नाम लिया, यही मेरे स्वामी थे।

सावित्री—(बहुत ही चकित होकर) आप छिदाम विश्वास की स्त्री हैं ? अह ! आप की यह दुर्दशा ! आप फौरन अपने घर को खबर भेजें, जगन्नाथ विश्वास के पुत्र यादवेन्द्र बाबू तुम्हें पालकी में बिठाल कर लिवा ले जायंगे, उनके यहां क्या कमी है ? मैंने तो सुना था, आपने संसार छोड़ कर वैराग्य ले लिया है।

भिखारिणी—वैराग्य नहीं, अपना सर ले लिया है। हा परमेश्वर ! इस संसार में कोई वैरागी न हो। वैरागियों के समान अधर्मी, वैरागियों के समान दुष्ट, इस संसार में और कहां है ? बेटी !

पचास हजार रुपये का गहना और पचास हजार रुपया नक़द अपने साथ लेकर मैं इस अखाड़े में आई थी। पर आज मेरी यह दुर्दशा है। चल फिर कर गृहस्थों के यहा से भीख मांग खाने की भी सामर्थ्य नही है। इसी पेड के नीचे बैठी-बैठी पथिको से भिक्षा मागा करती हूँ। जिस दिन दो पैसे मिल जाते है, उस दिन इस वैष्णवी के हाथ चावल-दाल मंगाकर खा लेती हूँ। जिस दिन कुछ नही मिलता, उस दिन भूखी पड रहती हूँ। कल सारे दिन इस वृक्ष के नीचे बैठी रही, एक पैसा भी नहीं मिला।

स्त्री की बातें सुन कर सावित्री की दोनों आंखों से आंसुओं की धारा बह निकली। विशेषतः सावित्री इस स्त्री के पूर्व-कृत कुकर्मों के विषय में कुछ नही जानती थी। अतएव उसने मन ही मन स्थिर किया कि यह केवल धर्मानुराग से प्रेरित होकर ही वहां आई होगी; पर यहां आकर विपत्ति में फँस गई। सैदाबाद में रहनेवाली सावित्री के साथ की अन्यान्य लडकियां छिदाम विश्वास की स्त्री के कर्मों को अच्छी तरह जानती थी। पर सावित्री अन्यान्य युवतियो की भांति दूसरे के घर की ऐसी-वैसी बातों की चर्चा नहीं किया करती थी। यदि अन्य कोई स्त्री उसके सामने दूसरे के घरों की चर्चा छेडती भी तो वह उस पर कुछ ध्यान नही देती थी। तिस पर इस भिखारिणी ने सावित्री से बातें करते वक्त अपना पूर्व-वृत्तात जिस रूप में वर्णन किया, उससे भी यही प्रमाणित हुआ कि वास्तव में इसका रत्ती भर दोष नही, वैरागियों ने ही इसे ठगा है। वस्तुतः बहुकाल से जिसका हृदय पाप-वासनाओं से कलंकित होता रहा है, जो सदा ही कुकर्मों में लिप्त रहे हैं, उनकी नजर अपने दोषों पर नहीं जाती। इस पापिनी के हृदय में आज भी अपने किये हुए कुकर्मों के प्रति पश्चाताप की अग्नि प्रज्वलित नहीं हुई है। यदि ऐसा होता तो क्या यह सिर्फ वैरागियों ही की निन्दा करती?

वैरागियों में हज़ार दोष रहे हों सही, पर इस भिखारिणी के मामले में वे विशेष अपराधी न थे। इसके नाश का कारण अनेक अंशों में इसी का चरित्र है।

यह भिखारिणी छिदाम विश्वास की स्त्री है। सम्भव है, हमारे पाठक इन बातों को जानने के लिए विशेष उत्सुक हों कि किस प्रकार इसकी ऐसी दुर्दशा हुई और इसके पति छिदाम विश्वास कौन थे; अतएव इससे आगे के परिच्छेद में हम सैदाबाद के विश्वास परिवार का वृत्तान्त संक्षिप्त रूप में लिखते हैं। पाठकों को स्मरण होगा, इससे पहिले लिखा जा चुका है कि छिदाम विश्वास की स्त्री के द्वारा ही तिरस्कृत हो, दुःखिनी, निरपराधिनी, नवकिशोर की वृद्धा जननी ने फांसी लगा कर आत्महत्या कर ली थी।

विश्वास परिवार का पूर्व-वृत्तान्त

सैदाबाद में जगाई और छिदाम नाम के दो सगे भाई थे। साधारण खेती का काम करके ये अपना जीवन निर्वाह करते थे। बहुत ग़रीब आदमी थे। जगाई की अवस्था कोई तीस-बत्तीस बरस की हो चुकी थी, पर धनाभाव के कारण उनका विवाह न हो सका। लोग इन्हें शूद्र करके जानते थे। बाल्यावस्था में ही इनके माता पिता की मृत्यु हो गई थी। इनका पिता कौन था यह भी शायद इन्हें नहीं मालूम था।

दोनों भाइयों मे से जगाई घर पर रह कर खेती का काम करते थे, और छिदाम खेत मे उत्पन्न होने वाली आलू, परवल इत्यादि तरकारियां बाज़ार मे बेचने ले जाया करते थे। एक साल छिदाम ने आलू, परवल इत्यादि तरकारियों के बेचने का व्यवसाय छोड फेरीवाले के रूप में टोकनी सिर पर रख, कासिमबाज़ार मे अंगरेज, फरासीसी, आरमीनियन आदि विदेशी व्यापारियो के यहां नींबू बेचने शुरू किये। इनसे छिदाम के साथ अनेकानेक अंगरेज़ व्यापारियो का परिचय हो गया। इसके कुछ समय बाद उन्होंने अंगरेज़ों की रेशम की कोठी मे दलाली का काम करना शुरू किया। अंगरेज़ों की कासिमबाज़ार वाली रेशम की कोठी के असिस्टैन्ट वारेन हेस्टिंग्स ने छिदाम को विशेष कार्यदक्ष आदमी समझ कर इन्हीं दिनो उन्हे रेशम की कोठी मे प्यादा के पद पर नियुक्त कर लिया। पलासी युद्ध के पहिले भी अङ्गरेज़ व्यापारी विविध कौशल-चातुर्य से देशी जुलाहो तथा अन्यान्य व्यवसायियों को ठग-ठगा कर धन संग्रह करते थे। परन्तु उस वक्त किसी के ऊपर अत्याचार करने का साहस उन्हें नही होता था। नवाब अलीवर्दी खां के भय से वह दबे रहते थे। उस वक्त सिर्फ एकमात्र प्रवञ्चना का द्वार उनके लिए खुला था। अधिकाधिक अर्थलाभ की आशा मे अङ्गरेज़ व्यापारी किसी प्रकार का प्रवञ्चनामूलक-कार्य करने में संकुचित नही होते थे। बंगालियों में उस वक्त जो लोग बडे पक्के धूर्त्त थे और चालाकी तथा धोखेबाजी के व्यवहार मे दक्ष माने जाते थे, वही अङ्गरेज़ों के प्रियपात्र होते थे। ऐसे लोग अङ्गरेज़ों के विविध अवैध आचरणों और निर्दय व्यवहारो मे सहायता देकर सहज ही बहुत सा रुपया कमा लेते थे। धर्माधर्म-ज्ञान से शून्य उस समय के वे दुष्ट धोखेबाज बंगाली, अङ्गरेज़ी व्यापारियों की तात्कालिक कुक्रियाओं में सहायता देकर प्रभूत सम्पत्ति संचित करने में समर्थ हुए, अतएव उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि

वंशजों में से कितने ही आदमी आजकल बङ्गाल के प्रतिष्ठित परिवारों में परिगणित हो रहे है।

रेशम की कोठी में प्यादे के काम पर नियुक्त होकर छिदाम कुछ ही दिनों में हेस्टिंग्स साहब के विशेष प्रीति-पात्र बन गये। उस वक्त रेशम की कोठी के प्यादा लोगो को काफी आमदनी होती थी। कोठी मे काम शुरू करने के बाद तीन ही महीने के भीतर छिदाम ने अपने भाई जगाई के विवाह का बन्दोवस्त किया। जगाई के विवाह के एक महीने वाद उन्होंने खुद भी एक चौदह बरस की युवती कन्या का पाणिग्रहण किया। छिदाम की स्त्री का नाम था वदनमणि। उसके दोनो गाल ज़रा फूले हुए थे। आख और कान गालों की फुलावट से ढके थे। इसी कारण वाल्यकाल मे लोग उसे 'वदनी' कह कर पुकारा करते थे। विवाह के वाद उसका नाम हुआ वदनमणि। छिदाम का विवाह होने के सात-आठ बरस बाद मि० विलियम वोल्ट्स साहब क़ासिमबाजार के फ़ैक्टरर (कोठी के प्रधान अध्यक्ष) नियुक्त होकर आये। इन्होंने बंगालियों का रक्त चूस कर कुछ बरसों में प्राय बानवे लाख रुपया पैदा किया था। बाद में ये कलकत्ते के मेयरकोर्ट की जजी के पद पर भी नियुक्त हुए थे। छिदाम की कार्यदक्षता को देख कर विलियम वोल्ट्स साहब बड़े संतुष्ट हुए। मन ही मन उन्होंने विचार किया कि छिदाम को कोठी की दीवानी के पद पर नियुक्त करेंगे। परन्तु अन्त में न जाने क्या सोच कर उन्होंने छिदाम को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापारी दीवान के पद पर नियुक्त न करके अपने निजी व्यापार का दीवान बना लिया। पाठकों को याद होगा, अब तक कई बार इसका उल्लेख हो चुका है कि उस वक्त ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार के सिवाय कम्पनी का प्रत्येक कर्मचारी अपना अपना व्यापार अलग भी करता था।

रेशम की कोठी के गुमाश्तों में छिदाम जैसे कार्यदक्ष आदमी बहुत थोड़े थे। छिदाम को किसी प्रकार का कुकर्म, किसी प्रकार का निन्द्य आचरण, करने मे तनिक भी संकोच नहीं होता था। अतएव छिदाम को, बोल्ट्स साहब के निजी व्यापार की गुमाश्तागीरी के काम पर नियुक्त होते हुए भी, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार का बहुत कुछ काम-काज करना पडता था। अनेक मामलों में उनकी राय ली जाती थी। बोल्ट्स साहब कहा करते थे—'छिदाम मेरा दाहिना हाथ है'। निदान छिदाम को एक तरह से बोल्ट्स साहब का प्राइवेट सेक्रेटरी कहा जाय तो अत्युक्ति न होगी। जितने भी अर्थलोलुप अङ्गरेज उस वक्त इस देश में व्यापार कर रहे थे, सभी छिदाम की प्रशंसा करते थे। छिदाम ने गुमाश्तागीरी के काम पर नियुक्त होकर सिर्फ चौदह महीने के भीतर प्राय. एक लाख पचास हज़ार रुपया पैदा किया। छिदाम की सहायता प्राप्त होने के कारण बोल्ट्स साहब ने सिर्फ़ अपने निज के व्यापार से थोडे ही दिनो के भीतर नौ लाख रुपया कमाया। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के व्यापार मे भी खूब मुनाफ़ा होने लगा। इन्हीं बोल्ट्स साहब के ज़माने में मुर्शिदाबाद से कितने ही जुलाहे अपना-अपना घर बार छोड़ कर अन्यत्र भाग गये थे।

इस प्रकार धनोपार्जन करते हुए छिदाम ने धीरे-धीरे बहुत सी जमीदारी मोल ले ली और एक बहुत बडा पुख्ता मकान बनवाना शुरू किया। अब उन्होने पैदल आफिस जाना बद कर दिया। पाल्की, कहार नियुक्त कर लिये। कहीं जाना होता, बिना पाल्की के न जाते थे। गांव के सब आदमी छिदाम को अब छिदाम बाबू कहने लगे थे। जगाई को भी सब लोग बाबू कहा करते थे या नहीं, यह तो हमें अच्छी तरह नही मालूम, परन्तु कोई कोई तो उन्हें जगन्नाथ बाबू कहते थे अवश्य। कुछ लोग उन्हें 'विश्वास महाशय' कुछ लोग 'बड़े

मालिक' तथा गांव के कुछ बडे बूढ़े आदमी उन्हे जगन्नाथ विश्वास कहा करते थे।

बाबू छिदामचन्द्र विश्वास और जगन्नाथ विश्वास को गांव के लोग अब शूद्र नहीं मानते है। बहुत सा धन जमा कर लेने के कारण अब वे प्रायः कायस्थ कहलाने लगे है। वे खुद भी कायत अथवा कायस्त कह कर अपना परिचय देते हैं। परन्तु अभी तक वे सर्व-सम्मत कायस्थ नहीं बन सके हैं। और वस्तुत. ऐसी स्थिति में उस वक्त तक कोई रजिस्टर्ड कायस्थ कैसे बन सकता है, जब तक कि दो एक अच्छे घराने के कुलीन कायस्थों के यहां उसका रिश्ता सम्बन्ध स्थिर न हो जाय।

बंगाल के कायस्थ दो श्रेणियों में विभक्त हैं। एक वंगज कायस्थ, दूसरे दक्षिणराढी कायस्थ। चौबीसपर्गना के अन्तर्गत यशोहर में रहने वाले, प्रतापादित्य के वंशज, वगज कायस्थ हैं। कुलीन वंगज कायस्थ अधिकतर बाखरगंज आदि पूर्वीय प्रदेशों में बसे हैं। परन्तु दक्षिणराढ़ी कायस्थो में अधिकांश कुलीन कायस्थ हुगली, वर्द्धमान, कृष्णनगर, यशोहर आदि नगरो में रहते हैं। छिदाम बाबू और जगन्नाथ विश्वास वंगज कायस्थ थे, अथवा दक्षिणराढ़ी कायस्थ थे, इस विषय में आज तक कोई निर्णय नही हो सका। परन्तु छिदाम की ज़िन्दगी मे जिस वक्त यह प्रश्न उठा था, उस वक्त छिदाम ने कहीं किसी घटक* की ज़बानी सुना कि हुगली, वर्द्धमान, कृष्णनगर इत्यादि प्रदेशों में दक्षिणराढी कायस्थों का ही प्राधान्य है। कुलीन वंगज कायस्थ ढाका और बाखरगंज की तरफ़ रहते हैं। परन्तु ढाका, बाखरगंज आदि पूर्वीय

*बंगाल में "घटक" उसे कहते है जो लडका लडकी का विवाह तय करवाता है, और जो भिन्न भिन्न कुलों की स्थिति, मर्यादा, गोत्र आदि का ज्ञान रखता है।

प्रदेशों के सम्बन्ध में पश्चिमी बंगाल के, निम्न श्रेणी के, अशिक्षित आदमियों में तरह तरह की हीनतासूचक किम्बदन्तियां प्रचलित हैं। अतएव इन सब बातों पर सोच विचार कर छिदाम बाबू ने कहा—"हम दक्षिणराढ़ी कायस्थ हैं।"

इस प्रकार अपने को दक्षिणराढ़ी कायस्थ कह कर छिदाम बाबू ने बंगाल के दक्षिणराढ़ी कायस्थों के साथ अपना रिश्ता सम्बन्ध जोड़ने और चलन चलाने का निश्चय किया। देश में अब वे एक बड़े आदमी माने जाने लगे। पाठकों को ज्ञात ही है कि उनकी स्त्री का नाम वदनमणि था; उनकी ससुराल के लोग उसे 'बदनी, बदनी' कह कर पुकारा करते थे। छिदाम को यह बहुत बुरा लगता था। सोचते थे कि अब हम एक बड़े आदमी बन गये हैं; इसलिए हमारी स्त्री का नाम भी बड़े घरानों की स्त्रियों का सा होना चाहिए। अन्ततः उन्होंने अपनी स्त्री का नाम बदल डाला, बदनमणि के स्थान पर उसका नाम रक्खा स्वर्णलता। परन्तु जगन्नाथ की स्त्री का नाम नहीं बदला गया। उसका पूर्व नाम आह्लादी था, वही बना रहा। दूसरे जगन्नाथ की स्त्री के नाम परिवर्त्तन की कोई ज़रूरत भी नहीं समझ पड़ी। क्योंकि उसके नाम से कोई लिखा पढ़ी नहीं होती थी। छिदाम को सिर्फ़ अपनी स्त्री के नाम परिवर्त्तन की भारी ज़रूरत पेश आई थी, और वह इसलिए कि छिदाम की जायदाद का लेन-देन, हिसाब-किताब सब कुछ उनकी स्त्री के ही नाम से होता था, और नवाब सरकार के काग़ज़ पत्रों में उसी का नाम चढ़ने वाला था।

छिदाम बाबू ने अपने यहां बहुत से दास-दासी नियुक्त कर रक्खे थे। परन्तु घर का काम-धन्धा जगन्नाथ की स्त्री को ही करना पड़ता था। दास-दासियों से जगन्नाथ की स्त्री को कोई सहायता नहीं मिलती थी। घर में छिदाम पैदा करने वाले ठहरे। उन्हीं की कमाई से सब का प्रतिपालन होता है; इसलिए उनकी स्त्री भला घर का काम-

धन्धा क्यो छूने लगीं ! छिदाम के यहां इस वक्त पांच-छः नौकरानी और आठ-नौ नौकर हैं। इनमे से दो नौकरानियों को हर वक्त छिदाम की स्त्री के पास बैठे रहना पडता है और एक छिदाम की कन्या को गोद में लिये घूमती रहती है। जगन्नाथ की स्त्री के पांच-छ बाल-बच्चे थे, पर उन्हें खिलाने पिलाने के लिए कोई नौकरानी न थी। जगन्नाथ की स्त्री स्वयम् हर वक्त घर के काम-धन्धे में लगी रहती थी, इतना भी अवकाश नही मिलता था कि अपने गोद के बच्चे को दूध पिलावे। इस वक्त छिदाम का घर क्या, मानो किसी बड़े भारी भंडारी का घर हो रहा है। प्रतिदिन उनके यहां तीस-चालीस आदमियों की रसोई बनती है। जगन्नाथ की स्त्री को इन सब के लिए भोजन बनाना पड़ता है। तीसरे पहर फिर छिदाम और छिदाम की स्त्री के लिए व्यारू तैयार करनी होती है। इस बेचारी को किसी दिन भी चार बजे से पहिले भोजन करने की फ़ुर्सत नहीं मिलती। कई एक दासियां सिर्फ़ छिदाम की स्त्री की सेवा के लिए नियुक्त हैं, ये प्राय रात दिन छोटी मालकिन के पास बैठी रहती हैं, जगन्नाथ की स्त्री यदि रसोई-घर में से इन्हें कोई चीज़ वस्तु बाहर से पकड़ा देने के लिए पुकारती है तो ये झिरझिरा कर कह उठती है—"छोटी मालकिन की तबियत आज अच्छी नहीं है, हमें रसोई में चीज़ वस्तु पकडाने की फ़ुर्सत नही है—न होगा आज नहीं खायेंगी—एक दिन न खाने से भी क्या होगा—मालकिन की टहल तो करनी ही है।" इधर दासियों की ज़बानी यह बहाना सुनते ही छिदाम की स्त्री को भी फ़ौरन कोई न कोई रोग आ घेरता था। कभी माथा दुखने लगता, कभी ज्वर आ जाता, कभी कानों में झनझनाहट पैदा हो जाती। मनुष्य का शरीर ही तो, तरह-तरह के रोग लगे रहते हैं। "शरीरं व्याधि-मंदिरम्" सदा ही कोई न कोई रोग बना रहता है, न सही, जब ज़बान से कह दिया तभी रोग।

छिदाम की स्त्री के इन ख़ास नौकर-नौकरानियों के सिवाय घर में जो अन्यान्य तीन दासियां थी, वे भी सदा छोटी मालकिन को राज़ी रखने के लिए दिन भर में दस दफ़े उनके पास आतीं और उनकी तबियत का हाल पूछ जातीं। रसोई के काम-धंधे में, वे भी कुछ ऐसी सहायता नहीं देती थी। जगन्नाथ की स्त्री यदि उन्हें किसी काम के लिए पुकारती तो वे कह उठती थी—"ग़ज़ब रे ग़ज़ब! ये बडी मालकिन तो सब की नाक मे दम किये रहती हैं। इनके मारे क्या कोई ठहरने पावेगा? आज छोटी मालकिन की तबियत खराब है, सो अभी अभी ज़रा उन्हे देखने चली आई, बस इन्होंने चीखना शुरू कर दिया। घर मे कोई दिक़-दुखी होगा तो घडी भर उसके पास बैठने की फुर्सत भी नहीं दी जायगी! ये घर की बडी मालकिन हों तो होती रहें, इनके लिए मैं अपनी छोटी मालकिन का हुक्म थोडे ही टाल सकती हूँ!"

ये बातें सुन कर छिदाम की स्त्री भी कहने लगती थीं—"हां, यह तो बिलकुल सही है। दीदी की ज़बान ऐसी बिगड रही है कि उनके मारे घर में नौकर-चाकर तो नहीं ही ठहर पावेंगे। फिर कुछ काम भी हो, इतना तो अकेले भी कर सकती हैं—ऐसी कौन नवाब की बेटी हैं—घर में आठ नौ नौकर हैं, पांच छः दासियां हैं। इनके मारे सभी के नाक में दम रहता है। दिन भर सबको डाट बताया करती हैं।"

परन्तु जगन्नाथ की स्त्री बेचारी किसी से चूं भी नहीं करती थी। नौकरों-चाकरों को डाटना-फटकारना तो दूर रहा, वह सब से डर-दब कर चलती थी। छिदाम की स्त्री को इस प्रकार हर रोज ही कोई न कोई रोग घेरे रहता था, सदा ही अस्वस्थता बनी रहती थी। इस अस्वस्थता में नौकर-चाकर उनकी शुश्रुषा का बहाना लिये बैठे रहते सो अलग, इधर ऊपर से जगन्नाथ की स्त्री को अपनी रोगग्रस्त

देवरानी के लिए कभी पानी गरम करना पडता, कभी पथ्य तय्यार करना पडता। फिर स्त्रियो के इस तरह के (बनावटी) रोगों में उनके नियमित स्नान-भोजन मे तो कोई बाधा पडती नही; बाधा कहां से पड़े, जब कोई रोग हो तब न? कहने का तात्पर्य यह है कि जगन्नाथ की स्त्री को अपनी बीमार देवरानी के लिए स्नान-भोजन का प्रबन्ध भी करना पडता था।

बंगाल के सम्मिलित परिवारों में आजकल भी अनेकानेक गृहस्थों के यहां स्त्रियों को ऐसे रोग—काल्पनिक रोग—हुआ करते हैं। इसीलिए हम लोग सम्मिलित परिवार की प्रथा के विशेष पक्षपाती नहीं हैं।

छिदाम बिश्वास के सिर्फ एक इकलौती कन्या है। इस वक्त उसकी अवस्था लगभग दस बरस की है। इस कन्या के बाद छिदाम की स्त्री के कोई औलाद नहीं हुई। वे इतना रुपया पैदा कर रहे हैं, पर उनके पुत्र कोई नहीं है। जगन्नाथ विश्वास बड़ी-बड़ी दूर घूम-फिर कर कितने ही साधु-महात्माओं से जल पढ़ा पढ़ा कर लाये, और छिदाम की स्त्री को पिलाया, कितने ही ज्योतिषी पण्डितों को उनका हाथ दिखाया; पर किसी से कुछ न हुआ। छिदाम की स्त्री के कोई औलाद न हुई। अन्तत· जगन्नाथ विश्वास कहने लगे—परमेश्वर ने मुझे तीन पुत्र दिये हैं, एक पुत्र मैं अपनी भावज को दूंगा। परन्तु जगन्नाथ की स्त्री अपना पुत्र नहीं देना चाहती थी। कारण कि छिदाम की स्त्री उनकी औलाद से अत्यन्त घृणा करती थी।

छिदाम की स्त्री कोई काम-धंधा नहीं छूती थी, दिन रात पलंग पर पड़ी रहती थीं। उनका दैनिक काम सिर्फ एक था, और वह यह कि तीसरे पहर को जिस वक्त प्यारी की मां, दुलारी की मां, श्यामा की मां इत्यादि स्त्रियां उनके पास आकर जमा होती थीं, उस वक्त वे गांव की

युवती स्त्रियों, विशेषतः युवती विधवाओं के चरित्र की आलोचना के लिए कचहरी करने बैठती थी। इस प्रकार दिन-रात बेकार पलंग पर पडे रहने के कारण धीरे-धीरे छिदाम की स्त्री का शरीर बहुत मोटा हो गया। यों तो उनके गाल बचपन ही से फूले हुए थे, पर अब तो उनकी फुलावट इतनी बढ़ गई कि आंखों और कानो के आसपास दीवारें सी खड़ी हो गईं। डाक्टरों का मत है कि जो स्त्रियां आलस्य-वश कुछ काम नही करती, और दिन-रात बेकार पड़े-पडे बहुत मोटी हो जाती हैं, उनके औलाद नही होती। जान पडता है, छिदाम की स्त्री के भी औलाद न होने का यही कारण था।

छिदाम की कन्या हेमलता जब दस बरस की हुई तो छिदाम और जगन्नाथ, दोनो भाइयों, ने मन ही मन निश्चय किया कि किसी कुलीन कायस्थ के साथ कन्या का विवाह करके एकदम सर्वसम्मत, रजिस्टर्ड, कायस्थ बन जायंगे, और उस वक्त फ़िर कोई हम लोगों को शूद्र कहने का साहस न करेगा। बङ्गाल के कायस्थों में, घोष, वसु, मित्र, गुह—इन चार श्रेणियो के कायस्थ कुलीन माने जाते हैं। छिदाम और जगन्नाथ ने स्थिर किया कि चाहे कितना ही रुपया क्यो न ख़र्च हो, इन्हीं चार घरानों में से किसी एक मे कन्या का विवाह करना चाहिये।

रामसुन्दरदास उस समय वहां के एक प्रधान घटक थे। उन्हें बुलाकर छिदाम ने हेमलता का विवाह सम्बन्ध स्थिर करने के लिए कहा। रामसुन्दर ने पहले पहिल उसी गांव के एक कुलीन कायस्थ श्यामाकान्त घोष के निकट प्रस्ताव किया कि छिदाम की कन्या के साथ आप अपने पुत्र का विवाह करें। घोष महाशय इसे सुनते ही आगबबूला हो उठे, और घटक से कहने लगे—"महाशय, मुझे क्या अपनी कुल-मर्यादा को बेचना है? सात पीढियों से हमारे यहां दत्तों के अतिरिक्त किसी अकुलीन घराने में ब्याह-शादी नही हुए। एक लाख रुपया मिलने पर भी

मैं छिदाम विश्वास के साथ सम्बन्ध नहीं कर सकता। छिदाम विश्वास के पास रुपया है ज़रूर; परन्तु रुपये से कोई कुलीन नहीं हो जाता। रुपया बढ़ जाने से क्या कुल भी बढ़ जायगा? सुना है, छिदाम विश्वास नन्दगोपों की सन्तान है!"

रामसुन्दर घटक ने कहा—"महाशय आप नहीं जानते। छिदाम विश्वास मध्यम श्रेणी के कायस्थ हैं अवश्य, परन्तु बड़े अच्छे घराने में से हैं। इनके प्रपितामह अनूपनारायण विश्वास इस प्रदेश के एक प्रतिष्ठित आदमी थे। उनके यहां रस्म-रवाज बड़े अच्छे थे, काम-काज बड़ी विधि से होते थे, बड़े-बड़े कुलीन कायस्थों में उनके नाते-रिश्ते थे। नवाब के दरबार में उनका बहुत आदर था। उन्होंने कितने ही बड़े-बड़े अच्छे काम किये। अनूपनारायण विश्वास की मृत्यु के समय उनके पुत्र (छिदाम के पितामह) नाबालिग़ थे; अतएव उनकी रियासत सब ज़ब्त हो गई, और इसी कारण धीरे-धीरे ये लोग बहुत ग़रीब हो गये। परन्तु अब छिदाम बाबू का तो कहना ही क्या, बहुत रुपया पैदा किया। आजकल हमारे देश के मानों राजा हैं। बंगला, फ़ार्सी, दोनों इल्मों के उस्ताद हैं। छिदाम बाबू मध्यम श्रेणी के कायस्थ हैं अवश्य, परन्तु उनका घराना बहुत पुराना और प्रतिष्ठित है। मेरी राय में तो आप इस विषय पर ख़ूब अच्छी तरह विचार करके तब मुझे निश्चित उत्तर दें। एकाएक नाहीं न कीजिये।"

छिदाम और जगन्नाथ दो में से किसी ने आज तक कभी अपने प्रपितामह का नाम सुना था या नहीं इसमें सन्देह है। रामसुन्दर घटक ने छिदाम के प्रपितामह का नाम-धाम प्रकट कर के मानों आज यह नूतन आविष्कार किया।

रामसुन्दर की बात के प्रत्युत्तर में श्यामाकांत घोष ने कहा—"नहीं महाराज, ऐसा नहीं हो सकता। मेरे एक पुत्र है। मैं धन

के लोभ मे छिदाम विश्वास के यहां सम्बन्ध नही करूँगा। यदि मैं उनकी लडकी के साथ अपने पुत्र का विवाह करूँ तो मेरे भाई-बन्द, रिश्तेदार कोई मेरे यहां नही आवेंगे।"

रामसुन्दर घटक निराश होकर वहां से चल दिये, और एक दूसरे गांव में लक्ष्मीकांत मित्र के पास गये। मित्र महाशय में गांजा पीने की लत थी, इसलिए वे मिज़ाज के ज़रा तीखे थे। रामसुन्दर घटक ने जैसे ही उनके लडके के साथ छिदाम की लडकी व्याहने का प्रस्ताव किया, वे आगबबूला हो उठे, और बोले—"साले घटक, तू मुझ से सद्गोपों के साथ रिश्तेदारी करने के लिए कहता है? साले इसी वक्त मेरे यहा से चला जा ।"

यह कहते हुए वे रामसुन्दर को मारने दौड़े। रामसुन्दर तनिक भी चीं-चपड न करके चुपचाप वहां से भाग खड़े हुए।

इस गांव से अपने घर को लौटते वक्त रास्ते मे कृष्णमोहन दत्त के साथ रामसुन्दर का साक्षात् हुआ। कृष्णमोहन दत्त एक प्रधान तालुक़दार थे। पर इनके तालुके की बहुत सी मालगुज़ारी इनके ज़िम्मे बाक़ी पड़ी थी। नवाब के सिपाही प्यादे हर रोज़ इनके घर पर ऊधम मचाये रहते थे। उन दिनों बंगाल में सूर्यास्त* का आईन प्रचलित न था। मालगुज़ारी बक़ाया रहने पर नवाब के सिपाही-प्यादे आकर ज़मीदारों और तालुक़ेदारों को पकड ले जाते थे। कृष्णमोहन दत्त अपना घर-बार

---

*इस्तमरारी बन्दोबस्त होने पर बंगाल में ज़मींदारों के लिए यह एक क़ानून बनाया गया था कि वे अपनी अपनी मालगुजारी का रुपया अमुक तारीख़ तक जरूर अदा करदें। इस निर्दिष्ट समय में या अन्तत: निश्चित तारीख़ की संध्या (सूर्यास्त) तक मालगुज़ारी न अदा करनेवालों की ज़मींदारी नीलाम कर दी जाती थी। अनु०

छोड एक दूसरे गांव को भाग गये थे और अपने स्त्री-पुत्रों के सहित आज-कल वहीं रहते थे। रामसुन्दर से इन्होने पूछा—"घटक महाशय, कहां गये थे ?"

रामसुन्दर—भाई छिदाम विश्वास की कन्या के लिए वर खोजना है, उसी के लिए आजकल परेशान हो रहा हूँ। किसी कुलीन घराने का लडका चाहिये।

कृष्णमोहन—सुनो तो, मेरे लडके के साथ यह सम्बन्ध ठीक कराओ न ? छिदाम अगर दस हज़ार रुपये देने को राज़ी हों तो मैं बराबर उनके यहां शादी कर लूंगा।

रामसुन्दर—वे तो कुलीन घराने का लडका चाहते हैं, मध्यम श्रेणी वालों के यहां वे सम्बन्ध नहीं करेंगे।

कृष्णमोहन—हमारे यहां सम्बन्ध करने पर सब कुलीनों के साथ सम्बन्ध तो वैसे भी हो जायगा। कारण यह कि सभी कुलीनों के यहां हमारी रिश्तेदारी है। इन्हीं बातों में तो हमारा दिवाला निकला है, कुलीनों के यहां सम्बन्ध ही करने में तो हमने अपना सब कुछ गँवा दिया। आठ हज़ार रुपया मालगुज़ारी का बकाया है। नवाब से कम्पनी बहादुर का रुपया नहीं अदा होता है। मालगुज़ारी वसूल करने के लिए आजकल जमींदारों और तालुक़ेदारों पर बड़ी सख्ती हो रही है। आप छिदाम विश्वास को समझा कर कहें कि मेरे यहां सम्बन्ध करने पर देश भर के कुलीन बारात में उनके घर आवेंगे और खान-पान में शामिल होंगे।

रामसुन्दर—अच्छा, छिदाम से बातचीत करके तब आप से ऐसा कहूँगा।

रामसुन्दर घटक ने कोई दो तीन महीने लगातार मुर्शिदाबाद, हुगली, वर्द्धमान इत्यादि ज़िलों में रहने वाले कुलीन कायस्थों के यहां जा-जाकर छिदाम की कन्या के विवाह का प्रस्ताव किया। परन्तु जो कुलीन कायस्थ अपने घर के अच्छे खाते-पीते थे, मालदार थे, उनमें से किसी ने भी छिदाम के यहां सम्बन्ध करना स्वीकार न किया। हां, मध्यम श्रेणी वाले कायस्थों के यहां ज़रूर कई अच्छे-अच्छे लडके मिले, और उनके घर वालों ने सम्वन्ध करना स्वीकार भी किया; परन्तु छिदाम और जगन्नाथ यह प्रण कर चुके थे कि चाहे जितना रुपया खर्च हो, शादी करेंगे तो कुलीनों के यहां ही।

लौटने पर रामसुन्दर ने छिदाम वावू से कहा—"भाई देश भर के कुलीन कायस्थों में किसी ने मेरी वात पर विश्वास नही किया। मैंने उन लोगों से कहा कि छिदाम बाबू के प्रपितामह अनूपनारायण विश्वास इस देश के एक प्रतिष्ठित आदमी थे। उनके पास बहुत तालुका था। नवाव-दरवार में उनकी वडी इज्जत थी। वड़े वड़े कुलीनों के यहां उनका सम्वन्ध था। परन्तु मेरी ये सब बातें सुन कर वे लोग कहने लगते हैं—"घटक तो ऐसा कहा ही करते हैं।"

जगन्नाथ और छिदाम; रामसुन्दर की यह वात सुन कर वोले—"हां हां, अनूपनारायण विश्वास ही हमारे प्रपितामह थे। परन्तु आपको यह पता कहां से लगा?"

रामसुन्दर ने कहा—सव के बाप-दादों का नाम हमारी बही में लिखा रहता है। इस देश में कोई ऐसा बडा आदमी नहीं, जिसके बांप, दादे, परदादे का नाम मुझे न मालूम हो। रहे छोटे आदमी, सो उनके दादे-परदादे का नाम जानने की चेष्टा कौन करे, एक तरह से व्यर्थ ही है।

जगन्नाथ और छिदाम ने आज से अपने प्रपितामह का नाम या
कर रखा। परन्तु पितामह का नाम अभी तक नहीं मालूम हुआ, इ
पिता के नाम में भी कुछ सन्देह था। प्रपितामह का नाम जान कर इ
नामों को जानने की भी फ़िक्र पड़ी। लज्जा के मारे घटक से पूछने क
साहस न हुआ। सोच विचार कर निश्चय किया कि बातचीत
मौक़ा लगने पर किसी बहाने घटक ही के मुह से ये दोनों नाम भ
निकलवा लेंगे।

थोड़ी देर में रामसुन्दर घटक फिर कहने लगे—"महाशय, इस
देश के कुलीन कायस्थ तो आपके यहां सम्बन्ध नहीं करना चाहते।
वे कहते हैं, छिदाम विश्वास सद्गोपों की औलाद है। हां कृष्णमोहन
दत्त आपके यहां सम्बन्ध करने को राज़ी हैं, सो यदि आपको पसन्द हो
तो उनके लड़के के साथ शादी करले. नहीं तो मुझे ख़र्च-पात देकर
यशोहर, बाखरगंज की तरफ़ भेज दें। वहां बहुत कुलीन रहते हैं, और
वे लोग यहां वालों की अपेक्षा अच्छे कुलीन भी हैं।"

छिदाम ने ख़र्च-पात देकर रामसुन्दर को यशोहर, बाखरगंज
आदि पूर्वीय प्रदेशों की तरफ़ रवाना किया। रामसुन्दर यशोहर ज़िले
के अन्तर्गत चांचड़ा गांव में आये। सौभाग्य से वहां एक उच्च कुलीन
का लड़का मिल भी गया।

पांचकौड़ी मित्र नामक एक कुलीन कायस्थ बाखरगंज के अन्तर्गत
'राय की कोठी' नामक गांव में रहते थे। उपर्युक्त घटना के लगभग
बीस बरस पहिले पांचकौड़ी मित्र की मृत्यु हो चुकी थी। उनकी स्त्री
अपने तीन बरस के बालक पुत्र, मुरलीचन्द्र मित्र को साथ लेकर यशोहर
ज़िले के अन्तर्गत चांचड़ा ग्राम में अपने पिता के यहां रहने लगी थी।
मुरली की अवस्था जब पंद्रह बरस की हुई, तब उनकी माता का भी

प्राणान्त हो गया। अब उनकी अवस्था कोई बाईस-तेईस बरस की है, और वे इसी चांचडा गाव में अपने ननिहाल में रहते है।

रामसुन्दर घटक ने इन्ही सुबल मित्र के साथ छिदाम की कन्या का सम्बन्ध स्थिर किया। सुबल का चरित्र बहुत बुरा नही कहा जा सकता। दूसरे, उस ज़माने मे कन्या का विवाह निश्चित करते वक्त वर का चरित्र अच्छा है या बुरा, इसे कोई नहीं देखता था। सिर्फ़ कुल देखा जाता था। चरित्र कैसा ही हो, उससे कुछ मतलब नही, कुलीन होना चाहिये। आजकल वर्त्तमान समय मे भी चरित्र के विषय में लोग विशेष पूछताछ नही करते है। सिर्फ़ यह देखते है कि लडका बी० ए०, एम० ए० कुछ पास है या नहीं।

सुबल का चरित्र बुरा नही था, परन्तु वह कुछ गाजा पीते थे, और बुरे आदमियो का संग-साथ रहने के कारण उनमें तनिक ऐयाशी का दोष आ गया था। शराब वे बहुधा नही पीते थे, हां कभी-कभी पी लेते थे; परन्तु सो भी इतना हम निश्चय कह सकते है कि अपना पैसा ख़र्च करके उन्होने कभी शराब नहीं पी। अन्यान्य लोगो के साथ बहे मे कभी कभी पी लेते थे। उस वक्त इस देश में सुरापान-निवारिणी अथवा मादक वस्तु निषेध-कारिणी सभाएँ नहीं थीं। सुबल ने इस आशय के किसी प्रतिज्ञापत्र पर कभी हस्ताक्षर नहीं किये थे कि हम शराब हाथ से नही छुएंगे। अतएव ऐसी दशा में यदि कभी छठे-छमाहे उन्होने पी भी ली तो उसके लिए हम उन्हें विशेष अपराधी नही समझते। सुबल ने पाठशाला मे बंगला लिखना सीख लिया था; परन्तु छापे के अक्षर पढ़ने में उन्हें दिक़्क़त होती थी। उस वक्त इस देश में छापेखाने नहीं थे; इसलिए छापे की पुस्तकें देखने में भी बहुत कम आती थी।

रामसुन्दर घटक सुबल मित्र के साथ छिदाम विश्वास की कन्या का सम्बन्ध स्थिर करके मुर्शिदाबाद लौटे। बहुत बढ़िया कुलीन के यहां कन्या का विवाह सम्बन्ध निश्चित होने की बात सुनकर छिदाम को बड़ी खुशी हुई। पांच सौ रुपये की मोहरें और दो सौ रुपये के मूल्य की एक काश्मीरी शाल रामसुन्दर घटक को इनाम में दी। विवाह के बाद घटक महाशय को और भी बहुत कुछ देने-दिलाने का वचन दिया।

बड़े समारोह के साथ छिदाम विश्वास, सुबल मित्र को नाव के रास्ते, यशोहर से मुर्शिदाबाद लिवा लाये। विवाह की तिथि पहिले से निश्चित हो चुकी थी। कन्या के विवाह में छिदाम ने कोई पचास हजार रुपया खर्च किया। पाधा-पुरोहितों की चढ़ बनी, खूब माल मिला। मुहल्ले की नाइन, प्यारी की मां, श्यामा की मां इत्यादि स्त्रियां घर-घर जाकर कहने लगीं—दस लाख रुपये का चिट्ठा तयार हुआ था, पर विवाह में क़रीब बीस लाख रुपया ख़र्च हुआ। परन्तु रूपा की मां कहती थी—पन्द्रह लाख ख़र्च हुआ। निदान इस विषय में इन स्त्रियों के बीच यावज्जीवन मतभेद ही रहा।

यह सोचकर कि मेरे कोई पुत्र है नहीं, भविष्य में मेरा दामाद ही मेरी प्रभूत सम्पत्ति का अधिकारी होगा—छिदाम ने इसके लिए विशेष उद्योग करना प्रारम्भ किया कि सुबल को विविध विषयों की शिक्षा दिलावें और शास्त्र का अध्ययन करावें। उनके पड़ोस में दो पाठशालाएं थीं। एक रामदास शिरोमणि की, दूसरी हरिदास तर्क-पंचानन की। छिदाम स्वयं इन दोनों पण्डितों के पास गये, और उनसे अपने दामाद को शास्त्र की शिक्षा देने का अनुरोध किया। परन्तु इन लोगों ने कहा कि ब्राह्मण के अतिरिक्त किसी जाति को शास्त्रा-ध्ययन का अधिकार नहीं। यदि कोई ब्राह्मण अध्यापक किसी अन्य जातीय पुरुष को शास्त्र का अध्ययन करावे तो शास्त्र की आज्ञानुसार उस ब्राह्मण को पतित होना पड़ता है।

यदि यह कहा जाय कि हिन्दू-शास्त्र मे छिदाम की बडी श्रद्धा थी, और इसी कारण उन्होंने अपने दामाद को शास्त्र की शिक्षा दिलाने का विचार किया था, सो बात नही। बल्कि छिदाम का यह ख़्याल था कि शास्त्र की शिक्षा प्राप्त किये बिना भद्र-समाज में मनुष्य का आदर नही होता। भले आदमियों मे बैठकर जो व्यक्ति संस्कृत के दो चार श्लोक जबानी सुना सकता है, उसी की वाह-वाह होती है, उसी की लोग तारीफ़ करते है। यही सोच कर छिदाम अपने दामाद को संस्कृत-पाठशाला में भेजने की बहुत कोशिश कर रहे थे। विशेषतः छिदाम जब कभी स्वयम्, भले आदमियो की किसी सभा-सोसाइटी में जाते थे तो मन ही मन बड़े कुण्ठित होते थे। सभा में उन्हें चुप बैठा रहना पडता था। संस्कृत का एक भी श्लोक उन्हें नहीं आता था। उनके पास रुपया-पैसा सब कुछ था, किसी बात की कमी नहीं थी; परन्तु पढ़े-लिखों की समाज में उन्हें कोई नही पूछता था। सभा में बोलने की उनमें रत्ती भर भी ताकत नही थी। इसी मारे क्सिी सभा-समाज में प्रायः वे जाते ही नही थे।

छिदाम कुछ लिखना पढना नहीं जानते थे। ज्यों-त्यो सिर्फ़ अपना नाम लिखना सीख लिया था। सो भी सौभाग्य से नाम 'छिदाम' था, तब सीख भी लिया; पर यदि कहीं उनका नाम मृत्युञ्जय अथवा गंगागोविन्द होता तो बडी आफ़त होती।* परन्तु जिसके पास धन हो, वह चाहे मूर्ख ही हो, पर उसे मूर्ख कहता कोई नहीं। गांव के अशिक्षित आदमी कहा करते थे—छिदाम बाबू बंगला, फ़ारसी, नागरी तीनों क़लम के उस्ताद हैं। इधर विवाह के मामले में एक बरस तक चारों ओर चक्कर लगाने पर रामसुन्दर घटक ने हज़ारों आद-

*बंगला में 'ञ' और 'ङ्' आदि अक्षरों की लिपि विशेष कठिन है। अनुवादक।

मियों में यह प्रसिद्ध कर दिया कि छिदाम विश्वास बंगला और फ़ारसी-दो भाषाओं पर पूरा अधिकार रखते हैं। फ़ारसी ज़बान में तो उनकी लियाक़त बहुत ही बढ़ी-चढ़ी है। ठीक मौलवियों की तरह फ़ारसी किताबें पढ़ सकते हैं।

तर्क-पंचानन और शिरोमणि ने यद्यपि अपनी पाठशालाओं में छिदाम के दामाद को शास्त्राध्ययन कराना अस्वीकार किया, तथापि छिदाम ने अपने संकल्प को नहीं त्यागा। छिदाम वाल्टस साहब के गुमाश्ता ठहरे, चालाकी और होशियारी से काम निकाल लेने में खूब दक्ष थे। उन्होंने एक दिन चुपचाप हरिदास तर्क-पंचानन को बुलाकर कहा—"पण्डित जी आपको दो सौ रुपया मासिक दूंगा, आप गुप्त रूप से मेरे दामाद को संस्कृत पढ़ाना शुरू करदें।" इतने रुपये का लाभ तर्क-पंचानन जी से न छोड़ा गया। सुबल को उन्होंने मुग्धबोध व्याकरण पढ़ाना आरम्भ कर दिया।

छिदाम जब कभी अपने दामाद से पूछते थे—"बेटा! आजकल क्या पढ़ते हो?" सुबल कहते थे—'आजकल मुग्धबोध व्याकरण पढ़ रहा हूँ।' इससे ज्यादा बातचीत करने में छिदाम यह सोचते थे कि कहीं दामाद को इसका पता न लग जाय कि मैं (छिदाम) संस्कृत नहीं जानता हूँ। अतएव इस सम्बन्ध में अधिक बातचीत न करके छिदाम सिर्फ इतना ही कह कर चुप हो जाते थे कि "हां बेटा, खूब मन लगा कर पढ़ा करो। मुग्धबोध व्याकरण समाप्त कर लेने पर तुम्हें हमारे यहां की साधारण पूजा-अर्चा का काफ़ी ज्ञान हो जायगा, और शास्त्र में अच्छी गति हो जायगी।"

कासिमबाजार की कोठी से छिदाम हर रोज़ शाम के नौ बजे घर को लौटते थे। उनकी पालकी के कहार घर से कुछ पहिले पालकी

ले कर कोठी पर आ जाते थे। कन्या का विवाह हो जाने के चार-पांच महीने बाद एक दिन शाम के सात बजे ही छिदाम को आफिस के काम-धंधे से छुट्टी मिल गई। पालकी आने में दो घंटे की देर थी, इस लिए उसका इन्तज़ार न करके एक आदमी को साथ ले उस रोज पैदल ही घर को चल दिये। क़ासिमबाजार से करीब आध कोस के फासिले पर पहुँचे होंगे कि एक जगह रास्ते के दोनों बाजुओं से दो लट्ठबन्द आदमी एकाएक छिदाम के ऊपर टूट पड़े, और उनके सिर पर दनादन लट्ठ फटकारने लगे। छिदाम बेहोश हो गिर पड़े। उनके साथी ने भाग कर कासिमबाज़ार की कोठी में खबर दी, और वहां से पांच-सात आदमियों को साथ ले तुरन्त ही छिदाम के पास दौड़ा आया; परन्तु घटनास्थल पर पहुँच कर देखा कि वे दोनों आदमी वहां से चले गये हैं, छिदाम का मृत शरीर बीच रास्ते में पड़ा हुआ है। आये हुए आदमियों में सब किसी ने ख्याल किया कि हो न हो, हलधर तन्तुकार ने छिदाम का खून किया है। इससे कुछ दिनों पहिले बोल्ट्स साहब की दादनी का रुपया वसूल करने के लिए छिदाम ने हलधर का घर लूट लिया था। हलधर कहीं भाग गया, उसे गिरफ्तार न कर सके। हां, छिदाम की मृत्यु के दूसरे दिन एक पुरुष और दो स्त्रियों के शव गंगा में उतराते जा रहे थे, उनमें से पुरुष के शव को देख कर बहुतों ने यह कहा था कि यह हलधर तन्तुकार का शव है।

हलधर का घर लूटने से पहिले छिदाम ने उससे कहा था कि मुझे तीन सौ रुपया दे। यदि नहीं देगा तो मैं न सिर्फ़ तेरा घर ही लूट लूँगा, बल्कि तेरे घर की स्त्रियों को बेइज्जत भी करूँगा। हलधर उस वक्त तीन सौ रुपये न दे सका। इस पर छिदाम ने हलधर की निरपराधिनी स्त्री और कन्या को पकड़ लाकर ... ...इत्यादि रोमांचकारी व्यापार आरम्भ किया।

जिस वक्त इन दो असहाय, निरपराधिनी अवलाओं के ऊपर इस प्रकार का क्रूर और नृशंस अत्याचार हो रहा था, उस वक्त ये शारीरिक यंत्रणा के मारे अधीर हो रही थी। ऊपर को नेत्र उठाये, आकाश की ओर टकटकी बाधे कहती थी—"हे परमेश्वर, क्या तुम इस संसार में नहीं हो! हमने कम्पनी का कोई अपराध नहीं किया। तुम्हीं इसका न्याय करोगे।"

हलधर को हाथ पांव बांध कर डाल दिया गया था। यदि ऐसा न होता तो उसी वक्त छिदाम का सिर धड से अलग कर दिया जाता। परन्तु हलधर को अपनी जगह से हिलने की भी शक्ति न थी, तीन सिपाही उसकी पीठ के ऊपर बैठे हुए थे।

पाठक! सन् १७५७ ईसवी के वाद छिदाम जैसे कितने ही निर्दय, नरपिशाच बंगाली, अंगरेज़ व्यापारियों की रेशम की कोठियों या नमक के कारखानों मे काम करते रहे थे, आज उनके पौत्र-प्रपौत्र आदि वंशजों में से वहुतेरे बंगाल के प्रतिष्ठित (Aristocracy) पुरुषों में गिने जाते हैं! हम इन प्रतिष्ठावानों को एक बार स्मरण दिलाते हैं कि बंगाल के तत्कालीन कारीगरों, किसानों, व्यापारियों और विविध प्रकार के श्रमजीवियों का शोणित इनके शरीर का परिपोषण कर रहा है। उस ज़माने के उन निरपराध मनुष्यों के सर्वनाश के ऊपर इनके प्रतिष्ठा सम्बन्धी गौरव की नींव संस्थापित है। परन्तु पाठक! आप अंगरेज़ी कवि गोल्डस्मिथ की इस वात का स्मरण करें—

Princes and Lords may flourish, or may fade,
A breath can make them, as a breath has made,
But a bold peasantry, their country's pride,
When once destroyed, can ne'er be *supplied.*
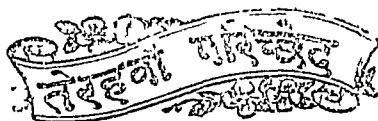
बाबा प्रेमानन्द और भक्तानन्द वैरागी

छिदाम की मृत्यु के बाद जगन्नाथ विश्वास और उनके बड़े लड़के यादवेन्द्र बाबू छिदाम के तालुके तथा अन्यान्य जायदाद की देखभाल करने लगे। इस घटना के प्रायः तीस बरस बाद यही यादवेन्द्र बाबू महाराज यादवेन्द्र के नाम से प्रसिद्ध हुए थे।

सुबल मित्र छिदाम के ही घर में रहने लगे। छिदाम की स्त्री पहले भी कोई काम-धंधा नहीं करती थी, फिर आजकल तो वह स्वामी के शोक मे व्याकुल पड़ी रहती है। अतएव इस वक्त कोई उनसे किसी काम के लिए कहने का साहस ही कैसे कर सकता था। दूसरे एक बात यह थी कि छिदाम की छोड़ी हुई नक़दी सब उन्हीं के पास थी। छिदाम के पास कोई पचास लाख रुपया नक़द था। जिसमें से चालीस लाख रुपया दादनी से बँटा हुआ था। इन सब रुपयों के दस्तावेज़ और इक-रारनामें छिदाम ने अपनी स्त्री ही के नाम लिखवाये थे। परन्तु ये सब काग़ज़ात रखे जगन्नाथ के पास थे। जगन्नाथ अपनी स्त्री आह्लादी से छिदाम की स्त्री की सेवा-टहल करने का अनुरोध करते रहते थे। आह्लादी बड़ी सीधी-सादी और शान्त स्त्री थी। कभी ज़ोर से बातें भी नहीं करती थी। बेचारी प्राणपण से छिदाम की स्त्री की सेवा-शुश्रूषा करती रहती थी। अब उसे घर का बहुत काम-धंधा नहीं करना पड़ता था। उसके पुत्र यादवेन्द्र बाबू घर के मालिक थे; इसलिए नौकर-चाकर सब उससे दबने लगे थे। दूसरे उसकी बहू और कन्याएँ सयानी हो आई थीं, वही सब घर का काम-धंधा सँभालने

लगी। आह्लादी छिदाम की स्त्री को स्नान करवाती थी, उनके लिए रसोई का प्रबन्ध करती थी। कभी कभी अपने ही हाथों भोजन भी तैयार कर देती थी। छिदाम की स्त्री स्वामी के शोक में प्राय रात दिन चारपाई पर पडी रहती थीं। तथापि अपना पुराना दैनिक कार्य अब भी निबाहे जाती थीं—तीसरे पहर जिस वक्त मुहल्ले की भिन्न भिन्न स्त्रियां उनके पास आकर जमा होतीं, उस वक्त उनके साथ बैठ कर पास पडोस की युवती विधवाओं तथा अन्यान्य स्त्रियों के चरित्र की आलोचना बड़े चाव से किया करती थीं।

छिदाम की मृत्यु के पहिले ही गांव के लोग छिदाम की स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध में कानाफूसी करने लगे थे। छिदाम की मृत्यु के बाद उस कानाफूसी ने ज़ोर पकडा। चारों ओर उनकी स्त्री के कुकर्मों की चर्चा फैलने लगी।

सुबल मित्र ने अब मुग्धबोध व्याकरण पढना छोड दिया। हर रोज़ अपनी सास से दस बारह रुपये मांग ले जाते है, और मज़े में गांजा-शराब उडाते हैं। गाव के चार-पांच नौजवान उनके यार-दोस्त बन गये हैं।

छिदाम की कन्या हेमलता इस समय ग्यारह बरस की है, और सुबल मित्र की अवस्था लगभग चौबीस बरस की होगी। कभी-कभी जब वे शराब पी कर आते हैं तो हेमलता को पीटने लग जाते हैं। हेमलता मार के डर से अपने स्वामी के पास नहीं फटकती। रात को अपनी बडी अम्मा (जगन्नाथ की स्त्री) के पास लेटा करती है। जगन्नाथ की स्त्री उसे बहुत ही प्यार करती थी। अपनी कन्या से भी अधिक स्नेह के साथ उसका लालन-पालन करती थी।

एक दिन हेमलता को न जाने क्या सूझा। इससे पहिले वह सुबल को देखते ही डर के मारे किसी कोने में जा छिपती थी। परन्तु

आज उसने बड़ी निर्भीकतापूर्वक सुवल के पास जाकर उन्हें डांटना शुरू किया। चिल्लाकर कहने लगी—"अच्छा हो, तू मर जाय, मैं सदा के लिए विधवा हो जाऊँ !"

हिन्दू स्त्रियां अपने स्वामी से और चाहे जो कुछ कहें, पर ऐसा दुर्वाक्य कभी नहीं कहतीं। तिस पर भी हेमलता बड़े सीधे स्वभाव की लड़की थी। किस लिए हेमलता को सुवल पर इतना गुस्सा आया, नहीं मालूम। आज तीन-चार दिन से वह अपनी माता के पास नहीं जाती थी और न उनसे बातचीत करती थी। सुवल मित्र और दिन तो हेमलता को पीटते थे, परन्तु आज उनके स्वभाव में न जाने क्या परिवर्तन हो गया कि हेमलता की फटकार सुनकर वे बिल्कुल ख़ामोश हो रहे। तीसरे पहर की यह बात थी। इसके बाद शाम को हेमलता ने कुछ नहीं खाया-पिया। शरीर अस्वस्थ बतला कर चुपचाप पड़ रही। अब से पहिले वह हर रोज़ जगन्नाथ की स्त्री के पास लेटती थी। परन्तु आज वह अपने कमरे में अलग बिछौने पर जा लेटी। जगन्नाथ की स्त्री ने ख्याल किया कि शायद आज वह अपने पति के पास लेटेगी। इसलिए उसने उसे अपने पास सोने के लिए नहीं बुलाया। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात! रात बीती, सवेरा हुआ, दिन चढ़ आया, दुपहर होगई, हेमलता अभी तक अपने कमरे से बाहर नहीं निकली। कमरे का दरवाज़ा बन्द है। जगन्नाथ की स्त्री सवेरे से अब तक कोई तीन दफे हेमलता को दरवाज़ा खोलने के लिए पुकार चुकी है। पर किसी दफे कोई उत्तर नहीं मिला। चौथी दफे आकर वह ज़ोर से किवाड़ खटखटाने लगी, पर कोई उत्तर न पाया। अब वह मन ही मन विविध आशंकाएं करने लगी। कल शाम को हेमलता ने कुछ भोजन नहीं किया, शरीर अस्वस्थ बतलाती थी, यह सोचकर जगन्नाथ की स्त्री ने अपने पुत्र यादवेन्द्र से यह हाल कहा। उन्होंने किवाड़ों की जंजीर

तोड कर दरवाज़ा खोला। कैसा भयानक दृश्य! कैसा भीषण व्यापार! हेमलता का मृत शरीर सामने रस्सी में लटक रहा है। निर्मल-हृदया बालिका हेमलता ने फांसी लगा कर आत्महत्या की है! प्रतिष्ठित घराने में यदि कोई स्त्री इस प्रकार आत्महत्या कर ले तो उसके घर-वाले आत्महत्या की बात यथाशक्ति गुप्त रखने की चेष्टा करते है। हेमलता के घरवालो ने प्रकट किया कि अतीसार मे उसकी मृत्यु हो गई। इधर चटपट उसके मृत शरीर का दाह-संस्कार कर डाला।

परन्तु ऐसी बातें कही गुप्त नहीं रह सकती। हेमलता की आत्महत्या की चर्चा गांव मे चारों ओर फैल गई, और उसके साथ ही साथ छिदाम की स्त्री के सम्बन्ध में विविध प्रकार के अपवाद उडने लगे। सुबल मित्र अपनी स्त्री की मृत्यु के बाद भी ससुराल ही में बने रहे। जगन्नाथ विश्वास ने अपनी मृत भतीजी (सुबल की स्त्री) के आभूषणों की कीमत के तौर पर पचीस हज़ार रुपया नक़द सुबल को देना चाहा, और इस बात की चेष्टा की कि वह हमारे यहां से चला जाय। परन्तु सुबल हर्गिज़ वहां से टलने को राजी न हुए। इधर जगन्नाथ के पुत्र यादवेन्द्र बाबू जब कभी सुबल से चले जाने के लिए कहते थे, तो छिदाम की स्त्री कन्या के शोक में रोना-पीटना शुरू कर देती थीं। सुबल से कोई तनिक भी कुछ कहता, बस तुरन्त ही वे कन्या के शोक में बेकल हो उठती थीं।

एक दिन जगन्नाथ और यादवेन्द्र ने एकान्त में सुबल को बुलाकर कहा कि तुम यहां से नहीं जाओगे तो हम तुम्हें गरदनियां देकर घर से निकाल देंगे। परन्तु सुबल का जन्मस्थान बारागंज ठहरा, यशोहर की पाठशाला में उन्होंने शिक्षा पाई थी। अतएव वे कोई ऐसे-वैसे आदमी नहीं थे। उन्होंने इसके जवाब में जगन्नाथ और यादवेन्द्र से

कहा—"तुम लोग चौबीस घण्टे के भीतर इस घर से निकल जाओ। यह सारी सम्पत्ति मेरे ससुर की पैदा की हुई है। वे अपनी सारी जायदाद अपनी ज़िन्दगी ही मे अपनी कन्या को दान कर गये हैं। उनका दान-पत्र मेरे बक्स मे रखा है। मेरी स्त्री की मृत्यु के बाद यह सब जायदाद और सम्पत्ति मेरे सिवा और किस की हो सकती है?"

जगन्नाथ विश्वास सुबल की यह बात सुन कर डर के मारे कांपने लगे। आज के बाद फिर कभी उन्होंने सुबल से घर छोड जाने को नहीं कहा। कुछ दिन इसी तरह बीते। सुबल मित्र बाखरगंज के आदमी थे, यशोहर मे उनका ननिहाल था। इसलिए चालबाज़ी में किसी से कम नहीं थे। जिस वक्त चाहते, एक जाली दानपत्र तैयार कर सकते थे। परन्तु सोचते यह थे कि यदि एक बार दो-चार दिन के लिए भी इस घर को छोड कर कहीं गये तो फिर हमारा घुसना दुशवार हो जावेगा। इसी कारण वे दानपत्र का संग्रह न कर सके। उसके लिए ज़रा दौडधूप की ज़रूरत थी।

इधर छिदास की स्त्री के चरित्र के सम्बन्ध मे लोगों ने विविध प्रकार के अपवाद उडाने शुरू किये। जगन्नाथ विश्वास को यह चिन्ता लगी कि हमे कहीं जातिभ्रष्ट न होना पड़े। छिदास की स्त्री को इस पर पूरा-पूरा विश्वास नहीं होता था कि उनके सम्बन्ध मे गांव मे तरह तरह की बदनामी फैल रही है। नित्यप्रति गंगा-स्नान करने जाने के अतिरिक्त वे कभी घर से बाहर नहीं निकलती थीं। सो वहां भी पालकी पर चढ कर जाती थीं। अतएव यह जानने का मौक़ा ही उन्हें नहीं मिलता था कि गांव में उनके सम्बन्ध में कौन क्या कह रहा है। टोला-मुहल्ला की जो स्त्रियां उनके पास आती जाती थी वे सभी उनसे खुशामद का रखती थी, उन्हें खुश करने की चेष्टा में लीन रहती थीं।

किसी को कोई कपड़ा दे देती थीं, कभी किसी को दो-चार पैसे दे डालती थीं। निदान उनके पास से कोई स्त्री खाली हाथ घर नहीं लौटती थी। इसलिए आने-जाने वाली सभी स्त्रियां मुंह पर उनकी खूब तारीफ़ किया करती थीं।

कोई-कोई कहतीं—"छोटी मालकिन, आप तो साक्षात् अन्नपूर्णा हैं। आपकी बदौलत हम कितने ही ग़रीबों का पालन हो रहा है।"

कोई-कोई कहतीं-- "देश के सब लोग आप को धन्य-धन्य कह रहे हैं। इस देश में भला आप जैसी सती-साध्वी, पुण्यवती स्त्रिया कितनी है?" मुहल्ले की नाइन कहती "श्रीमती, रात-दिन कितनी ही विधवाओं की बदनामियां सुना करती हूँ। परन्तु आप जब से विधवा हुई, चन्द्र-सूर्य ने भी आपका मुह नहीं देख पाया।"

इन स्त्रियो की ज़बानी अपनी ऐसी प्रशंसा सुन कर छिदाम की स्त्री बहुधा कहा करती थीं—"स्वामी की मृत्यु हो गई, उनके बाद मेरे एकमात्र इकलौती कन्या थी, वह भी चल बसी। अब एकमात्र भगवान ही के श्री-चरण मे मेरी गति है।"

इस संसार में आत्माभिमानिनी दुश्चरित्रा स्त्रियां प्राय नितान्त निर्बोध देखी जाती हैं। छिदाम की स्त्री इन स्त्रियों की बातें सुन कर वास्तव में यही समझती थी कि देश के सब लोग उसे सती-साध्वी और पुण्यवती समझते है। वह इन स्त्रियों की बातों पर पूरा विश्वास करती थी।

पुरोहित महाशय जब-तब आकर छिदाम की स्त्री को चण्डी का पाठ सुनाया करते थे। पूर्व में बंगाल की स्त्रियां चण्डी श्रवण को एक मन के तौर पर मानती थीं। पुरोहित महाशय अधिक अर्थ-लाभ की आशा में जल्दी-जल्दी चण्डीपाठ समाप्त करके छिदाम की स्त्री की प्रशंसा

के पुल बांधने लगते थे। कहते थे—"मा लक्ष्मी! प्रात काल आपका नाम लेने से दरिद्र को भी अन्न मिलता है।"

चण्डी-पाठ के समय छिदाम की स्त्री कुछ निरपेक्ष सी बैठी रहती थी। चण्डी का एक शब्द भी उनकी समझ में नही आता था, बल्कि वे शब्द उनके कानो मे भी प्रवेश नही करते थे। परन्तु पुरोहित महाशय जब उनकी प्रशसा आरम्भ करते, तब उनके कानो मे अविराम अमृत का मेह बरसता था।

छिदाम की मृत्यु के बाद कोई सात आठ महीने इसी तरह बीत गये। एक दिन जगन्नाथ विश्वास की स्त्री ने एकान्त में अपने पति से कहा—"तुम्हारी भौजाई का हाल अच्छा नही है। जहां तक हो सके शीघ्र ही कोई उपाय करो। नही तो जात-पांत और इज्जत-आबरू सब से हाथ धोना पडेगा।"

जगन्नाथ ने कहा—"मुझे इसका कोई उपाय सुझाई नहीं देता।" जगन्नाथ की अपेक्षा उनकी स्त्री अधिक होशियार थी। उसने कहा—"गुरु जी को बुलाकर यदि शीघ्र ही इन्हे उनके साथ, वृन्दावन या काशी, कहीं न भेज दोगे तो एकदम सर्वनाश हो जायगा! गांव-बस्ती मे मुंह दिखाने योग्य नही रहोगे। चारो ओर बदनामी फैल रही है। सब इसकी चर्चा कर रहे हैं।"

जगन्नाथ कुछ नाराज़ होकर बोले—"घर की ये सब गोपनीय बाते बाहर प्रकट कौन करता है?" उनकी स्त्री ने कहा—"ये बातें कब गुप्त रह सकती हैं। विशेषतः ये श्यामा की मां, रूपा की मां, नाइन, कहारिन इत्यादि हर रोज़ हमारे यहां आती जाती हैं। तुम्हारी भौजाई के पास बैठ कर विविध वार्तालाप किया करती है। मुंह पर तो उनकी प्रशसा करती हैं; परन्तु पीठ पीछे घर-घर निन्दा करती हैं। एक घर की बात दूसरे घर में कहना यही इनका काम है।"

उन दिनो बंगाल में बंगवासी इत्यादि बंगला समाचार-पत्र नहीं थे। परन्तु समाचार-पत्रों के न रहते हुए भी, गांव के लोग स्थानीय समाचारो को कतई न जान सकते हो यह मानने के लिए हम तैयार नही। उस वक्त रामा की मां, श्यामा की मां, मोहिनी की मा, नाइन, कहारिन इत्यादि देश-हितैषिणी स्त्रियां स्थानीय समाचारों को अपने अपने मुख से घर-घर में प्रचारित कर के आज के बंगवासी आदि समाचार-पत्रों का अभाव दूर किये रहती थीं।

स्त्री के मुह से ये सब बातें सुन कर जगन्नाथ को बड़ी चिन्ता हुई। जगन्नाथ बेचारे निम्न-श्रेणी के शूद्र थे। अभी दस बरस भी नहीं हुए कि वे शूद्र से कायस्थ बने हैं। दिन-रात इसी की चिन्ता में लीन रहते थे, दिन-रात इसी पर लक्ष्य रखते थे कि किस प्रकार प्रतिष्ठित समाज में सम्मान प्राप्त करें, किस प्रकार कुलीन कायस्थों के यहा रोटी-बेटी का व्यवहार करें। यही उनके जीवन का एकमात्र उद्देश्य था। गांव के अन्यान्य शूद्र एकाएक उन्हें कायस्थों के समाज में सम्मिलित होते देख कर, उनसे बहुत जलते थे और सदा ही उन्हें विद्वेष की दृष्टि से देखा करते थे। अतएव इस सोच में जगन्नाथ को रात भर नींद नहीं आई कि ये लोग जब मेरे घर की कोई बदनामी सुनेंगे तो बड़े आनन्द के साथ चारों ओर उसकी घोषणा कर देंगे।

सवेरे उठते ही उन्होंने अपने गुरु जी को बुलाने के लिए एक आदमी काटोया भेजा। काटोया के बाबा प्रेमानन्द उनके गुरु थे। इधर छिदाम की स्त्री को बहुत कुछ समझाने-बुझाने लगे—"भौजाई, तुम अब तीर्थ-व्रत्त करो, धर्म-कर्म में मन लगाओ। श्री वृन्दावन जाकर धर्मानुष्ठान में लीन होजाओ। श्री वृन्दावन-वास से निश्चय ही तुम्हें स्वर्ग-लाभ होगा।"

छिदाम की स्त्री इन रियासत-जायदाद, धन-माल, महल-मकान को छोड़ कर तीर्थ-गमन के लिए राज़ी न हुई। परन्तु बाद में जब जगन्नाथ के पुत्र यादवेन्द्र बाबू ने उसे बहुत कुछ डराया-धमकाया और ज़बरदस्ती वृन्दावन भेज देने की धमकी दी, तब अनन्योपाय हो छिदाम की स्त्री को वृन्दावन जाने के लिए बाध्य होना पड़ा। कुछ ही समय में यह खबर फैल गई कि छिदाम विश्वास की विधवा स्त्री अपनी सब जायदाद और घर-बार छोड-छाड कर श्री वृन्दावन-वास के लिए जाने वाली हैं।

रामा की मां, श्यामा की मां, रूपा की मां, नाइन, कहारिन इत्यादि छिदाम की स्त्री के पास आईं और रोते रोते कहने लगी—"आहा! मा लक्ष्मी! तुम्हारे चले जाने से इस देश में अन्धकार छा जावेगा। इन सैकडो गरीब कंगालो की बात कौन बूझेगा? तुम साक्षात् अन्नपूर्णा ही थी।

छिदाम की स्त्री ने कहा—"इस संसार में अब मेरे लिए कोई सुख नहीं। पति ही स्त्री का सुख है, पति ही स्त्री का धर्म है, पति ही स्त्री का स्वर्ग है। वे इतना रुपया पैदा करके रख गये, परन्तु आज की घडी तक गया में उनकी पिण्ड-क्रिया तक नहीं हुई। अप-मृत्यु से मरने पर, सुना है, जब तक गया में मृतक की पिण्ड-क्रिया नहीं होती, तब तक उसकी मुक्ति नहीं होती। इस वक्त एकमात्र इसी की चेष्टा करना मेरा प्रधान कर्त्तव्य है कि जिससे उन्हें मुक्ति प्राप्त हो और परलोक मे वे सुख से रहें। मैं अपनी सारी जायदाद अपने जेठ और भतीजे के नाम लिख कर दो ही चार दिन के भीतर यहां से चली जाऊंगी।"

छिदाम की सारी जायदाद उनकी स्त्री के नाम थी। जगन्नाथ इससे पहिले ही मन में निश्चय कर चुके थे कि सब जायदाद की लिखा-

पट्टी अपने नाम करा लेंगे। परन्तु उस समय इस देश में वकील, अटर्नी आदि नहीं थे। अतएव जगन्नाथ अपने गाँव के प्रधान मसविदा-लेखक रामगति मुन्शी को बुला लाये। रामगति घोष को लोग रामगति मुन्शी कहा करते थे। उस ज़माने में जो कोई भी फारसी जानता था, उसे लोग मुंशी कहा करते थे। परन्तु रामगति स्वयम् फ़ारसी नहीं जानते थे, बल्कि उनके पितामह किशोरनारायण घोष दस बारह दिन एक मौलवी के पास फारसी पढ़े थे। इसी कारण किशोरनारायण घोष के पुत्र-पौत्र सभी मुंशी कहलाये। इसके सिवाय रामगति की ज़बान से फ़ारसी के दो-एक जुमले भी कभी-कभी सुने जाते थे। किसी के यहां निमन्त्रण हो अथवा कोई सभा हो, तो उसके प्रारम्भ में रामगति "बिस्मिल्ला अर रहेमानर रहीम" इत्यादि दो-चार फारसी लफ्ज़ बोल दिया करते थे। अतएव रामगति के मुंशीपने में कोई कसर नहीं थी।

जगन्नाथ ने रामगति मुंशी से कहा—"मुंशी जी! सैकड़ों आदमियों के दस्तावेज़ात का मसविदा आप तैयार करते हैं। जब तक आपके हाथ का मसविदा न होगा, मेरे मन का सन्देह दूर नहीं हो सकता। कृपा करके मेरी छोटी भावज के त्यागपत्र का मसविदा बना दीजिये।" रामगति मुंशी केवल पट्टा, क़बूलियत, किवाला, दानपत्र इत्यादि काग़ज़ों का मसविदा ही नहीं करते थे, बल्कि बंगला भाषा में वे अनेकानेक भजनों की रचना भी किया करते थे। यहां तक कि उनके लिखे हुए पट्टा, कबूलियत में भी कभी कभी उनके स्व-रचित भजनों की कोई कोई कड़ी आ जाती थी। निदान रामगति मुंशी ने चश्मा नाक पर रखा और क़लम की परीक्षा करने के लिए एक रद्दी कागज़ के टुकड़े पर दो दफे 'दुर्गा-नाम' लिखा। बाद में एक लम्बा चौड़ा मसविदा तैयार करके पढ़ने लगे। हम रामगति मुंशी के इस पूरे मसविदे को यहां पर उद्धृत करने में असमर्थ हैं; पाठक इसके लिए हमें क्षमा करें। मस-

विदा बहुत बडा है। पूरा उद्धृत करने के लिए बहुत स्थान चाहिए। तथापि उस समय इस देश में जिस ढंग से दस्तावेज़ात लिखे जाते थे, उस ढंग का नमूना दिखाने के लिए उक्त मसविदे के कुछ अंशों को हम नीचे उद्धृत करते है—

"लिखितं श्री स्वर्णलता उर्फ़ वदनमणि ज़ौजा मृत छिदाम चन्द्र विश्वास साकिन मैदाबाद . . .. कस्य त्यागपत्र मिदं, आगे यह कि मेरे परलोकगत स्वामी मज़कूर की सारी स्थावर तथा अस्थावर सम्पत्ति आज तक मेरे दख़ल मे थी। चूंकि इस असार संसार में एकमात्र श्री गोविन्द भगवान के चरण ही मनुष्य के लिए सार हैं। और इस नाशवान् शरीर का किस समय अन्त हो जाय, इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, इसलिए मैंने सांसारिक धर्म को छोड तीर्थ-वास का संकल्प करके श्री श्री वृन्दावन धाम को चले जाने का निश्चय किया है। मै पति-पुत्रीहीना लावारिस स्त्री हूं; तुम्हीं (जगन्नाथ और यादवेन्द्र) मेरे ससुर के एकमात्र पिण्डाधिकारी और मेरे स्वामी मज़कूर के उत्तरकालीन वारिस हो। अतएव स्वामी मज़कूर की छोडी हुई सारी स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति—धन, माल, रियासत, जायदाद, तालुका, ज़िमींदारी के ऊपर मेरा जो जीवन-स्वत्व है, वह मैं तुम्हारे लिए छोडती हूँ। मेरे नाम की जगह तुम लोग, श्री श्रीयुक्त मन्सूरुलमुल्क हैबत जंग जहानी सिकंदर शाहकुली मुल्के बंगाल सूबेदार नवाब नाज़िम-उद्दौला बहादुर की सरकार में अपना नाम जारी करवाओ। परम्परा-क्रम से यह सारी जायदाद तुम्हारे दखल और कब्जे में रहे, तुम्हारे पुत्र, पौत्रादि सन्तान इसका भोग करें ।"

उपर्युक्त त्यागपत्र की लिखा-पढ़ी हो जाने के दो ही चार रोज़ बाद विश्वास परिवार के गुरु बाबा प्रेमानन्द जी आ उपस्थित हुए। छिदाम की स्त्री की इन्होंने बडी प्रशंसा की। बारम्बार उससे कहने

पढी अपने नाम करा लेंगे। परन्तु उस समय इस देश में वकील, आदमी आदि नहीं थे। अतएव जगन्नाथ अपने गांव के प्रधान मसविदा-लेखक रामगति मुन्शी को बुला लाये। रामगति घोष को लोग रामगति मुन्शी कहा करते थे। उस ज़माने में जो कोई भी फारसी जानता था, उसे लोग मुंशी कहा करते थे। परन्तु रामगति स्वयम् फ़ारसी नहीं जानते थे, बल्कि उनके पितामह किशोरनारायण घोष दस बारह दिन एक मौलवी के पास फारसी पढ़े थे। इसी कारण किशोरनारायण घोष के पुत्र-पौत्र सभी मुंशी कहलाये। इसके सिवाय रामगति की ज़बान से फ़ारसी के दो-एक जुमले भी कभी-कभी सुने जाते थे। किसी के यहां निमन्त्रण हो अथवा कोई सभा हो, तो उसके प्रारम्भ में रामगति "बिस मोल्ला अर रहेमानर रहीम" इत्यादि दो-चार फ़ारसी लफ्ज़ बोल दिया करते थे। अतएव रामगति के मुंशीपने में कोई कसर नहीं थी।

जगन्नाथ ने रामगति मुंशी से कहा—"मुंशी जी! सैकड़ों आदमियों के दस्तावेज़ात का मसविदा आप तैयार करते हैं। जब तक आपके हाथ का मसविदा न होगा, मेरे मन का सन्देह दूर नहीं हो सकता। कृपा करके मेरी छोटी भावज के त्यागपत्र का मसविदा बना दीजिये।" रामगति मुंशी केवल पट्टा, कबूलियत, क़िबाला, दानपत्र इत्यादि काग़ज़ों का मसविदा ही नहीं करते थे, बल्कि बंगला भाषा में वे अनेकानेक भजनों की रचना भी किया करते थे। यहां तक कि उनके लिखे हुए पट्टा, क़बूलियत में भी कभी कभी उनके स्व-रचित भजनों की कोई कोई कड़ी आ जाती थी। निदान रामगति मुंशी ने चश्मा नाक पर रखा और क़लम की परीक्षा करने के लिए एक रद्दी काग़ज़ के टुकड़े पर दो दफे 'दुर्गा-नाम' लिखा। बाद में एक लम्बा चौड़ा मसविदा तैयार करके पढ़ने लगे। हम रामगति मुंशी के इस पूरे मसविदे को यहां पर उद्धृत करने में असमर्थ हैं, पाठक इसके लिए हमें क्षमा करें। मगर

विदा बहुत बडा है। पूरा उद्धृत करने के लिए बहुत स्थान चाहिए। तथापि उस समय इस देश मे जिस ढंग से दस्तावेज़ात लिखे जाते थे, उस ढंग का नमूना दिखाने के लिए उक्त मसविदे के कुछ अंशों को हम नीचे उद्धृत करते है—

"लिखितं श्री स्वर्णलता उर्फ वदनमणि ज़ौजा मृत छिदाम चन्द्र विश्वास साकिन मैदाबाद कस्य त्यागपत्र मिदं, आगे यह कि मेरे परलोकगत स्वामी मज़कूर की सारी स्थावर तथा अस्थावर सम्पत्ति आज तक मेरे दख़ल मे थी। चूंकि इस असार संसार में एकमात्र श्री 'गोविन्द' भगवान के चरण ही मनुष्य के लिए सार है। और इस नाशवान् शरीर का किस समय अन्त हो जाय, इसका कोई ठौर-ठिकाना नहीं है, इसलिए मैने सांसारिक धर्म को छोड तीर्थ-वास का संकल्प करके श्री श्री वृन्दावन धाम को चले जाने का निश्चय किया है। मैं पति-पुत्रीहीना लावारिस स्त्री हूँ; तुम्ही (जगन्नाथ और यादवेन्द्र) मेरे ससुर के एकमात्र पिण्डाधिकारी और मेरे स्वामी मज़कूर के उत्तरकालीन वारिस हो। अतएव स्वामी मज़कूर की छोडी हुई सारी स्थावर और अस्थावर सम्पत्ति—धन, माल, रियासत, जायदाद, तालुका, ज़िमींदारी के ऊपर मेरा जो जीवन-स्वत्व है, वह मैं तुम्हारे लिए छोडती हूँ। मेरे नाम की जगह तुम लोग, श्री श्रीयुक्त मन्सूरुल्मुल्क हैवत जंग जहानी सिकंदर शाहकुली मुल्के बंगाल सूबेदार नवाब नाज़िम-उद्दौला बहादुर की सरकार में अपना नाम जारी करवाओ। परम्परा-क्रम से यह सारी जायदाद तुम्हारे दख़ल और कब्जे मे रहे, तुम्हारे पुत्र, पौत्रादि सन्तान इसका भोग करें ।"

उपर्युक्त त्यागपत्र की लिखा-पढ़ी हो जाने के दो ही चार रोज़ बाद विश्वास परिवार के गुरु बाबा प्रेमानन्द जी आ उपस्थित हुए। छिदाम की स्त्री की इन्होने बडी प्रशंसा की। बारम्बार उससे कहने

लगे "हां! तुमने बड़े अच्छे मार्ग का अवलम्बन किया है। तुम जैसे उच्च वंश की कन्या थीं, और जैसे उच्च कुल की वधू थीं, उसे देखते हुए मैं पहिले ही यह समझ चुका था कि एक न एक दिन श्रीगोविन्द भगवान के चरणों में तुम्हारा चित्त रमेगा। इस असार संसार में प्रभु के चरण ही एकमात्र सार हैं। श्रीगोविन्द के चरणों के अतिरिक्त सभी कुछ निस्सार है। तुम्हारे लिए अब यही उचित है कि साधु-महात्माओं का सत्संग करो, भक्ति-कथायें सुनो और नामामृत-पान में मस्त रहो। लो बस, अब तुम यही भेष ग्रहण कर लो। भेष लेकर मेरे साथ चलो। कुछ दिन मेरे आश्रम में रह कर सत्संग का सौभाग्य प्राप्त करना। बाद में बैसाख के महीने में मैं तुम्हें साथ लेकर श्री श्री वृन्दावन धाम को प्रस्थान करूंगा।"

छिदाम की स्त्री ने मूँड़ मुड़ा कर भेष ग्रहण किया। वैष्णव-धर्म की दीक्षा देते समय बाबाजी सोचने लगे, इनका नाम क्या रक्खें। छिदाम विश्वास एक प्रतापी आदमी थे। दैत्यराज रावण जैसा उनका प्रताप था। बल्कि उन्हें कलियुग का रावण ही कह दिया जाय तो कोई विशेष अत्युक्ति नहीं। अतएव बाबा जी ने सोचा कि भला जब इतने बड़े आदमी की स्त्री ने भेष धारण किया है तब उसे किसी छोटे-मोटे नाम से अभिहित करना उचित नहीं। दो घंटे का सोचा-विचारी के बाद बाबा प्रेमानन्द ने छिदाम की स्त्री को "ब्रजेश्वरी राय किशोरी"—इस लम्बे चौड़े नाम से विभूषित किया। बाबा जी ने सोचा कि ये जिस अखाड़े में रहेंगी, उस अखाड़े की अन्यान्य वैष्णवियों के ऊपर अवश्य ही इनका सिक्का जमा रहेगा। इनके पास बहुत सा रुपया है। रोज़ भण्डारा किया करेंगी। अतएव इनकी प्रधानता के चिह्न-स्वरूप इनका नाम अगर बढ़ा-चढ़ा कर न रखा जाय तो सर्वथा अनुचित होगा।

इस प्रकार जब छिदाम की स्त्री वैष्णव-धर्म में दीक्षित हो चुकीं तब उनके दामाद सुबल मित्र, बाबा प्रेमानन्द के पास आकर बोले—

"गुरुदेव ! मुझे भी अब इस असार संसार में रहने की इच्छा नही है। बाल्यावस्था में ही माता-पिता की मृत्यु होगई थी। बाद मे मेरे ससुर, जो मेरे लिए पिता ही के समान थे, वे भी चल बसे। अब जो कुछ है सो मेरी सास ही हैं। संतान की भांति ये मुझ पर स्नेह रखती है। अतएव जब ये भेष धारण कर तीर्थवास को जा रही है, तो मैं भी भेष धारण कर इन्हीं के साथ रहूँगा। ये बड़े घर की स्त्री है, किसी प्रकार की तकलीफ़ इनसे सहन नही होती। तीर्थ-भ्रमण के समय रास्ते मे तरह तरह की तकलीफें होती हैं। मैं साथ रहूगा तो इनकी सेवा-शुश्रूषा होती रहेगी।"

बाबा प्रेमानन्द की इच्छा क़तई नहीं थी कि सुबल को वैष्णव-धर्म में दीक्षित करें। उन्होने बारम्बार सुबल को मना करते हुए कहा—"बेटा, तुम्हारी अवस्था अभी थोड़ी है, दूसरा विवाह करके तुम गृहस्थ-धर्म का अवलम्बन करो।"

परन्तु सुबल अपने साधु संकल्प से रत्ती भर भी विचलित नहीं हुए! अन्ततः बाबा प्रेमानन्द ने सुबलचन्द्र मित्र को भेष प्रदान किया और उनका नाम रखा भक्तानन्द।

इसके दूसरे दिन बाबा प्रेमानन्द ने व्रजेश्वरी राय किशोरी और भक्तानन्द को साथ ले अपने आश्रम की यात्रा की। दो-तीन दिन बाद ये लोग काटोया के अखाडे में आ पहुँचे।

अन्यान्य वैष्णवी अखाडो की तरह इस अखाड़े में भी कितनी ही छोटी-छोटी कुटियां थीं। एक-एक कुटी में एक-एक वैष्णव अपनी सेवादासी के सहित रहता था। जिन उच्च श्रेणी के बाबाओं के पास एक से अधिक सेवादासियां थीं, उनकी कोई निज की एक कुटी नहीं थी, बल्कि उनकी सेवादासियों में से प्रत्येक सेवादासी की एक-एक स्वतन्त्र

कुटी थी। बाबाजी कभी इसकी कुटी में और कभी उसकी कुटी में रहा करते थे।

बाबा प्रेमानन्द अखाड़े के अधिकारी थे। जैसे ही वे अखाड़े में पहुँचे, वहां के अन्यान्य वैष्णवों और वैष्णवियों ने आ-आकर उनके चरणों में प्रणाम किया। बाबा जी ने सादर और सस्नेह सब से कुशल-प्रश्न पूछा। बाद में व्रजेश्वरी राय किशोरी और भक्तानन्द के वैराग्य-धर्म ग्रहण का आद्योपांत सारा वृत्तान्त इन लोगों को कह सुनाया। आश्रम में रहनेवाली वैष्णवी स्त्रियां व्रजेश्वरी राय किशोरी का हाथ पकड़ कर बड़े आदर-पूर्वक उन्हें अधिकारी बाबा की कुटी में लिवा ले गईं। बाबा प्रेमानन्द ने अपनी प्रधान सेवादासी को सम्बोधन करके कहा—"प्रेमेश्वरी! तुम और वृन्देश्वरी विशेष आदर के सहित व्रजेश्वरी राय किशोरी की शुश्रूषा करो। ये कोई सामान्य वैष्णवी नहीं हैं। हृदय में विशेष धर्मानुराग और भक्तिभाव न रहने की दशा में कोई व्यक्ति इतनी अधिक सम्पत्ति, जायदाद, माल-असबाब और महल-मकान को छोड़ तीर्थ-पर्यटन का कष्ट सहने के लिए तैयार नहीं हो सकता। ये मेरे शिष्य अद्वितीय प्रतापशाली बाबू छिदामचन्द्र विश्वास की पत्नी हैं। केवल साधु-संग का लाभ लेने के लिए ही ये हमारे अखाड़े में आई हैं। मेरे निज के कुटीर में इनके रहने का प्रबन्ध करो।" प्रेमेश्वरी अच्छी तरह जानती थी कि गुरु के वचनों का प्रतिपालन करना ही पड़ेगा। इसलिए किसी प्रकार का हीला-हवाला न करके कहने लगी "जो आज्ञा महाराज" परन्तु यह कहते वक्त उसने गहरी सांस ली थी, और उसके मुख पर विमर्षता का भाव दिखाई दिया था।

भक्तानन्द नामधारी सुबल मित्र ने अखाड़े में पहुँचते ही अपना हुक्का निकाला। चिलम में तमाकू रख कोई पन्द्रह मिनट तक हुक्के में दम लगाई। इतनी देर में एक चिलम तमाकू भस्मीभूत होगई।

दूसरी चिलम तैयार की। बेचारे बहुत दूर से पैदल चले आ रहे थे। एक चिलम तमाखू से थकावट दूर नहीं हो सकती थी। सुबल जिस वक्त दूसरी चिलम भर कर हुक्के मे दम लगाने लगे थे, उसी वक्त बाबा प्रेमानन्द ने प्रेमेश्वरी से कहा था कि 'मेरे निज के कुटीर में व्रजेश्वरी राय किशोरी के रहने का प्रबन्ध करो।' सुबल ज़रा दूर बैठे थे, पर बाबा जी की बाते उनके कानों में पहुँच गईं। हुक्का हाथ मे थाम कर फ़ौरन वहाँ से उठ खड़े हुए, और बाबा प्रेमानन्द के पास आकर बोले—"गुरुदेव! हमलोगो के लिए तो एक स्वतन्त्र कुटीर की ज़रूरत है। आप के अखाड़े मे काफी कुटीर न हो तो मैं आज ही मज़दूरों को लाकर एक नई कुटीर का बन्दोबस्त कर लूँगा। ये बड़े घर की स्त्री है, दूसरे के घर में इन से नहीं रहा जायगा।"

बाबा प्रेमानन्द ने कहा—"अच्छा, धीरे-धीरे स्वतन्त्र कुटीर भी तैयार हो जायगी। फ़िलहाल ये मेरी कुटीर मे रह सकती है। इन्हें कोई तकलीफ न होने पावे, इस पर विशेष लक्ष्य रक्खा जावेगा।"

भक्तानन्द—"नही महाराज, कुटीर तो मुझे आज ही तय्यार करानी पडेगी। खड-फूस के ऐसे छोटे-छोटे छप्पर तो एक दिन मे चार पांच तक तय्यार कराये जा सकते है। न होगा, दस रुपये ज्यादा खर्च हो जायँगे। बात ही कौन सी!"

बाबा प्रेमानन्द ने फिर कोई आपत्ति नहीं की। भक्तानन्द इस तरह के कामों में बहुत होशियार थे। मज़दूरो को जुटा कर उन्होंने उसी दिन कुटीर तय्यार करवा ली। व्रजेश्वरी राय किशोरी इस प्रकार बाबा प्रेमानन्द के अखाड़े में रहने लगीं।

भक्तानन्द को बचपन ही से गांजा पीने की लत थी। अखाड़े में उन्हें दिन भर बेकार बैठे रहना पडता था, इसलिए गांजा की मात्रा

कुछ विशेष बढने लगी। रुपये-पैसे की कमी थी नहीं। छिदाम की स्त्री घर से चलते वक्त कोई पचास-साठ हज़ार रुपया नकद और अपने तथा अपनी कन्या के सारे आभूषण अपने साथ लाई थी। यह सब रुपया और गहना-पाता सुबल के ही पास था। ब्रजेश्वरी राय किशोरी की तरफ से अखाड़े में रोज़ भंडारे होने लगे। इधर भक्तानन्द की तरफ से प्रतिदिन गाजे का भण्डारा होने लगा। केवल इसी अखाड़े के नहीं, बल्कि आस-पास के अन्यान्य दो चार अखाड़ों के सैकड़ों वैरागी गांजा पीना सीख गये। जो वैरागिनी स्त्रियां पहले सिर्फ तमाखू पीती थीं, भक्तानन्द की बदौलत अब वे भी दिन मे तीन चार दफ़े गांजे की दम उड़ाने लगीं।

बाबा प्रेमानन्द थोडी बहुत संस्कृत जानते थे। प्राय: प्रतिदिन वह ब्रजेश्वरी राय किशोरी के पास बैठकर उन से श्रीमद्भागवत तथा चैतन्यचरितामृत आदि धर्म-ग्रंथों के सुनने का अनुरोध किया करते थे। परन्तु भक्तानन्द अपनी सास को बहुधा बाबा जी के पास नहीं जाने देते थे। वे कहते थे—"हम लोग श्रीमद्भागवत को सुनकर क्या करें? सात काण्ड श्रीमद्भागवत हमें ज़बानी याद है। हमारे ससुर के यहां पण्डित लोग हर साल श्रीमद्भागवत का पाठ किया करते थे। हज़ारों आदमी हमारे घर श्रीमद्भागवत सुनने आते थे। सो अब क्या हम किसी दूसरे के निकट श्रीमद्भागवत सुनने जायँ?"

अधिकारी महाशय, भक्तानन्द के ऐसे आचरण को वैष्णवोचित नहीं समझते थे। मन ही मन वे भक्तानन्द के प्रति बहुत ही द्वेष रखने लगे। कभी-कभी तो वे स्पष्ट शब्दों में कह बैठते थे कि यदि भक्तानन्द यहा से नहीं चले जायँगे तो ब्रजेश्वरी राय किशोरी को धर्म-लाभ का सौभाग्य न प्राप्त होगा। इधर भक्तानन्द के हृदय में भी बाबा जी के प्रति तीव्र विद्वेषानल प्रज्वलित होने लगा। ब्रजेश्वरी

राय किशोरी खुद भी बाबा प्रेमानन्द के पास बैठ कर श्रीमद्भागवत या चैतन्यचरितामृत सुनने से कोई रुचि नही रखती थीं। बात यह थी, बाबा जी के दांत प्राय सब हिल चुके थे। मुंह धोते समय, पीडा के मारे, दातों को अच्छी तरह साफ नही कर पाते थे। इस कारण उनके मुंह से बडी दुर्गन्ध निकलती रहती थी, और श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्यचरितामृत का पाठ करते वक्त उनके मुख से श्रोताओं के शरीर पर लगातार मुखामृत की वर्षा होती थी। ब्रजेश्वरी राय किशोरी को पहिले ही से ज़रा सफाई से रहना पसन्द था। इसलिए बाबा जी के पास बैठने में उन्हें बडी अरुचि होती थी।

एक दिन दोपहर के बाद बाबा भक्तानन्द निकटस्थ बाज़ार में गाजा ख़रीदने के लिए गये हुए थे। आजकल उनके यहा कोई सेर डेढ़ सेर गांजा रोज़ ख़र्च होता था। इस अखाड़े के सात-आठ वैरागी और तीन-चार वैरागिनियां बहुत अधिक गांजा पीने लगी थी। पास पडोस के अन्यान्य अखाड़ों से भी अनेकों वैरागी भक्तानन्द के यहा गांजा पीने आया करते थे। एक दिन भक्तानन्द ने सोचा कि हर रोज बाज़ार जा कर गांजा ख़रीदने में दिक्कत ज्यादा पडती है, इसलिए आज एकदम बीस सेर गाजा ख़रीद लावें तो कम से कम पन्द्रह दिन चलेगा। यह सोच कर भक्तानन्द, अन्य दो वैरागियो को साथ ले बाज़ार से गांजा खरीदने गये। बीस सेर गांजा एक दूकान पर मिला नही। बाज़ार मे जितनी गाजे की दूकानें थीं, उन सब दूकानो पर घूम-घाम कर कोई सोलह सेर गांजा इकट्ठा कर पाया। बाज़ार में एक पैसे का भी गाजा बाकी नहीं रह गया। पास पडोस के गावों के अन्यान्य गांजाखोर बेचारे बडी मुसीबत में फंसे, क्योंकि एक हफ्ते से पहिले गाजे का नया चालान आने की आशा न थी। अस्तु। इस प्रकार सोलह सेर गांजा इकट्ठा करने में रात कुछ अधिक हो गई। भक्तानन्द को पहिले थोडी बहुत

शराब पीने की आदत भी थी। परन्तु इधर उन्होंने बहुत दिनों से नहीं पी थी। आज सोलह सेर गांजा इकट्ठा करके उनका मन बहुत ही प्रफुल्लित हुआ। हर्ष के आवेग मे यह भूल गये कि हम वैराग्य-धर्म का अवलम्बन कर चुके हैं। अतएव बाजार से लौटते वक्त भक्तानन्द ने थोडी सी शराब भी चढा ली। बाद मे वडी हंसी-खुशी के साथ सोलह सेर गाजा लेकर अखाडे में आये। अपनी कुटीर के भीतर घुस कर देखा कि व्रजेश्वरी राय किशोरी वहां नही है, बाबा प्रेमानन्द के पास बैठी चैतन्यचरितामृत सुन रही हैं। अकस्मात् भक्तानन्द के हृदय में न जाने कौन से भाव का उदय हुआ, आगबबूला होकर वे बाबा प्रेमानन्द के कुटीर में घुस गये। और बड़े जोर-जोर से उनके मुह पर तमाचे जमाने लगे। बाबा जी के तीन चार दॉत गिर पडे। बाद में चोटी पकड कर बाबा जी को घसीटते-घसीटते कुटीर के बाहर निकाल लाये, और खुले मैदान में लगातार उन्हें लात-घूँसो से पीटने लगे। प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी भी बाबा जी के पास बैठी थीं। चिल्लाकर भाग खड़ी हुईं। उनके चीत्कार का शब्द सुनकर अन्यान्य वैरागी भी वहा आ पहुँचे, और भक्तानन्द से कहने लगे—"ठहरो, ठहरो, धीरज धरो, धीरज धरो।"

ये वैरागी लोग इतने ज्यादा डरपोक थे कि इनमें से किसी ने भी आगे बढ़कर भक्तानन्द को पकडने का साहस न किया। भक्तानन्द ने मारते-मारते प्रेमानन्द को अधमरा कर डाला, बाद में व्रजेश्वरी राय किशोरी का हाथ पकड़ कर अपनी कुटीर में लिवा ले गये।

इधर प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी के चीत्कार का शब्द सुन कर पास पड़ोस के अन्यान्य अखाड़ों के वैरागी तथा गांवो के गृहस्थ वहा दौड़ आये। सब लोग पूछने लगे—"क्या हुआ, क्या हुआ?" बाबा प्रेमानन्द अभी तक बेहोश पड़े थे। पिछले परिच्छेद में हम जिन बा

गुरुगोविन्द का जिक्र कर चुके है, वे भी आजकल इसी अखाड़े में थे। इस वक्त वे बाबा प्रेमानन्द के ऊपर पंखा हॉक रहे है। ये बडे चालाक आदमी थे, इन्होने सोचा कि यदि यह रहस्य प्रकट हो जायगा तो बडी बदनामी होगी। इसलिए बडी होशियारी के साथ इन्होने चटपट बात बना ली और कहने लगे—"चैतन्यचरितामृत का पाठ करते-करते गुरुदेव के हृदय में भक्ति-स्रोत बडे प्रवल-वेग से प्रवाहित होने लगा, इसी कारण भक्ति-रस में प्रमत्त होकर अचैतन्य होगये है। ये स्त्रिया है, इस रहस्य को कुछ समझ न सकी। इसलिए चिल्ला उठीं।"

इस बात को सुनकर सब किसी का निश्चय होगया कि बाबा प्रेमानन्द सच्चे भक्त है। उनकी प्रशसा करते-करते सब अपने अपने स्थान को लौट गये।

बहुत देर के बाद बाबा प्रेमानन्द होश में आये। इसके दूसरे दिन उन्होने गुरुगोविन्द के साथ मिलकर इस सम्बन्ध में परामर्श किया कि भक्तानन्द से कैसे पिण्ड छुडाऊँ।

गुरुगोविन्द ने कहा कि इस वक्त भक्तानन्द को अखाड़े से निकालने की चेष्टा करने पर बहुत गडबड मचने की सम्भावना है। इसलिए चलो हम लोग कुछ दिनो को तीर्थ-पर्यटन के लिए निकल चलें। भक्तानन्द इतना अधिक खर्च कर रहा है कि उसके हाथ में बहुत दिन पैसा नही टिकेगा। ख़ाली हाथ हो जाने पर वह अपने आप ही चला जायगा।

बाबा प्रेमानन्द ने गुरुगोविन्द की राय मान ली। शीघ्र ही उन्होंने गुरुगोविन्द और कुञ्जेश्वरी तथा अपनी दोनों सेवादासियों—प्रेमेश्वरी और वृन्देश्वरी—को साथ ले श्रीक्षेत्र की यात्रा की।

इनके चले जाने के बाद इस अखाड़े के गाजाख़ोर वैष्णव भक्तानन्द के साथ मिल कर चैन की वंशी बजाने लगे। भक्तानन्द के पास

बहुत रुपया था। उनकी सास ब्रजेश्वरी राय किशोरी हर महीने भंडारा करके बहुत रुपया ख़र्च करती थी। इधर भक्तानन्द के यहां हर रोज़ दो सेर गांजा फुंकता था। आजकल बाबा भक्तानन्द ही अखाड़े के अधिकारी बन रहे थे। अन्यान्य वैष्णव यद्यपि उन्हें अपना गुरु मानने के लिए तैयार नहीं थे, तथापि अधिकाश उनकी अधीनता स्वीकार करते थे। अखाड़े के वैष्णव और वैष्णवियों मे से कोई बाहर भिक्षा मांगने नही जाता था। सब का खर्च भक्तानन्द चला रहे थे। समस्त वैरागी अखाड़े में बैठे-बैठे दिन-रात गांजे की दम मे मस्त रहते थे।

इस अखाडे के पास ही बाबा अद्वैतानन्द का अखाडा था। यहां के एक अल्पवयस्क वैरागी, बाबा ललितानन्द, कभी-कभी भक्तानन्द के यहा गांजा पीने आया करते थे। एक दिन उन्होंने भक्तानन्द से कहा—"महात्मा भक्तानन्द ! अन्यान्य अखाडों के वैष्णव तुम्हारे अखाडे के वैष्णवो की बडी निन्दा करते हैं। हमारा ख़याल है, भविष्य में तुम्हारे अखाड़े के भंडारे मे एक भी वैरागी नहीं शामिल होगा। तुमने वैष्णवो का आचार-विचार एकदम छोड रखा है। बाबा प्रेमानन्द जब से तीर्थ-पर्यटन को गये है, तब से आज तक किसी दिन भी तुम्हारे अखाड़े में भक्ति-कथाओं की चर्चा नही हुई। एक दफ़े भी तुमने श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्यचरितामृत का पाठ नहीं कराया। नाम-सकीर्तन तथा नामामृत-पान में तुम्हारी तनिक भी रुचि नहीं है।"

भक्तानन्द इस वक्त हुक्का हाथ में लिये गांजे की दम लगा रहे थे; इसलिए बात करने की फ़ुर्सत न थी। यदि ऐसा न होता तो ललितानन्द को इतनी बातें करने का मौक़ा ही न मिलता। ललितानन्द की बातों के समाप्त होते ही भक्तानन्द ने हुक्का उनके मुंह के पास रखा और कहने लगे—"अरे ले, नामामृत-पान पीछे करना, इस वक्त

इस गांजा-अमृत की एक दम लगा ले। इस अमृत के सामने और कोई अमृत अच्छा नही लगता।"

ललितानन्द गाजे की चिलम मे दम लगाने लगे। डट कर पी चुकने के बाद बोले—"भाई, तुम्हारे अखाड़े मे श्रीमद्भागवत अथवा चैतन्यचरितामृत की पोथी न हो तो और किसी अखाडे से मांग लाओ। प्रत्येक वैष्णव को दिन मे एक बार श्रीमद्भागवत के दो-चार श्लोको का पाठ करना उचित है।"

भक्तानन्द ने कहा—श्रीमद्भागवत को मांग लाने की क्या ज़रूरत; सातो काण्ड श्रीमद्भागवत मुझे ज़बानी याद है। मेरे ससुर मुझे शास्त्र की शिक्षा दिलाने के लिए हरिदास तर्क-पंचानन को दो-सौ रुपया महीना देते थे। मैं क्या शास्त्र का कुछ थोडा ज्ञान रखता हू? परन्तु हरिदास तर्क-पंचानन ऐसा पाजी है कि उसने व्यर्थ ही मेरे ऊपर सन्देह करके अपनी विधवा कन्या को विप देकर मार डाला।

ललितानन्द—अच्छा तो जब श्रीमद्भागवत के सारे श्लोक तुम्हें ज़बानी याद है, तो सब लोगों को इकट्ठा करके रोज सवेरे सन्ध्या दो चार श्लोक क्यों नही कहा करते?

भक्तानन्द—अरे बेटा मूर्ख वैरागी! श्रीमद्भागवत मे श्लोक कहां से आये? मेरे ससुर के यहां साल मे तीन दफ़े श्रीमद्भागवत के सातो काण्डों का पाठ होता था। पाठ करने वाले लोग रागरागिणी गाते थे, बाद में कत्थक लोग मूल बातें समझाते थे। मैं क्या श्रीमद्भागवत जानता नही? श्रीमद्भागवत मे बातें ही कितनी हैं—हनूमान तीन छलांग में समुद्र पार हो लंका गये—वहां चोरी करके फल तोडे खाये, इस पर रावण ने उनकी पूंछ मे आग लगा दी। अन्त में हनूमान ने कूद-कूद कर बहुत से घर जला दिये—बस, यही तो तुम्हारा श्रीमद्भागवत है कि और कुछ? मानों मै यह सब कुछ जानता नहीं!

ललितानन्द—तुम भूलते हो। यह तो रामायण है। श्री मद्भागवत में अनेकानेक भक्ति-कथाएं हैं।

भक्तानन्द—अरे बेटा, तू चुप रह। भागवत में और दो चार कथाएं हैं, वे भी मुझे मालूम हैं। हरिदास तर्क-पंचानन के पास मैंने शास्त्र (शास्त्र) पढ़ा है। मैं क्या नहीं जानता कि कुम्भकर्ण और मन्दोदरी ने सलाह करके वाली बेचारे को विष देकर मार डाला था।

ललितानन्द—तुम जानें क्या बक रहे हो ?

भक्तानन्द—अरे हां, जरा सी भूल हो गई। विष नहीं दिया था। हरिदास तर्क-पंचानन ने अपनी कन्या को विष देकर मारा था, मुझे उसी का भ्रम रहा। सुन, अब याद आगई—राम और कुम्भकर्ण ने युद्ध करके वाली को मारा था।

ललितानन्द—तुम ख़ाक नहीं जानते। श्रीमद्भागवत में केवल भक्ति की कथाएं हैं।

भक्तानन्द—और मैं क्या अभक्ति की कथा कह रहा हूँ ? भक्ति-वाली कथा क्या मुझे मालूम नहीं ? वाली की मृत्यु के बाद अङ्गद ने भक्ति-पूर्वक पितृ-श्राद्ध किया। वानरों के आनन्द की सीमा न रही। मानो उनके यहां मेरी सास का सा भण्डारा हो ! जितने वानर थे, सब पूंछ पसार कर बैठे और, वाली के श्राद्ध में, खूब पेट भर कर दही-भात खाया। मेरे ससुर के यहा कत्थक लोगों ने कई बार यह कथा कही थी।

ललितानन्द—तुम रामायण भी नहीं जानते। कुम्भकर्ण ने वाली को कब मारा था ?

भक्तानन्द—अरे मूर्ख वैरागी, तुझे शास्त्र का रत्ती भर ज्ञान नहीं। तू शास्त्र को समझ ही नहीं सकता। हरिदास तर्कपंचानन जैसा पण्डित

इस देश भर में नहीं है। महाराज नन्दकुमार जिस वक्त नवाब के दीवान थे, उस वक्त हरिदास तर्कपंचानन एक दफे उनके पास गये, और बात-चीत में शास्त्र की पोथियां खोलकर महाराज से कहने लगे--"महाराज! शास्त्र में जितनी वृहतपत्ति (व्युत्पत्ति) है, उनके निकट सभी एक है। 'एक भिन्न द्वितीय नास्ति'। जो कृष्ण वही परमेश्वर, वही हरि वही खुदा। अरे मूर्ख वैरागी! तर्कपंचानन ने अपने मुंह से यह बात महाराज नन्दकुमार से कही थी कि जिन्हें शास्त्र का ज्ञान है, उनके निकट सभी एक है। बेटा वैरागी, तुझे शास्त्र का खाक भी ज्ञान नहीं। इसीलिए तेरा ख्याल है कि कुम्भकर्ण कोई और, और सुग्रीव कोई और। अरे, जो कुम्भकर्ण वही सुग्रीव। जो राम—वही लक्ष्मण—वही सुमित्रा। एक ही तीनों, तीनों ही एक। यह तो शास्त्र का स्पष्ट सिद्धान्त है। शास्त्र-ज्ञान होने पर तुझे ज्ञात हो जायगा कि सब एक हैं। 'एक भिन्न द्वितीय नास्ति'।

ललितानन्द—भाई, तर्क में तुमसे कोई पार नहीं पा सकता।

भक्तानन्द—जब तुझे शास्त्र का ज्ञान होगा तब तर्क करना भी आ जायगा। अच्छा, तो इस वक्त ये सब बातें जाने दे। मुझे सब शास्त्र मालूम हैं। ऐसा कोई नहीं जो मुझे न मालूम हो। हरिदास तर्कपचानन के साथ मैं दो दफे महाराज नन्दकुमार के यहां गया था। मेरे ससुर तर्कपंचानन जी से कहा करते थे—"पण्डित जी! आप जब बड़े-बड़े आदमियों के यहां जाया करें, तो मेरे दामाद को भी साथ लिवाते जाया करें। ऐसा करने पर उसे बड़े आदमियों के यहां बैठने-उठने और बात-चीत करने का ढँग मालूम हो जावेगा।" इसी कारण मैं तर्कपंचानन जी के साथ प्राय बड़े आदमियों की सभाओं में जाया करता था।

ललितानन्द--भाई, इस विषय में तुम्हारे साथ तर्क करने में कोई लाभ नहीं। मैं तो यह पूछता हूं--तुम नाम-गान, नाम-संकीर्तन तथा नामामृत-पान में श्रद्धा क्यों नहीं रखते ?

भक्तानन्द इस वक्त गांजे की दूसरी चिलम तैयार कर रहे थे। तैयार करके पहिले खुद दो दमें लगाईं और बाद में ललितानन्द के मुंह के पास चिलम ले जा कर बोले—"ले बेटा बैरागी, लगा दम। एक दफे और यह अमृत पी ले, तब अपने अखाडे को जाना। जब पीने की इच्छा हो और तुझे और कहीं न मिले तो फौरन् मेरे पास आना, खूब पेट भर कर अमृत पिलाऊँगा। तेरे नामामृत की अपेक्षा मेरा यह अमृत कहीं अच्छा है।"

ललितानन्द अपने अखाड़े को चले गये। भक्तानन्द नामधारी सुबल मित्र ने इसी प्रकार हर रोज़ मेरों गांजा फूंकने और भंडारा करने में छ. सात महीने के भीतर सारा रुपया ख़र्च कर डाला। अपनी मृत स्त्री और सास के जो आभूषण उनके पास थे वे भी सब बेंच-बाच कर ठिकाने लगा दिये। अब न गांजा चले, न भोजन चले। सास से रोज़-रोज़ लड़ने-झगड़ने लगे। कुछ दिन बाद वे अपनी सास को अन्यान्य वैरागिनियों के साथ गृहस्थों के यहां भीख मांगने के लिए भेजने लगे। परन्तु व्रजेश्वरी राय किशोरी बेचारी भीख मांग कर जो अन्न लातीं, भक्तानन्द उसे बेच कर गांजा खरीदते। सास यदि इसमें कुछ आपत्ति करती तो उसे मारते-पीटते। एक दिन सास को बहुत मारा, बेचारी अचैतन्य हो गिर पड़ी। भक्तानन्द ने सोचा कि 'चोट बहुत लगी है— जियेगी नहीं, मर जायगी।' निदान खून की जिम्मेदारी ऊपर आ पड़ने की आशंका से वे उसी क्षण यशोहर भाग गये।

उनके भाग जाने के बहुत देर बाद उनकी सास को होश हुआ। निमाई की मां ने कई दिन लगातार सेवा-शुश्रूषा करके उन्हें अच्छा

किया। परन्तु उस दिन की कड़ी मार के कारण ब्रजेश्वरी राय किशोरी को सदा के लिए वात-व्याधि ने आ घेरा, चलने फिरने की शक्ति न रह गई। आजकल वे इस वृक्ष के नीचे बैठी-बैठी पथिकों से भीख माँगा करती हैं। उपर्युक्त घटना के दो बरस बाद आज इस पेड़-तले सावित्री के साथ उनका साक्षात् हुआ है।

इधर श्री क्षेत्र से लौटते वक्त रास्ते में बाबा प्रेमानन्द और उनकी सेवा-दासी प्रेमेश्वरी का देहान्त हो गया। बाबा गुरुगोविन्द जब कुञ्जेश्वरी और वृन्देश्वरी को साथ ले काटोया पहुँचे तो देखा कि बाबा प्रेमानन्द के अखाड़े के कितने ही वैरागी अन्यान्य अखाड़ों में चले गये हैं। भक्तानन्द भी नहीं हैं, वे भी भाग गये। सिर्फ़ निताई की मां और ब्रजेश्वरी राय किशोरी अखाड़े में मौजूद हैं। गुरुगोविन्द कुञ्जेश्वरी और वृन्देश्वरी को साथ ले बाबा भक्तदास के अखाड़े में रहने लगे।

निताई की मां बाबा प्रेमानन्द के अखाड़े की एक वैष्णवी थी। इस अखाड़े में आने के बाद उसके गर्भ से निताई का जन्म हुआ था। संग में पुत्र होने के कारण अन्य किसी अखाड़े के वैष्णवों ने उसे अपने अखाड़े में स्थान न दिया। इसलिए वह और ब्रजेश्वरी राय किशोरी दोनों इसी सूने अखाड़े में रही। ब्रजेश्वरी राय किशोरी के कुटीर में पश्चिम ओर एक छोटे से कुटीर में निताई और उसकी मां रहती है। माता-पुत्र दोनों कभी तो भिक्षा माँग कर अपना दिन काटते हैं, और कभी निताई बाज़ार में दूकानदारों के यहां मज़दूरी वगैरह करके जो दो-चार पैसे कमा लाता है, उन्हीं से भोजनों का निर्वाह होता है।

जिन छिदाम विश्वास की स्त्री के सिर में ज़रा सा दर्द होने पर छः-सात दासियां उनकी सेवा-शुश्रूषा में लग जाती थीं, आज वे इस कड़ी धूप में रास्ते के किनारे बैठी-बैठी बटोहियों से भीख मांगती हैं! इस

संसार में अपने पापों का समुचित दण्ड सभी को भुगतना पड़ता है। कर्मों के फलभोग से कोई नहीं छूट सकता।

वाल-विधवा की मृत्यु-शय्या

पाठकों को याद होगा, अब से पहिले कई बार इसका ज़िक्र आ चुका है कि हरिदास तर्क-पंचानन और रामदास शिरोमणि में परस्पर विशेष शत्रुता थी। यहां पर हम इस बात का उल्लेख करते हैं कि किस प्रकार इन दोनों में पारस्परिक शत्रुता का सूत्रपात हुआ था।

हरिदास तर्क-पंचानन समाज के एक प्रधान पुरुष थे। देश में वे बड़े धार्मिक और शास्त्रज्ञ माने जाते थे। तर्क-पंचानन के तीन संततियां थीं। तीनों में सुदक्षिणा नाम की कन्या सब से बड़ी थी। नौ बरस की उमर में एक अच्छे कुल के ब्राह्मण-बालक के साथ सुदक्षिणा का पाणिग्रहण हुआ। विवाह के उपरान्त तीन बरस न बीतने पाये, कि सुदक्षिणा विधवा होगई। मृत्यु के समय सुदक्षिणा के स्वामी की अवस्था सिर्फ उन्नीस बरस की थी। इसी अवस्था में उन्होंने अनेक शास्त्रों का अध्ययन कर लिया था, वे बड़े दयावान और स्नेहशील पुरुष थे।

विधवा होने पर सुदक्षिणा अपने पिता के घर रहने लगी। क्रमशः तीन-चार बरसें बीत गईं, सुदक्षिणा की अवस्था सोलह बरस की हुई। सर्व सुलक्षणा सम्पन्ना सुदक्षिणा के भाग्य में परमेश्वर ने वैधव्य

का क्लेश क्यों लिखा था, यह मनुष्य के जानने की बात नही। अत्यन्त कठोर हृदय भी उसकी इस दशा को देखकर विदीर्ण होता था। सुदक्षिणा बडी रूपवती थी। शारीरिक सौन्दर्य की अपेक्षा उसके हृदय-स्थित सद्‌गुण कही अधिक प्रशंसनीय थे। प्रत्येक कार्य और प्रत्येक व्यवहार में उसके हृदय की पवित्रता, चरित्र की निर्मलता, पितृवत्सलता एवं गुरुजनों के प्रति भक्ति और श्रद्धा के भाव झलकते रहते थे। परन्तु जिस प्रकार एक दरिद्र व्यक्ति मे हज़ार-हज़ार गुण रहते हुए भी एकमात्र दरिद्रता दोष ही उसके सारे गुणो पर पर्दा डाले रहता है; इसी प्रकार एकमात्र वैधव्यावस्था ही भारतीय विधवाओं के समस्त गुणों का तिरस्कार कर डालती है।

यौवन-प्राप्ति के बाद सुदक्षिणा एक दिन भी कभी घर से बाहर नही निकली। पिता के घर रहते हुए हिन्दू स्त्रियो में पर्दे का वैसा बधन नही होता। वहां रह कर वे कुछ स्वाधीनतापूर्वक बाहर निकल पैठ सकती हैं। परन्तु बाल-विधवा सुदक्षिणा स्वयम् अपनी इच्छा से अपने को इस अधिकार से भी वञ्चित रखती थी।

सुदक्षिणा की माता ने एक दिन उससे कहा—"बेटी! तुम सदा घर के भीतर ही बैठी रहती हो, कभी बाहर निकलने की इच्छा तुम्हें नहीं होती?"

सुदक्षिणा ने कहा—"मा तुम नहीं जानतीं, विधवा हो जाने पर स्त्रियो के सम्बन्ध में लोग व्यर्थ ही तरह-तरह के झूठे अपवाद उडाया करते हैं। हमारे ग्राम के निवासियों में परस्पर अच्छे-अच्छे विषयों पर वार्तालाप तो कभी होता नहीं, सर्वदा इन्हीं विषयों की चर्चा छिडी रहती है कि अमुक विधवा का आचार-विचार कैसा है, वह कैसे रहती है, क्या खाती है, क्या पहनती है, किसके साथ बैठती उठती है, किसके साथ बातचीत करती है, इत्यादि। इन चिर-दुःखिनी विधवाओं के

पुरुष भी, सीधे मार्ग से तर्क-पंचानन के घर आने के लिए, इसी रास्ते से निकल आते थे। सुदक्षिणा जिस समय आम बीन रही थी, उसी समय छिदाम विश्वास का दामाद सुबल मित्र इसी रास्ते होकर तर्क-पंचानन के घर आ रहा था। सुबल मित्र की यह एक आदत थी कि चाहे कुछ जान-पहिचान हो अथवा न हो—किसी व्यक्ति को देखते ही वे किंचित मुस्कराते हुए उसे बुलाकर कोई न कोई बात कहने लगते थे। सुदक्षिणा को आम बीनते देख कर सुबल हँसते हुए बोले—"क्यों, क्या आम बीन रही हो ? इस ओर ये बहुत से आम पड़े हैं।"

सुदक्षिणा सुबल को पहचानती भी नहीं थी। उसने सुबल की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। हिन्दू महिलाएँ एक अपरिचित पुरुष को देख कर जिस प्रकार लज्जा से सिर झुका कर मौन हो रहती हैं, सुदक्षिणा भी उसी प्रकार मौन रह कर नीचे की ओर देखने लगी। सुबल मित्र भी और कुछ न कह कर उसी क्षण तर्क-पचानन के घर चले गये।

५

परन्तु दुर्भाग्य-वश तर्क-पंचानन उस समय रसोई-घर के पास स्त्री से कुछ बातचीत करते बाहर आ रहे थे। वहां से उन्होंने देखा कि सुबल मित्र उनकी कन्या को बुला कर हँसते-हँसते उससे कुछ बात कर रहा है। तर्क-पंचानन महाशय सुबल को एक बड़ा नीच आदमी समझते थे। परन्तु सुबल ने सुदक्षिणा से जो बात कही थी, उन्होंने न सुन पाई। सिर्फ यही देखा कि सुबल हँसते हुए उससे कुछ बात कर रहा है। दुष्ट-बुद्धि तर्क-पंचानन के मन में कन्या के प्रति सन्देह उत्पन्न हुआ। वे मन ही मन सोचने लगे कि हमारी कन्या विधवा है, इस समय इसका यौवन-काल है; अतएव इसके द्वारा पितृ-कुल और श्वसुर-कुल दोनों ही कलंकित होंगे, इसमें कोई सन्देह नहीं।

दो-तीन दिन बराबर तर्क-पंचानन सिर्फ इसी विषय की चिन्ता करते रहे। बाद मे एक दिन रात मे अपनी स्त्री से कहा—"कन्या के चरित्र के विषय में मुझे संदेह होता है; मैने अपनी आंखों से सुबल मित्र को उसके साथ बातचीत करते देखा है।"

स्त्री ने कहा—"तुम कन्या के हार्दिक-भाव को नहीं जानते, वह प्राण जाने पर भी घर से बाहर निकलने की इच्छा नहीं करती, और सर्वदा ही कहा करती है कि मै दो कुलों की शत्रु हो रही हूँ, किसी समय मेरे सम्बन्ध में कोई कुछ कह बैठेगा तो दोनो कुल कलंकित होंगे।"

स्त्री के मुंह से यह बात सुन कर तर्क-पंचानन को रोमांच हो आया। बारम्बार स्त्री से पूछने लगे—"क्या सचमुच ही सुदक्षिणा इसी प्रकार कहा करती है?"

स्त्री ने कहा—हां, उसने कई बार मुझ से कहा—"मां! मैं मर जाऊँ तो अच्छा हो।" उफ! मेरी बेटी जिस समय मृत्यु की कामना करती है तो मेरी छाती टूक-टूक होने लगती है। न जाने पूर्व-जन्म में मैंने कितने घोर पाप किये थे, जो अपनी आंखों से अपनी प्यारी सन्तान को ऐसे दारुण दुख में देख रही हूँ।

स्त्री के मुंह से ये सब बाते सुन कर तर्क-पंचानन का सन्देह सौगुना बढ़ गया। पहिले उन्हें यह सन्देह हुआ था कि हो न हो, सुबल मित्र मेरी कन्या को कुपथ-गामिनी करने की चेष्टा कर रहा है; परन्तु अब उन्हें क़तई यह विश्वास हो गया कि सुबल मित्र ने सर्वनाश कर डाला। वह निश्चय ही मेरी कन्या को कुपथगामिनी बना चुका है। यदि ऐसा न होता तो—"लोग मेरे सम्बन्ध में किसी दिन कुछ कह बैठेंगे।"—इस प्रकार की आशंका ही सुदक्षिणा को क्यों होती? वह मृत्यु की कामना ही क्यो करती?

कुटिल स्वभाव के आदमी किसी विषय के सत्यासत्य का निर्णय करते हुए इसी प्रकार की युक्ति का अवलम्बन करते हैं। वे लोग प्रत्येक कार्य और प्रत्येक बात के भीतर कोई न कोई गूढ़-अर्थ मान बैठते हैं।

तर्क-पंचानन को निश्चय हो गया कि अवश्य ही हमारी कन्या कुपथगामिनी हो चुकी है। समाज में कलंकित होने की आशंका के कारण वह पहिले ही से उपर्युक्त कपटपूर्ण वाक्यों द्वारा माता-पिता को भुलावा देती रही है। ऐसा निश्चय कर तर्क-पंचानन चुपचाप रहते हुए अपनी स्त्री से कहने लगे।

स्त्री, उनकी बातें सुनकर, क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठी और अत्यन्त कर्कश वाक्यों में स्वामी से कहने लगी—"तुम पिता होकर निरपराधिनी कन्या के सम्बन्ध में ऐसा कह रहे हो?"

सन्तान-वत्सला ब्राह्मणी अधिक न सह सकी। वह क्रोध में आकर रोने लगी। रोते-रोते कांपती हुई आवाज़ में उसने कहा—"मैं तुम्हारा घर छोड़ कर चली जाऊँगी, अपनी चिन्दु सिनी बेटी को साथ ले मैं द्वार-द्वार भिक्षा मांगकर अपने दिन काटूंगी। आह! मेरी बेटी ने संसार का कोई सुख न जाना, रोते-रोते ही दिन बिताती है, मुंह से बात तक नहीं कहती। बाहर निकलने के लिए कहने पर भी वह घर से बाहर पांव देने की इच्छा नहीं करती। हा, परमेश्वर! न जाने पूर्व-जन्म में कैसे-कैसे घोर पाप किये थे, जो आपने मुझे यह कठोर दण्ड दिया? यमराज! क्या तुम मुझे नहीं देख रहे हो? मुझे इस संसार से उठा लो। हा ईश्वर! क्लेश पर क्लेश, दुःख पर दुःख!"

ब्राह्मणी को सारी रात नींद नहीं आई। कन्या के दुःख में रोते रोते भोर हुआ।

तर्क-पंचानन सोचने लगे कि हमारी पत्नी पुराने विचारों की स्त्री है, उसकी बुद्धि मारी गई है, कन्या की चतुरता ने उसे धोखा दे रखा है। परन्तु इस समय क्या करना चाहिए, तर्क-पंचानन इसका कुछ निश्चय न कर सके। हिन्दू विधवाओं के कुचरित्रा होने पर उनके आत्मीय-स्वजन अपनी लोक-लज्जा दूर करने के लिए उन्हें वृन्दावन अथवा काशी भेज देते है। परन्तु तर्क-पंचानन अच्छी तरह जानते थे कि हमारी स्त्री कन्या को इतना अधिक प्यार करती है कि यदि मैं उसे किसी तीर्थ-स्थान मे भेजना चाहूँ तो वह कदापि न भेजने देगी। प्राण रहते वह किसी तरह कन्या को अपने से अलग करने के लिए राज़ी न होगी।

दो-तीन दिन बराबर इसी प्रकार सोचते-साचते अन्त मे मन ही मन कहने लगे—"कुल की मान-प्रतिष्ठा चली जाने पर मनुष्य का जीवन ही वृथा है। छिपे-छिपे मनुष्य कितने ही पाप क्यो न करे, जब तक उसे समाज के सामने लज्जित और कलंकित न होना पड़े, तभी तक ख़ैर है। मेरी यह विधवा कन्या वास्तव में दो कुलों की शत्रु हो रही है। इसके जीते रहने मे लाभ ही क्या है। यह सिर्फ क्लेश का कारण बन रही है। अतएव समाज में इसका कलक प्रचारित होने के पहिले ही इसे विप देकर मार डालने पर लोक-लज्जा से सहज ही मुक्ति मिल जायगी। और समाज मे किसी प्रकार की बदनामी न उठानी पड़ेगी।

मन ही मन ऐसा निश्चय कर कन्या के प्राण नाश करने के अभिप्राय से तर्क-पंचानन ने एक दिन विप लाकर घर में रख छोड़ा। स्त्री पर यह कुछ हाल प्रकट नहीं किया, और इस आशंका से कि यदि भोजन के साथ विप मिलाने की चेष्टा करूँगा तो स्त्री को पता चल

और धर्मानुरागी पुरुष प्रसिद्ध थे, इसलिए स्तोत्र-पाठ आदि के सम्बन्ध में उन्हें कुछ अधिक आडम्बर रखने पड़ते थे।

प्रात.काल की सारी क्रियाएं—पूजा पाठ इत्यादि समाप्त करके सुदक्षिणा को बुला कर कहा—"बेटी! कल तुम्हें कुछ ज्वर हो आया था, मैं तुम्हारे लिए दवा लाया हूँ, इसे थोड़े से पानी के साथ निगल लो।"

सुदक्षिणा ने कहा, "पिता, दवा खाने को मेरा जी नहीं चाहता। मैं मर जाऊं यही अच्छा। दूसरे, ज्वर मुझे है ही कहा?"

तर्क-पंचानन ने कहा—"नही बेटी, यह क्या कहती हो, दवा क्यों नहीं खाओगी? लो, इसे पानी के सहारे निगल लो।"

पितृवत्सला सुदक्षिणा पिता की आज्ञा का कभी उल्लंघन नहीं करती थी। अपने प्राण देकर भी यदि वह पिता को सन्तुष्ट कर सके तो वैसा करने में भी उसे कोई उज्र न था। अतएव पिता की दी हुई औषधि को मुंह में डाल कर पानी के साथ उसने निगल लिया। तर्क-पञ्चानन की स्त्री इस औषधि-प्रयोग की बात कुछ भी न जान पाई। वह रसोई-घर मे कन्या के लिए अच्छे-अच्छे भोजन तैयार करने में लगी थी।

हा, सन्तान-वत्सला माता! तू किसके लिए भोजन बना रही है! विविध प्रकार के कुत्सित आचार-विचारों के द्वारा यह नरक-तुल्य देश नर-पिशाचों से परिपूर्ण हो रहा है। जात्याभिमान को स्थिर रखने के लिए आज पिता अपने हाथों अपनी सन्तान के प्राण विनाश कर रहा है!

औषधि खाने के प्रायः एक घंटे के बाद ही सुदक्षिणा का शरीर छटपटाने लगा। उससे न खड़े रहा जाता था, न बैठे रहा जाता

था। अञ्चल गिरा कर पृथ्वी पर लोट गई। मा ने रसोई तैयार करके उसे भोजन करने के लिए बुलाया। परन्तु सुदक्षिणा में उठने की शक्ति न रह गई थी। ब्राह्मणी बारम्बार रसोईघर में कन्या को आवाज देने लगीं। देर होते देख वह स्वयं ही अपने भाग्य को धिक्कारती हुई कन्या के पास आई। उसे पृथ्वी पर पड़ा देख घबड़ा कर कहने लगी—"अब मुझे और कितना दुख देना चाहती है। कल सारे दिन तू ने कुछ खाया नहीं, मैंने सबेरे ही उठ कर तेरे लिए भोजन तैयार किया। जब तक तू थोड़ा सा खा नहीं लेगी, तब तक मेरे हृदय का दुख दूर नहीं होगा।"

सुदक्षिणा ने कहा—"मा! पिता ने न जाने कैसी दवा खाने के लिए दी, खाते ही मेरा शरीर लथर-पथर हो गया। मुझ से उठा नहीं जाता। व्याकुल हो रही हूं। उठने की सामर्थ्य नहीं है। मैं इस समय भोजन न कर सकूंगी। तुम मेरे ऊपर पंखा डाको।"

कन्या के मुंह से यह सुनते ही मां के होश उड़ गये। तत्काल ही उसके मन में यह सन्देह पैठ गया कि, हो न हो, तर्क-पंचानन ने कन्या को विष दे दिया है। तर्क-पचानन उस समय घर के बराडे में बैठे थे। ब्राह्मणी ने शीघ्र ही उन्हें बुलाकर कहा—"सुदक्षिणा को कौन सी दवा दी है, वह तो छटपटा रही है?"

तर्क-पंचानन घर के भीतर आकर धीरे-धीरे कहने लगे—"कल रात ही से सुदक्षिणा को ज़ोर का ज्वर चढ़ा था। यह ज्वर अच्छा नहीं होता। विकारयुक्त ज्वर जान पड़ता था। आज भी ज्वर का विकार ही होगा। तुम्हें तो रत्ती भर भी ज्ञान नहीं, इतने तड़के उसे नहाने क्यों दिया?"

ब्राह्मणी बोली—"विकार नहीं तुम्हारा सिर है।"

देखते-देखते सुदक्षिणा की यातना बढ़ती गई। ब्राह्मणी सिर पीट-पीट कर रोते-रोते कहने लगी—"तुम्हारा हृदय ईश्वर ने क्या पत्थर का बनाया था? क्या सचमुच तुमने कन्या को विष दिया है?"

तर्क-पचानन ने चटपट अपने हाथों से स्त्री का मुंह दाब दिया। सुदक्षिणा एकायक आश्चर्यभरी दृष्टि से पिता और माता के मुंह की ओर ताकने लगी। उसने कुछ समझ नहीं पाया। अन्त में धीरे-धीरे उसने मां की बात का आशय समझ लिया। उसने पहिले भी बहुतों की ज़बानी यह सुन रक्खा था कि हिन्दू विधवाओं के दुश्चरित्रा होने पर उनके पिता एवं ससुर अथवा आत्मीय-स्वजन लोग लज्जा के निवारणार्थ उन्हें विष देकर मार डालते हैं। अतएव इस समय उसकी समझ में आया कि पिता ने मुझे विष दिया है। परन्तु कैसे आश्चर्य की बात कि यह जानकर भी उसकी पितृ-भक्ति में रत्ती भर भी कमी न हुई! उसके पिता वैद्य को बुलाने के लिए आदमी भेजने लगे; परन्तु उसने इसके लिए पिता को मना करते हुए कहा—"वैद्य की आवश्यकता नहीं। मेरा मरना ही अच्छा है।"

मां के मुंह से बात न निकलती थी। कन्या की दशा देख कर शोक और दुःख के आवेग में वह एकदम बेहोश होकर गिर पड़ी। पृथ्वी पर पड़ी हुई कन्या का सिर अपनी गोद में रख कर अश्रु पूर्ण नेत्रों से उसके निष्कलंक एवं सरलता-पूर्ण मुंह की ओर टकटकी बांधकर देखने लगी। तर्क-पंचानन कन्या के पार्श्व में खड़े थे।

थोड़ी सी देर के भीतर सुदक्षिणा का क्लेश और भी अधिक बढ़ गया। उस समय उसने अपने को आसन्नमृत्यु समझ कर हृदय-कपाटों को एकदम खोल दिया।

चिर-प्रचलित निन्दनीय देशाचार के कारण हिन्दू युवतियां अपने माता-पिता के सामने अपने पति के सम्बन्ध की कोई बात ज़बान पर नहीं लाती। उनके हृदय की आग चुपके-चुपके हृदय के भीतर ही भीतर जला करती है। परन्तु सुदक्षिणा का इस समय मृत्युकाल उपस्थित है। अब उसे लज्जा नहीं रही। विशेषत अत्यधिक शारीरिक यन्त्रणा के कारण वह प्रायः उन्मत्त सी होगई है। इस समय वह केवल हृदया-वेग से परिचालित होकर बिना किसी छल-कपट के खुले शब्दों में अपने मन की बातें कह रही है। पाठक और पाठिकाएं एक बार उसकी बातें सुनें और देखें कि एक हिन्दू बाल-विधवा मृत्यु के समय क्या कहती है, और क्या कहेगी? वैधव्य-यंत्रणा के कारण प्रतिक्षण जिसका चिन्तन करती रही है, वही कहती है—

"पिता! मेरे जीने से कोई लाभ नहीं। मेरा मरना ही अच्छा। पिता! मुझे विदा कीजिये—(हाथ फैलाकर पिता के पांव पकड कर) पिता! अपने श्री चरणों को मेरे सिर पर रखिये और आशीर्वाद दीजिये कि परलोक में जाकर मैं उन्हें देख सकूं। मैं पापिनी थी, अत्यन्त अभागिनी थी, इसी से वे मुझे छोड़ कर चले गये—इसी लिए मैं उस अमूल्य रत्न को खो बैठी। पिता! इस संसार में मैंने कोई सुख न जाना। वयस्क होने के बाद मेरा एक दिन भी सुख से नहीं बीता। संसार क्या है, मैंने न जान पाया। मेरे लिए यह संसार अन्धकारमय ही रहा।

यही कहते-कहते कण्ठावरोध हो आया। जिह्वा और कण्ठ दोनों सूख गये। टकटकी बाँध कर ऊपर की ओर देखने लगी। ऐसा जान पड़ा, मानो इस समय वह अपने स्वर्गीय स्वामी को देख रही है। उस समय वह अत्यन्त कातर-स्वर से धीरे-धीरे स्वामी को सम्बोधन करके लड़खड़ाती हुई आवाज़ में कहने लगी—"नाथ! मेरा परित्याग न

करना। मुझे इस नरक से निकाल कर अपने पास ले चलो। मैंने तुम्हारी सेवा में अनेक त्रुटियां की हैं, दासी के अपराध क्षमा करो। मुझे अपनी चिर-दासी बनाओ, मुझे ग्रहण करो।"

बड़े कष्ट से हाथ फैलाने की चेष्टा की, परन्तु शरीर क्रमशः प्राण-हीन होता आ रहा था। हाथ न उठा सकी।

"मुझे लो—ग्रहण करो—ग्र—ह—"

बस, दूसरी बार 'ग्रह—' कहते ही कण्ठावरोध हो गया। मुंह से तेज़ी के साथ सांस निकलने लगी। बालविधवा की निर्मल आत्मा ने देह का परित्याग कर अमरत्व को प्राप्त किया। वैधव्य की दारुण यंत्रणा दूर हुई। मृत्यु के समय एक बार फिर हाथ उठाने की चेष्टा करती दिखाई दी। परन्तु दोनों हाथ उसके पहिले ही शक्तिहीन हो चुके थे। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वह स्वर्गीय स्वामी को सामने खड़ा देख, कूद कर स्वामी की फैली हुई गोद के भीतर जा छिपी।

मृत्यु से पहिले सुदक्षिणा ने श्यामा को बुला देने के लिए कहा था। परन्तु सुदक्षिणा के पिता ने श्यामा को इसकी ख़बर नहीं भेजी। श्यामा अन्यान्य लोगों के मुह से सुदक्षिणा के आसन्न-मृत्यु का समाचार सुनकर तर्क-पंचानन के घर दौड़ी आई। श्यामा प्रायः घर से बाहर नहीं निकलती थी। परन्तु आज श्यामा को लोकलज्जा का भय नहीं रहा था। अपने पिता की अनुमति की प्रतीक्षा न करके दौड़ती हुई हाँफते-हाँफते तर्क-पंचानन के घर पहुँची। सुदक्षिणा के पास जाकर देखा कि स्वर्ण-प्रतिमा की तरह उसका निश्चल शरीर माता की गोद में सो रहा है। कन्या के सिर को गोद में चिपटाये हुए उसकी माता विविध प्रकार से विलाप कर रही है। श्यामा का हृदय स्नेह, दया और पवित्र भावों से परिपूर्ण था। वह उन्मत्त की तरह सुदक्षिणा के

मुंह के ऊपर मुंह रख कर रोने-रोने कहने लगी—"मेरी प्राण-प्यारी सखी ! हतभागिनी ! मुझ से बिना कहे ही चली गई—मुझे भी अपने साथ लेती चल।"

तर्क-पंचानन श्यामा को इस प्रकार रोते-चिल्लाते देख कर कुछ क्रुद्ध हुए, और अत्यन्त रोष प्रकट करके उसे सुदक्षिणा के पास से खींच कर दूर बैठाल दिया। परन्तु वह बारम्बार उठ कर सुदक्षिणा के मृत-शरीर के पास जाने लगी, और बारम्बार उसके मुंह के ऊपर मुंह और गले में हाथ डाल-डाल कर आर्त्तनाद करने लगी।

इस बीच वैद्य महाशय आ उपस्थित हुए। तर्क-पंचानन ने वैद्य से कहा—"कल रात ही ज्वर-विकार के लक्षण दिखाई दिये थे। सबेरे हालत कुछ अच्छी देख कर आपको नहीं बुलाया; परन्तु चार घड़ी के भीतर ही इसने पुनः प्रलाप आरम्भ किया, देखते ही देखते यह दशा उपस्थित हुई।"

वैद्य महाशय ने सुदक्षिणा के मृत-शरीर की हालत देख कर सहज ही रोग का निर्णय कर लिया। यह महाशय एक वैद्य के बेटे थे। चिकित्सा शास्त्र में अच्छे पारङ्गत नहीं थे, तथापि ग्रामीण-जनों को सदा ही सभी तरह के कुकर्मों में सहायता पहुंचाने की काफी योग्यता रखते थे। यही इनका काम था। शास्त्र में लिखा है—"शत मारि भवेत् वैद्य, सहस्र मारि चिकित्सकः।" वैद्य महाशय के पास सम्भवतः आज तक एक सौ रोगी तो कुल आये भी नहीं थे। इसलिये जब इन्होंने देखा कि बिना एक सौ मनुष्यों के प्राण-नाश किये हम वैद्य नहीं कहला सकते, तो उस समय विवश हो इन वैद्य महाशय को एक सौ नर-हत्या पूर्ण करने के उद्देश्य से उपर्युक्त युक्ति से भी बहुतों का प्राण-नाश करना पड़ा। तर्क-पंचानन के घर से चलते समय वैद्य महाशय ने कहा—'महाशय,

जल्दी जल्दी दाह-क्रिया का प्रबन्ध करो। आज-कल यह एक नया ज्वर फैल रहा है। यह रोग संक्रामक है। जिस घर में एक आदमी को होता है, वहां औरों में भी फैल जाता है।"

यह सुनते ही तर्क-पचानन ने तत्क्षण पाठशाला से शिष्यों को बुलाया और सुदक्षिणा की अन्त्येष्टि क्रिया करने के लिए कहा। पाठशाला के कई एक छात्रों ने मिल कर उस निर्मलात्मा सुदक्षिणा के स्वर्ण-सदृश शरीर को दो घंटे के भीतर जला कर भस्मीभूत कर डाला।

सन्तान-वत्सला ब्राह्मणी सारे दिन और सारी रात पृथ्वी पर पडी-पडी सिर धुनती रही। कन्या की मृत्यु के समय घर के भीतर बैठे हुए अन्यान्य लोग गंगा जी में स्नान करके लौट आये। परन्तु घर के जिस स्थान पर सुदक्षिणा लेटी रही थी, ब्राह्मणी उसी स्थान पर पडी पडी रोती रही। आत्मीय स्वजनों तथा पड़ोसियों ने आकर उसे स्नान कराने की बहुतेरी चेष्टा की, परन्तु उसने स्नान भोजन कुछ नहीं किया। हिन्दू समाज के नियमानुसार मृत-शव के स्पर्शमात्र से स्नान करना पडता है; अतएव आत्मीय-स्वजन इकट्ठे हो कर ब्राह्मणी को हाथों-हाथ बाहर निकाल लाये। तर्क-पंचानन ने पाठशाला के दो छात्रों के द्वारा गंगा जी से दो घड़े जल मँगाया। पड़ोसिनी स्त्रियों ने उसी जल से उसका शरीर धो दिया। पहिने हुए वस्त्र उतार कर ब्राह्मणी ने अन्य वस्त्र तन पर लपेट लिये और घर में घुस कर वह पुनः पृथ्वी पर लेट रही। आई हुई स्त्रियों ने जैसे तैसे उठा कर उसे बिछौने पर लिटाया।

जिस दिन सुदक्षिणा की मृत्यु हुई, उस दिन सारे दिन और सारी रात उसकी मां ने भोजन करना तो दूर रहा, पानी भी नहीं पिया। दूसरे दिन आत्मीय-स्वजनों तथा पास-पडोस की स्त्रियों ने आकर उसे भोजन कराने की चेष्टा की। परन्तु भोजन के लिए अनुरोध करते ही

वह हाहाकार करती हुई कह उठती—"हा! मैं अब भोजन करूंगी—मेरी प्यारी कन्या एकादशी-व्रत के दूसरे दिन भी भोजन न कर गई—उपवासिनी ही चली गई—मैंने प्रातःकाल ही उठ कर उसके लिए भात बनाया था—" इसी प्रकार विलाप करते-करते ब्राह्मणी अचेत होगई।

क्रमश दो-तीन दिन बीत गये। तर्क-पंचानन की स्त्री ने इस वक्त तक एक बूंद पानी भी नहीं पिया। तर्क-पंचानन यदि स्वयं किसी समय उससे भोजन के लिए अनुरोध करने लगते तो उसकी शोकाग्नि सौ गुनी बढ़ जाती थी। उस समय वह उन्मत्त की तरह कुपित होकर रोते-रोते कहती थी—'यह चाण्डाल का अन्न—प्राण जायँ तो जायँ—मैं अब स्पर्श नहीं करूंगी। इस चाण्डाल के घर से मेरी प्राण-प्यारी पुत्री उपवासिनी ही चली गई। हा ईश्वर! निर्जला एकादशी के व्रत के दूसरे दिन मेरी प्यारी बेटी भूखी ही चली गई—मैंने किसके लिए भात बनाया था?"

तर्क-पंचानन ने कुछ डर कर इसके बाद फिर ब्राह्मणी से भोजन के लिए अनुरोध नहीं किया। इसी प्रकार पांच दिन बीत गये। पांचवें दिन के बाद ब्राह्मणी शक्तिहीनता के कारण अचैतन्य हो गई। उस समय आत्मीय-स्वजनों ने उसके मुंह में एक-एक बूंद करके दूध डालना शुरू किया। ब्राह्मणी जिस समय बेहोश होती थी, उस समय दूध का कोई-कोई बूंद गले के भीतर उतर जाता था; परन्तु होश आते ही कोई भी उसके मुंह में दूध नहीं डाल पाता था। छठे दिन वह पहिले की अपेक्षा अधिक दुर्बल होगई। उस समय वैद्य ने आकर कहा—"इनके जीने की आशा क़तई नहीं है। सम्भवतः आज सन्ध्या तक इनकी मृत्यु हो जायगी।"

वैद्य की यह बात जैसे ही ब्राह्मणी के कानों में पहुँची वैसे ही वह अपने को आसन्न-मृत्यु समझ कर बारम्बार कहने लगी—"हे पर-

मेश्वर ! इस जीवन मे मेरे लिए अब कोई दुख शेष नहीं रहा। यदि पुन मुझे इस पृथ्वी पर जन्म ग्रहण करना पडे तो मेरे गर्भ से कभी कन्या-सन्तान न जन्मे।" यह कहते कहते ब्राह्मणी किंचित् उत्तेजित हो उठी, और जोश के साथ वारम्वार कहने लगी—"हे विधाता ! ब्राह्मण कुल में कभी किसी के यहां कन्या-सन्तान का जन्म न हो—ब्राह्मण-कुल मे कन्या न जन्मे—ब्राह्मण-कुल में कभी कन्या न जन्मे—यह दारुण यन्त्रणा भला कौन सह सकता है ?—कौन सह सकता है ?—क्यों कर सह सकता है ?—देखो, देखो, एक वार मेरे हृदय पर हाथ रख कर देखो, छाती जल कर राख होचुकी है—" यह कहते कहते छाती के ऊपर हाथ पीट-पीट कर ब्राह्मणी बेहोश होगई। उसका शरीर पहिले की अपेक्षा अधिक निस्तेज हो गया।

वैद्य ने कहा—"वात का ज़ोर कुछ विशेष बढ गया था, इसीलिए इस प्रकार ज़ोर से प्रलाप करने लगी थी। अब वह ज़ोर जाता रहा। ब्राह्मणी जी को शीघ्र ही नारायण क्षेत्र में पहुँचाने की व्यवस्था करो। अब अधिक समय नहीं है।"

तर्क-पंचानन ने उस समय स्त्री के कान के पास मुंह ले जाकर कहा—"अन्त समय है, दुर्गति-नाशिनी-दुर्गा के नाम का स्मरण करो।" स्वामी की यह बात सुनते ही ब्राह्मणी को होश हुआ। वह पुन जाग में आकर कहने लगी—"चूल्हे में पड़े तुम्हारा दुर्गा-नाम—एक लक्ष दुर्गा-नाम का जप किये विना किसी दिन पानी नहीं पिया—क्या उसी दुर्गा नाम के जप का यह फल हुआ ?—मेरी छाती फटी जाती है—बेटी उपवासिनी ही चली गई—हे परमेश्वर—हे परमात्मन ! यदि फिर कभी ससार में जन्म हो तो म्लेच्छ-कुल में हो, जिससे सन्तान का यह दारुण दुख आंखों न देखना पडे। ब्राह्मण-कुल में मेरा जन्म न हो। कलयुग के

ब्राह्मण चाण्डाल हैं, बल्कि चाण्डाल से भी गये-बीते है, चाण्डाल से भी अधम हैं, चाण्डाल से भी निठुर हैं—अधम—निठुर—अधम—निठुर —अ—ध— ।"

यही कहते कहते कण्ठावरोध हो गया । देखते ही देखते सन्तान वत्सला साध्वी ब्राह्मणी ने कुत्सित कुरीतियों से परिपूर्ण नरक सदृश वङ्गभूमि का परित्याग कर अमृतमय की अमृतमयी गोद में आश्रय लिया ।

वङ्ग-विधवाओं के चरित्र की आलोचना

वैद्य महाशय सुदक्षिणा के मृत शरीर को देख कर लौटते वक्त रास्ते में दो एक गृहस्थों के यहां तमाखू पीने को बैठे । गृहस्थ लोग पूछने लगे—"वैद्य महाशय, तर्क-पंचानन की लड़की को कैसा ज्वर हुआ था ?" वैद्य महाशय पहिले तो बोले, "हां, ज्वर-विकार ही था ।" परन्तु बाद में चुपके-चुपके कहने लगे—"अरे ज्वर किसे था ?—सम्भवतः कुचरित्रा थी, इसलिये खुद ही विष खा लिया होगा, अथवा किसी आत्मीय स्वजन ने खिला दिया होगा ।"

तर्क-पचानन महाशय यदि इन्हीं वैद्य जी के यहां से विष ख़रीद कर लाते तो शायद वैद्य जी इस भेद को कहीं न प्रकट करते । परन्तु विष ख़रीदा गया था रूपनारायण सेन कविरञ्जन के यहां से । इस ओर पाठशाला का छात्र श्यामापद भट्टाचार्य भूल से इन रामरूप सेन कविरत्न को चिकित्सा के लिए बुला लाया था । बस, इसी में गड़बड़ हो गया ।

दो ही दिनों के भीतर गांव भर में यह ख़बर फैल गई कि तर्क पचानन की कन्या विष खाकर मर गई। दुपहर के बाद तीसरे पहर गृहस्थों के यहां जिस समय पास-पडोस की स्त्रियां आकर बैठतीं तो परस्पर इस प्रकार की बातचीत करतीं—"बाबा! कलिकाल की स्त्रियों की माया किसी के जानने की नहीं। तर्क-पंचानन की बेटी सुदक्षिणा के पेट में ऐसे-ऐसे गुन भरे थे, हम तो यह स्वप्न में भी नहीं जानती थीं। देखने मे ऐसी सीधी और भाली-भाली जान पडती थी कि उस पर कभी किसी को तनिक भी सन्देह नहीं हुआ। उसके मुह की बात तक कभी किसी ने नहीं सुनी। कभी घर के बाहर नही निकलती थी। पुरुषों की बात तो दूर रही, हम बूढ़ी-बूढ़ी स्त्रियों तक ने भी उसका मुह सँभाल कर नहीं देख पाया। उसके पेट में ये औगुन! इन कलिकाल की स्त्रियों की गति जानना हमारे लिए सर्वथा दुःसाध्य है।"

वैद्य महाशय के द्वारा ही यह भेद प्रकट हुआ था। परन्तु कुटिल प्रकृति के मनुष्यों में सत्यासत्य के निर्णय की शक्ति नहीं होती। तर्क-पंचानन मन ही मन सोचने लगे कि शिरोमणि की कन्या श्यामा ने ही यह सब रहस्य प्रकट कर दिया है। निरपराधिनी श्यामा के विरुद्ध तर्क-पंचानन महाशय तीव्र क्रोधाग्नि में प्रज्वलित हो उठे। उन्होंने द्वेषपूर्वक बेचारी श्यामा के नाम पर तरह-तरह के झूठे अपवाद उडाने शुरू किये, और दिन-रात इस चेष्टा में रहने लगे कि किस प्रकार वे श्यामा के चरित्र को कलंकित करके उसके वृद्ध पिता शिरोमणि जी को समाज में निरादृत करें। बस, इसी घटना से तर्क-पंचानन और शिरोमणि, दोनों के बीच घोर शत्रुता का सूत्रपात हुआ था।

पाठकों को याद होगा कि शिरोमणि के पास जिस समय उनका छात्र वामाचरण दौड़ता हुआ आया था और नवकिशोर के विरुद्ध मिथ्या

अपवाद उडाने की भूमिका बाँध रहा था; उस समय शिरोमणि महाशय पहिले तो बड़े चकित हुए थे, उन्हें यह आशंका हुई थी, कि हमारी कन्या के विरुद्ध तर्क-पंचानन जी पुनः कोई नया अपवाद उडावेंगे। परन्तु वामाचरण ने जिस समय नवकिशोर के विरुद्ध अपवाद की बात कही, उस समय उन्होंने बडे उत्साह के साथ उसके सङ्ग जाकर नव-किशोर का सर्वनाश किया।

शिरोमणि की कन्या श्यामा का चरित्र बहुत ही उज्वल था। वह कैसी पवित्रचरित्रा थी, और उसका अन्तरात्मा कैसे निर्मल धर्म-भावों से परिपूर्ण था; पाठकों को इसका परिचय आगे मिलेगा। परन्तु ईर्ष्या-द्वेष से परिपूर्ण इस नरक-तुल्य वंगदेश में पवित्र से पवित्र चरित्र को भी मिथ्या कलंक से कलंकित करने में किसी को तनिक भी संकोच नहीं होता।

तर्क-पंचानन महाशय ने निरपराधिनी वंग-विधवा श्यामा के विरुद्ध स्वेच्छापूर्वक जहां तहां अपवाद उडाने शुरू किये। गांव में सब किसी को निश्चय होगया कि वास्तव में श्यामा कुपथगामिनी है! परन्तु किसने श्यामा को कुपथगामिनी बनाया, यह आज तक किसी को ज्ञात नहीं हुआ। इसलिये शिरोमणि के ऊपर अन्य कोई सामाजिक दण्ड तो डाला नहीं जा सकता, सिर्फ उनकी कन्या दुराचारिणी प्रसिद्ध हो गई, और इससे समाज में उनकी निन्दा होने लगी। हा वंग-कुलाङ्गारो! हा हीनबुद्धि वंग-महिलाओ! इस प्रकार के मिथ्या अपवादों को उडाने के कारण ही यह वंग-समाज दिनों दिन अधःपतित होता जाता है—क्या कभी यह तुम्हारे ध्यान में नहीं आया?

एक दिन तीसरे पहर मुहल्ले की नाइन, रूपा की मां, जगाई की मां, इत्यादि गांव की विशेष प्रतिष्ठित रमणियाँ क़ासिमबाज़ार की रेशम

की कोठी के दीवान हरगोविन्द मुकर्जी की विधवा वहिन, राधामणि ठाकुरानी के दरबार में आ उपस्थित हुई। ठाकुरानी जी के इजलास में, आई हुई समस्त स्त्रियों के बैठ जाने के बाद, जगाई की मा ने श्यामा की बात उठाई। राधामणि ठाकुरानी ने कहा—'इन अभागिनियों को विष देकर मार डालना ही अच्छा। मैं भी आठ बरस की अवस्था में विधवा हो गई थी। परन्तु मेरे तीन पन बीत गये, अब एक पन रह गया है, भला कोई बता दे कि आज तक मेरे सम्बन्ध में गांव भर में किसी ने कोई बात कह पाई हो।"

यह बात सुन कर रूपा की मां बोली—"यदि आप ही के समान सब सती-साध्वी होतीं तो फिर कहना ही क्या था! ठाकुरानी दीदो! यही कारण है कि फुर्सत के वक्त आप के पास तनिक बैठ जाती हूँ। और किसी के घर मैं साल में एक दिन भी तो नहीं जाती।"

राधामणि ठाकुरानी बड़े घर की स्त्री थीं। उनके बड़े भाई हरगोविन्द बाबू रेशम की कोठी के दीवान थे। उनका मासिक वेतन पचीस ही रुपया था; पर ऊपर की आमदनी बहुत थी। हर साल कोई डेढ़ लाख रुपया पैदा करते थे। कम्पनी के साहब लोग उन पर विशेष श्रद्धा रखते थे। हरगोविन्द बाबू के छोटे भाई राधागोविन्द बाबू रेशम की कोठी के क्लर्क थे। मासिक वेतन १२) था। परन्तु उनकी भी सालाना आमदनी सोलह सत्तरह हज़ार से कम नहीं थी। यदि वे चाहते तो सहज ही ढाके की नमक की गोदाम का दीवानी-पद प्राप्त कर सकते थे। उसमें प्रायः लाख डेढ़—लाख रुपया सालाना आमदनी होती। परन्तु घर छोड़ कर बाहर रहने से घर की ज़मींदारी इत्यादि का ठीक इन्तज़ाम न हो सकता। इसलिए वे उपर्युक्त दीवानी प्राप्त करने की चेष्टा नहीं करते थे।

राधामणि ठाकुरानी के दो भाई मानों दो इन्द्रजीत थे। इस लिए वे बड़े घर की स्त्री गिनी जाती थीं। इनकी बातें कुछ अधिक लम्बी चौड़ी होती थी, बड़े ऊँचे-ऊँचे नैतिक भावों से परिपूर्ण रहती थीं। यदि ये बड़े घर की स्त्री न होतीं तो सम्भवतः इस घटना के पचास बरस पहिले ही इन्हें किसी वैष्णवाश्रम में आश्रय ले लेना पड़ता। इनकी अवस्था इस समय प्रायः पचास बरस के लगभग है; परन्तु चारित्रिक दोष अब भी दूर हो सके हो, सो बात नहीं। हा, जैसे पहिले थे, वैसे अब नहीं हैं। यदि हम इनके जीवन की समस्त पूर्व घटनाओं का उल्लेख करें तो हमारा उपन्यास अश्लीलता से परिपूर्ण हो जावेगा, पाठिकाओं के पढ़ने योग्य न रहेगा। अतएव संक्षेप में हम सिर्फ इतना ही कहते हैं कि प्रायः पचीस बरस हुए, इन्होंने एक बार अपने घर के पहरेदार सुरमत-अली के साथ भागने की चेष्टा की थी। कासिमबाज़ार के पास पकड़ी गईं। बाबू राधागोविन्द ने उसी दिन से बंगाली मुसलमानों को नौकर रखना छोड़ दिया। पहरे के काम पर अब उन्होंने हिन्दू सिपाहियों को नियुक्त कर रखा है।

परन्तु राधामणि ठाकुरानी बड़े घर की स्त्री है। वे एक गरीब ब्राह्मण नवकिशोर की माता नहीं हैं। ब्राह्मण पण्डितों को बाबू राधा-गोविन्द हरगोविन्द के घर से बारह-चौदह हज़ार रुपया साल की आमदनी है। ऐसे बड़े आदमी को भला कौन बिरादरी से अलग कर सकता है? निदान राधामणि ठाकुरानी भद्र समाज में बड़े गर्व के साथ चलती फिरती हैं। अन्यान्य स्त्रियों के सम्बन्ध में किसी प्रकार के अपवाद की बात सुनते ही कह उठती है—"मैं आठ बरस की अवस्था से विधवा हूँ; परन्तु आज तक मेरे सम्बन्ध में किसी ने रत्ती भर बात न कह पाई। अपने में ऐब न हो तो कोई कैसे कुछ कह सकता है?"

इस प्रकार राधा ठाकुरानी के घर जुड़ी हुई स्त्रियों की सभा में श्यामा के चरित्र की आलोचना होती रही। परन्तु हम इस समय राधा मणि ठाकुरानी के घर मे बिदा ग्रहण करते हैं, और पाठशाला के छात्र ने श्यामा के चरित्र की जिस प्रकार आलोचना की थी, उसका नीं उल्लेख करते हैं।

एक-एक करके पाठशाला के छात्रगण इकट्ठे हुए, और श्यामा चरित्र की आलोचना करने लगे। अध्यापक महाशय जिस समय मौ नहीं रहते थे, उस समय छात्रों को इस आलोचना का काफ़ी मौ मिलता था। हरिदास तर्क-पञ्चानन की पाठशाला में कितने ही छात्र थे उनमें से एक ने कहा—श्यामा के सम्बन्ध में जो कुछ सुना गया उसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं है। श्यामा का चरित्र कदापि अच्छा न हो सकता। भला शास्त्र की बात मिथ्या हो सकती है? विष्णु शा ने कहा है—

*स्थानं नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नरः
तेन नारद ! नारीणां सतीत्वमुपजायते।

दूसरा छात्र बोला—ठीक ही कहते हो। शास्त्र कदापि मिथ्या नहीं। विष्णु शर्म्मा ने और भी तो कहा है—

न स्त्रीणाम् प्रियः कश्चित् प्रियो वापि न विद्यते।
गाव स्तृणमिवारण्ये प्रार्थयन्ति नवं नवम्।*

तीसरा छात्र बड़ा दुष्ट था। उसने जो श्लोक पढ़ा उसकी प्रथम पंक्ति हम नीचे उद्धृत करते हैं। जिन पाठकों की इच्छा हो, वे

* मूल लेखक ने लिखा है—"हिन्दू शास्त्रकारों के इन घृणित मत प्रतिपादक श्लोकों का बंगला अनुवाद लिखने से पुस्तक अश्लीलता मे पूर्ण हो जाती, यह सोच कर हमने इनका बंगला अनुवाद नहीं दिया।"

इस श्लोक को हितोपदेश मे पूरा पढ़ सकते हैं। इस घृणित श्लोक को पूरे रूप में उद्धृत करने से पुस्तक भद्र समाज के पढने योग्य न रहेगी—

सुवेशां पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदिवासुतम्।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

पाठशाला के छात्रगण इस प्रकार पुस्तकों के वाक्यों के प्रमाण दे दे कर नारी-जाति के चरित्र की आलोचना कर रहे थे। परन्तु जिस देश के पुरुषों मे नारी जाति के प्रति ऐसे घृणित विश्वास फैले हुए हैं, जिन्होने नारी जाति के प्रति यथोचित सम्मान और श्रद्धा प्रकट करने की शिक्षा ही नही पाई, उनका जातीय जीवन नितान्त घृणित और निन्दनीय है, इसमें सन्देह ही क्या ?

उन दिनों देश की सामाजिक अवस्था ऐसी शोचनीय थी, और इसी कारण उस समय बंगवासियो को अपने कुकर्मों के प्रतिफल स्वरूप नाना प्रकार के अत्याचारों से पीडित होना पडा था। बंगाल की उसी तत्कालीन सामाजिक अवस्था का वर्णन पिछले दो परिच्छेदों में किया गया है। इस प्रकार के समाज मे वास्तविक देशहितैषिता का उद्भव नहीं होता। वरन् उपर्युक्त सामाजिक अवस्था के द्वारा समाज के प्रत्येक स्त्री-पुरुष का हृदय दुष्ट इच्छाओं का आधार बन जाता है।

अनाथा कन्यात्रय

छिदाम विश्वास की स्त्री की दुरवस्था देख कर सावित्री मन ही मन अत्यन्त दुखित होने लगी। सोचने लगी, इस संसार के धन-सम्पत्ति

आदि सभी पदार्थ असार हैं। आज से दो तीन बरस पहिले छिदाम विश्वास की स्त्री की सेवा-शुश्रूषा के लिए आठ-दस दास-दासियाँ नियुक्त थीं, पालकी पर सवार होकर वह प्रति दिन गङ्गा स्नान करने जाया करती थी; आज उनकी यह दुर्दशा है !

छिदाम की स्त्री एक फटा पुराना वस्त्र पहिने थी, उसके अतिरिक्त दूसरा वस्त्र उसके तन पर न था। आराट्रन साहब की स्त्री के दिये हुए चार-पाँच कपडे सावित्री के पास थे। उनमें से दो कपड़े उसने छिदाम की स्त्री को दे दिये, और बाद में उससे विदा ग्रहण कर वह कलकत्ते की ओर अग्रसर हुई।

सावित्री अन्यान्य मुसाफिरों के पीछे-पीछे चलने लगी। वह सदा ही सब के पीछे रहती थी। इस प्रकार समस्त पथिकों के पीछे-पीछे चलने के दो कारण थे। एक तो वह बहुत देर तक जल्दी-जल्दी चल नहीं पाती थी, इसलिए धीरे-धीरे चलती थी। दूसरे, स्वेच्छा से वह अन्यान्य पथिकों से कुछ दूर पीछे रहना पसन्द करती थी। सोचती थी, मैं अबला हूँ, कौन जाने, कहीं सब के संग एक साथ मिल कर चलने में कहीं कोई व्यक्ति दुर्वासना से मेरा धर्म नष्ट करने की चेष्टा न करे।

शाम हो आई। जो पथिक आगे-आगे जा रहे थे, वे सामने के बाज़ार में पहुँचते ही अपने अपने ठहरने का प्रबन्ध करने लगे। सावित्री अभी बाज़ार से बहुत फासिले पर थी। सामने उसने एक बरगद का पेड देखा। बाज़ार इस बरगद के पेड से भी प्राय: चार-पाँच सौ हाथ की दूरी पर था। उससे और आगे न चला गया। मन में सोचा कि इसी पेड के नीचे थोड़ा सा दम लेकर बाद में बाज़ार के भीतर जाऊँ। पेड के नीचे पहुची तो वहा उसने तीन कन्याएं देखीं। उनमें से एक की अवस्था सात बरस से अधिक न होगी। दूसरी की अवस्था दस ग्यारह बरस की जान पड़ती थी। तीसरी कन्या नितान्त दुर्बल और

शक्तिहीन हो रही थी, उसकी अवस्था कम से कम सोलह बरस की होगी। वह पृथ्वी पर लेटी हुई थी। जान पड़ता था, मानो उसमें उठने की शक्ति नहीं है। इन्हें देख कर सावित्री ने सोचा कि सम्भवतः ये कन्याएं भी कहीं को जा रही हैं; इसलिए मैं भी बाज़ार में न जाकर इसी पेड़ के नीचे इन कन्याओं के साथ बेखटके रात बिता सकूंगी। यह सोच कर वह पेड़ के नीचे इन्हीं कन्याओं के पास बैठ गई। परन्तु पास बैठते ही उसने देखा कि वे तीनों ही कन्याएं आँसुओं की धारा बहा रही हैं। सोलह वरस की युवती कन्या कह रही है—"हा परमेश्वर! इस समय यदि मेरी मृत्यु हो गई तो इन दो का क्या हाल होगा?"

सावित्री इनके पास पहुंच कर चुपचाप बैठी रही। कोई बात पूछने का उसे साहस न हुआ। इन्होंने भी यकायक सावित्री से कोई बात न पूछी। थोड़ी देर बाद उस षोडशवर्षीया युवती ने अत्यन्त क्षीण स्वर में सावित्री से पूछा—"आप कहां जायेंगी?"

सावित्री—मैं कलकत्ते जाऊंगी।

युवती ने मन ही मन सोचा—"सम्भवतः ये भी हमारी तरह विपद्ग्रस्त हैं। यह सोच कर पुनः प्रकट रूप में सावित्री से बोली— "आप किसी भले घर की स्त्री जान पड़ती हैं; क्या अकेले ही कलकत्ते जारही हैं?"

सावित्री—विपत्ति पड़ने पर मनुष्य क्या नहीं करता?

युवती—मैं भी यही सोच रही थी कि आप भी हमारी तरह किसी दुरवस्था में फँसी हुई हैं। आप के पिता क्या नमक का कारबार करते थे?

सावित्री—नहीं, मैं तो तन्तुकारों की सन्तान हूं। कम्पनी के आदमियों ने दादनी के रुपये के लिए हमारा घर-बार लूट लिया है।

युवती—कम्पनी के आदमी क्या सभी का घर-बार लूटा करते हैं? मैं तो समझती थी, जो नमक का कारबार करते हैं, उन्हीं की आफ़त है।

सावित्री—क्या आपका घर भी कम्पनी के आदमियों ने लूट लिया है?

युवती—हा परमेश्वर! हमारा क्या सिर्फ़ घर ही लूट लिया है? हमारा तो सर्वनाश कर दिया है! जातीय मान-अभिमान कुछ भी न रह गया। हमारे पिता को शायद कलकत्ते की जेल में क़ैद कर रक्खा है!

सावित्री—आपका घर कहां है?

युवती—वर्धमान के राजमहल का हाल तो सुना ही होगा। उस राजमहल से हमारा निवासस्थान एक मंज़िल के फ़ासिले पर है। कलकत्ते की जेल में क्या आपका कोई आत्मीय क़ैद है?

सावित्री—हमारे बड़े भाई तथा स्वामी को शायद कलकत्ते की जेल में क़ैद कर रक्खा है।

युवती—हा ईश्वर! तुम क्या इस संसार में नहीं हो? कम्पनी के आदमियों का यह अन्याय क्या तुम नहीं देख रहे हो?

सावित्री—आपके पिता को कम्पनी के आदमियों ने क्यों क़ैद किया है?

युवती—वे सारी बातें कौन कहे? हमारा सर्वनाश कर डाला है। इज़्ज़त, प्रतिष्ठा, धन, माल सब कुछ चला गया—घर मकान कुछ भी न रहा!

यह कह कर युवती रोते रोते सविस्तार अपना सारा वृत्तान्त सुनाने लगी। बीच बीच में उसे कण्ठावरोध हो जाता था। अपनी

सारी कथा सुनाते समय इस युवती ने जो कुछ कहा था, उसका सारांश हम नीचे उद्धृत करते हैं। हमारी पाठिकाओं का हृदय स्वभावत. ही दयालु है। अतएव युवती ने जिस प्रकार कातर-कण्ठ और करुण-स्वर में अपनी विपत्ति-कहानी कही थी, उसे यदि हम उसी के शब्दों में लिखें तो वे अपनी आँखों की अश्रु धारा के वेग को रोकने में कदापि समर्थ न होंगी।

इस युवती का नाम अन्नपूर्णा है। इसके साथ की दो अन्य बालिकाएं इसकी सगी छोटी बहिनें हैं। उनमें से बडी का नाम जगदम्बा और छोटी का नाम अहल्या है। वर्धमान ज़िले के अन्तर्गत किसी एक प्रसिद्ध ग्राम में मदनदत्त नाम के एक नमक के व्यापारी थे। ये तीनों उन्हीं मदनदत्त की बेटियाँ हैं। मेदिनीपुर ज़िले के अन्तर्गत जलामुठा पर्गना के ज़मींदार लक्ष्मीनारायण चौधरी* के यहां नमक का कारखाना था। मदनदत्त एवं अन्यान्य ज़िलों में रहने वाले नमक के कितने ही व्यापारी लक्ष्मीनारायण चौधरी के यहाँ से नमक ख़रीद ख़रीद कर व्यापार करते थे। मदनदत्त एक प्रतिष्ठित व्यापारी थे; चार पाँच हज़ार रुपये का उनका कारबार था।

लार्ड क्लाइव ने जिस समय नमक के व्यापार का एकाधिकार स्थापित किया, उसके बाद कलकत्ते में अंगरेज़ों की जो वणिक-सभा संस्थापित हुई थी, और उस सभा के अध्यक्षों ने जिस प्रकार के भयानक अत्याचार और अवैध व्यवहार आरम्भ किये थे, उनका वृत्तान्त इससे पहिले लिखा जा चुका है। उस वणिक सभा के अनुचित बर्ताव के कारण ही लक्ष्मीनारायण चौधरी ने अपना नमक का कारख़ाना उठा दिया। उन्होंने देखा कि अंगरेज़ी वणिक-सभा के हाथों बारह आना मन के भाव में नमक बेचना पड़ता है, इससे बचत कुछ भी नहीं होती। यह

* Vide Note (15) in the appendix.

सोच कर उन्होंने नमक तयार कराने का कारबार क़तई छोड़ दिया। परन्तु अँगरेज़ व्यापारियों को बंगालियों की बात का एतबार न होता था। उन्हें शक हुआ कि लक्ष्मीनारायण चौधरी गुप्त रूप से नमक तैयार करके देशी व्यापारियों के हाथ बेचता है। अंगरेज़ी वणिक-सभा के कर्मचारियों ने इस प्रकार का सन्देह करके लक्ष्मीनारायण चौधरी के प्रधान गुमाश्ता सागर पोद्दार को गिरफ्तार किया। वेरेलस्ट और साहब साहब के गुमाश्तों ने सागर पोद्दार को गिरफ्तार करते वक्त उसका घर तक लूट लिया, और मार मार कर उसे धमकाने लगे कि इस साल लक्ष्मीनारायण चौधरी के कारख़ाने से जिन जिन व्यापारियों ने नमक ख़रीद किया है, उनके नाम तुम्हें बताने पड़ेंगे। सागर बारम्बार यही कहता था कि "चौधरी महाशय ने नमक का कारबार क़तई छोड़ दिया है।"

वणिक-सभा के गुमाश्तों ने जब देखा कि सागर किसी का भी नाम नहीं बतलाता तो उसे कलकत्ते की जेल में भेज दिया। वणिक-सभा के कलकत्ते में रहने वाले कर्मचारियों ने वेरेलस्ट साहब की आज्ञानुसार सागर से उन सब व्यापारियों के नामों की एक फ़र्द तैयार करा ली, जो गत पिछले सालों में लक्ष्मीनारायण चौधरी के कारख़ाने से नमक ख़रीदते रहे थे। इसी फ़ेहरिस्त के अन्तर्गत वर्धमान ज़िले के मदनदत्त एवं अन्यान्य व्यापारियों के नाम थे। वणिक-सभा के अध्यक्षों ने भिन्न भिन्न ज़िलों की नमक की कोठियों के अंगरेज़ी एजन्टों को ऐसी ही फ़र्द तैयार करने के लिए नमक के व्यापारियों की ख़ानातलाशी लेने की आज्ञा दी। उस समय वर्धमान की कोठी के एजन्ट जानस्टन साहब थे। ज्योंही उन्हें मदनदत्त की ख़ानातलाशी लेने का हुक्म मिला वैसे ही उन्होंने फ़ौरन दीवान भवतोष वन्द्योपाध्याय एवं अन्यान्य प्यादे बर्कन्दाज़ तथा सिपाहियों को मदनदत्त के यहाँ ख़ानातलाशी लेने के लिए

भेजा। इन्होंने मदनदत्त की ख़ानातलाशी ली, सिर्फ तीन सेर नमक मिला। गृहस्थ के यहां चार-पांच सेर नमक रोज़ाना ख़र्च के लिए साधारणतः हर वक्त बना रहता है। परन्तु भवतोष वन्द्योपाध्याय और जानस्टन साहब ने निश्चय कर लिया कि मदन वास्तव में गुप्त रूप से लक्ष्मीनारायण चौधरी के गुमाश्ता के पास से अब भी नमक ख़रीदता है, अन्यथा क्या किसी गृहस्थ के घर मे साधारण ख़र्च के लिए कभी इतना नमक जमा रह सकता है? उन्होंने यह भी कहा कि साधारण ख़र्च के लिए लोगों को जितने नमक की ज़रूरत पडती है, उतना वे हर रोज़ बाज़ार से ख़रीद लाया करते हैं। अतएव अवस्था घटित प्रमाण के द्वारा मदनदत्त का अपराध निःसन्देह रूप में प्रमाणित हो रहा है। परन्तु अंगरेजी विचार प्रणाली के अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण न प्राप्त होने पर अपराधी को सन्देह का फल नहीं दिया जा सकता। अतएव मदनदत्त के विरुद्ध कोई प्रत्यक्ष प्रमाण पाया जाता है या नही, इस पर विचार होने लगा।

जानस्टन साहब खाना खा रहे हैं। आज़िमअली खानसामा रक़ाबी में मुर्गी का एक रोट रखे साहब के सामने खड़ा है। साहब बड़े कार्यदक्ष हैं। उसी समय मदन के अपराध का विचार आरम्भ हुआ। उन्होंने आज़िमअली से पूछा—"तेरे घर खाने के लिए हर रोज़ कितना नमक ख़रीदा जाता है?" आज़िमअली ने कहा—"हुज़ूर! हमारे घर के लोग प्रत्येक बाज़ार के दिन एक पाव नमक ख़रीद कर रख छोड़ते हैं, इतने से सात आठ दिन खूब मज़े में चल जाते हैं। सात दिन के पहिले और नमक नहीं लाना पड़ता।" साहब ने कहा—"ठीक कहते हो?"

आज़िमअली ने कहा—"हुज़ूर! प्राण जाने पर भी झूठ नहीं कह सकता। मेरे बाप दादा क्या, सात पुरखों में से किसी ने कभी झूठ नहीं बोला।"

मदनदत्त के गुप्त रूप से नमक ख़रीदने-बेचने का अपराध आज़िम अली के इज़हारों से सर्वथा प्रमाणित होगया। आज़िमअली के घर के लोग जब हर हफ्ते मे बाजार के दिन एक पाव नमक ख़रीद कर घर का काम चला लेते हैं, तब बंग-देश के अन्यान्य सभी गृहस्थ हर हफ्ते बाज़ार के दिन एक पाव नमक ख़रीद कर गृहस्थी का खर्च चला सकते है, इस विषय में सन्देह ही क्या?

इस प्रकार प्रमाण के द्वारा मदनदत्त का, गुप्त रूप से नमक ख़रीदने-बेचने का, अपराध प्रमाणित हुआ। जानस्टन साहब ने वणिक् सभा के अध्यक्षों को रिपोर्ट भेजी कि नियमित ख़र्चे के लिए बंगाली गृहस्थों के घर में जितना नमक रहता है, उसकी अपेक्षा बारह गुना नमक ख़ानातलाशी के वक्त मदनदत्त के घर में मिला। इससे निःसन्देह प्रमाणित होता है कि मदनदत्त गुप्त रूप से नमक ख़रीदता-बेचता था। अन्यथा इतना नमक उसके घर कहाँ से आता। इसके अतिरिक्त गवाहों के इज़हारों से भी उसका अपराध प्रमाणित हो चुका है।

इस ओर ख़ानातलाशी के वक्त मदनदत्त की स्त्री और कन्याएँ घर से भाग कर एक जगल के भीतर जा घुसी थीं। ख़ानातलाशी के वक्त कोठी के गुमाश्ता और प्यादा बरकंदाज़ तथा सिपाहीगण घर के भीतर जो क़ीमती चीज़ें पाते, उन्हें हज़म कर लेते थे। संदूक और बक्सों को तोड़-ताड़ कर रुपया पैसा निकाल लेते थे। वर्तमान समय में जिस प्रकार पुलिस के कर्मचारियों में से जो कोई घूस लेते हैं, उन्हें जब कभी किसी ख़ून के मुक़दमे की तहक़ीक़ात का भार सौंपा जाता है, तो मन ही मन बड़े आनन्दित होते हैं, चार पैसे की आमदनी का मौक़ा हाथ आता है। इसी प्रकार उस समय ख़ानातलाशी का परवाना प्राप्त होने पर नमक की कोठियों के गुमाश्तों और सिपाही-प्यादों के हर्ष का पारावार नहीं रहता था।

मदनदत्त की ख़ानातलाशी के वक्त उसके घर जो कुछ क़ीमती माल असबाब था, वह सभी गुमाश्तों और सिपाही प्यादों ने हज़म कर लिया।

ख़ानातलाशी के दूसरे दिन मदनदत्त की स्त्री अपनी तीनों कन्याओं को साथ लेकर उस सूने घर मे वापस आई। परन्तु गॉव के लोग कहने लगे—"इनके घर में जब कम्पनी के सिपाही प्यादे घुसे तो अवश्य ही ये जाति-भ्रष्टा हो चुकी।" किसी किसी ने यहॉ तक कहा कि "कम्पनी के सिपाहियो ने मदनदत्त की स्त्री और बड़ी लड़की की इज्ज़त ले ली।"

मदनदत्त की स्त्री और तीनों कन्याएँ जाति-भ्रष्टा ठहरा दी गईं।

हा परमेश्वर! इस नरक-तुल्य बंगदेश में—इस निन्दनीय समाज में—मनुष्य को जन्म लेना पड़ता है! अत्याचार-पीड़ित मदनदत्त के परिवार के प्रति ग्राम-निवासियों ने तनिक भी सहानुभूति प्रकट न की, वरन् उल्टा उसे समाजच्युत कर डाला।

मदनदत्त की स्त्री और तीनो कन्याएं जाति-भ्रष्टा बन कर अपने घर में रहने लगीं। परन्तु उनका सारा माल-असबाब कम्पनी के गुमाश्ता और सिपाही-प्यादे लूट ले गये थे। किस प्रकार वे अपने दिन गुज़ारेंगी, इसका कोई ठीक न था। मदनदत्त की स्त्री और कन्याओ के तन पर सोने-चांदी के जो दो-एक आभूषण थे, उन्हें बहुत थोड़े मूल्य में बेच-बांच कर पेट पालने की व्यवस्था करनी पड़ी। परन्तु उन सब आभूषणों के मूल्य से दो तीन महीने के भोजनों की गुज़र न हुई। मदनदत्त की स्त्री क्लेश एवं अन्न-चिन्ता के कारण दिनों-दिन अत्यन्त दुर्बल होती गई। पति जेल में गया, स्वयं अपनी तीनो कन्याओं के सहित जातिच्युत हुई, तिस पर पेट के लिए भोजनों का कोई प्रबन्ध नहीं। इससे भी अधिक

ने पाठशाला में कभी संस्कृत का अध्ययन नहीं किया था। इसलिये रूखे ज्ञान की प्राप्ति के द्वारा उसका हृदय अभिमान और अहम्मन्यता से परिपूर्ण नहीं हुआ था। पेलाराम ने जब देखा कि कोई मदनदत्त की स्त्री का दाह-संस्कार करने नहीं आया, तो उसने कहा—"गांव का कोई साला आवे या न आवे, मैंने अपनी मालिकिन मां का नमक खाया है, मैं अकेला उसका दाह-संस्कार करूँगा। मेरी जाति बिरादरी के लोग मुझे बिरादरी से निकालें तो निकाल दें, कोई पर्वा नहीं; मैं किसी साले को नहीं डरता।"

यह कह कर पेलाराम ने अन्नपूर्णा से कहा—"दीदी कोई साला माता का दाह-संस्कार करने नहीं आया। यदि आप की आज्ञा हो तो मैं अपनी मालिकिन मां का दाह-संस्कार करूं।" अन्नपूर्णा की अवस्था इस समय १६ बरस की है। हिन्दुओं के आचार व्यवहार को वह बहुत अच्छी तरह जानती है। उसके पिता वैष्णव-धर्मावलम्बी स्वर्णकार थे। चाण्डाल यदि उसकी माता के शव को स्पर्श भी कर लेगा तो वह अधो-गति को प्राप्त होगी—अन्नपूर्णा इस प्रकार का विश्वास रखती है। अतएव पेलाराम की बात सुन कर वह हाहाकार करके रोने लगी। जिस लिए अन्नपूर्णा रो उठी उसे पेलाराम ने भली भांति समझ लिया, और उस दशा में बहुत कुछ सोच-समझ कर वह दो चार वैरागियों को तलाश कर लाने के लिए चल दिया। बंगाल के प्रायः प्रत्येक प्रदेश में वैरागियों का एक न एक दल मौजूद रहता था, थोड़े से रुपयों की प्राप्ति का [illegible] देखते ही वे मृत शव का दाह कर दिया करते थे। वर्तमान समय में भी मेदिनीपुर आदि ज़िलों में इस प्रकार के वैरागियों के दल पाये जाते हैं। मदनदत्त जिस गांव में रहते थे, उस गांव के पास ही एक गांव में इस प्रकार के वैरागियों का एक दल रहता था। पेलाराम ने उनके अखाड़े के पास जाकर दूर ही से उन्हें बड़े उच्च स्वर से पुकारा—"ओ बाबा जी—

ओ—ओ—बाबा जी हो—चार पाँच आदमी जल्दी से चले आओ। तुम्हारे लिए दही-चिउरों का ढङ्ग लगाया है। तुम्हे दही-चिउरा उड़ाने के लिए बीस आने नक़द मिलेंगे। हमारी मालिकिन मां का दाह-संस्कार कर जाओ।"

वैरागियों ने सोचा कि मदनदत्त की कन्या घोर आपदा में फंसी हुई है। उसकी माता का दाह करने के लिए यदि दिखावे के लिए पहिले हम ज़रा आनाकानी करें और ज़्यादा रुपया मांगे तो अवश्य ही वह पाच-सात रुपया देने पर राज़ी हो जावेगी। यह सोच कर उनमें से एक ने कहा—"भाई हम पांच रुपये से कम में नहीं जावेंगे।"

परन्तु पेलाराम उनके आन्तरिक भाव को पहिचान कर क्रोध-पूर्वक बोल उठे—"अरे साले वैरागी! तेरी जाति का तो स्वभाव ही यह है। तूने समझा होगा पेलाराम की बड़ी गौं पड़ी है। अकेला पेलाराम ऐसे तीन शवों का संस्कार कर सकता है। दूसरे के यहां सवा रुपया लेकर अपने ही आप ईंधन तक चीर-फाड़ कर दाह-संस्कार कर आते हो—यहां ईंधन हम स्वयं चीर-फाड़ देंगे—अच्छा तुम न आवो, अपने घर बैठो। हमारी मालिकिन मां पतली-दुबली छोटी लछमी जैसी तो हैं, हम दो घंटे के भीतर उनकी दाह-क्रिया समाप्त कर डालेंगे।"

वैरागियों ने देखा, पेलाराम हाथ से निकला जाता है। सवा रुपये से ज़्यादा देने वाला आदमी नहीं है। इस लिए तिचिद-मिचिड़ दो चार बात कह कर वैरागी लोग पेलाराम के साथ हुए और मदनदत्त के घर आये। तीन चार घंटे के भीतर ही उन्होंने मदनदत्त के घर के निकट-वर्ती तालाब के किनारे उनकी स्त्री का दाह-संस्कार समाप्त किया।

मदनदत्त की स्त्री का दाह करते समय उसकी तीनो कन्याएं श्मशान के पास ही बैठी थीं। रात के दस-ग्यारह बजे दाह-क्रिया समाप्त

हुई। परन्तु अल्पवयस्का कन्याओं के रहने-सहने के लिए अब कोई जग न रह गई। उन्हें बड़ा भय लगा। घर में किसी बड़े बूढ़े के न होने वे कारण उन्हें वहां रहने का साहस न होता था। यह देख कर पेलारा ने अन्नपूर्णा से कहा—"दीदी! आप फिलहाल बाबा जी के इस अखाड़े में चली जांय; वहीं रहें; वहां और भी दो चार स्त्रियां रहती हैं पीछे जब मालिक छूट कर आवे तब घर में आजाना।"

अन्नपूर्णा ने देखा कि वैरागियों के अखाड़े के अतिरिक्त औ कहीं जाने के लिए ठौर नही है। गांव के सजातीय स्वर्णकार हमें कदा अपने घरो में स्थान नही देंगे। यह सोच कर वह अपनी दोनों छो बहिनों को साथ ले वैरागियों के सग उनके अखाड़े चली गई।

परन्तु जिन समस्त वैरागियों को किंचित शास्त्र-ज्ञान है, भ समाज में जिनका कुछ मान सम्मान है, और जो गुरुगीरी का व्यवसा करते हैं, उन्हीं का चरित्र जब अत्यन्त घृणित रहता है, वही जब अने प्रकार के कुत्सित दुराचारों से अपने-अपने जीवन को कलङ्कित करते हैं, तब इन, मुर्दों को फूंकने का-व्यवसाय करने वाले, वैरागियों का क्या ठीक! इनका चरित्र उनसे बहुत गया-बीता था, इसमें सन्देह ही क्या? इनमें से एक वैरागी अन्नपूर्णा का धर्म नष्ट करने की चेष्टा करने लगा। अन्नपूर्णा अपने धर्म का तिलांजलि देने के लिए कदापि तैयार न हुई।

तत्कालीन हिन्दू स्त्रियों में पूर्वजन्म एवं पुनर्जन्म-सम्बन्धी विश्वास बहुत ही दृढ था। अन्नपूर्णा सोचने लगी कि पूर्व में न जाने कैसे-कैसे घोर पाप किये थे कि इस जन्म में यह असह्य क्लेश भोग रही हूँ। अब यदि इस जन्म में और पाप करूंगी तो पुनर्जन्म में इसकी अपेक्षा अधिक दारुण दुख झेलने पडेंगे। इस प्रकार के धार्म्मिक विश्वास से परिचालित हो वह अपने सतीत्व-धर्म को नष्ट करने के लिए सहमत

न हुई। और दो-तीन दिन के बाद ही उसने उस अखाडे को छोड कर पिता का साक्षात् प्राप्त करने की आशा से कलकत्ते को प्रस्थान किया।

मदनदत्त जिस गाव मे रहते थे, उसी गाव का नमक का एक अन्य व्यापारी गुप्त रूप से नमक ख़रीदने के अभियोग मे कलकत्ते की जेल में भेजा गया था। उस पर ढाई सौ रुपया जुर्माना हुआ था। वर्तमान समय मे अर्थदण्ड दिये जाने पर यदि कोई उस अर्थदण्ड का रुपया चुकाने में असमर्थ हो तो उसे एक निर्दिष्ट समय तक जेल मे रहना पडता है, परन्तु पहिले यह नियम नही था। जितने दिन तक जुर्माने का रुपया अदा न होता था, उतने दिन तक दण्डित व्यक्ति को जेल मे रहना पडता था। इस समय किसी व्यक्ति पर पचास रुपया अर्थदण्ड होने पर यदि वह पचास रुपया अदा न कर सके तो उसे पद्रह दिन, एक महीना अथवा अधिक से अधिक दो महीने तक जेल में रहना पडता है। परन्तु उन दिनों यदि किसी पर दस रुपया जुर्माना किया जाता था, तो जब तक दस रुपये अदा न हों, तब तक दण्डित व्यक्ति को जेल में रहना पडता था। सम्भव था कि दस रुपये के लिए किसी को पांच बरस तक जेल में रहना पड़े।

उपर्युक्त नमक के व्यापारी पर ढाई सौ रुपया जुर्माना हुआ। उसके पास रुपया चुकाने की कोई युक्ति न थी। विशेषत उसका घर भी कम्पनी के आदमी लूट-पाट चुके थे। उसके छोटे भाई ने कलकत्ते जाकर वहां के निवासी महात्मा गौरीसेन की शरण ली। गौरीसेन ने ढाई सौ रुपया देकर उसे क़ैद से छुडवा दिया।

बङ्गाल मे गौरीसेन का नाम आज भी बहुत प्रसिद्ध है। सौ बरस पहिले गौरीसेन नामक एक परम धार्मिक पुरुष कलकत्ते मे वास करते थे। ये सुविख्यात वैष्णव चरण सेठ के कारबार में साझीदार थे।

धर्मानुरागी गौरीसेन कलकत्ते में रहते हुए परोपकार में बहुत सा रुपया ख़र्च करते थे। ऋणग्रस्तों को ऋण से मुक्त कर देते थे, जिन पर जुर्माना होता था उनके जुर्माने का रुपया चुका कर उन्हें जेल से छुडा लेते थे। गुप्त रूप से नमक ख़रीदने-बेचने के अभियोग में अंगरेज़ व्यापारी अनेक आदमियों को अर्थदण्ड देकर उन्हें जेल भेजने लगे। इस ओर सहृदय गौरीसेन उन हत-भाग्य अभियुक्तो का जुर्माना चुका-चुका कर उन्हें जेल से मुक्त कराने लगे। गौरीसेन की उदारता का यश सारे देश मे फैल गया। मदनदत्त की स्त्री ने भी गौरीसेन का नाम सुना था। आज-कल भी बंगाल के लोग बातचीत में कहा करते है—"लागे टाका देबे गौरीसेन।" अर्थात् रुपये की ज़रूरत होगी, गौरीसेन देंगे।

मदनदत्त के जेल जाने के बाद उसकी स्त्री ने एक दिन अपनी लड़की अन्नपूर्णा से सलाह की थी कि मैं कलकत्ते जाकर गौरीसेन के पांव पकड़ूंगी। परन्तु मदन की स्त्री का देहान्त होगया, कलकत्ते न पहुँच पाई। अब अन्नपूर्णा ने मन ही मन निश्चय किया कि कलकत्ते जाकर पिता के छुटकारे के लिए गौरीसेन से अनुरोध करूं। इसी उद्देश से उसने दोनो बहिनो को साथ ले कलकत्ते की यात्रा की।

परन्तु कलकत्ते को प्रस्थान करते वक्त अन्नपूर्णा के पास सिर्फ दो आने पैसे और पहिनने के लिए दो नये कपडों के अतिरिक्त दो ही पुराने कपडे थे। मार्ग में सिर्फ दो ही दिनो के भोजन का प्रबन्ध करने में गांठ के आठ पैसे ख़र्च हो गये। तीसरे दिन दो कपडो के बदले में खाने के लिए चावल मोल लिये। चौथे दिन दोपहर को पिछले दिन के बचे-खुचे चावलों से तीनों ने किसी तरह गुज़र की। पर आज पाँचवा दिन है। कल दूसरे वक्त भी कुछ भोजन नही मिला था। आज भी शाम होने को आई, भोजन का कोई प्रबन्ध न हो सका।

मदनदत्त साधारणत एक धनी आदमी थे। अतएव उनकी कन्याएँ नहीं जानती थीं कि भीख कैसे मांगी जाती है। कभी-कभी उनके जी में आता था कि मुसाफिरो से कुछ याचना करे, परन्तु पथिकगण जब उनके पास होकर निकले, तो वे लज्जा के मारे मुंह खोल कर कुछ भी न कह सके। इस पेड के नीचे वे तीनों बैठी हुई है। परन्तु इस समय तक उन्हें किसी के निकट कुछ याचना करने का साहस नहीं हुआ है।

मदनदत्त की छोटी कन्या अहल्या की अवस्था सिर्फ़ सात वर्ष की है। वह भूख से बडी व्याकुल है। जगदम्बा ने उसे बरगद की कई हरी-हरी नवील पत्तियां लाकर दी थीं; वही पत्तियां उसने खाई है।

अन्नपूर्णा आज तीन दिन से ज्वर में है। इससे पहिले वह कभी-कभी अहल्या को गोद में लेकर चलती थी। परन्तु आज उनसे नहीं चला जाता। पेड के नीचे पडी हुई है।

सावित्री इन अनाथा कन्याओं का दुख-वृत्तान्त सुन कर बडी व्याकुल हुई। ये आज सारे दिन की भूखी है, यह जानकर उसने अपने पास के चार रुपयो मे से एक रुपया निकाला और जगदम्बा के हाथ में दिया। जगदम्बा उसके मुंह की ओर ताकती रह गई। सावित्री ने उनसे कहा—"चलो सामने के बाज़ार से हम इस रुपये को तुडा कर चावल मोल ले आवे, और लौट कर चारो जनों के लिए भोजन का प्रबन्ध करें।" अहल्या यह बात सुन कर बडी प्रसन्न हुई।

अन्नपूर्णा ने सावित्री से कहा—"आप बहुत दूर से चली आ रही हैं, बाज़ार जाने का कष्ट क्यो उठावेंगी। यही दोनों चावल ख़रीद ला सकेंगी।"

जगदम्बा और अहल्या, सावित्री का दिया हुआ रुपया लेकर, बाज़ार से चावल ख़रीदने चली गईं।

दोनों बहिनों के चले जाने पर सावित्री अन्नपूर्णा से कहने लगी —"मेरी समझ में नहीं आता कि आपके पति ने आपको इस दुरवस्था में कैसे छोड़ा ?" अन्नपूर्णा ने कहा—"सात बरस की अवस्था में मेरा विवाह हुआ था, तब मेरे पति की अवस्था ग्यारह बरस की थी। उस समय वे मुझे विशेष कष्ट का कारण समझते थे, और मैं भी उन पर ऐसा कुछ प्रेम नहीं रखती थी। निदान उन दिनों मुझ में और उनमें परस्पर प्रेम-भाव का सर्वथा ही अभाव था। परन्तु बड़े होने पर मेरे हृदय मे उनके प्रति प्रेम का सञ्चार हुआ। मैं उन पर बहुत ही स्नेह रखने लगी। परन्तु दुर्भाग्य से मेरे पति के हृदय में मेरे प्रति प्रेम का सञ्चार नहीं हुआ। उनके चित्त में मेरे प्रति पहिले का विद्वेष भाव ही बना रहा। मेरी समझ मे बहुत बाल्यावस्था मे विवाह होने पर अनेक स्थलों मे इस प्रकार की अवस्था घटित होती है।"

दोनो की बातें समाप्त होते-होते जगदम्बा और अहल्या बाज़ार से चावल और लकड़ी ख़रीद कर आगईं। चारो ने मिल कर उसी पेड़ के नीचे भोजन का प्रबन्ध किया। परन्तु अन्नपूर्णा से कुछ न खाया गया। उसका ज्वर क्रमशः ज़ोर पकड़ने लगा। भोजन के बाद चारों पेड़ के नीचे लेट रहीं। जो फटा-पुराना कपड़ा पहिन कर दिन में लज्जा-निवारण करती थीं, रात्रि में वही इनका बिछौना होता था। आज भी उसी को बिछा कर चारो एक साथ पड़ रहीं। परन्तु रात्रि मे अन्नपूर्णा का शरीर एकदम अशक्त होगया। उसने अच्छी तरह समझ लिया कि मेरी मृत्यु निकट ही है। सवेरा होने के आध घंटा पहिले ही उसने अपनी दोनों छोटी बहिनो और सावित्री को जगाया, और सावित्री को सम्बोधन करके कहा:—

"मै स्वप्न देख रही थी कि मेरी मां मेरे सिरहाने बैठी अँगुली से आपकी ओर इशारा करके मुझसे कह रही है—'यह स्वर्गीया देवी हैं,

अपनी दोनों वहिनों को इनके हाथो मे सौंप कर मेरे साथ आओ। तुम्हारे सारे क्लेश, सारे दुख दूर हो जायँगे।' मेरी मां निश्चय ही मेरे पास आई थी। जान पडता है, मेरे अन्तकाल मे अब अधिक देर नहीं है। मेरा सारा शरीर वेकावू हो रहा है। छाती पर मानों वोझ सा रक्खा है। वात करने मे भी कष्ट होता है। मेरे मरने पर मेरी इन दोनो अनाथा वहिनों को अपने साथ कलकत्ते लिये जाना। मै इन्हें आपके हाथों मे सौंपती हूँ। आप कलकत्ते जा रही हैं, इन्हे भी साथ लेती जांय। यदि वहा पहुँच कर पिता से साक्षात् हो गया तब तो ये पिता के पास चली जायेगी। परन्तु यदि पिता की मृत्यु हो चुकी हो, अथवा अन्य किसी कारण-वश पिता से साक्षात् न हो सके तो इन्हे अपने साथ रखना। मुझे यह निश्चय विश्वास हो रहा है कि आपका दुख दूर होगा, और आप फिर इस संसार मे सुख से दिन वितायेगी। अपने पति और भाई का आप अवश्य ही उद्धार कर सकेंगी। एक बात मै और कहती हूँ, कलकत्ते पहुँच कर आप महात्मा गौरीसेन के पास जायँ, सुना है, वे वडे दयावान् पुरुष हैं। कई सौ अनाथ कङ्गालों को भोजन देते हैं। उनका नाम याद रखना, भूल न जाना।

इतनी बाते करने के वाद अन्नपूर्णा बडे जोर-शोर से श्वास छोडने लगी। दोनों छोटी वहिनों की ओर टकटकी वांध कर रह गई। आंखों से आंसू बहने लगे। थोडी देर वाद दोनों वहिनो को सम्बोधन करके कहने लगी—"मैं तुम्हें छोड़ कर जाती हूँ—यही तुम्हारी दीदी हैं। सदा इनके साथ-साथ रहना।"

दोनो वहिनें रोने-पीटने लगी। इतने मे सवेरा हुआ। सैकडो पथिक इनके पार्श्व मे स्थित रास्ते से होकर निकलने लगे। परन्तु किसी ने इन दुखिनियों से एक वार भी यह न पूछा कि तुम किस विपत्ति में हो? वंगालियो के समान सहानुभूतिशून्य हृदय, सम्भवत संसार मे

अन्य किसी जाति के मनुष्यों का नहीं। कोई डेढ़ पहर दिन चढ़े अन्नपूर्णा की मृत्यु हुई। शेष तीनों घोर विपत्ति मे पड गईं। सावित्री ने दो एक पथिकों से पूछा, भाई इसका दाह-संस्कार करने की कोई तदबीर है? सब ने उत्तर दिया कि तीर्थ जाते समय इस प्रकार मार्ग में मृत्यु हो जाने पर गंगा जी में प्रवाह कर देने में भी कोई दोष नही है। विवश हो उसने मन ही मन अन्नपूर्णा के शव को गङ्गा जी में विसर्जित कर देने का निश्चय किया। परन्तु ये तीनों मिल कर उस शव को उठाने में समर्थ न हुईं। जब उन्होंने देखा कि विना दूसरो की सहायता के यह शव गंगा जी में फेंका भी नहीं जा सकता, तो सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को साथ में लेकर बाज़ार गई और वहा दो मेहतरों को एक रुपया दिया। वे इन तीनो के साथ पेड के नीचे आये और अन्नपूर्णा के शव को कन्धों पर रख कर गंगा जी की तरफ़ चले गये। इन तीनो ने बाज़ार में आकर एक तालाब में स्नान किया। भोजन करने को जी न चाहा। थोडा दिन रहे किंचित जल-पान करके अन्यान्य पथिकों के पीछे कलकत्ते की ओर चल दी। इस घटना के तीन-चार दिन बाद ये तीनों कलकत्ते आ पहुँचीं।

तत्कालीन कलकत्ता

अपूर्व परिवर्त्तन! उन दिनों कलकत्ता क्या था? इस समय क्या है! और अब फिर क्या होगा, कौन कह सकता है!

जिस स्थान पर आज ऊँचे-ऊँचे विशाल भवन और सुन्दर उद्यान दिखाई देते है, तब वहां हिंस्र जन्तुओं से परिपूर्ण सघन जंगल था। सहस्रों सुरम्य महलों और सौध-अट्टालिकाओं से परिपूर्ण चौरंगी मे पहिले पांच ईंटों का एक घर भी न था! परन्तु आज वहा पर सुसज्जित राजप्रासादों की तरह सैकडों सौध-मालाएं दिखाई पडती हैं। चौरंगी की सुरम्य अट्टालिकाएं, सुसज्जित गृह-श्रेणियां, उनके सामने आनन्दोद्यान, परिष्कृत राजमार्ग इस स्थान को एक अपूर्व शोभा से सुशोभित कर रहा है। चौरंगी की वर्तमान शोभा-समृद्धि, अतुल ऐश्वर्य-पूर्ण प्रस्तरमयी मन्दिरावली अकबर के दिल्ली वाले शिल्पकीर्ति-निकेतन, जहागीर के आगरे वाले प्रमोद-कानन और रणजीतसिंह के लाहौर वाले रमणीय विहार-क्षेत्र के समस्त सौन्दर्य और गौरव को सम्पूर्ण रूप से मात कर रही है।

उन दिनो यदि कोई चौरंगी में आता था तो उसे पालकी वालों को दूना भाडा देना पडता था। उस समय हिन्स्र-जन्तुओं से परिपूर्ण सघन जंगल से घिरे हुए मैदान को पार करके इस जगह आने को सहसा कोई राज़ी नही होता था। डाकुओं के डर के मारे सन्ध्या के बाद रात के वक्त कोई इस भयावने मैदान के आस-पास तक होकर नही निकलता था। परन्तु आज उन समस्त हिन्स्र जन्तुओ के अत्याचार और तत्कालीन अराजकता-जनित दस्युता के स्थान पर क्या दिखाई देता है? फोर्ट-विलियम के भीतर असंख्य सुसज्जित तोपें, बारूद और गोले एवं चौरंगी में अनेकानेक राजनीति-विशारद पण्डितो तथा क़ानूनवेत्ता विचारकों के सुरम्य राजप्रासादो की तरह सुशोभित, सुन्दर वासस्थान! उन हिंस्र-जन्तुओं के राजत्व का अन्त होगया, वह अराजकता-जनित दस्युता लुप्त होगई। तत्कालीन अवस्था का चिन्हमात्र भी शेष नही रहा। काल-क्रम से सभी कुछ बदल गया, आज वह एक नये ही स्वरूप मे सुशोभित हो रहा है।

आज कलकत्ते मे जो समस्त विचारालय दिखाई दे रहे हैं, इस उपन्यास मे लिखित घटनाओं के समय, वर्तमान प्रणाली के अनुसार यहां कोई विचारालय अथवा व्यवस्थापक-समाज स्थापित नहीं थे। उस समय कलकत्ता हाई-कोर्ट के स्थान पर मेयर कोर्ट नाम का एक विचारालय था। लालदीघी के पूर्वोत्तर कोने में (जिस स्थान में आज कल स्काट गिर्जा प्रतिष्ठित है, ठीक उसी स्थान पर) मेयर कोर्ट का भवन था। अंगरेज़ों में परस्पर कोई दीवानी मुक़दमा अथवा अंगरेज़ और देशी लोगों के दर्मियान कभी कोई विवाद उपस्थित होने पर मेयर कोर्ट के विचारकगण उसका विचार करते थे। मेयर कोर्ट के प्रधान विचारपति मेयर (Mayor) के नाम से सम्बोधित होते थे, और उनके सहकारी अन्यान्य नौ विचारक आल्डरमेन (Aldermen) कहे जाते थे। कलकत्ते के निवासी बंगालियों में परस्पर कोई दीवानी मुकदमा उपस्थित होने पर साधारण कचहरी में उसका विचार होता था, परन्तु दोनों पक्ष यदि रज़ामन्द हों तो मेयरकोर्ट मे भी उनका विचार हो सकता था।

मेयर कोर्ट के फैसले के विरुद्ध गवर्नर एवं कौंसिल के निकट अपील होती थी। गवर्नर एव कौंसिल ही उस समय कलकत्ते की सर्वोच्च अदालत थी। वही मेयर कोर्ट तथा अन्यान्य कोर्टों के फैसलों की अपील सुनी जाती थी। उसी के द्वारा मेयर कोर्ट एवं अन्यान्य कोर्टों के विचारकों की नियुक्ति होती थी। पुन दूसरी ओर यदि गवर्नर एव कौंसिल के विरुद्ध कोई मुक़दमा पेश हो तो उसका विचार भी मेयरकोर्ट के जज ही किया करते थे। विचार-अदालतो और गवर्नर एवं कौंसिल के दर्मियान परस्पर एक अत्यन्त कौशलपूर्ण नीति का वर्ताव था।

इसके अतिरिक्त फ़ौजदारी मुक़दमों के विचारार्थ भी दो विचारालय थे। कोयाटा के सेशन विचारालय के विचारक, गवर्नर एवं कौंसिल के मेम्बर लोग होते थे; और जमींदारी विचारालय के विचारक के पद

पर ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कोई अधीनस्थ कर्मचारी नियुक्त होता था। ज़मींदार को वर्तमान समय के दूसरे दर्जे के अधिकार प्राप्त डिप्टी मैजिस्ट्रेट की तरह छोटे छोटे फौजदारी मुकदमो का विचार करना पडता था।

परन्तु ये समस्त विचार-अदालतें आंशिक रूप मे गवर्नर एवं कौंसिल की अवतार-स्वरूप थीं। सभी का वही एक उद्देश्य था—सभी उसी एक महत् उद्देश्य से परिचालित रहती थी—अर्थात् जैसे कुछ हो, जल्दी-जल्दी बहुत सा धन इकट्ठा करके स्वदेश को लौट जाना।

उन दिनो कलकत्ते की जन-संख्या बहुत थोडी थी। वर्तमान जन-संख्या का १/१०० वां अंश भी नही थी। विचारको को ऊपर की आमदनी बहुत अधिक न थी। अतएव जो विचार-कार्य्य पर नियुक्त होते थे, उन्हें भी व्यापार-लिप्त होना पडता था। इस ओर जिन समस्त आदमियों को इन विचारालयो में मुकदमा पेश करना पडता था, अथवा जो प्रतिवादी होकर किसी मुकदमे मे अपनी पैरवी करते थे, उन्हे कुछ विशेष कठिनाई नहीं पडती थी। वर्तमान समय मे सैकडों रुपये के स्टाम्प ख़र्च करके और सैकडो रुपये वकीलो को देकर भी लोग अपना काम निकालने में समर्थ नही होते। पर उस समय यदि दस रुपये अधिक ख़र्च कर दिये जाते थे तो वे भी बिलकुल बेकार नही जाते थे। न्याय-विचार उस समय प्रायः रुपये का अनुगामी होता था।

उस समय कलकत्ते के अन्तर्गत खिदिरपुर तथा कालीघाट के मन्दिर से आध कोस उत्तर-पश्चिम गङ्गा के पूर्वी किनारे पर स्थित स्थानों में बहुत घनी आबादी थी। इन्हीं स्थानों में सेठ-वंशीय वणिकगण तथा अनेकानेक बसाकों की बस्ती थी। कर्नल किड साहब के नाम पर वर्तमान खिदिरपुर उस समय किडरपुर कहा जाता था। खिदिरपुर मे कुछ दूर उत्तर-पश्चिम ईंटों का एक पुल बना था। इस पुल को लोग

सरमेन साहब का पुल (Surman's Bridge) कहा करते थे। इसी पुल के दक्खिन सरमेन साहब का घर और बग़ीचा था। परन्तु इस उपन्यास में उल्लिखित घटनाओं के कई बरस पहिले ही सरमेन साहब की मृत्यु हो चुकी थी। सरमेन साहब के बाग़ के दक्खिन अंगरेज़ों के गोविन्दपुर की उत्तरी सीमा थी। खिदिरपुर के एक कोस दक्खिन मानिकचन्द का बाग़ था। सिराजुद्दौला के कलकत्ते में आने के बाद मानिकचन्द यहीं रहता था। शहर का दक्खिनी सीमाना गार्डनरिच था। यहां भी बहुत से लोगों की बस्ती थी।

हेस्टिंग्स साहब जिस समय गवर्नर-जनरल के पद पर नियुक्त हुए, उसके पहिले ही अलीपुर मे बेलवेडियर-घर का निर्माण हो चुका था। परन्तु इस उपन्यास में उल्लिखित घटनाओ के समय कलकत्ते के गवर्नर वेरेलस्ट साहब प्राय लालदीघी के पार्श्व में स्थित कौंसिल-गृह के निकटवर्ती एक अन्य गृह में रहते थे। कभी कभी दो चार दिन के लिए उद्यान-गृह-स्वरूप बेलवेडियर-गृह में चले आते थे। परन्तु हेस्टिंग्स साहब के आने के बाद पूर्व-निर्मित बेलवेडियर के कुछ दक्खिन की तरफ़ वर्तमान बेलवेडियर-गृह का निर्माण हुआ।

कलकत्ते के उत्तरी विभाग मे लालबाज़ार एक पुराना स्थान है। सन् १७३८ में लिखे हुए हालवेल साहब के किसी किसी काग़ज़-पत्र में लालबाज़ार के नाम का ज़िक्र आया है। इस उपन्यास में उल्लिखित घटनाओं के समय लालबाज़ार में कितने ही बंगालियों की दुकानें थीं।

मुसलमानों के शासनकाल में फौजदारी बालाख़ाने में कभी कभी हुगली के फ़ौजदारी (मजिस्ट्रेट) आकर कचहरी किया करते थे। आर्मीनियन, पुर्तगीज़ तथा ग्रीक व्यापारी इसी के पश्चिम ओर बसे थे।

लालबाज़ार के पश्चिम लालदीघी है। अंगरेज़ी में इस स्थान का नाम 'टास्क स्क्वायर' कहा जाता है। इस उपन्यास मे लिखित घटनाओं के समय टास्क स्क्वायर के बीचोबीच में स्थित एक सुपरिष्कृत-गृह में खृष्टीय-धर्म प्रचारक कियर्नन्डर साहब (John Zacharia Kiernander) रहा करते थे। इनका जन्मस्थान यूरोप के अन्तर्गत स्वीडन प्रदेश में था। इङ्गलैण्ड के खृष्टीय धर्म प्रचारक समाज (Christian Knowledge Society) की ओर से ये धर्म-प्रचारक के पद पर नियुक्त होकर पहिले-पहिल मदरास भेजे गये थे। बाद में सन् १७५८ ई० में ये मदरास से कलकत्ते आये और तब से यहीं रहने लगे। ये बड़े विद्वान और बुद्धिमान थे। सुप्रसिद्ध जर्मन अध्यापक फ्रांक (Francke) के निकट इन्होंने दर्शन और विज्ञान की शिक्षा पाई थी। कलकत्ते के गवर्नरों में, क्या क्लाइव और क्या वेरेलस्ट, सभी इनका आदर-सत्कार करते थे। इनकी उदारता और सच्चरित्रता देख कर कितने ही आरमीनियन एवं पुर्तगीज़, यहां तक कि कोई कोई बंगाली भी, खृष्टीय-धर्म का अवलम्बन करने लगे थे। ये अनेकानेक रोमन कैथलिकों तथा फादर-वेन्टों नामक प्रसिद्ध रोमन कैथलिक पादरी को प्रोटेस्टन्ट धर्म का अनुगामी बनाने में सफल हुए थे।

सन् १७६१ मे इनकी सहधर्मिणी का देहान्त हो गया। उस वक्त कलकत्ते में रहने वाली समस्त अंगरेज़ महिलाओ में इनके समान सहृदय स्त्रियां बहुत थोडी थीं। उस समय कलकत्ते के अंगरेज़ो की कार्यावली में एक ओर जिस प्रकार घोर अर्थलोलुपता, दुराशयता, एवं सत्यता का पूर्ण अभाव दृष्टिगोचर होता था दूसरी ओर उसी प्रकार व्यभिचार आदि कुकर्मों के द्वारा अंगरेज़ों का जीवन कलंकित हो रहा था। भद्र अंगरेज़ महिलाएं भारतवर्ष में आने के लिए कदापि राज़ी नहीं होती थीं। अतएव यहां भद्र अंगरेज़ महिलाओ की संख्या बहुत थोड़ी थी।

उस समय कलकत्ते में यदि कोई अंगरेज़ महिला विधवा हो जाती थी तो पांच सात अंगरेज़ युवक उसके पाणिग्रहण के प्रार्थी होते थे।

पादरी कियर्नन्डर साहब की सहधर्मिणी के मरने के बाद उन्होंने एक अंगरेज़ व्यापारी की विधवा मिसेज़ उली के साथ विवाह किया। मिसेज़ उली की अवस्था उस समय कुछ बहुत नहीं थी; सिर्फ पचास बरस के लगभग थी। महिलाओं में वे रूपवती प्रसिद्ध थीं, परन्तु उनके शिर में कहीं-कहीं पर बाल नहीं थे। उनके पूर्व-पति उली साहब ने बंगाल में व्यापार करके बहुत सा धन इकट्ठा किया था। उनकी मृत्यु के बाद मिसेज़ उली पांच लाख रुपया नकद तथा अन्यान्य सम्पत्ति की अधिकारिणी हुईं। मिसेज़ उली के साथ विवाह करने की बहुतेरे इच्छा रखते थे। परन्तु सौभाग्यवश उन्होंने पादरी कियर्नन्डर साहब ही के प्रस्ताव को मंजूर किया। कियर्नन्डर साहब को उस समय धर्म-प्रचार के काम के लिए बहुत से रुपये की आवश्यकता थी। प्रचार-सभा के दिये हुए रुपये से पूरा ख़र्च नहीं चलता था। अतएव इस विवाह के द्वारा उन्हें धर्म-प्रचार के कार्य में विशेष सहायता मिली। कलकत्ते के आर्मीनियन एवं बंगालियों की शिक्षा के लिए उन्होंने टास्क स्क्वायर के निकटवर्ती एक स्थान में एक विद्यालय खोला। परन्तु बंगाली छात्र दो एक से ज़्यादा नहीं जुटे। बंगाली तो सदा ही नौकरी के उद्देश्य से लिखते पढ़ते हैं। सो उस समय थोड़ी सी फार्सी भाषा सीख लेने से नौकरी मिलने में बड़ा सुभीता होता था। अतएव बंगाली प्रायः इस विद्यालय में पढ़ने नहीं आते थे। कियर्नन्डर साहब के स्कूल में आर्मीनियन, पुर्तगीज़ एवं ग्रीक छात्रों की संख्या ही अधिक रही। इस प्रकार उन्होंने विद्यालय आदि स्थापित करके खृष्टीय धर्म-प्रचार में विशेष सुभीता कर लिया। सन् १७६३ ई० के पहिले उन्होंने कितने ही आर्मीनियन एवं पुर्तगीज़ों के अतिरिक्त कोई पन्द्रह बंगालियों को भी खीष्ट-धर्म का अनु-

गामी बना लिया। परन्तु अगरेजो का कुव्यवहार, असद् आचरण एवं अर्थ-लोभ खीष्ट-धर्म-प्रचार मे सदा ही बाधा डालता रहा। सन् १७६२ ई० मे कियर्नन्डर साहब के प्रचार-कार्य मे भारी विघ्न उपस्थित हुआ।*

इससे पहिले जिन पन्द्रह बंगालियो ने खीष्ट-धर्म का अवलम्बन किया था, उनका विश्वास था कि खीष्ट-धर्मावलम्बी अगरेज़ लोग निश्चय ही यीशु खीष्ट के समान निर्मल-चरित्र और सदाशय होते है। परन्तु सन् १७६३ ई० में कलकत्ते की कौंसिल के मेम्बरो ने विक्रेय वस्तुओं के महसूल की अदायगी से सम्बन्ध रखने वाले नियमो के विषय में जैसा आन्दोलन मचाना शुरू किया, मीरकासिम से जिस प्रकार के अन्याय और अवैध मार्ग को ग्रहण करने के लिए अनुरोध किया, उसे देख कर ये नये खीष्ट धर्मावलम्बी बड़े चकित हुए। जिन पन्द्रह बगालियों को कियर्नन्डर साहब ने खीष्ट-धर्म मे दीक्षित किया था, उनमें से ग्यारह आदमी, मीरकासिम के साथ अगरेजों का विवाद छिड़ते ही अगरेज़ो से सम्बन्ध विच्छेद कर लेने पर उतारू होगये। फ्रासिस् रामचरन, जानसन् रामकृष्ण, जनाथन गंगागोविन्द, हिलर जनार्दन तथा अन्यान्य सात आदमी कियर्नन्डर साहब के पास जाकर बोले—"पादरी साहब! हमारे नाम का अगला भाग आपको निकाल लेना पड़ेगा। हम अब आपके इस गिर्जे में धर्म की शिक्षा नही लेना चाहते। हम अपना स्वतंत्र गिर्जा बनवा कर उसमे उपासना करेंगे।"

कियर्नन्डर साहब अचम्भे मे आकर बोले—"तुम लोग क्यो ऐसा कह रहे हो?"

फ्रांसिस् रामचरन सब से आगे खड़े थे। वे नम्रता-पूर्वक कहने लगे—"पादरी साहब! आप हमें तो यह सिखा रहे है कि कल क्या खाओगे, क्या पहिनोगे, इसकी फ़िक्र मत करना (Think not for

*Vide Note (16) in the appendix.

tomorrow) परन्तु खीष्ट-धर्मावलम्बी अंगरेज़-गण पच्चीस बरस बाद क्या खायें-पहिनेंगे, आज ही से उसका बन्दोबस्त कर रहे हैं। आपका यह खीष्ट-धर्म हम नही चाहते। बाइबिल में जैसा कुछ लिखा है, हम तो उसी के अनुसार चलेंगे।"

कियर्नन्डर—टुम क्या कहटे हो, हम नही समझे।

फ्रांसिस् रामचरन—अच्छा अब समझा कर कहता हूँ।

कियर्नन्डर—सारी बाटें समझा कर कहो।

फ्रांसिस् रामचरन कहने लगे—"महाशय! आप सिर्फ हमीं से कहते हैं कि कल क्या खाओगे क्या पिओगे, इसकी फ़िक्र मत करना। परन्तु हम देखते हैं कि आपके स्वदेशीय खीष्ट-धर्मावलम्बी इस विषय की बडी चिंता रखते हैं। देखिये, बंगालियों को महसूल-अदायगी की ज़िम्मेदारी से नवाब ने मुक्त कर दिया है, इसके लिए आपके सजातीय खीष्टान नवाब के साथ युद्ध करने पर उतारू होगये हैं। जिन समस्त वाणिज्य-वस्तुओं पर महसूल लिया जाता है, बंगालियों ने उन समस्त वस्तुओं का क्रय-विक्रय कभी नहीं किया। परंतु पच्चीस बरस के बाद यदि बंगाली लोग कहीं इस प्रकार की वाणिज्य-वस्तुओं का व्यापार आरम्भ करेंगे तो उससे अंगरेज़ो के व्यापार को थोडी बहुत हानि पहुँचेगी,—इस आशंका से वे आज ही युद्ध छेडने को तैयार हैं। आप पचीस बरस बाद क्या खायँगे, क्या पहिनेंगे, अभी से उसका इन्तज़ाम कर रहे हैं। फिर इधर आप कहते हैं कि हम अनेक कष्ट झेल कर सिर्फ़ तुम्हारे उपकार के लिए यहां आये हैं। परन्तु पचीस बरस बाद हमारे देश के लोग व्यापार न करने पावें, आज ही से इसका बन्दोबस्त कर रहे हैं। धन्य आपका त्याग! और अधिक क्या कहूँ, अब हमारी आशा छोडिये। हम आपसे अपना सम्बन्ध नहीं रखेंगे। हम अपना स्वतंत्र गिर्जा बनवा कर उसमें खीष्ट देव की उपासना करेंगे। आपसे कोई ... हम नहीं रखना चाहते। आप लोग बड़े स्वार्थी हैं।"

यह कह कर फ्रांसिस् रामचन्द्र अन्यान्य दस जनो को साथ ले वहां से चले गये। कियर्नन्डर साहब ने देखा कि बडी आफत आई। पन्द्रह आदमियों में से सिर्फ मेथिड मुलकचन्द, टामकिन काशीनाथ, फिलिप गंगाराम और टामस घनश्याम, बस इन्ही चार आदमियो ने अंगरेज़ो से सम्बन्ध नहीं छोडा। इनमें से मेथिड मुलकचन्द और टाम-किन काशीनाथ इन दिनों कियर्नन्डर साहब की सिफारिश से अंगरेज़ों की ढाका वाली कोठी में मुहर्रिरी के काम पर नियुक्त होगये थे। दस रुपये के रोजगार से लगे थे। तत्कालीन प्रचलित अंगरेज़ों के नवीन ख़ीष्ट-धर्म का अवलम्बन करके वे लोगों का सर्वस्व अपहरण कर रहे थे। अन्तिम दो व्यक्तियो मे से फिलिप गंगाराम कियर्नन्डर साहब के घरू काम-काज पर नियुक्त थे और टामस घनश्याम उक्त साहब के बग़ीचे में काम करते थे। फ़िलिप गंगाराम और टामस घनश्याम—इन दोनों मे से कोई लिखना पढ़ना नहीं जानता था। ये बडे गरीब आदमी थे। रुपया इकट्ठा करके विवाह करने की कोई सूरत न थी। बंगालियों को विवाह के लिए कन्या का मूल्य देना पडता है। खृष्टान होने के पहिले इन्होंने मन ही मन यह आशा की थी कि खीष्ट धर्म का अवलम्बन कर लेने पर अवश्य ही किसी विलायती मेम के साथ विवाह हो जायगा। परन्तु उनकी यह आशा निर्मूल हुई! आशा भी एक बुरी बला है! प्रत्येक आदमी के मन में न जाने कैसी-कैसी असम्भव आशाओं का प्रादुर्भाव होता रहता है। उस समय सुशिक्षित अंगरेज़ों तक के लिए विलायती मेमें नही जुटती थीं, और इसलिए विवश हो उन्हें मुसलमान महिलाओं का पाणिग्रहण करना पडता था। इन समस्त शंकर विवाहों के अवश्यम्भावी फल-स्वरूप सैकडों इद्र् चिद्र् इत्यादि युरेशियन-गण इस समय भारत में विचरण कर रहे हैं। परन्तु टामस घनश्याम ने न जाने क्या सोच कर इतनी ऊंची आशा की थी यह हमारी समझ में नहीं आया। हम सिर्फ़

इतना ही कह सकते हैं कि इस प्रकार की असम्भव आशायें समय समय पर, क्या शिक्षित और क्या अशिक्षित, सभी के हृदय में उत्पन्न हुआ करती हैं। अतएव फिलिप गंगाराम और टामस घनश्याम को हम इसके लिए कुछ बहुत दोषी नहीं समझते।

फ़िलिप गंगाराम बड़े चालाक आदमी थे। कियर्नन्डर साहब की मेम (पूर्व-लिखित मिसेज़ उली) ने गृह-कार्य-सम्बन्धी सारी चीज़-वस्तु ख़रीदने का काम इन्हीं को सौंप रक्खा था। बाज़ार से सारा सौदा-सुलफ़ रोज़ यही लाते थे। टामस घनश्याम की अक्ल बहुत मोटी थी, निरे अहमक थे। इसलिए उन्हें बग़ीचे का काम मिला।

परन्तु इन दोनों को खृष्टान हुए पांच सात बरसें बीत गईं। आज तक विवाह न हो पाया। अब इन्होंने मन ही मन निश्चय किया कि यदि विलायती न मिले तो देशी ही सही, विलायती के लिए अब बहुत दिन इन्तज़ार नहीं करेंगे। परन्तु दुर्भाग्य से देशी भी नहीं मिली। सन् १७६३ ई० में कियर्नन्डर साहब के प्रचार कार्य में बाधा पड़ी; तब से सन् १७६७ ई० तक वे किसी एक आदमी को भी खृष्टान न बना सके।

विलायती वैष्णव

सन् १७६७ ई० के अप्रैल मास में सावित्री मदनदत्त की दोनों कन्याओं के सहित कलकत्ते पहुँची। शहर के भीतर घुमने पर उसे मार्ग में जो कोई मिलता था, उससे यही प्रश्न करती थी—"गौरीसेन का

मकान कहां पर है ?" परन्तु गोरीसेन सब दिनों कलकत्ते में नही रहते थे, कभी बाहर चले जाते थे। एक आदमी ने इन से कहा—"गोरीसेन आजकल कलकत्ते में नही हैं।"

यह सुनते ही इन्हें बडी निराशा हुई। पास मे एक पैसा भी न था। कुछ देर सोच समझ कर सावित्री ने कहा—"जगदम्बा, यदि हम कारापिट साहब के घर तक पहुँच जायँ तो वे हमारा सब प्रबन्ध कर देंगे। मेरे पास उनकी मेम का पत्र है।"

यह सोच कर वह कारापिट साहब का मकान खोजने लगी। जो मिलता उससे कारापिट साहब का मकान पूछती। परन्तु कारापिट साहब को बहुत से लोग पहिचानते न थे। अतएव दो घण्टे बराबर तलाश करने पर भी कारापिट साहब के मकान का पता नही लगा। अन्त में एक बंगाली कारापिट साहब के घर का पता पूछते ही कहने लगा—"कारापिट नहीं कियर्नन्डर साहब कहो।"

इस आदमी ने अपने मन मे यह सोचा था कि ये स्त्रियां हैं, सम्भवत. इनके भाई, बाप कोई खृष्टान हो गये होंगे, उन्हीं की तलाश में ये पादरी साहब की कोठी का पता लगा रही हैं। यह समझ कर उसने इन्हें कियर्नन्डर साहब की कोठी का पता बता दिया। उसके बताने के अनुसार ये तीनो लालदीघी के उस पार कियर्नन्डर साहब के बँगले पर जा पहुँची। साहब उस समय घर पर न थे। वे प्रति दिन अपने पिता के स्थापित किये हुए स्कूल में पढ़ाने जाया करते थे। इन्होंने बँगले के भीतर पहुँच कर देखा कि एक वृद्धा अंगरेज़ रमणी बँगले के बरांडे में एक कोच के ऊपर बैठी हुई है। चालीस बरस का एक अध-बूढ़ा आदमी उस पर ताड का पखा झल रहा है।

तीन कन्याओं को बँगले के भीतर घुसते देख कर मेम साहब ने पंखा हाकने वाले आदमी को सम्बोधन करके कहा—"टामस घनश्याम ! पूछो ये किस लिए आई हैं।"

मेमसाहब बँगला नहीं जानती थीं। उस समय युरोपीय लोगों को बंगालियों के साथ बातचीत करते समय, पुर्तगीज़, फ़रासीसी तथा हिन्दी, इन तीन भाषाओं के शब्दों से संयुक्त एक विचित्र भाषा बोलनी पड़ती थी। अस्तु, मेमसाहब की निज की भाषा को यहां उद्धृत करना निष्प्रयोजन है। वह फरासीसी एवं पुर्तगीज़ शब्दों से परिपूर्ण है। पाठक पाठिकाओं की समझ में क़तई नहीं आवेगी। इधर टामस घनश्याम भी हिन्दुस्तानी (युक्तप्रान्त के निवासी) थे। अतएव वे भी आधी बँगला और आधी हिन्दी में बातचीत किया करते थे। सावित्री की बातों को वे सहज में नहीं समझ सकते थे। सावित्री भी उनकी बातों को नहीं समझती थी। टामस घनश्याम ने आधी हिन्दी और आधी बँगला में प्रश्न किया—"तुम जान पडता है, खृष्ट धर्म का अवलम्बन करने आई हो?"

सावित्री ने कहा—"महाशय, मेरे स्वामी और भाई यहां जेल में पड़े हैं, इसलिए आई हूँ।"

टामस घनश्याम ने मेमसाहब को समझा कर कहा—"इनका स्वामी जल में पड कर मर गया, विना स्वामी की हैं, इसी लिए यहां खृष्ट धर्म का अवलम्बन करने आई है।"

मेमसाहब ने कहा—"बहुत अच्छा, इनसे कहो साहब आ जायँ वे इनके सम्बन्ध में जैसा उचित होगा करेंगे।"

फिलिप गङ्गाराम इस समय कमरे के भीतर बैठे हुए मेमसाहब के जूतों में ब्रुश कर रहे थे। स्त्री की आवाज़ सुनते ही बाहर निकल आये। टामस घनश्याम ने फ़िलिप गंगाराम से कहा कि ये खृष्टान होने आई हैं। फ़िलिप गंगाराम उस समय बड़ी आवभगत के सा[थ] इनका परिचय पूछने लगे। फ़िलिप बंगाली था, उसने सहज ही सावि[त्री]

की सारी बातें समझ लीं। सावित्री को भी उसकी बात समझने में कोई असुविधा न हुई। टामस घनश्याम सावित्री को फ़िलिप गंगाराम के साथ बहुत-कुछ बात-चीत करते देख कर सोचने लगे कि, हो न हो, फ़िलिप मेरा खोज मार कर इस बड़ी लड़की के साथ अपना ही विवाह कर लेगा।

कुछ देर बाद मेमसाहब कपड़े बदलने के लिए कमरे के भीतर चली गईं। फिलिप गंगाराम ने विशेष सज्जनता प्रकट करते हुए इन तीनों से बंगले के अन्तर्गत एक पेड़ के नीचे भात बना कर खाने के लिए कहा। और झट से जाकर फिलिप गंगाराम चावल दाल ले आये।

टामस घनश्याम प्रायः तीन चार घंटे से मेमसाहब के ऊपर पंखा हांक रहे थे। इस लिए मेमसाहब के चले जाने पर उन्होंने अपने घर जाकर हुक्के में दम लगानी शुरू की, और दम लगाते-लगाते वह इस प्रकार चिन्तन करने लगे—"सावित्री का स्वामी जल में पड़ कर मर चुका है—सावित्री खृष्टान होने आई है, इसलिए विवाह का बड़ा अच्छा मौका है,—परन्तु एक बड़ी भारी अड़चन है;—फिलिप गंगाराम बड़ा चालाक है—सावित्री सम्भवत फिलिप के हाथ लग जायगी।"

इस प्रकार चिन्ता करते-करते टामस घनश्याम के हृदय में फिलिप गंगाराम के विरुद्ध प्रबल विद्वेषाग्नि प्रज्वलित हो उठी। परन्तु इस विषय में और कोई उपाय न था। बहुत कुछ सोचते-विचारते अन्त में निश्चय किया कि बड़ी लड़की यदि अन्ततः फ़िलिप ही के हाथ चढ़ जाय, तो विवश हो मैं दूसरी लड़की के साथ ही विवाह कर लूंगा। परन्तु पहिले एक बार इस सम्बन्ध में फिलिप से वाद-विवाद करूंगा और साहब तथा मेमसाहब से इस विषय पर विचार करने के लिए कहूँगा।

टामस घनश्याम हुक्का पीते-पीते इसी चिन्ता में ग़ोते लगाते रहे। पुन. सोचने लगे—साहब के बंगले में कोई कमरा भी खाली नहीं

है। फिलिप और हम, दोनों वराडे के एक कोने में लेटते हैं; इसलिए विवाह के बाद हम रहेंगे कहा, यह भी मेमसाहब से पूछना पड़ेगा।

फिलिप गंगाराम ने इन्हें दाल-चावल ला दिये। ये तीनों कुछ दूरस्थित एक पेड के नीचे भात बनाने चली गईं। फ़िलिप गंगाराम मुस्कराते हुए टामस घनश्याम के पास आये और एक साथ बैठ कर हुक्का पीने लगे। फिलिप गंगाराम बोले—"भाई टामस! ईश्वर की इच्छा से इतने दिनो के बाद हम दोनों का ठीक लगा है। इनके जो आत्मीय स्वजन जेल में थे, वे सम्भवतः मर चुके होंगे। उनकी मृत्यु का संवाद पाते ही ये खीष्ट-धर्म का अवलम्बन कर लेंगी; इसके अतिरिक्त इनके लिए और उपाय ही नहीं है। कौन इन्हें खाने को देगा?"

घनश्याम ने कहा—"क्या कह रहे हो? इस बड़ी लड़की का स्वामी तो जल में पड कर मर चुका है, और छोटी दोनों का तो अभी विवाह ही नहीं हुआ है।"

गंगाराम—अरे जल मे पड कर नहीं मरा। बड़ी लडकी का स्वामी तो जेल में क़ैद है।

घनश्याम—मुझे तुम्हारी बात का विश्वास नहीं। मुझ से बड़ी लडकी ने खुद कहा है कि मेरा स्वामी जल में पड़ कर मर गया। तुम शायद मुझे धोखा देने के लिए कह रहे हो कि बडी लडकी का स्वामी जीवित है।

गंगाराम—अरे तू तो निरा गधा है; बँगला बोली खाक नहीं समझता। तभी तो कहता है कि इसका स्वामी जल में पड़ कर मर गया।

घनश्याम—भाई तुम बड़े चालाक हो। यहां चालाकी नहीं चलने की। साहब और मेम विचार करके हमें जिसके साथ विवाह करने

के लिए कहेंगे, उसी के साथ कर लेंगे। तुमसे हमारी उमर ज्यादा है, हम बहुत समझते है। साहब और मेमसाहब विचार करके यदि हमसे सबसे छोटी लडकी के साथ विवाह करने के लिए कहेंगे तो हम तत्काल ही सबसे छोटी छः बरस वाली लडकी के साथ विवाह कर लेंगे, किसी तरह की आपत्ति नही करेंगे। परन्तु उनके निकट विचार की प्रार्थना अवश्य करेंगे। तुम अन्याय से बडी लडकी को नही ले सकते।

गंगाराम—तुझे रत्ती भर भी अक्ल नही। इन दो छोटी लडकियों में से यदि बडी के साथ तू विवाह करने को रज़ामन्द है तो कल कर सकता है। दो में से एक का भी विवाह नही हुआ है। पर सबसे बडी लडकी का विवाह होगया है, उसका स्वामी जेल में है। यदि जेल में वह अभी जीवित हो तो बडी लडकी न तुम्हें मिल सकती है और न हमें।

घनश्याम—हां हां, मुझे ठगने के लिए यह चालाकी चल रहे हो। टामस के सामने चालाकी नहीं चलेगी। साहब के आते ही मैं उनसे इस विषय पर विचार करने के लिए कहूंगा।

गंगाराम—अरे मूर्ख! यदि तुझे मेरी बात का विश्वास नहीं, तो अभी जाकर उस बडी लडकी से पूछ ले, सब पता चल जायगा।

घनश्याम—तुम्हारी बगाली जात बडी दुष्ट है, मैं खूब जानता हूँ। शायद उसे तुमने अभी यह सिखा दिया है कि तुम घनश्याम से कहना कि हमारा स्वामी जेल में है। मैं उससे अब कुछ भी पूछा-पाछी नही करूंगा। मैं तो सिर्फ साहब और मेम से इस विषय पर विचार करने के लिए कहूंगा।

गंगाराम—तू निरा अहमक़ है। मेरी बात पर विश्वास नही करता।

घनश्याम—मैं तुम्हारी बात पर रत्ती भर भी विश्वास नहीं कर सकता। हमारी धर्म-पुस्तक में लिखा है—'पराया धन मत हरो।' तुम रोज़ ही बाज़ार-ख़र्च के दामों मे से चार छः आने चुराते हो। जो चीज़ दो आने मे लाते हो, हिसाब में उसे चार आने की लिखाते हो।

गंगाराम—अरे भूत! क्या बाज़ार का हिसाब देने के सम्बन्ध में धर्म-पुस्तक मे कुछ लिखा है? तू खुद भी तो उस दिन छ आने में कुदाल मोल लाया था और आठ आने बतलाये थे।

घनश्याम—और तुम जो चोरी करते हो, सो कोई बात ही नहीं? मैंने कुदाल के दाम जो तुम्हारे सामने आठ आने कहे थे, वही मेमसाहब को बतलाये। बाबा, तुम उन सब बातों को जाने दो। साहब विचार करके तुम्हें जिसके साथ विवाह करने की आज्ञा दें, उसके साथ कर लेना; हमे जिसके साथ करने के लिए कहेंगे, उसके साथ हम कर लेंगे।

तीसरे पहर क्रियर्नेन्डर साहब घर आये। सावित्री ने देखा कि ये सैदाबाद वाले कारापिट साहब नही हैं। बड़ी निराशा हुई! परन्तु क्रियर्नेन्डर साहब बड़े दयावान् पुरुष थे। निराश्रय अनाथों के प्रति बड़ी दया प्रकट करते थे। उन्होंने इनकी ज़बानी इनकी दुर्दशा का सारा वृत्तान्त सुन कर इनसे कहा—"तुम्हारे जो आत्मीय स्वजन कैद में हैं, उनके मुक्त होने का कोई उपाय है या नहीं, हम शीघ्र ही इसका पता लगाते हैं।"

यह कह कर वे गवर्नर वेरेलस्ट साहब के बंगले की तरफ़ चले परन्तु फिर कुछ सोच समझ कर निश्चय किया कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के द्वारा नियुक्त कलकत्ते के चैपलेन (Chaplain) रेवरेन्ड टीटमस साहब को साथ लेकर गवर्नर के बंगले पर जायँ। अतएव वे टीटमस साहब के बंगले की ओर चल दिये।

कियर्नन्डर साहब के साथ जब सावित्री की बात-चीत हुई, तब टामस घनश्याम की समझ मे आया कि वास्तव में सावित्री का स्वामी जेल ही में कैद है। फ़िलिप गंगाराम की बात पर अब उन्हे पूरा विश्वास आगया। उस समय फिलिप को बुला कर कहने लगे—"अच्छा भाई, हम इस मामले में तुमसे ज्यादा झगडा नही करना चाहते। जिस लडकी का नाम जगदम्बा है उसी के साथ तुम हमारा विवाह करवा दो। परन्तु ऐसा करो कि चट-पट काम हो जाय। देर होने पर कौन जाने क्या हो। विवाह हो जाने पर हम तुम दोनों यही बंगले के पश्चिम ओर दो घर उठा लेंगे। कल तुम जब बाजार जाना, छप्पर छाने वाले एक घरामी को बुलाते लाना।

इस ओर कियर्नन्डर साहब टीटमर्श साहब के बंगले पर आ पहुँचे। और उनसे कहने लगे—"दो तन्तुकार और एक नमक का व्यापारी जेल में कैद हैं। सुना है, शायद उनके प्रति बडा अन्याय हुआ है। चलो, हम लोग गवर्नर साहब से उनका सारा हाल कह कर उन्हें छुडाने का अनुरोध करें।

रेवरेन्ड टीटमर्श साहब, कियर्नन्डर साहब की बात सुन कर बोले—"मिस्टर कियर्नन्डर! आप इन बंगालियो की बातों मे आकर गवर्नर साहब के निकट कभी इस प्रकार का अनुरोध न करें। बंगालियों की जाति बडी नीच है; ये बड़े झूठे और कृतघ्न हैं। सिर्फ इन्हीं लोगों की भलाई के लिए लार्ड क्लाइव ने नमक-व्यापार के सम्बन्ध में यह नया सुनियम प्रचलित किया है। परन्तु ये सदा ही सिर्फ़ ठगी और धोखेबाज़ी से काम लेते हैं। इन समस्त पापियों को जेल से मुक्त करना न्याय के सर्वथा विरुद्ध है। विशेषतः इनके जुर्माने का रुपया नमक-व्यापार की तहवील में जमा होता है। जुर्माना अदा न होने पर ईस्ट इन्डिया कम्पनी तथा उसके समस्त कार्यकर्त्ताओ की हानि होगी। अन्यान्य विषयों में

आपका जी जितना चाहे उतना अनुरोध करें। परन्तु नमक-व्यापार-विभाग में यदि किसी पर जुर्माना हो तो उसे माफ़ कराने के लिए गवर्नर साहब से कभी न कहें।"

इससे पहिले लिखा जा चुका है कि इस अवैध नमक व्यापार के मुनाफे के रुपये में से खीष्ट धर्मयाजक (Chaplain) रेवरेन्ड टीटमर्श साहब को भी कुछ हिस्सा मिलता था। अतएव जुर्माने का रुपया अदा न होने पर उनकी भी हानि होती। किसी व्यक्ति पर एक सौ रुपया जुर्माना होता तो हिस्साबाट में दो चार आने टीटमर्श साहब के पल्ले भी पड़ते। ऐसी दशा में खीष्ट धर्म-प्रचारक टीटमर्श साहब किसी से जुर्माने की माफ़ी के लिए अनुरोध करेंगे, यह आशा ही कौन कर सकता था।

बाद में कियर्नन्डर साहब सावित्री के स्वामी नवीनपाल और भाई कालाचांद के विषय में बात करने लगे। रेशम के व्यापार के हानि लाभ से टीटमर्श साहब के निज के हानि-लाभ का कोई सम्बन्ध नहीं था, अतएव इस बार उन्होंने बंगालियों के लिए ठग, धोखेबाज़ इत्यादि सुललित शब्दों का प्रयोग नहीं किया। सज्जनतापूर्वक, सिर्फ़ उपेक्षा का भाव प्रकट करते हुए बोले—"भाई कियर्नन्डर (Brother Kiernander) इन समस्त विषयों में हस्तक्षेप करना हम लोगों के लिए किसी प्रकार उचित नहीं जान पड़ता। ये लोग अपने-अपने जुर्माने का रुपया अदा करने ही पर तो मुक्त हो सकते हैं ?"

कियर्नन्डर साहब ने कहा—"तन्तुकारों पर घोर अत्याचार हो रहा है, क्या आप इसे नहीं मानते ? विशेषतः इनके आत्मीय स्वजन एक पैसा भी अदा करने की शक्ति नहीं रखते।"

टीटमर्श—इस देश के तन्तुकार बड़े दुश्चरित्र हैं। ये लोग पहिने हुए कपड़ों के नीचे रुपया छिपा रखते हैं। ये लड़कियां जो यहां आई हैं, उनके पास अवश्य ही रुपया होगा।

कियर्नन्डर—आप किस तरह तन्तुकारों को दुश्चरित्र कह रहे हैं ? वे दादनी का रुपया नहीं लेना चाहते। परन्तु आप के आदमी जबरदस्ती उन्हे दादनी का रुपया लेने पर मज़बूर करते है।

टीटमर्श—मूर्ख आदमियों का उपकार करने के लिए, उन्हे सन्मार्ग पर लाने के लिए, मज़बूर ही करना पडता है। ये देशी आदमी तो यों इस पवित्र ख्रीष्ट-धर्म को भी ग्रहण करने की इच्छा नहीं करते। पर आप इन्हे कौशल-चातुर्य से खृष्टान बनाते है। इसी प्रकार अपने हिता-हित पर विचार न करके जो लोग दादनी का रुपया लेने मे अनिच्छा प्रकट करते हैं, उन्हे दादनी का रुपया लेने के लिए मज़बूर किया जाता है।

कियर्नन्डर—आप तो अद्भुत युक्ति का अवलम्बन करके रेशम के व्यापार से सम्बन्ध रखने वाले दौरात्म्य का समर्थन कर रहे हैं। ख्रीष्ट-धर्म की शिक्षा देना और दादनी का रुपया देना—क्या आप इन दोनो कामों को एक ही सा समझते है ?

टीटमर्श—इस से क्या—आप उनकी आध्यात्मिक उन्नति के लिए धर्म शिक्षा देते है, ये लोग व्यवसाय की उन्नति के लिए, तन्तुकार लोगों को धनवान बनाने के लिए दादनी का रुपया देते हैं।

कियर्नन्डर—परन्तु दादनी का रुपया लेने से उनका सर्वनाश होता है।

टीटमर्श—धोखा देने की चेष्टा करने पर, ठहरौते के अनुसार काम न करने पर अवश्य ही सर्वनाश होगा।

कियर्नन्डर—परन्तु आप के अगरेज़ लोग उन्हें उनके परिश्रम का उपयुक्त मूल्य देने के लिए तैयार नहीं।

टीटमर्श—संसार में सभी अपना हानि-लाभ देखते हैं। अंगरेज़ क्या अपने लाभ का ख़याल छोड़ दें ?

कियर्नन्डर—परन्तु लाभ के लिए क्या ऐसा दौरात्म्य—ऐसा अत्याचार—करना उचित है ? तो फिर डाकुओं की निन्दा क्यों करते हो ?

टीटमर्श—कुछ अधिक लाभ न होने पर इस गरम मुल्क में आने की ज़रूरत ही क्या ?

कियर्नन्डर—तो क्या इन देशी लोगों के प्रति ऐसा निष्ठुर व्यवहार करके, ऐसा घोर अत्याचार करके, लाभ उठाने की इच्छा रखते हैं ? यह क्या धर्म-संगत बात है ? बाइबिल यही कहती है ?

टीटमर्श—बाइबिल में तो लिखा है कि "जिस प्रकार तुम अपने कल्याण की कामना करते हो, उसी प्रकार अपने पड़ोसियों के कल्याण की कामना करो।" परन्तु इन सब बातों के अनुसार क्या कोई चल सकता है ? इस ग्रीष्म-प्रधान देश में बाइबिल की ये सब बातें नहीं चल सकतीं।

कियर्नन्डर—आप धर्मयाजक (Chaplain) होकर ऐसा कहते हैं ?

टीटमर्श—अनेकानेक लार्ड-बिशपों ने भी इसी मत का प्रतिपादन किया है।

कियर्नन्डर—तो आपका यह ख्रीष्ट-धर्म सिर्फ़ धन इकट्ठा करने का वसीला है ?

टीटमर्श—धर्म—अर्थ दोनों ही चाहिये।

कियर्नन्डर—परन्तु धर्म का तो लेश भी नहीं है; सिर्फ़ अर्थ चिन्ता ही दिखाई पड़ती है। किस प्रकार धन इकट्ठा करें, अंगरेज़ों की एकमात्र यही चिन्ता है।

इतने में टीटमर्श साहब के घर में भोजन की घन्टी वजी। कियर्नेन्डर साहब, पादरी टीटमर्श साहब की बातें सुन कर गुस्से मे आगये, और तत्काल ही उठ कर अपने घर की तरफ चल दिये। घर पहुँच कर उन्होंने सावित्री से कहा कि तुम्हारे जो आत्मीय-जन जेल मे हैं, उनके जुर्माने का रुपया अदा न होने तक उनके छुटकारे की कोई आशा नहीं है। इस लिए किसी तरह रुपया इकट्ठा करने की कोशिश करो।

साहब की बात सुन कर सावित्री दुख-सागर में ग़ोते खाने लगी। उस वक्त रात हो चुकी थी। साहब के बँगले की आया लोगों के साथ वे तीनों एक कोने मे पड रहीं। सवेरे उठते ही उन्होंने फिर काराविट आराटून साहब के बँगले की तलाश मे जाने का निश्चय किया। सावित्री को सारी रात नींद नहीं आई।

सवेरा होते ही ये तीनों इस स्थान से जाने को तैयार हुईं। परन्तु फ़िलिप गङ्गाराम और टामस घनश्याम ने इन से कहा—"कलकत्ता शहर अच्छा नहीं है। वहां जाकर किस आफ़त में फँसोगी, यहीं रहो। साहब के निकट धर्म शिक्षा ले सकोगी।"

सावित्री हर्गिज़ उनकी बातों मे न आई। अन्तत विवश हो फ़िलिप ने उनसे कुछ भोजन कर लेने के लिए कहा। अहल्या से विना कुछ खाये चला न जाता। पास में एक पैसा भी न था। अतएव सावित्री सिर्फ़ अहल्या के ख़याल से भोजन बनाने को तैयार हुई। पहिले दिन की तरह फिलिप ने उन्हें चावल दाल ला दिये। सावित्री ने पेड के नीचे भोजन का प्रबन्ध किया। दस बजे के बाद कियर्नेन्डर साहब स्कूल में पढ़ाने चले गये। उनकी मेम बरांडे में आकर एक कोच पर बैठी। फ़िलिप गंगाराम आदि के अनुरोध से मेमसाहब ने इन तीनों को ख़ीष्ट धर्म में दीक्षित करने के लिए उपदेश देना आरम्भ किया। मेमसाहब की बातें सावित्री कुछ समझ न सकती थी; इस लिए मेमसाहब जो कुछ कहती थीं,

फिलिप गंगाराम उसे सावित्री को समझाते जाते थे। और इधर से सावित्री की बात मेमसाहब को समझा देते थे।

मेम—तुम आर्मीनियन साहब की कोठी में जाना चाहती हो—वह अच्छा आदमी नहीं है।

सावित्री—श्रीमती, वे कन्या के समान मुझे प्यार करते हैं, मैं वहीं जाऊँगी।

मेम—तुम खीष्ट-धर्म ग्रहण करो, तुम्हारा भला होगा। खीष्ट ने अपने रक्त के द्वारा संसार का उद्धार किया है।

सावित्री—श्रीमती, ये बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।

मेम—यहां रह कर खीष्ट-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त करने पर धीरे धीरे सब समझ जाओगी।

सावित्री—श्रीमती, यदि मैं अपने स्वामी और भाई का उद्धार न कर सकी तो मेरे जीने से कोई लाभ नहीं।

मेम—भाई और स्वामी क्या स्वर्ग दे सकते हैं? मुक्ति दे सकते हैं? तुम नरक की तरफ़ क्यों जारही हो?

सावित्री—श्रीमती, मेरे भाई और स्वामी ही मेरे लिए स्वर्ग हैं वही मेरे लिए मुक्ति है। यदि मैं नरक में जाकर उनका उद्धार कर सकूँ तो भी तुरन्त जाने को तैयार हूँ। यदि प्राण देकर उन्हें मुक्त कर सकूँ तो प्राण देने के लिए प्रस्तुत हूँ।

यह कहते-कहते सावित्री की दोनों आंखों से आंसू बहने लगे।

मेम ने फिर कहा—इस संसार में भाई अनेक मिलेंगे। स्वामी के मर जाने पर भी अन्य स्वामी मिल सकेंगे। परन्तु खीष्ट को न पाने पर सभी कुछ वृथा है। अनन्त नरक में जल कर मरना पड़ेगा।

मेम की यह अन्तिम बात सुन कर सावित्री ने फिर कोई उत्तर नहीं दिया। वह चकित हो उठी। एकाएक बाबा गुरुगोविन्द वाली बात उसके स्मृति-पथ में आगई। बाबा गुरुगोविन्द ने उससे पहिले दिन कहा था—"नवदूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर जिसे पति भाव से पूजोगी, वही तुम्हारा पति होगा।" पाठकों को याद होगा कि सावित्री पहिले-पहिल बाबा गुरुगोविन्द की इस बात का आशय नहीं समझ सकी थी। बाद में अखाडे मे पहुँचने पर जब बाबा जी ने सावित्री को कुपथ-गामिनी बनाने की चेष्टा की थी, उस समय उन्होंने इस बात का आशय भी उसे समझा दिया था। उसी दिन पहिले-पहिल सावित्री ने बाबा गुरुगोविन्द की दुष्ट इच्छा को समझ कर दूसरे दिन उनका अखाडा छोड दिया था। इस समय वह सोचने लगी कि मेमसाहब जो बात कह रही है, वह ठीक बाबा गुरुगोविन्द की बात के समान ही है, और कुछ नही।

मेमसाहब कह रही हैं कि "स्वामी के मर जाने पर अनेक स्वामी मिल सकते है, परन्तु खीष्ट के न मिलने पर अनन्त नरक में जल कर मरना पडेगा।" और उधर बाबा गुरुगोविन्द ने कहा था कि "श्री कृष्ण ही ससार की समस्त स्त्रियों के पति हैं, अतएव नवदूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर जिसे पति मान कर ग्रहण करोगी, वही तुम्हारा पति होगा।" इन दोनों की बात मे अन्तर क्या,—सावित्री मे इसके समझने की शक्ति न थी। वह हिन्दू घर की स्त्री थी। वह जानती थी कि एक स्वामी के मर जाने पर दूसरा स्वामी नही मिलता। आजीवन विधवा रहना पडता है। मेमसाहब की बात का आशय यह है कि एक पति के मर जाने पर विधवाएं दूसरा पति ग्रहण कर सकती हैं। बाबा गुरुगोविन्द के मतानुसार इस संसार मे स्त्रियो के लिए स्वामियों की कमी नहीं। नवदूर्वादल श्याम श्रीकृष्ण को जान कर किसी भी पुरुष

को पति रूप में ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु अशिक्षिता सावित्री ने सोचा कि मेमसाहब ने जो कुछ कहा है, ठीक वही बात बाबा गुरु-गोविन्द जी भक्तिरसपूर्ण भाषा में कहते थे। यह सोच कर उसने निश्चय किया कि सर्वनाश हो गया,—हम लोग विलायती वैष्णव के अखाड़े में आ पड़ीं।

इस उन्नीसवीं शताब्दी में पाठक और पाठिकाएं "विलायती वैष्णव"—यह शब्द पढ़ कर 'ही ही' करके हँस पड़ेंगी। परन्तु अठारहवीं शताब्दी की उस अशिक्षिता सरला रमणी के हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हम विलायती वैष्णव के हाथों में आ फँसीं। इसके बाद किरनेन्डर साहब की मेम ने सावित्री को सम्बोधन करके जो समस्त बातें कहीं, सावित्री ने उनमें से एक बात का भी उत्तर नहीं दिया। वह मौन धारण किये रही, और बीच-बीच मे वहा से चली जाने के लिए अत्यन्त आग्रह प्रकट करने लगी। जैसे ही वह उठ कर चल देने को तैयार होती, वैसे ही फिलिप गंगाराम कहने लगते—"इस धूप में चला नहीं जायगा, शाम के वक्त चली जाना।" सावित्री बड़ी भयभीत हुई। मन ही मन कहने लगी—"हे दयामय परमेश्वर, हे विपत्ति-भंजन परमात्मन, तुम्हारी कृपा से अब तक धर्म-रक्षा हुई। एक धर्म को छोड कर इस समय संसार में हमारे पास और कुछ भी नहीं है। दीनबंधु! इस वर्तमान विपत्ति से हमारी रक्षा करो!"

कितनी ही बातों के बाद मेमसाहब बारम्बार कहने लगीं—"तुम हमारी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती हो?"

बहुत देर बाद सावित्री ने कहा—"श्रीमती, मैं क्या कहूँ? यदि मेरे स्वामी और भाई मुझे न मिले तो यह प्राण जायँ तो जायँ, यदि मुझे नरक में जाना पड़ा तो चली जाऊंगी। मैं एक बार उन्हें आँखें चाहती हूँ।"

मेम—भाई एवं स्वामी की बात तो तुम कई बार कह चुकी हो। परन्तु तुम घोर विपत्ति मे जो फॅसोगी ?

सावित्री—विपत्ति के समुद्र मे तो डूबी ही हुई हूं, और विपत्ति में क्या फॅसूंगी ?

इतने में फिलिप गंगाराम ने मेमसाहब से कहा—मेमसाहब, यह यदि स्वयम् कुमार्ग मे जाना चाहती है तो जाय, इसका पति हो तो उसी के पास चली जाय। परन्तु इन दोनों छोटी लडकियो को यदि आप अपने पास रख कर धर्म-शिक्षा दें तो इनके उद्धार का उपाय हो सकता है।

फ़िलिप ने सोचा था कि दोनो छोटी लडकियां यदि रह गईं तो जगदम्बा के साथ मैं विवाह करूंगा और अहल्या के प्रतिपालन का भार घनश्याम को सौपूंगा।

फ़िलिप के अनुरोध से मेमसाहब सावित्री से कहने लगी—"तुम स्वयम् कुपथ में जाना चाहती हो, जाओ। परन्तु इन दोनों छोटी लड-कियो को यही छोड जाओ। हम इन्हें धर्म-शिक्षा देकर खीष्ट-धर्म में दीक्षित करेंगी।"

सावित्री—श्रीमती, यह मुझसे न होगा। इनकी बडी बहिन मरते समय इन्हें मेरे हाथो मे सौंप गई है। मैं इन्हे इनके पिता के पास पहुँचाऊंगी।

सावित्री जिस समय नम्रतापूर्वक मेमसाहब से ये बातें कह रही थी, उस समय अहल्या एवं जगदम्बा दोनों ही उसका अंचल पकडे बैठी थीं। उन्हें डर लग रहा था कि कहीं सावित्री के पास से हमें कोई ज़बरदस्ती न उठा ले जाय।

अन्त में मेमसाहब ने कहा—"तुम लोग काले बंगाली हो। तुम्हारा हृदय बहुत काला है। धर्म की बात तुम्हारे हृदय में तनिक भी

को पति रूप में ग्रहण किया जा सकता है। परन्तु अशिक्षिता सावित्री ने सोचा कि मेमसाहब ने जो कुछ कहा है, ठीक वही बात बाबा गुरु गोविन्द जी भक्तिरसपूर्ण भाषा में कहते थे। यह सोच कर उसने निश्चय किया कि सर्वनाश हो गया,—हम लोग विलायती वैष्णव के अखाड़े में आ पड़ी।

इस उन्नीसवीं शताब्दी में पाठक और पाठिकाएं "विलायती वैष्णव"—यह शब्द पढ़ कर 'ही ही' करके हँस पड़ेंगी। परन्तु अठारहवीं शताब्दी की उस अशिक्षिता सरला रमणी के हृदय में यह दृढ़ विश्वास हो गया कि हम विलायती वैष्णव के हाथों में आ फँसीं। इसके बाद फिर नेन्डर साहब की मेम ने सावित्री को सम्बोधन करके जो समस्त बातें कहीं, सावित्री ने उनमें से एक बात का भी उत्तर नहीं दिया। वह मौन धारण किये रही, और बीच-बीच में वहां से चली जाने के लिए अत्यन्त आग्रह प्रकट करने लगी। जैसे ही वह उठ कर चल देने को तैयार होती वैसे ही फिलिप गंगाराम कहने लगते—"इस धूप में चला नहीं जायगा शाम के वक्त चली जाना।" सावित्री बड़ी भयभीत हुई। मन ही मन कहने लगी—"हे दयामय परमेश्वर, हे विपत्ति-भजन परमात्मन्, तुम्हारी कृपा से अब तक धर्म-रक्षा हुई। एक धर्म को छोड़ कर इस समय संसार में हमारे पास और कुछ भी नहीं है। दीनबंधु! इस वर्तमान विपत्ति में हमारी रक्षा करो!"

कितनी ही बातों के बाद मेमसाहब बारम्बार कहने लगीं—"तुम हमारी बातों का उत्तर क्यों नहीं देती हो?"

बहुत देर बाद सावित्री ने कहा—"श्रीमती, मैं क्या कहूँ? यदि मेरे स्वामी और भाई मुझे न मिले तो यह प्राण जायँ तो जायँ, यदि मुझे नरक में जाना पड़ा तो चली जाऊंगी। मैं एक बार उन्हें आँख देखना चाहती हूँ।"

मेम—भाई एवं स्वामी की बात तो तुम कई बार कह चुकी हो। परन्तु तुम घोर विपत्ति मे जो फँसोगी ?

सावित्री—विपत्ति के समुद्र मे तो डूबी ही हुई हू, और विपत्ति में क्या फँसूगी ?

इतने मे फिलिप गंगाराम ने मेमसाहब से कहा—मेमसाहब, यह यदि स्वयम् कुमार्ग मे जाना चाहती है तो जाय, इसका पति हो तो उसी के पास चली जाय। परन्तु इन दोनों छोटी लडकियो को यदि आप अपने पास रख कर धर्म-शिक्षा दें तो इनके उद्धार का उपाय हो सकता है।

फिलिप ने सोचा था कि दोनों छोटी लड़किया यदि रह गई तो जगदम्बा के साथ मैं विवाह करूंगा और अहल्या के प्रतिपालन का भार घनश्याम को सौंपूंगा।

फिलिप के अनुरोध से मेमसाहब सावित्री से कहने लगी—"तुम स्वयम् कुपथ में जाना चाहती हो, जाओ। परन्तु इन दोनों छोटी लड-कियो को यही छोड जाओ। हम इन्हे धर्म-शिक्षा देकर खीष्ट-धर्म में दीक्षित करेंगी।"

सावित्री—श्रीमती, यह मुझसे न होगा। इनकी बडी बहिन मरते समय इन्हें मेरे हाथों मे सौंप गई हैं। मैं इन्हें इनके पिता के पास पहुँचाऊंगी।

सावित्री जिस समय नम्रतापूर्वक मेमसाहब से ये बातें कह रही थी, उस समय अहल्या एवं जगदम्बा दोनो ही उसका अंचल पकडे बैठी थीं। उन्हें डर लग रहा था कि कहीं सावित्री के पास से हमें कोई ज़बरदस्ती न उठा ले जाय।

अन्त में मेमसाहब ने कहा—"तुम लोग काले बंगाली हो। तुम्हारा हृदय बहुत काला है। धर्म की बात तुम्हारे हृदय में तनिक भी

प्रवेश नहीं करती।" यह कहते-कहते वह आराम करने के लिए कमरे के भीतर चली गईं। टामस घनश्याम ताड का पखा हाथ में लेकर उनके पीछे पीछे चले गये। उन दिनों इस देश में छत में टँगने वाले पंखों का प्रचार नहीं था। गरमी के दिनों में पंखा हाथ में लेकर घनश्याम को मेमसाहब के पीछे-पीछे रहना पड़ता था।

फ़िलिप गंगाराम इनके पास बैठे रहे। वे बारम्बार सावित्री से कहने लगे—"तुम मेमसाहब का कहना मानो, इसमें तुम्हारा भला होगा। तुम्हारे भाई और स्वामी जीवित है या मर गये, कौन कह सकता है?"

यह बात सुनते ही सावित्री की आंखों से तीव्र अश्रुधारा बहने लगी। उसने फ़िलिप की बात का कोई उत्तर नहीं दिया। कुछ देर बाद फ़िलिप गंगाराम भी किसी काम के लिए चले गये। उस समय इन दोनों को परस्पर बात-चीत का अच्छा मौक़ा मिल गया। वे जल्दी-जल्दी वहां से चली जाने की सलाह करने लगीं।

सावित्री ने जगदम्बा से कहा—"जगदम्बा! हम लोग बड़ी आफत में आ पड़ीं, जान पड़ता है, विलायती वैष्णव के हाथों में आ पड़ी हैं। अगर चटपट यहां से नहीं भाग चलोगी तो उद्धार नहीं है।"

जगदम्बा बोली—"दीदी, मैं भी यही सोच रही थी। यह किसी विलायती बाबा का ही घर होगा। यह स्त्री शायद विलायती धर्म की अधिकारिणी है। कल मैंने देखा था, इसके सर पर बाल नहीं हैं शायद थोड़े ही दिन पहिले यह वैष्णवी हुई है।

सावित्री ने कहा—"क्यों, इसके सर पर तो बहुत लम्बे लम्बे बाल हैं।"

जगदम्बा—नहीं दीदी, रात संध्या होने के बाद इसने सारे के सारे ये बाल उतार कर आया के हाथ में दे दिये थे। उसने उन्हें कपड़ों के साथ रख दिया।

सावित्री—तो शायद विलायती वैष्णवी स्त्रियां सर के बाल उतरवा कर एक नई तरह के बाल सर मे लगाये रहती हैं।

जगदम्बा—ऐसा ही होगा।

सावित्री—ये जो आदमी हम लोगो के खाने को चावल, दाल ले आये थे, शायद इसी अखाडे के चेले हैं।

जगदम्बा—ऐसा ही होगा। आज सवेरे मैंने देखा कि साहब ने एक पुस्तक का पाठ आरम्भ किया, ये दोनों घुटने डाल कर बैठ गये और आंखे मूँद कर सुनने लगे।

सावित्री—तो विलायती वैष्णव क्या पुस्तक सुनते वक्त घुटनों के बल बैठते है?

जगदम्बा—सम्भवत ऐसा ही होगा। विलायती चीज़ और देशी चीज़ तो प्रायः एक सी नहीं होती।

ये तीनों जिस समय इस प्रकार बात-चीत कर रही थीं, उसी समय कियर्नन्डर साहब स्कूल से घर लौटे। उनसे इन्होंने कहा कि हम कारापिट साहब के बँगले पर जायँगी। कियर्नन्डर साहब ने इसमें कोई आपत्ति नहीं की। सिर्फ़ यही कहा, तुम निराश्रिता हो रही हो, यदि इच्छा हो तो यहां रह कर धर्म-शिक्षा ले सकती हो। साहब की बात से ये सहमत न हुईं, और चलने के लिए तैयार होने लगीं। साहब ने उस समय अपने मन में सोचा कि शायद इनके पास रुपया पैसा बिल्कुल नहीं है, इसलिए दो चार रुपया दे देने से इनका कुछ कष्ट दूर होगा। यह सोच कर इनसे ठहरने के लिए कह कर साहब अन्दर चले गये। बक्स में से इन्हें देने के लिए पांच रुपये निकाले। परन्तु मेमसाहब ने रुपये देने की राय नहीं दी। दूसरे, कियर्नन्डर साहब को चेप्लेन टीटमर्श साहब की बात याद आगई। टीटमर्श साहब ने कहा था—"बंगाली

लोग बड़े दुष्ट होते हैं, ये लोग पहिने हुए कपड़ों के नीचे रुपया छिपा रखते हैं।" सिर्फ़ मेमसाहब के कहने पर साहब रुपया देने से न रुके, पर टीटमर्श साहब की बात याद आते ही उन्होंने निकाले हुए पांच रुपये फिर बक्स के अन्दर रख दिये। बरांडे में आकर सावित्री से पूछने लगे— "तुम्हारे पास कुछ ख़र्च-पात नहीं है, फिर कैसे तुम्हारा काम चलेगा?"

सावित्री—परमेश्वर कोई न कोई उपाय कर देंगे।

कियर्नन्डर साहब सोचने लगे,—"शायद टीटमर्श साहब की बात सच ही थी; यदि वैसा न होता तो ये मेरे निकट कुछ याचना करती। उपधर्मावलम्बी बंगाली क्या कभी परमेश्वर पर इतना भरोसा रख सकते हैं?"

सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को साथ ले साहब के बँगले से बाहर हुई, और वहां से दक्षिण की ओर चल दी।

कोई चार बजे शाम तक बराबर चलती रहीं। रास्ते में जो कोई मिलता, उससे कारापिट साहब के बँगले का पता पूछतीं, परन्तु दुर्भाग्य देखिये कि कारापिट साहब तो उस समय फ़ौजदारी बालाखाने के पश्चिम की तरफ़ एक छोटे से घर में रहते थे, और ये उनका घर तलाश करने के लिए लालदीघी के पास से गंगा के किनारे-किनारे होती हुई दक्षिण की तरफ़ खिदिरपुर को चली गईं। तीनों अनाथा कन्याओं के पास एक पैसा भी न था। जो पहिने थीं, सिर्फ़ वही तीन फटे पुराने कपड़े थे। सरमेन साहब के पुल (Surman Bridge) को पार करके वे और भी दक्षिण को चली गईं। दिशाओं का ज्ञान भी जाता रहा, क्रमशः आगे ही को बढ़ने लगीं। सन्ध्या के समय अलीपुर जा पहुँचीं। उस समय बादल घिर आया, चारों ओर अंधकार छा गया। बादल गरजने लगा। ज़ोर की आंधी आ गई। अंधकार में आंखों से कुछ दिखाई न देता था। बादल की गरज के कारण कुछ सुनाई भी नहीं पड़ता था

अंधकार मे कही एक दूसरे से अलग न जा पडे, इस आशंका से सावित्री दाहिने हाथ से अहल्या का और बाएँ हाथ से जगदम्बा का हाथ पकड कर रास्ते के एक किनारे उसी खुले मैदान मे बैठ रही।

प्राय दो घण्टे के बाद आँधी तो शांत होगई, पर ज़ोर से पानी बरसना शुरू हुआ। बिजली के प्रकाश मे उस समय सामने एक पेड दिखाई दिया, तीनों उसी पेड के नीचे जा बैठीं। इस घटना के पांच सात वरस बाद इसी पेड़ के नीचे फिलिप फ़्रांसिस ने हेस्टिंग्स साहब के साथ सम्मान-रक्षार्थ सग्राम (Duel) किया था।

इन अनाथा, आश्रयहीना, निरपराधिनी कन्याओं की दुरवस्था के स्मरणमात्र से हृदय विदीर्ण होता है। ऐसे दारुण क्लेश की अपेक्षा मौत हज़ार गुनी अच्छी! सर्व समाज मे घृणित और निन्दित धुन्दपन्थ नाना ने विगत सिपाही-विद्रोह के समय निरपराधिनी अंगरेज़ महिलाओं तथा असहाय निर्दोष बालक बालिकाओं का प्राण-नाश करके चिरकाल के लिए भारत के वीर गौरव महाराष्ट्रीय नाम को कलंकित कर रखा है। इतिहास में वह निर्दय, नरपिशाच, राक्षस आदि नामो से सम्बोधित हुआ है। उसका नाम सुनते ही मनुष्यमात्र के हृदय में घृणा उत्पन्न होती है। परन्तु पाठक! हम आपसे पूछते हैं कि उन दिनों जिन समस्त अर्थ-लोलुप, कठोर-हृदय एवं स्वार्थपरायण अंगरेज़ों के अर्थ-लोभ की पूर्ति के लिए बंगाल की हज़ारों निरपराधिनी स्त्रियां सावित्री की तरह दुरवस्था-ग्रस्त हुई थीं, जिनकी अर्थ लोलुपता के कारण हज़ारों असहाय निर्दोष बालक बालिकायें जगदम्बा और अहल्या की तरह विपत्ति-सागर में निमग्न हुई थीं, परम न्यायवान् मंगलमय परमेश्वर के न्याय-विचार में वे क्या धुन्दपन्थ नाना की अपेक्षा अधिक अपराधी प्रमाणित नहीं हुए? केवल वे ही क्यों?—उस समय जिन समस्त बंग-कुलाङ्गार बंगालियों ने अंगरेज़ों के उस अत्याचार में सहायता दी थी— जिन समस्त बंग-कुलाङ्गार

बंगालियों ने कायरता के कारण सहानुभूति से शून्य हो दूरस्थित दर्शक की भांति निश्चिन्त इन समस्त अत्याचारों को देखा था, ईश्वर के न्याय विचार में उन्हें भी अवश्य ही नीचा देखना पड़ा।

स्वप्न में भगवद्दर्शन

सारी रात अविराम पानी बरसता रहा। पेड़ के नीचे बड़ी कीच होगई। तीनों अनाथा कन्याएं रात भर उसी कीचड़ में बैठी भीगती रहीं। अहल्या सात बरस की बालिका थी। उसे रह-रह कर नींद आने लगी। पर-दुख-कातरा सावित्री उसे अपनी छाती से चिपटाये बैठी रही स्वयम् सारी रात मन ही मन भगवान् के नाम का स्मरण करती थी और कहती थी—"दयामय दीनबन्धो! इस दारुण दुख से उद्धार कीजिये प्राण जायँ तो जायँ पर मरते समय एक बार अपने स्वामी और बड़े भाई को आंखों से देख सकूं। इतनी दूर आकर भी यदि मृत्यु से पहिले उन्हें न देख पाऊंगी तो हृदय में एक भीषण यंत्रणा शेष रह जायेगी।"

इस प्रकार की चिन्ता करते-करते सावित्री की आंखों में कुछ झपकी आगई। अहल्या को छाती से लगाये अचैतन्य अवस्था में धरती पर पड़ रही। रात थोड़ी रह गई थी, घोर अन्धकार छाया हुआ था जगदम्बा सावित्री के पार्श्व में चुपचाप बैठी हुई थी। अचैतन्य अवस्था में सावित्री ने स्वप्न देखा—मानों स्वयम् श्री भगवान् उसके सामने खड़े-खड़े कह रहे हैं, "पुत्री, तुम्हारे हृदय का पवित्र भाव देख कर मैं तु

पर बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। क्या चाहती हो, सो कहो।" सावित्री स्वप्नावस्था में तत्काल बोल उठी—"प्रभो! मेरे स्वामी और भाई का उद्धार कीजिये, इन दुखिनी दोनों बालिकाओं के पिता का उद्धार कीजिये—" सावित्री स्पष्ट शब्दो में यही कहती हुई उठी। यह देख कर अर्द्धसुप्त जगदम्बा और अहल्या चौक पड़ीं और कहने लगी—"दीदी, किस से बात कर रही हो?"

सावित्री का विश्वास था कि स्वप्न की बात किसी से रात में न कहनी चाहिये, इसलिए उसने कोई जवाब नहीं दिया। देखते-देखते उस दुखमयी रजनी का अन्त हुआ। आकाश में सूर्योदय होते ही समस्त संसार में प्रकाश फैल गया। पेड के पास वाले रास्ते से सैंकडों स्त्री-पुरुष प्रातःकाल गगाजो में स्नान करने के लिए जाने लगे।

सावित्री, जगदम्बा एवं अहल्या तीनों ही कीच में सने हुए भीगे वस्त्र पहिने बैठी हैं। पहिने हुए एक एक वस्त्र के अतिरिक्त उनके पास कोई दूसरा कपड़ा नहीं है। सावित्री ने जगदम्बा से कहा—"अहल्या अभी बच्चा है, ऐसे छोटे बालक-बालिकाओ के नगे रहने में कोई शरम की बात नहीं। लो, इसे थोडी देर के लिए नंगा करके यहां पेड की आड में बिठाल दो और इसका कपड़ा पहिन कर हम लोग एक एक करके गंगा जी में स्नान कर आवें। और अपना कपड़ा धो लावें। हम अपने पापों से इतना कष्ट भोग रही हैं। गगा स्नान करने से यदि पापों का नाश होता है तो हमारा कष्ट अवश्य दूर होगा।"

यह कह उसने अहल्या का कपडा उतार कर उसे वृक्ष की ओट में खड़ा कर दिया। सावित्री ने उसका कपड़ा पहिन कर गंगा में स्नान किया। बाद में अपना वस्त्र धोकर भीगा ही पहिन लिया, और अहल्या का वस्त्र जगदम्बा को पहिनने के लिए दिया। जगदम्बा ने भी उसी तरह अहल्या का वस्त्र पहिन कर स्नान किया और अपना वस्त्र धो लिया।

बाद में अहल्या को स्नान कराने लिवा लाई। घाट पर आदमियों की भीड थी; इसलिए स्नान कर चुकने पर ये तीनों घाट से कुछ दूर पर जाकर अपना अपना भीगा वस्त्र धूप में सुखाने लगी।

गंगा के घाट पर एक वृद्ध ब्राह्मण प्रातःकृत्य सम्पादन कर रहा था। उसकी नज़र इन तीनों बालिकाओं पर पडी। वह देखता रहा कि इन तीनों बालिकाओं ने दूरस्थित पेड के नीचे से आकर एक एक करके गंगा में स्नान किया और स्नान के अनन्तर अपना-अपना धोया हुआ भीगा वस्त्र पहिना। वृद्ध ब्राह्मण प्रातःकृत्य समाप्त करके उस स्थान पर आया जहां ये तीनों बैठी थीं और बारम्बार स्नेह-पूर्ण दृष्टि से इनकी ओर देखने लगा। कुछ देर बाद करुणा भरी आवाज़ में कहा—"बेटी, तुम कहां से आरही हो? हमें जान पडता है, तुम इस समय किसी दुर्दशा में फँसी हो। कहां जाना चाहती हो?"

सावित्री अपरिचित व्यक्ति के साथ प्रायः बातचीत नहीं करती थी। परन्तु वृद्ध ब्राह्मण की स्नेह-पूर्ण वार्त्ता और प्रशान्त मूर्ति ने उसकी सारी आशंका को दूर कर दिया। वह बोली—

"हम सैदाबाद के कारापिट आराटून साहब की कोठी पर जायँगी।"

वृद्ध ब्राह्मण—बेटी, तुम हिन्दू स्त्री हो, कारापिट आराटून साहब की कोठी पर क्यों जाना चाहती हो?

सावित्री—श्रीमान्, हम बडी विपत्ति में फँसी हैं।

वृद्ध—अपनी विपत्ति का वृत्तान्त मुझ से कहो। डरो मत। मैं यदि तुम्हारा कुछ उपकार कर सका तो अवश्य करूंगा।

सावित्री ने अपना तथा जगदम्बा और अहल्या का सारा वृत्तान्त वृद्ध ब्राह्मण से कहना आरम्भ किया, और अपने पिता सभाराम का

नाम लिया। सभाराम का नाम सुनते ही वृद्ध को बडा आश्चर्य हुआ और वह कहने लगा—"अहा बेटी, तुम सभाराम की कन्या हो !" यह कहते-कहते उसकी आंखों से आंसू निकल पडे। परन्तु वह सावित्री का सारा वृत्तान्त सुनने के लिए ऐसा उत्सुक था कि उसने सावित्री की बात काट कर बीच में कुछ नही कहा। सावित्री की बातें सुनते-सुनते उसकी दोनों आंखों से तीव्र अश्रुधारा बहने लगी। जब उसकी बातें समाप्त हुईं तो वृद्ध ब्राह्मण अत्यन्त दयार्द्र भाव से निश्चल पुतली की तरह टकटकी बांधे तीनों कन्याओं की ओर देखने लगा। मुह से बात न निकलती थी। सावित्री को उस समय गत रात्रि के स्वप्न की बात याद आई। जब उसकी दुरवस्था का वृत्तात सुन कर वृद्ध ब्राह्मण ऐसा शोकाकुल हुआ तो वह अपने मन में सोचने लगी कि मनुष्य में तो मैंने इतनी दया देखी नही। कितने ही आदमियों के निकट अपने दुख की कथा कही, पर कोई भी हमारे दुख को सुन कर इतना दुखी नहीं हुआ, हो न हो, ये स्वयम् श्रीभगवान ही हैं।

सावित्री ने पहिले कितनी ही कथाओं मे सुना था कि भगवान श्रीहरि ने समय-समय पर वृद्ध ब्राह्मण के वेश में पापियो को दर्शन दिया है। अतएव उसे एकदम यह निश्चय होगया कि ज़रूर यही बात है। गगा-स्नान करने पर हमारे पापों का नाश होगया है, और हमारी दुर्दशा देख कर स्वयम् भगवान श्रीहरि वृद्ध ब्राह्मण के वेश में हमारा उद्धार करने के लिए आये हैं। इसी विश्वास से प्रेरित हो वह अपने पहिने हुए वस्त्र का अंचल गले में डाल कर वृद्ध ब्राह्मण के पांवों में लोट गई और कहने लगी—

"कल रात मैंने जो स्वप्न देखा था वह सत्य हुआ। आप क्या वे ही विपद्भन्जन हरि हैं, और वृद्ध ब्राह्मण के वेश में इन दुखिनियों का उद्धार करने के लिए आये हैं? आप निश्चय ही वे ही विपद्भन्जन हरि

हैं। मैं आपके श्री चरणों को न छोड़ूंगी। यदि आप मेरे भ्राता और स्वामी का उद्धार न करेंगे तो मैं अभी तत्काल आपके श्रीचरणों में अपने प्राण परित्याग करूंगी। हे विपद्भञ्जन भगवान् ! भला अब मुझे और कितना दुख दोगे !"

सावित्री के इन कातर वचनों को सुन कर वृद्ध ब्राह्मण अपने को न सँभाल सका। इन तीनों कन्याओं के साथ वह भी उच्च स्वर से फूट फूट कर रोने लगा। उसे इस प्रकार रोते देख कर सावित्री का यह विश्वास और भी दृढ़ होगया कि ये निश्चय ही विपद्भञ्जन भगवान् है। वृद्ध ब्राह्मण के वेश में हमारा उद्धार करने आये हैं। साक्षात् देव स्वरूप न होने पर क्या कहीं मनुष्य के हृदय में इतनी दया हो सकती है?

वास्तव में स्नेह और दयाभाव-परिपूर्ण मुखमण्डल को देखने से यह वृद्ध साक्षात् देवता ही प्रतीत होता था।

कुछ देर बाद वृद्ध अपने शोकावेग को रोक कर बोला—"बेटी, तुम यहां निराश्रिता बनी पड़ी हो। मेरे साथ चलो, तुम्हारे आत्मीय स्वजन जिससे कारागार से मुक्त हो सकें, उसके लिए मैं यथासाध्य चेष्टा करूंगा।"

सावित्री अब भी वृद्ध के पांव नहीं छोड़ती थी। वृद्ध ने धीरे-धीरे उसे हाथ पकड कर उठाया। पिता के हस्तस्पर्श से जिस प्रकार संतान का शरीर अनुपम आनन्द से रोमाञ्चित हो उठता है, सावित्री का शरीर उस वृद्ध ब्राह्मण के हस्तस्पर्श से उसी प्रकार पुलकित हुआ। हृदयस्थित पवित्र भाव मनुष्य के शरीर को पवित्र कर देता है। स्वच्छ एवं साधु चरित्र वास्तव मे रक्त मांस को रूपांतरित कर डालता है। इससे पहिले एक दिन जिस समय बाबा गुल्गोविन्द ने सावित्री का हाथ छुआ था, उस समय उसे ऐसा जान पड़ता था, मानों उसके हाथ में एक ही साथ सैंकड़ों तेज़ कांटे छिद गये हैं।

सावित्री हिताहित की चिन्ता न करके, पिता के पीछे-पीछे चलने वाली छोटी सी बालिका की तरह, नितान्त निःशंक चित्त से जगदम्बा और अहल्या के सहित उस वृद्ध के पीछे-पीछे चलने लगी। कुछ दूर पहुँच कर वृद्ध ने एक स्वच्छ एवं सुपरिष्कृत घर के भीतर प्रवेश किया, और 'बेटी', 'बेटी' कह कर आवाज़ दी, जिसे सुनते ही एक स्त्री छः बरस के बालक का हाथ पकड़े हुए वृद्ध के पास आ उपस्थित हुई। स्त्री की अवस्था पच्चीस बरस से कुछ अधिक ही थी, परन्तु देखने में वह सहसा षोडश-वर्षीया जान पड़ती है। उसकी रूप-राशि से घर उजाला हो रहा है। परन्तु उस रूप को वर्णन करने की सामर्थ्य किसी से नहीं। उस सौन्दर्य्यमयी मुखाकृति के निरूपण में कोई यह भी नहीं कह सकता कि मानों सूर्य्य-मण्डल अपने प्रदीप्त रश्मि-जालों से घिरा है। वरन् उसकी मुखच्छवि धर्म, पवित्रता, दया और स्नेह की परमोज्ज्वल किरणों से उद्भासित हो रही है। अतएव उसका शारीरिक सौन्दर्य्य दृष्टि का विषय नहीं, और इस लिए हम उसकी प्रशंसनीय रूपराशि के वर्णन की चेष्टा न करके स्थान स्थान पर सिर्फ़ उसके अनेकानेक सद्गुणों का उल्लेख करेंगे।

वृद्ध ब्राह्मण प्रति दिन प्रातःकाल गंगा-स्नान करके कोई चार घड़ी दिन चढ़े घर लौट आते थे। परन्तु आज स्नान के अनन्तर सावित्री का वृत्तांत सुनते-सुनते प्राय दोपहर हो गया। उनके आने में बहुत देर देख कर उक्त रमणी बड़ी उत्कण्ठित हो रही थी। इस लिए पास आते ही उसने बड़ी उत्सुकता से पूछा—

"पिता, आज आपको आने में इतनी देर कैसे हुई? मैं आपके लिए बड़ी उत्कण्ठित हो रही थी।"

वृद्ध ने कहा—"इन तीन कन्याओं के कारण ही कुछ देर होगई। ये बड़ी दुर्दशा में फँसी हैं। कल से इन्होंने कुछ खाया नहीं है। घर में

जो भोजन तैयार हुए हों, वह पहिले इन्हें खाने को दो, बाद में फिर हमारे लिए भोजन तैयार करना।"

सावित्री, ब्राह्मण को सम्बोधन करके कहने लगी—"पिता जी, आप ब्राह्मण है। आप के लिए जो भोजन तैयार हुए है, उन्हें मैं प्राण जाने पर भी कदापि नहीं छू सकती। पहिले आप भोजन करें हम लोग आपकी थाली का प्रसाद पावेंगी।"

सावित्री एवं जगदम्बा किसी प्रकार भोजन करने को तैयार न हुई। अहल्या को उक्त रमणी ने भोजन ला दिया। बालिका भूख से पीडित होरही थी। रमणी के दिये हुए भोजन को पाकर वह कुछ शान्त हुई। रमणी, सावित्री को अपने पास बुला कर उससे उसका सारा वृत्तान्त पूछने लगी। सावित्री ने जिस समय कहा कि मैं सैदाबाद के सभाराम बसाक की कन्या हूं तो रमणी आश्चर्य-चकित होकर बोली—"आहा! तुम क्या सभाराम बसाक की बेटी हो? तुम्हारे पिता पहिले हमारे आसामी थे। बाद में जब उन्होंने जागीर पाई तो उसी की ज़मीन मे घर-मकान बनवा कर रहने लगे।"

सावित्री ने कहा—"आप क्या हमारे देश की प्रमदा देवी हैं? आपको देख कर आज हमारे नेत्र सार्थक हुए। देश के सभी लोग आपके सद्गुणों की प्रशंसा करते हैं। आप वृद्ध नवाब के पण्डित की बेटी हैं न?"

प्रमदा ने कहा—"हां, जो तुम्हें साथ लिवा कर आये हैं, वे हमारे पिता बापूदेव शास्त्री हैं। इन्हीं को मुर्शिदाबाद में सब लोग 'वृद्ध नवाब के पण्डित' कहा करते हैं।"

सावित्री यह बात सुन कर बडी प्रसन्न हुई। मन ही मन उसे आशा हुई कि अवश्य ही वृद्ध नवाब के पण्डित मेरे स्वामी एवं भाई को

मुक्त करा सकेंगे। उसने बचपन ही से सुन रक्खा था कि वृद्ध नवाब के पण्डित बड़े धार्मिक पुरुष हैं, वे असाध्य को भी साध्य बना सकते हैं।

प्रमदा देवी के निकट उसने अपना सारा वृत्तान्त कहना आरम्भ किया। इतने में बापूदेव शास्त्री वहां आकर बोले—

"बेटी, हम तुम्हें इस वक्त ये सारी बातें नहीं सुनने देंगे। इन समस्त शोचनीय घटनाओं को सुन कर तुम अचेत हो जाओगी। इस लिए पहिले इनके भोजन का प्रबन्ध करो। बाद में क्रम-क्रम से सारी बातें जान लोगी। मैं स्वयं तुम्हें इनका सारा दुखवृत्तान्त सुनाऊंगा।"

प्रमदा का दयालु हृदय दूसरे के दुख को नहीं सह सकता था। तन्तुकारों की भयानक दुर्दशा का हाल सुनते सुनते वह प्रायः समय समय पर मूर्छित हो जाया करती थी। इसी लिए उसके पिता ने उसे मुर्शिदाबाद से कालीघाट में ला रखा था। पाठकों को याद होगा कि इस उपन्यास के पहिले ही परिच्छेद में एक स्थान पर पर-दुखकातरा प्रमदा देवी के नाम का उल्लेख हो चुका है।

बापूदेव शास्त्री

इस उपन्यास के प्रारम्भ ही में बापूदेव शास्त्री का ज़िक्र आ चुका है। परन्तु बापूदेव शास्त्री कौन थे, पाठक-पाठिकाओं को यह अभी तक ज्ञात नहीं हुआ। अतएव इस परिच्छेद में हम उन्हें बापूदेव शास्त्री का परिचय देते हैं।

उस समय बंगाल में एकमात्र वापूदेव शास्त्री ही सच्चे ब्राह्मण थे। यों कहने के लिए तो हज़ारों तिलकधारी ब्राह्मण थे, पर उनमें ब्राह्मणत्व सम्बन्धी कोई सद्‌गुण नहीं दिखाई देता था।

महाराज मानसिंह जब पहिले-पहिल बंगाल में आये तो वे अपने गुरु वासुदेव शास्त्री को अपने साथ लाये थे। वासुदेव जी बड़े उदार चित्त पुरुष थे। मानसिंह का यह नियम था कि वे कूच करते वक्त गुरुदेव के चरणों की वन्दना किये बिना कभी युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर नहीं होते थे। यदि किसी युद्ध पर जाना होता तो गुरुदेव ही उनकी यात्रा का समय निश्चत करते थे। उनका विश्वास था कि पाण्डव-कुल-तिलक, भारत के वीर गौरव, महावीर धनञ्जय सदा ही युद्ध में प्रवृत्त होने से पहिले प्रथमतः वाण के द्वारा अपने गुरु द्रोणाचार्य के चरणों की वन्दना कर लेने के कारण ही विश्व-विजयी हुए थे। उनका निश्चय था कि गुरु-चरणों की वन्दना करके संग्राम में प्रवृत्त होने पर कोई कदापि पराजित नहीं हो सकता। इसी विश्वास के कारण वे सदा ही बड़े आदर सम्मान के साथ गुरुदेव को अपने साथ-साथ रखते थे।

वासुदेव शास्त्री का जन्मस्थान पंजाब में था। उनके चार पुत्र थे। उन में सबसे छोटे पुत्र कृष्णदेव शास्त्री पिता के साथ बंगाल आये। मानसिंह कुछ दिन बंगाल में रह कर स्वदेश को लौट गये। उनके इष्टदेव वासुदेव शास्त्री भी उनके साथ ही चले गये। परन्तु उनके गुरु-पुत्र कृष्णदेव शास्त्री बंगाल में रहते समय ढाका ज़िले के अन्तर्गत विक्रमपुर ग्राम के एक प्रतिष्ठित और कुलीन ब्राह्मण की कन्या के साथ पाणिग्रहण कर विक्रमपुर ही में रहने लगे। इन कृष्णदेव शास्त्री के पुत्र रामदेव शास्त्री ने भी विक्रमपुर ही में अपना जीवन व्यतीत किया। रामदेव शास्त्री की मृत्यु के बाद मुर्शिदकुली खां के शासनकाल में बंगाल की राजधानी मुर्शिदाबाद से ढाका को स्थानान्तरित हुई। रामदेव शास्त्री के पुत्र जयदे

शास्त्री उस समय विक्रमपुर छोड़ मुर्शिदाबाद में आकर रहने लगे। इन्हीं जयदेव शास्त्री के अनुरोध से महराज राजवल्लभ नवाब सरकार के काम पर नियुक्त हुए थे।

ढाका और मुर्शिदाबाद इन दोनों ही प्रदेशों में जयदेव शास्त्री के पास माफ़ी की काफ़ी ज़मीन थी। उनकी वार्षिक आय दस हज़ार रुपये से कम न थी।

जयदेव शास्त्री की धर्मपत्नी गौरी देवी के गर्भ से बापूदेव का जन्म हुआ। गौरी देवी अत्यन्त सहृदया, धर्मपरायणा और बड़ी रूपवती स्त्री थीं, पर बहुत छोटे क़द की और दुबली पतली थीं। चालीस बरस की अवस्था में भी वे दस ग्यारह बरस की बालिका सी जान पड़ती थीं। साध्वी सुशीला गौरी देवी संसार में विशेष सुख सम्भोग की अधिकारिणी न हुईं। सन्तान के शोक में उनका मुख-कमल सदा ही उदास और आंसुओं से भीगा रहता था। क्रमशः गौरी देवी के उदर से नौ सन्तानों का जन्म हुआ था। जिनमें से पाच का प्राणान्त बचपन ही में होगया। सिर्फ़ तीन कन्याएं और सबसे छोटी पुत्र-सन्तान, बापूदेव शास्त्री जीवित रहे। बापूदेव के जन्म से पहिले ही गौरी देवी की अन्यान्य पाच संततियों का प्राणान्त हो चुका था। इसलिए बापूदेव ने कभी किसी दिन भी अपनी जननी के मुख को प्रसन्नतापूर्ण नहीं देखा। बाल्यावस्था में उनकी जननी उन्हें गोद में लेकर सन्तान शोक में सदा ही विलाप परिताप किया करती थीं। सम्भवतः इसी कारण बापूदेव का हृदय बाल्यावस्था से ही दूसरे के दुख को देख कर बहुत ही दुखी होता था। माता के सरल और सद्-आचरणों को देख देख कर मिथ्या-प्रवञ्चना के प्रति बापूदेव के हृदय में विशेष विद्वेष उत्पन्न होगया था। बापूदेव अपनी माता के इकलौते पुत्र थे; इसलिए बड़े यत्न के साथ उनका लालन पालन हुआ था। उनकी माता ने तत्काल-प्रचलित नियमानुसार अत्यन्त बाल्यावस्था में ही

उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया। बारहवां बरस समाप्त होने के पहिले ही उनका विवाह होगया। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जननी की मृत्यु होगई।

बापूदेव के पिता जयदेव शास्त्री बड़े भक्त और धर्मानुरागी पुरुष थे। बाल्यकाल से ही बापूदेव अपने पिता की ज़बानी धर्म-सम्बन्धी अनेक कथा-वार्ताएं सुना करते थे। मातृवियोग के प्रायः चौदह बरस बाद उनके पिता का भी देहान्त होगया।

धर्मानुरागी पिता के औरस एवं सहृदया जननी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण यौवन के प्रारम्भ काल से ही बापूदेव के हृदय में धर्म के प्रति प्रगाढ श्रद्धा उत्पन्न हुई। उनके प्रत्येक कार्य में प्रबल धर्म तृष्णा और वैराग्य का भाव दृष्टिगोचर होता था। दूसरे का दुख देखते ही उनका हृदय दुख से अभिभूत हो जाता था। परोपकार में वे बहुत सा धन ख़र्च करते थे; इसीलिए धीरे धीरे उन्हें अपनी ढाका प्रदेश की बहुत सी माफी की ज़मीन बेच डालनी पड़ी। अन्यान्य जमींदार जिस प्रकार प्रजागण को सता कर उनका सर्वस्व हरण करते थे बापूदेव शास्त्री में वह बात न थी। उनके समस्त आसामी एक प्रकार से बिना ही लगान के ज़मीन का उपभोग कर रहे थे। वे कभी किसी से लगान नहीं मांगते थे। परन्तु प्रजागण बापूदेव पर अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति रखते थे, पिता के तुल्य उनका मान करते थे, और इसलिए वे अपने आप ही बापूदेव के लिए गृहस्थी के समस्त आवश्यक पदार्थ जुटाते रहते थे। प्रजागण में भिन्न भिन्न जाति और श्रेणी के आदमी थे। यदि कोई जुलाहा कोई अच्छा कपड़ा बुनता था तो उसे बापूदेव की भेंट करता था। किसान लोग अपने अपने खेतों में पैदा होने वाले धानों के बढ़िया बढ़िया चावल उनकी नज़र करते थे। किसी के बाग़ में कोई अच्छा फल पैदा होता तो वह सबसे प्रथम पेड़ का पहिला फल अपने ज़मींदार (बापूदेव शास्त्री

को लाकर देता था। उनका विश्वास था कि ऐसे धर्मानुरागी जमींदार को वृक्ष का पहला फल भेंट करने से वृक्ष बहुत फलवान होगा। इन कारणों से बापूदेव के घर मे कभी किसी चीज़ का अभाव नहीं रहता था। उनके आसामी सौ से अधिक थे। उनमे से प्रत्येक ही एक दो दिन के अन्तर से अपने अपने खेत अथवा बाग से पैदा होने वाला कोई न कोई पदार्थ शास्त्री जी को उपहार स्वरूप प्रदान करता रहता था।

शास्त्री जी के चित्त मे संसार की कोई भावना न थी। दिन रात शास्त्र का अध्ययन किया करते थे। केवल एकमात्र कन्या के अतिरिक्त उनके और कोई सन्तान न थी। बापूदेव बाल-विवाह के कट्टर पक्षपातियो मे नही थे। परन्तु स्त्री के अनुरोध से नवे बरस में ही उन्होने एक सत्पात्र वर के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। पुत्र था नही, इसलिए दामाद को अपने पास रख कर पुत्र की भाति उसका लालन पालन करने की इच्छा से बापूदेव की स्त्री ने अल्पावस्था में अपनी कन्या का विवाह किया था। परन्तु दुर्भाग्यवश कन्या की चौदह बरस की अवस्था में दामाद की मृत्यु होगई। इकलौती सन्तान की चिर-वैधव्य-यन्त्रणा ने उस दयामयी साध्वी का हृदय विदीर्ण कर डाला, और थोड़े ही दिनों बाद वह इस दुख-पूर्ण संसार का परित्याग कर स्वर्ग-धाम को चली गई।

शास्त्री जी स्वयम् भी जामाता के वियोग मे बड़े व्यथित हुए, परन्तु वे परम ज्ञानी थे। अपने ज्ञान-बल से उस दारुण व्यथा को भुला कर वे दिनरात इस बात की चिन्ता मे रहने लगे कि परम दयालु मङ्गलमय भगवान सदा ही मनुष्य के कष्टो का निवारण करते है, किसी को पीड़ा पहुँचाना उनका उद्देश्य नहीं। इसलिए इस विपद्-राशि के अन्तर्गत अवश्य ही विधाता का कोई न कोई शुभ उद्देश्य छिपा हुआ है। इस चिन्ता के साथ विविध शास्त्रों की आलोचना करते करते उन्हें

उनका विवाह-सम्बन्ध स्थिर किया। बारहवां बरस समाप्त होने के पहिले ही उनका विवाह होगया। विवाह के कुछ ही दिनों बाद जननी की मृत्यु होगई।

बापूदेव के पिता जयदेव शास्त्री बडे भक्त और धर्मानुरागी पुरुष थे। बाल्यकाल से ही बापूदेव अपने पिता की ज़बानी धर्म-सम्बन्धी अनेक कथा-वार्ताएं सुना करते थे। मातृवियोग के प्रायः चौदह बरस बाद उनके पिता का भी देहान्त होगया।

धर्मानुरागी पिता के औरस एवं सहृदया जननी के गर्भ से उत्पन्न होने के कारण यौवन के आरम्भ काल से ही बापूदेव के हृदय में धर्म के प्रति प्रगाढ़ श्रद्धा उत्पन्न हुई। उनके प्रत्येक कार्य में प्रबल धर्म तृष्णा और वैराग्य का भाव दृष्टिगोचर होता था। दूसरे का दुख देखते ही उनका हृदय दुख से अभिभूत हो जाता था। परोपकार मे वे बहुत सा धन ख़र्च करते थे, इसीलिए धीरे धीरे उन्हें अपनी ढाका प्रदेश की बहुत सी माफी की ज़मीन बेच डालनी पडी। अन्यान्य जमींदार जिस प्रकार प्रजागण को सता कर उनका सर्वस्व हरण करते थे बापूदेव शास्त्री में वह बात न थी। उनके समस्त आसामी एक प्रकार से बिना ही लगान के ज़मीन का उपभोग कर रहे थे। वे कभी किसी से लगान नहीं मांगते थे। परन्तु प्रजागण बापूदेव पर अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति रखते थे, पिता के तुल्य उनका मान करते थे, और इसलिए वे अपने आप ही बापूदेव के लिए गृहस्थी के समस्त आवश्यक पदार्थ जुटाते रहते थे। प्रजागण में भिन्न भिन्न जाति और श्रेणी के आदमी थे। यदि कोई जुलाहा कोई अच्छा कपडा बुनता था तो उसे बापूदेव की भेंट करता था। किसान लोग अपने अपने खेतों में पैदा होने वाले धानों के बढ़िया बढ़िया चावल उनकी नज़र करते थे। किसी के बाग मे कोई अच्छा फल पैदा होता तो वह सबसे प्रथम पेड़ का पहिला फल अपने ज़मींदार (बापूदेव शास्त्री)

को लाकर देता था। उनका विश्वास था कि ऐसे धर्मानुरागी जमींदार को वृक्ष का पहला फल भेंट करने से वृक्ष बहुत फलदान होगा। इन कारणों से बापूदेव के घर में कभी किसी चीज का अभाव नहीं रहता था। उनके आसामी सौ से अधिक थे। उनमे से प्रत्येक ही एक दो दिन के अन्तर से अपने अपने खेत अथवा बाग़ से पैदा होने वाला कोई न कोई पदार्थ शास्त्री जी को उपहार स्वरूप प्रदान करता रहता था।

शास्त्री जी के चित्त मे संसार की कोई भावना न थी। दिन रात शास्त्र का अध्ययन किया करते थे। केवल एकमात्र कन्या के अतिरिक्त उनके और कोई सन्तान न थी। बापूदेव बाल-विवाह के कट्टर पक्षपातियो मे नही थे। परन्तु स्त्री के अनुरोध से नवे बरस मे ही उन्होंने एक सत्पात्र वर के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया था। पुत्र था नही, इसलिए दामाद को अपने पास रख कर पुत्र की भाति उसका लालन पालन करने की इच्छा से बापूदेव की स्त्री ने अल्पावस्था मे अपनी कन्या का विवाह किया था। परन्तु दुर्भाग्यवश कन्या की चौदह बरस की अवस्था मे दामाद की मृत्यु होगई। इकलौती सन्तान की चिर-वैधव्य-यन्त्रणा ने उस दयामयी साध्वी का हृदय विदीर्ण कर डाला, और थोड़े ही दिनों बाद वह इस दुख-पूर्ण संसार का परित्याग कर स्वर्ग-धाम को चली गई।

शास्त्री जी स्वयम् भी जामाता के वियोग मे बडे व्यथित हुए, परन्तु वे परम ज्ञानी थे। अपने ज्ञान-बल से उस दारुण व्यथा को भुला कर वे दिनरात इस बात की चिन्ता मे रहने लगे कि परम दयालु मङ्गलमय भगवान सदा ही मनुष्य के कष्टो का निवारण करते है, किसी को पीड़ा पहुँचाना उनका उद्देश्य नही। इसलिए इस विपद्-राशि के अन्तर्गत अवश्य ही विधाता का कोई न कोई शुभ उद्देश्य छिपा हुआ है। इस चिन्ता के साथ विविध शास्त्रों की आलोचना करते करते इन्हें

निश्चित रूप में यह विश्वास होगया कि इस विपद्-राशि के भीतर ईश्वर का मंगलमय हाथ गुप्त रूप से कार्य कर रहा है। उन्होंने किस युक्ति का अवलम्बन करके इस प्रकार का सिद्धान्त स्थिर किया और उस हृदय-विदारक विपद्-जाल के भीतर उन्होंने विधाता के किन किन गूढ़ अभिप्रायों को स्थित पाया, सो उन्होंने किसी पर प्रकट नहीं किया। तथापि उनके मन मे जो बोध होगया था, उन्हें जो शान्ति और सान्त्वना प्राप्त हुई थी उसके लक्षण उनके व्यवहारों में स्पष्टतः झलकते थे।

स्त्री-वियोग के बाद शास्त्री जी ने फिर दूसरा विवाह नहीं किया। स्नेहपूर्वक अपनी मातृहीना कन्या का लालन पालन करने और उसे विविध धर्म-शास्त्रों की शिक्षा देने लगे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

एक दिन सायंकाल के समय बापूदेव शास्त्री गंगा तीर पर सन्ध्या-कृत्य समाप्त करके उठे तो देखा कि घाट से थोड़ी दूर पर सैनिक वेशधारी एक मुसलमान प्रगाढ़ चिन्ता में निमग्न बैठा है।

शास्त्री महाशय एकाएक उसके पास जाकर हँसते हुए बोले—"हे मुसलमान-कुल-तिलक! 'हम कब बंगाल के सूबेदार होंगे'—क्या इसी की चिन्ता कर रहे हो? यदि सिंहासन प्राप्त करना चाहते हो तो विश्वासघातकता की सीढ़ी का परित्याग करो। इस सीढ़ी पर जिसने पांव रखा, उसका पतन अनिवार्य है। सन्मुख-संग्राम में सरफ़राज को परास्त करने की चेष्टा करो।"

सैनिक पुरुष ब्राह्मण की बात सुन कर, सोते से उठने वाले की तरह, चौंक पड़ा, और हत-बुद्धि की भांति उसके मुंह की ओर ताकता रह गया।

शास्त्री ने पुनः कहा—"यदि तुम सन्मार्ग का अवलम्बन करो तो निश्चय ही दो बरस के भीतर सूबेदार बन सकोगे; सरफराज के राजत्व का अन्त होने ही को है।"

सैनिक पुरुष बड़े अचम्भे में पड़ा। मन ही मन सोचने लगा—"यह क्या मामला! मैं मन ही मन जो कुछ सोच रहा था, इस व्यक्ति ने उसे कैसे जान लिया? यह कोई साधारण आदमी नहीं है!"—प्रकट रूप में कहने लगा—"महाशय, आप थोडी सी देर के लिए यहां बैठने की कृपा करें, मैं आप से एक बात पूछूंगा।"

शास्त्री—बस और क्या पूछोगे? यदि कुपन्थ का अवलम्बन नहीं करोगे तो तुम दो बरस के भीतर ही सूबेदार बन सकोगे। सरफराज का राज्य अब दो बरस से ज्यादा नहीं रहेगा। फिर चाहे तुम सूबेदार हो या और कोई हो।

सैनिक पुरुष—क्या आप मुझे पहिचानते हैं?

शास्त्री—मै तुम्हें बहुत अच्छी तरह पहचानता हूँ। तुम 'अली-वर्दी खां' हो। इस समय एकाग्रचित्त हो तुम इसी विषय की चिन्ता कर रहे थे कि हम कितने दिनों में और किन उपायों से बंगाल के सूबेदार बन सकेंगे।

सैनिक पुरुष—महाशय, किसी से कहियेगा नहीं। वास्तव में मैं इसी चिन्ता में था। परन्तु मैं आप से यह पूछता हूँ कि आपने मेरे मन की बात को किस प्रकार जान लिया?

शास्त्री—तुम्हारे मन की बात मैंने कैसे जान ली,—यह पूछ कर तुम क्या करोगे? मैं जो कहता हूं, उसे गाठी बांधो कि यदि कुपंथ का अवलम्बन नहीं करोगे तो निश्चय ही दो बरस के भीतर बंगाल के सूबेदार बन जाओगे।

सैनिक पुरुष—महाशय, कुपंथ कहते किसे हैं?

शास्त्री—जो उपाय तुम मन ही मन सोच रहे थे, वही कुपथ है। विष देकर सरफराज़ का प्राण नाश करने की चेष्टा कभी न करना। इस प्रकार का आचरण कायरों का काम है। सन्मुख-संग्राम में उसे परास्त करने की चेष्टा करो, अवश्य सफलता मिलेगी।

सैनिक पुरुष—आप ने कैसे जाना कि हमें जय-लाभ निश्चय होगा?

शास्त्री—सरफराज़ की आयु का अन्त आगया है।

सैनिक पुरुष—यह आप ने कैसे जाना?

शास्त्री—हमारे शास्त्र की बात कभी मिथ्या नहीं होती।

सैनिक पुरुष—आपके शास्त्र मे क्या लिखा है?

इस प्रश्न के उत्तर में बापूदेव शास्त्री बड़ी दृढ़ता के साथ कहने लगे—"अरे मूर्ख मुसलमान, मेरी बात सुन! स्त्री-जाति को पवित्रता कैसी महामूल्यमयी वस्तु है, इसे तेरे जैसे म्लेच्छ कदापि नहीं समझ सकते। तुम लोग बड़े घृणित और निन्दनीय हो। अपने निज के बाहु-बल अथवा पुण्य-प्रताप से तुम लोग हमारे देश को कभी विजय न कर सकते। इस देश के निवासी स्वयम् ही अपने पापाचार और स्वार्थपरता के कारण पराजित हुए। मैं जो कह रहा हूँ, उसे याद रखना। साध्वी स्त्रियाँ साक्षात् लक्ष्मी-स्वरूपा हैं, स्वयम् भगवती हैमवती के तेजोमय अंश से उनका हृदय और मन गठित होता है। शास्त्र में लिखा है, यदि कोई नर-पिशाच ऐसी लक्ष्मीस्वरूपा साध्वी रमणी का अपमान करे तो उसकी दीर्घायु तत्काल ही क्षय को प्राप्त होती है। शास्त्र के इस मत को स्पष्ट शब्दों में प्रतिपादित करने के लिए कविश्रेष्ठ वाल्मीकि ने अपने रामायण नामक महाग्रंथ में बहुत कुछ लिखा है। वे एक स्थान पर लिखते हैं—

दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां देवो देवेन चक्षुषा ।
कृतं कार्यमिति श्रीमान् व्यजहार पितामहः ॥
दृष्ट्वा सीतां परामृष्टां दण्डकारण्य वासिनः ।
रावणस्य विनाशञ्च प्राप्तं बुध्वा यदृच्छया ॥

रावण ने जैसे ही भगवती सीता को अपमान की दृष्टि से देखना चाहा, वैसे ही उसका शीघ्र विनाश निश्चित हुआ। अलीवर्दी खां! निश्चय जान कि सरफराज़ ने जिस समय जगत् सेठ की पुत्रवधू को अपमानित किया, उसी समय उसके राजत्व और उसकी दीर्घायु का अन्त हो चुका। वह परम साध्वी निरपराधिनी इस समय अपने पति के द्वारा परित्यक्त हो चुकी है। उसके आंसुओं की धारा से कालाग्नि प्रज्वलित होकर सरफ़राज़ को भस्मीभूत कर डालेगी। तुम लोगों मे से जो कोई भी विश्वासघातकता का मार्ग छोड कर सन्मुख-सग्राम में सरफ़-राज़ को पराजित करने की चेष्टा करेगा वह अवश्य ही बगाल के सिहासन को प्राप्त कर सकेगा।

अलीवर्दी खां ने कहा—"महाशय, यदि दो बरस के भीतर मैं सूबेदार बन सका तो निश्चय ही आप को हज़ार बीघे ज़मीन की जागीर प्रदान करूंगा। आप की बाते सुन कर मै अत्यन्त चकित हुआ हूं। मेरी समझ मे नही आता कि आपने मेरे हृदय की बात कैसे जान ली।"

बापूदेव ने कहा—"यदि तुम्हें आवश्यकता हो तो मैं स्वयम् तुम्हें हज़ार बीघे जागीर सहज ही दान दे सकता हूं। मानसिंह की दी हुई, ढाका प्रदेश में हमारी दस बारह हज़ार बीघे माफी की ज़मीन पड़ी हुई है। मुझे लोभी ब्राह्मण न समझना। मैं तुमसे ज़मीन-जागीर नहीं चाहता। मेरे पास बहुत सी पैतृक जागीर थी, अब भी काफ़ी है। परन्तु मैं तुमसे एक बात कहता हूं—तुम दो बरस के भीतर अवश्य ही

बंगाल के सूबेदार हो सकोगे। बंगाल की सूबेदारी हासिल करना कोई बहुत कठिन काम नहीं है, हां, हासिल कर लेने के बाद उसकी—सूबेदारी की—रक्षा करना बहुत कठिन है। सूबेदार बन कर यदि बे-खटके राज करना चाहो तो कभी किसी साध्वी के प्रति अत्याचार न करना। मन, वचन, कर्म से प्रजा के हित-साधन में तत्पर रहना। यदि ऐसा करोगे तो तुम्हारा राज-पद निष्कण्टक रहेगा।"

यह कह कर बापूदेव शास्त्री वहां से चलने को तैयार हुए। अली-वर्दी खां ने विनीतभाव से कहा—"महाशय, कृपापूर्वक थोड़ी देर और ठहरिये, एक दो बातें आप से और पूछूंगा।"

बापूदेव फिर बैठ गये। अलीवर्दी खां ने पूछा—"महाशय, आप क्या महाराज मानसिंह के गुरु-घराने में हैं?"

बापूदेव—"हां, महाराज मानसिंह के गुरु वासुदेव शास्त्री हमारे वृद्धप्रपितामह थे।"

अलीवर्दी—"मैं प्रतिज्ञा करता हूँ कि सूबेदारी का पद प्राप्त होने पर मैं आपकी सम्मति के अनुसार राज्य-शासन करूंगा। आपके वृद्ध-प्रपितामह के आशीर्वाद से ही महाराज मानसिंह सर्वत्र विजयी हुए थे। आप अर्थ-लोभी ब्राह्मण नहीं है, यह मुझे भली भांति ज्ञात है। जो अर्थ-लोभी होते हैं वे स्वार्थसिद्धि के लिए कु-परामर्श दिया करते हैं। परन्तु आप में स्वार्थ का भाव नहीं है, इसलिए निश्चय ही आप मुझे वही काम करने की सलाह देंगे, जिसे आप सब तरह से अच्छा समझेंगे।"

इस प्रकार की बात-चीत के बाद बापूदेव शास्त्री घर चले आये। अलीवर्दी खां भी अपने स्थान को चला गया।

उपर्युक्त घटना के एक साल बाद सरफ़राज़ को सिंहासनच्युत करके अलीवर्दी खां बंगाल का सूबेदार हुआ। बापूदेव शास्त्री के परामर्श-

नुसार वह स्त्री-जाति के प्रति विशेष श्रद्धा-भक्ति का व्यवहार रखने लगा। अन्यान्य मुसलमान सूबेदार सिंहासनासीन होते ही अपने से पूर्ववर्ती सूबेदार की बेगमों को अपने अन्तःपुर में ले लेते थे। परन्तु अलीवर्दी खां ने इसके विपरीत आचरण किया। सरफराज़ की माता मुर्शिदकुली खां की कन्या[*] के प्रति वह माता के समान श्रद्धा-भक्ति रखता था। अपनी कन्याओं की तरह उसने सरफराज़ की बेगमों का लालन-पालन किया, और मन, वचन, कर्म से सदा प्रजा के कल्याण की चेष्टा में तत्पर रहा।

प्रायः प्रति दिन ही वह गुप्त-मंत्रणा-गृह में बैठकर बापूदेव शास्त्री के साथ राजकार्य की आलोचना किया करता था। और बापूदेव जो उपदेश देते थे, प्राणपण से उसका प्रतिपालन करने की चेष्टा करता था। बापूदेव के, मंत्रणा-गृह में प्रवेश करते ही वह नित्यप्रति बड़े आदर से उठ कर खड़ा हो जाता था, और शिर की पगड़ी उतार कर उनके चरणों में रखता था।

इस प्रकार सदा ही बापूदेव के परामर्शानुसार काम करने के कारण अलीवर्दी खां ने निष्कंटक राज्यशासन कर सन् १७५६ ई० में इस संसार से कूच किया। मृत्यु के समय उसने अपने भावी उत्तराधिकारी सिराज को दो उपदेश दिये थे। पहिला यह कि, "वत्स, अंगरेज़ों को प्रबल न होने देना, इन्हें जिस प्रकार देश से बाहर कर सको, उसकी चेष्टा करना।" दूसरा यह कि, "मेरे पंडित बापूदेव शास्त्री जब तक जीवित रहें, तब तक उन्हीं के परामर्शानुसार राज्य-शासन करना। वे धन की इच्छा नहीं रखते, कितने ही बार मैंने उन्हें धन, भूमि तथा अन्यान्य उत्तमोत्तम बहुमूल्य वस्तुएं देने की चेष्टा की, परन्तु उन्होंने मुझसे कभी किसी प्रकार का दान नहीं लिया।"

---

*Vide Note (17) in the Appendix.

व्यापारी अर्थ-लोभ के कारण देश का सर्वनाश करेंगे, चारों ओर घार उत्पात मचेगा—सिराज के अत्याचार से सौ गुना अधिक अत्याचार हो जायगा।

राजवल्लभ—परन्तु सन्मुख-संग्राम में अग्रसर होकर पराजित होने पर हमारा प्राणनाश होगा, और उसके द्वारा देश का कुछ भी कल्याण नहीं होगा।

शास्त्री—सन्मुख-संग्राम में तुम्हारे नष्ट हो जाने पर भी देश का बहुत कुछ कल्याण होगा। पराजय में भी लाभ है। स्वाधीनता की रक्षा के लिए एक बार संग्रामानल प्रज्वलित हो उठने पर वह सौ वरस में भी नहीं बुझता। जब तक स्वाधीनता प्राप्त न होगी तब तक यह अग्नि प्रज्वलित रहेगी। क्रमानुसार पुरुष परम्परा से अधिकाधिक प्रज्वलित होती रहेगी। रण में नष्ट हुए पिता-पितामहों की शोणित-सिक्त पोशाकें गौरव के साथ पहिन-पहिन कर उनके पुत्र पौत्रगण दूने उत्साह से शत्रु का सामना करेंगे।

राजवल्लभ—तो आप हमारे इस परामर्श का अनुमोदन नहीं करते?

शास्त्री—मैं इस प्रकार के कुकार्य का अनुमोदन कर सकता हूँ या नहीं—क्या यह अभी पूछने को बाक़ी है? तुम्हारे इस षड्यन्त्र के प्रति सर्व अन्तःकरण से मुझे घृणा है। तुम सब अपने आपही अपने नाश की चेष्टा कर रहे हो। इस दुष्कर्म का फल तुम्हें अवश्य ही भोगना पड़ेगा।

राजवल्लभ—इसका फल क्या होगा?

शास्त्री—तुम में से प्रत्येक ही या तो अंगरेज़ों के हाथ या मुसलमानों के हाथों अपने प्राण खो बैठेगा।

राजवल्लभ—आपकी इस प्रकार की आशंका का कोई कारण तो दीख नहीं पडता।

शास्त्री—तुम्हारे समान अंधे भविष्य के गर्भ में छिपी हुई उस समस्त कार्य-कारण-शृंखला को कैसे देख सकते है?

राजवल्लभ—आप हमारे गुरु हैं, यदि हमारे अज्ञानान्धकार को दूर करके आप भावी अमङ्गल का कारण हमें समझा दे तब तो समझ सकेंगे?

शास्त्री—समझाने पर भी तुम नहीं समझ सकते। तुम्हारे साथी षडयंत्रकारियों में से प्रत्येक की दृष्टि अपने अपने स्वार्थ पर लगी हुई है; उधर अगरेज़ों की दृष्टि अपने व्यापार की ओर है। देश में सुशासन कैसे होगा, इसके प्रति किसी की भी दृष्टि नहीं; अतएव पारस्परिक स्वार्थ की रक्षा के लिए जिस समय विवाद उपस्थित होगा, उस समय एक दूसरे के नाश की चेष्टा मे तत्पर होगा—घोर अराजकता फैलेगी, और उसके द्वारा देश की दुर्गति होगी।

राजवल्लभ—नवाब होने पर मीरजाफ़र हम लोगों के परामर्शानुसार कार्य करेंगे, और हम लोग सुशासन की चेष्टा में तत्पर होंगे।

शास्त्री—अंगरेज़ों की व्यापारीय कोठियों के साहब लोग जिस समय व्यापार के लिए अत्याचार आरम्भ करेंगे, उस समय उन पर कौन शासन करेगा?

राजवल्लभ—मीरजाफ़र।

शास्त्री—मीरजाफ़र उनका ख़रीदा हुआ गुलाम बन बैठेगा! वह उन पर शासन करना आरम्भ करेगा तो वे तत्काल ही उसे सिंहासन-च्युत करने की चेष्टा करेंगे। उनके डर के मारे मीरजाफ़र चू तक नहीं करेगा।

राजवल्लभ—तो आपकी राय में क्या करना चाहिए ?

शास्त्री—दूसरे की सहायता के प्रार्थी न होकर अपने निज के बाहुबल से सिराज को सिंहासनच्युत करने की चेष्टा करो। यदि तुम उनकी सहायता से सिराज को पद-च्युत करोगे, तो अन्त में वे ही देश के वास्तविक अधिकारी बन जायेंगे, और उनके अत्याचार से देश बर्बाद होगा।

राजवल्लभ—हम लोग थोड़ी सी सेना लेकर युद्ध में प्रवृत्त होंगे पर अवश्य ही पराजित होंगे—अवश्य ही प्राण खोवेंगे।

शास्त्री—मैं सिर्फ़ इतना ही कहता हूं कि पराजित होने में भी भला है। तुम प्राण दोगे, इससे भी अच्छा फल पैदा होगा। यह यज्ञ-अनल शताब्दी भर प्रज्वलित रहेगा। तुम्हारे आरम्भ किये हुए यज्ञ के फलस्वरूप तुम्हारे पुत्र-पौत्रगण स्वाधीनता लाभ करेंगे। संसार में जन्म लेकर मरना ही पड़ता है। मृत्यु से इतना क्यों डरते हो ? एक न एक दिन मरना ही पड़ेगा। तब दो बरस पहिले ही सही।

बापूदेव शास्त्री की ये बातें सुन कर राजवल्लभ चुप रह गये। कुछ देर बाद बापूदेव ने फिर कहा—"राजवल्लभ, मैं तुम से बारम्बार कहता हूं, इस कुकार्य से अपने नाम को कलंकित न करना। सैन्य-संग्रह करके तुम लोग खुल्लमखुल्ला सिराज के साथ सम्मुख-संग्राम करने की तैयारी करो। जिस कुकार्य पर तुमने कमर कसी है, उसके कारण कुल परिवार के सहित तुम्हें मृत्यु के मुँह में पतित होना पड़ेगा, देश का तो अधःपतन होगा ही, तुम्हारी भी कामना सिद्ध न होगी,—तुम्हारे भावी वंशजों को दिन में एक बार पेट भर भोजन भी नहीं मिलेगा।"

राजवल्लभ ने कोई उत्तर न देकर शास्त्री महाशय के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को प्रस्थान किया।

इस घटना के कुछ दिनों बाद राजा राजवल्लभ और मीरजाफ़र आदि के षड्यन्त्र से सिराजुद्दौला और अंगरेज़ों के बीच पलासी-क्षेत्र मे युद्ध हुआ। सिराजुद्दौला के प्रधान सेनापति मीरमदन ने इस युद्ध में प्राण-विसर्जन किया। उसके वीर सेनापति मोहनलाल की वीरता से, भारत से अंगरेज़ो के नाम के विलुप्त होने का उपक्रम हुआ था; परन्तु मीरजाफ़र की विश्वासघातकता के कारण मोहनलाल की अमरकीर्ति के द्वारा बंगाल का इतिहास समुज्ज्वलित नही हुआ। अनिच्छापूर्वक नवाब के सैनिकगण युद्ध से हट रहे। और ईस्ट इण्डिया कम्पनी को बिना ही युद्ध के बंगाल पर आधिपत्य जमाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

पलासी-युद्ध के बाद मीरजाफर बंगाल का सूबेदार हुआ। अंगरेज़ व्यापारियों के निकट उसने प्रतिज्ञा की कि अंगरेजों की व्यापारीय कोठियो के साहब अथवा देशी गुमाश्ता लोग व्यापार-सम्बन्धी कार्य मे यदि प्रजागण के प्रति किसी प्रकार का अत्याचार भी करेंगे तो वह उस विषय मे हस्तक्षेप न करेगा; वरन् अंगरेज़ व्यापारियो की वाणिज्य कोठियों के कार्य-कर्ताओं के साथ यदि अन्य कोई कुछ झगडा ठानेगा तो वह अंगरेजों की सहायता करेगा।

मीरजाफ़र के इस प्रकार अंगरेज़ो की अधीनता स्वीकार करने के बाद अंगरेज़ो ने तन्तुकार आदि शिल्पियों के प्रति जैसा अत्याचार आरम्भ किया, पिछले परिच्छेदो में उसका सविस्तार उल्लेख हो चुका है। वापूदेव शास्त्री की ज़मींदारी में कम से कम तीस घर तन्तुकारों के थे। उनके प्रति अत्याचार आरम्भ होते ही उनमें से बहुतेरे घर छोड़ कर भाग गये। हलधर तन्तुकार की स्त्री और कन्या को छिदाम विश्वास ने अपमानित किया था, इस पर उसने छिदाम की हत्या कर डाली और बाद में खुद भी आत्महत्या कर ली। उसकी स्त्री और कन्या ने भी उसी के पथ का अनुसरण किया। सिर्फ़ एक पुत्र रह गया, उसे वापूदेव शास्त्री ने पाला

पोसा। बाद में शास्त्री जी अपनी कन्या प्रमदा देवी को साथ ले काशी घाट चले आये, और तब से यहीं रहने लगे।

बापूदेव शास्त्री और नन्दकुमार

बापूदेव शास्त्री से महाराज नन्दकुमार का परिचय कैसे हुआ था, और उनमें परस्पर किस प्रकार का सम्बन्ध था—इसका उल्लेख अभी तक नहीं हुआ है। नीचे हम इसी का ज़िक्र करते हैं—

मुर्शिदाबाद के अन्तर्गत भद्रपुर नामक ग्राम में नन्दकुमार का जन्म हुआ। यह ग्राम और इसके निकटवर्ती अन्यान्य ग्राम वर्त्तमान वीरभूम ज़िले के अन्तर्गत हैं। नन्दकुमार के पिता का नाम पद्मनाभ राय था। नवाब अलीवर्दी खां के शासन-काल में पद्मनाभ राय तीन चार पर्गनों की मालगुज़ारी वसूल करने का काम करते थे। बापूदेव शास्त्री ही की सिफ़ारिश से वे नवाब सरकार की तरफ़ से इस कार्य पर नियुक्त हुए थे। बारह बरस की अवस्था में नन्दकुमार बापूदेव शास्त्री के घर पर रह कर शास्त्र का अध्ययन करने लगे। इनकी बुद्धि बड़ी प्रखर थी और ये बड़े सहृदय थे, इस कारण बापूदेव शास्त्री इन पर विशेष स्नेह रखते थे। नन्दकुमार ने आठ बरस तक बापूदेव शास्त्री के निकट शास्त्र का अध्ययन किया। साथ ही फ़ारसी भाषा भी सीखते रहे। जिस समय इनकी अवस्था प्राय: बाईस बरस की थी, उस समय बापूदेव शास्त्री के अनुरोध से अलीवर्दी खां की सरकार में यह महिपादल पर्गना की मालगुज़ारी

वसूल करने के काम पर नियुक्त हुए। इसके बाद अलीवर्दी खां के ज़माने मे ही हुगली के फौजदार के पद पर तैनात हुए। पलासी-युद्ध के पहिले अंगरेज़ लोग नन्दकुमार की कृपा के अभिलाषी थे।

पलासी-युद्ध के बाद अगरेजो की वाणिज्य-कोठियो के साहब तथा बङ्गाली गुमाश्तागण जिस समय जुलाहो, सुनारो इत्यादि देशी व्यवसाइयों के प्रति अत्याचार कर देशी वाणिज्य के मूल मे कुठाराघात करने को तैयार हुए, उस समय देश भर मे एकमात्र नन्दकुमार ही ने उस अत्याचार को रोकने पर कमर कसी। देश के अन्यान्य लोग अगरेज़ों की वाणिज्य-कोठियो में गुमाश्ता के पद पर नियुक्त होने के लिए ही प्राणपण से चेष्टा करते थे, और जो समस्त बंगाली, अगरेज व्यापारियो के यहां गुमाश्ता अथवा खजाञ्ची के पद पर नियुक्त होते थे, वे सभी छिदाम विश्वास, नवकृष्ण मुन्शी, गगागोविन्द सिह, कान्त पोद्दार इत्यादि के मार्ग का अनुसरण करते हुए देशी लोगो का सर्वनाश कर अवैध उपायो से अर्थ-सञ्चय करते थे।

अगरेजों के अभ्युदय के साथ ही साथ नवकृष्ण मुशी भी धीरे-धीरे देश के एक प्रतिष्ठित आदमी बन गये। इनके साथ नन्दकुमार की घोर शत्रुता थी। नन्दकुमार अगरेज़ व्यापारियों के अत्याचार का अवरोध करते थे; इस कारण क्लाइव ने पहिले-पहिल नन्दकुमार को अपने हाथों मे करने के लिए विविध चेष्टाएँ कीं। मीरजाफ़र ने अँगरेज़ों का ऋण चुकाने के उद्देश्य से वर्द्धमान, हुगली और नदिया—इन तीन ज़िलों की मालगुज़ारी वसूल कर लेने की आज्ञा अंगरेजों को दे दी थी। सुचतुर क्लाइव ने इन तीनो जिलो की मालगुजारी वसूल करने का भार हेस्टिंग्स साहब के हाथों से लेकर नन्दकुमार के हाथों में सौंपा। इसी समय से अर्थात् सन् १७४८ ई० से नन्दकुमार के साथ हेस्टिंग्स के मनोमालिन्य का सूत्रपात हुआ था।*

*Vide Note (18) in the Appendix

परन्तु क्लाइव की आशा विफल हुई। नन्दकुमार के प्रति इस प्रकार का अनुग्रह प्रकट करके भी वह उन्हें अपनी मुट्ठी में न कर सका। अतएव इसके बाद स्वयं क्लाइव भी नन्दकुमार का पूरा शत्रु होगया। उसने समझा कि नन्दकुमार मुह से तो अंगरेज़ों के प्रति स्नेह प्रकट करता है, परन्तु भीतर-भीतर वह सदा ही अंगरेज़ों को बङ्गाल से बाहर कर देने की चेष्टा करता रहता है। प्रायः सभी अंगरेज़ नन्दकुमार से द्वेष रखने लगे। क्रम-क्रम से नन्दकुमार के हृदय में भी अंगरेज़ों के विरुद्ध विद्वेषाग्नि प्रज्वलित होने लगी।

१७५८ ई० में नन्दकुमार अपने गुरु बापूदेव शास्त्री से मिलने मुर्शिदाबाद आये। इसके पहिले प्रायः पाच सात बरस से नन्दकुमार बापूदेव शास्त्री से नहीं मिले थे। नन्दकुमार उस वक्त हुगली ही में रहते थे। बापूदेव शास्त्री की सहधर्मिणी, बाल्यावस्था में अपनी सन्तान की तरह नन्दकुमार को प्यार करती थीं। बापूदेव की कृपा से ही नन्दकुमार हुगली के फ़ौजदार के पद पर नियुक्त हुए थे, और पांच बरस फ़ौजदारी के पद पर काम करके उन्होंने प्रायः दो तीन लाख रुपया पैदा किया था। हुगली से आते समय महाराज नन्दकुमार अपनी सहोदरा भगिनी के सदृश प्रमदा देवी और माता के तुल्य गुरुपत्नी को भेंट देने के लिए कितने ही बहुमूल्य आभूषण अपने साथ लाये थे। परन्तु शास्त्री महोदय के यहां पहुँचने पर महाराज नन्दकुमार को मालूम हुआ कि उनकी उस स्नेहमयी गुरुपत्नी का प्राणान्त होगया और बहिन प्रमदा देवी भी विधवा होगई।

नन्दकुमार को यह जान कर अत्यन्त दुःख हुआ। नन्दकुमार प्रचलित प्रथा के अनुसार घूस इत्यादि लेते हुए भी कठोर स्वभाव के आदमी न थे। उनका हृदय दया, ममता, भक्ति एवं कृतज्ञता से परिपूर्ण था। जिनको भेंट करने के लिए वे विविध प्रकार के बहुमूल्य पदार्थ ले

यत्नपूर्वक अपने साथ लाये थे, उनमें से एक का प्राणान्त हो चुका और एक आजन्म आभूषणों को धारण करने की अधिकारिणी न रही। यह देख कर उन्होने गुरुदेव के निकट आभूषणों को लाने की बात का ज़िक्र भी नही किया। वे बडी आशा कर के आये थे कि कृतज्ञता के चिन्ह-स्वरूप अपनी पूज्य गुरुपत्नी के हाथो मे ये समस्त आभूषण समर्पित करेंगे। परन्तु इस आशा से उन्हे एकदम वञ्चित होना पडा। सहोदरा के समान प्यारी बहिन प्रमदा देवी विधवा हो गईं,—यह दुस्सम्वाद सुन कर उनका हृदय विदीर्ण होने लगा। एक वार उनके मन मे आया कि इन समस्त आभूषणों को अग्नि मे जला कर खाक कर डाले, क्योंकि इन्हें देख-देख कर हृदय की शोकाग्नि अधिकाधिक प्रदीप्त होगी। परन्तु पर सोचा कि इन्हें जला डालने से क्या होगा। अन्त मे निश्चय किया कि इन समस्त आभूषणों को कहीं दूसरी जगह रख दें। यदि प्रमदा देवी को कभी रुपये की ज़रूरत पडी तो इन्हें वेच कर इनकी क़ीमत का रुपया प्रमदा देवी को दे देंगे।

यह सोच कर वे गुरुदेव से मिलने के वाद तुरन्त ही मुर्शिदावाद मे रहने वाले अपने एक अनुगत व्यक्ति वुलाकीदास की दूकान पर गये, और उससे उन आभूषणों को वतौर अमानत के रख लेने के लिए कहा।

वुलाकीदास ने पूछा—"क्या इन्हें वेचना पडेगा?"

उन्होंने कहा—"नहीं, इस समय वेचने की ज़रूरत नहीं। रुपया हाथ मे आने पर खर्च हो जावेगा। इनके मूल्य का रुपया प्रमदा देवी को देना होगा।"

वुलाकी[*] से इस प्रकार की वातचीत करके शाम के वक्त नन्द-कुमार गुरुदेव के घर लौट आये, और अंगरेज़ व्यापारियों के अत्याचार के सम्वन्ध में उनसे विविध प्रकार का वार्त्तालाप करने लगे।

---

[*] Vide Note (19) in the Appendix.

बापूदेव ने कहा—"मानव-समाज से दुर्बल के प्रति बलवान के अत्याचार को एकदम दूर कर देने का कोई उपाय नहीं। मनुष्य समाज जब तक पाप और स्वार्थपरता से सर्वथा शून्य नहीं है, तब तक प्रचलित अत्याचार का लोप इस संसार से कभी नहीं होने का। संसार में पाप और स्वार्थपरता की जितनी वृद्धि होती है, दुर्बलों के प्रति बलवानों का अत्याचार भी उतना ही बढ़ता जाता है। परन्तु अंगरेज़ व्यापारियों का अत्याचार एक प्रकार की डकैती है। दुराचारी सिराज के समय में भी इस प्रकार का अत्याचार नहीं था❀। मीरजाफर की दुर्बलता के कारण ही ऐसा हो रहा है। मैंने पहिले ही कह दिया था कि मीरजाफ़र बड़ा विश्वासघाती है। उसमें राज-कार्य चलाने की शक्ति नहीं है। अफ़ीम खाकर सदा पीनक में पड़ा रहता है। उसके हाथों में राज्य-भार सौंपने की अपेक्षा तो किसी पशु के हाथों मे सौंप देना अच्छा था।"

नन्दकुमार—रेशम की कोठियों के साहब और गुमाश्तों ने देश को बरबाद कर रखा है। वे लोगों का घरबार लूट रहे हैं। जुलाहे लोग दूसरी जगह जो कपड़ा बेच कर पचास रुपया पा सकते हैं, ये लोग उस कपड़े के लिए उन्हें दस रुपये से ज़्यादा देने को तैयार नहीं होते। यदि मुझे दीवान का पद प्राप्त हो जाय तो अवश्य ही इस अत्याचार का निवारण कर सकूंगा।

शास्त्री—यदि मीरजाफर को पदच्युत करके बंगाल की सूबेदारी प्राप्त कर अंगरेज़ों को शासनाधीन कर सको, तो तुम किसी अंश में अंगरेज़ व्यापारियों के इस अत्याचार को रोकने में समर्थ हो सकोगे। परन्तु मीरजाफ़र के दीवान बन कर किसी प्रकार के अत्याचार का अवरोध नहीं कर सकते।

❀Vide note (20) in the Appendix.

नन्दकुमार—मीरजाफ़र को पद-च्युत करना क्या कुछ सहज काम है?

शास्त्री—अफीम-सेवन में आसक्त, हिताहित के ज्ञान से शून्य, जाफर को पद-च्युत करना अत्यन्त सहज काम है।

नन्दकुमार—अंगरेज़ लोग उनकी सहायता करेंगे।

शास्त्री—इन दो चार विदेशी व्यापारियों की सहायता क्या हो सकती है?

नन्दकुमार—मेरी समझ में दिल्ली-सम्राट् और फ़रासीसों की सहायता से इस कार्य में सफलता हो सकती है।

शास्त्री—दूसरे की सहायता से मनुष्य कभी किसी देश पर अधिकार नहीं जमा सकता। अपने निज के बाहुबल पर निर्भर होना पड़ता है।

नन्दकुमार—मेरा निज का बाहुबल ऐसा कब है कि मैं देश के सूबेदार के साथ युद्ध ठानूं?

शास्त्री—केवल मानसिक बल की आवश्यकता है, उसी से काम पूरा हो सकता है। यदि हृदय में बल हो तो फ़ौरन ही सफलता प्राप्त कर सकते हो।

नन्दकुमार—यदि मानसिक बल हो तो क्या कोई बिना सेना इकट्ठी किये अकेले युद्ध कर सकता है?

शास्त्री—सेना अपने-आप ही इकट्ठी हो जाती है।

नन्दकुमार—भला अपने-आप कैसे इकट्ठी हो जायगी?

शास्त्री—यदि अत्याचार को रोकने के लिए प्राण देने पर कमर कसोगे तो सहज ही सेना इकट्ठी कर सकोगे। तुम्हारे हृदय में स्थित निःस्वार्थ-प्रेम इस मृतप्राय जाति के अन्तर में बल-प्रदान करेगा।

नन्दकुमार—एक भी बंगाली मेरा अनुसरण नहीं करेगा। देश के लोग सिर्फ़ इसी चेष्टा में हैं कि किस प्रकार अंगरेज़ों की वाणिज्य कोठियों में गुमाश्ता के पद पर नियुक्त होकर दस रुपये की आमदनी का वसीला करें।

शास्त्री—तुम एक बार मेरी शिक्षा के अनुसार काम करो, देखो कृतकार्य होते हो या नहीं।

नन्दकुमार—युद्ध में प्रवृत्त होने पर अवश्य ही पराजित होऊँगा।

शास्त्री—जय-पराजय की चिन्ता करके संग्राम-क्षेत्र में कोई अग्रसर नहीं हो सकता। जय पराजय ईश्वर के हाथ है। पलासी-क्षेत्र में अंगरेज़ लोग एकदम पराजित हो चुके थे, परन्तु दैवेच्छा से अन्त में फिर उन्हीं की जीत हुई। मान लो, तुम अवश्य ही पराजित हो जाओगे, परन्तु इसमें भी हानि क्या?

नन्दकुमार—युद्ध में प्रवृत्त होकर पराजित होने से लाभ ही क्या?

शास्त्री—पराजित होने पर भी देश का विशेष उपकार होगा। तुम स्वयं सद्गति प्राप्त करोगे। वंग-इतिहास के अन्तर्गत स्वर्णाक्षरों में तुम्हारा नाम अंकित रहेगा। समस्त बंगवासियों के मृत शरीरों में जीवन का सञ्चार होगा। जिस संग्रामाग्नि को एक बार प्रज्वलित करोगे, वह कभी न बुझेगी। भावी वंशज तुम्हारी शोणित-सिक्त पोशाक को बड़े गौरव के साथ धारण करेंगे।

नन्दकुमार—पराजित होकर प्राण खो देने से मेरा निज का कौन उपकार होगा?

शास्त्री—अब जाकर असली भेद खुला! जिन अंगरेज़ों के अत्याचार के लिए चिल्ला रहे हो, वे जैसे स्वार्थी हैं, तुम भी वैसे ही स्वार्थी हो

मीरजाफर की तरह तुम भी एक बड़े नीच आदमी हो। स्वार्थपरता का परित्याग न करने पर, सम्पूर्ण रूप से आत्म-त्याग न करने पर, देश के प्रचलित अत्याचार को रोकने में कदापि कोई समर्थ नहीं होता। तुम अपने स्वार्थ की रक्षा करके काम करना चाहते हो। इस प्रकार स्वार्थ पर लक्ष्य रख कर जो लोग सत्कार्य करना चाहते है, उनसे न तो सत्कार्य की सिद्धि होती है न स्वार्थ की रक्षा। यदि निःस्वार्थ भाव से काम कर सको तब तो इस अत्याचार को रोकने पर कमर कसो, अन्यथा उस निताई बाग्दी के पुत्र छिदाम की तरह काम करना आरम्भ करो। सुना है कि छिदाम रेशम की कोठी में प्यादे के काम पर नियुक्त हुआ है। लोगों पर बड़ा अत्याचार करता है।

नन्दकुमार—छिदाम कौन ?

शास्त्री—जगाई और छिदाम दोनों पितृ-मातृ-हीन बाग्दी है। हमारे आसामी कृपाराम की मां ने उनका प्रतिपालन किया है। लोग उन्हें कृपाराम की मां का दौहित्र जानते हैं, और इस लिए सभी उन्हें शूद्र समझते है। परन्तु मुझे उनका सब हाल मालूम है,—उनका घर त्रिवेणी मे था। रायमणि बाग्दिनी के गर्भ से उनका जन्म हुआ। रायमणि की मृत्यु के बाद शिवदास वन्द्योपाध्याय उन्हें यहां ले आये।

नन्दकुमार—वही छिदाम रेशम की कोठी मे प्यादा है ?

शास्त्री—हां यही सुना है, साथ ही यह भी सुना है कि वह जुलाहों पर शायद बड़ा अत्याचार करता है।

नन्दकुमार—रेशम की कोठी में जितने बंगाली हैं, सभी अत्याचार करते हैं। केवल उसी को दोष क्यों दिया जाय ?

शास्त्री—तुम भी अंगरेज़ों के साथ मिल कर अत्याचार करना आरम्भ करो। सहज ही धन जमा कर सकोगे। सिर्फ़ 'अत्याचार', 'अत्याचार' कह कर चिल्लाने से क्या होगा ?

नन्दकुमार—आप मुझे इतना नीचाशय समझते हैं ?

शास्त्री—सोलहों आना नीचाशय नहीं हो, इसीलिए तो दुविधा में फँसे हो। दोनों ओर की खींच-तान में पड़े हो। एक मार्ग का अवलम्बन करना अच्छा होता है। तुम्हारी तरह जो लोग दो मार्गों का अवलम्बन करते हैं, उन्हें घोर विपत्ति में फँसना पड़ता है।

नन्दकुमार—मैंने क्या दो मार्गों का अवलम्बन किया है ?

शास्त्री—हां, दो मार्गों का अवलम्बन तो किया ही है। अपना स्वार्थ भी रखोगे और देश का अत्याचार भी दूर करोगे। इन दोनों कामों को एक साथ कोई नहीं सिद्ध कर सकता। यदि देश का अत्याचार दबाना चाहते हो तो अपने को भूल कर आत्मत्याग के पथ का अवलम्बन करो।

गुरुदेव के द्वारा इस प्रकार तिरस्कृत होकर फौजदार नन्दकुमार नीचा मुंह करके बैठ रहे। कुछ देर बाद फिर बोले—महाशय, सूबेदार की अधीनता में दीवानी का पद प्राप्त हो जाने पर मैं अवश्य ही अंगरेज़ व्यापारियों के अत्याचार रोकने में समर्थ होऊंगा।

शास्त्री—बेटा, मैं बूढ़ा हुआ। इन सब बातों से तुम मुझे भुलावा नहीं दे सकते। अत्याचारी राजा के सेवक को भी अत्याचारी होना पड़ता है। दीवानी-पद प्राप्त होने के बाद तुम सैकड़ों आदमियों पर अत्याचार करना आरम्भ करोगे, अभी तो थोड़े ही आदमियों पर कर रहे हो।

बातचीत में रात बहुत होगई। भोजन के बाद नन्दकुमार ने गुरु के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को प्रस्थान किया। कुछ दिन मुर्शिदाबाद में रह कर वह फिर हुगली चले गये।

इस घटना के दो-तीन बरस बाद कलकत्ता-कौंसिल के अंगरेज़ों मीरक़ासिम से बहुत कुछ घूस ले लिवा कर उसे सूबेदार के पद पर

प्रतिष्ठित किया। वृद्ध मीरजाफ़र पदच्युत होने पर मुर्शिदावाद छोड़ कलकत्ते में रहने लगे।

वापूदेव शास्त्री और नवाव क़ासिमअली

शास्त्री महाशय प्रायः प्रति दिन ही कन्या के निकट विविध विषयों पर धर्म-चर्चा किया करते थे। १७६२ ई० के प्रारम्भ में, जनवरी महीने में, एक दिन सन्ध्या के वाद अपने घर बैठे हुए प्रमदा देवी के निकट भगवद्गीता के कर्मयोग की व्याख्या कर रहे थे। इतने में एक नौकर ने आकर कहा—"एक मुसलमान व्यक्ति आया है और द्वार पर बैठा हुआ है। आप से मिलना चाहता है।"

शास्त्री महाशय ने वाहर आकर देखा कि कपड़े से मुंह छिपाये हुए एक मुसलमान उनके द्वार पर बैठा है। शास्त्री जी को देखते ही वह बड़े आदरपूर्वक उठ कर खड़ा हो गया, और फिर उसने यथोचित अभिवादन किया।

शास्त्री जी ने उसका परिचय पूछा। उसने घर में से नौकरों आदि को वाहर करके घर के किवाड़ वन्द कर लेने के लिए कहा। शास्त्री जी ने जैसे ही किवाड़ वन्द किये, वैसे ही उसने अपने मुंह पर से कपड़े का पर्दा उठा लिया। शास्त्री जी ने देखा कि स्वयं नवाव मीरक़ासिम उनके घर पर उपस्थित हैं।

उन्होंने बड़े आश्चर्य मे आकर कहा—"मैं तो समझता था कि आप मुंगेर मे है, मुर्शिदाबाद कब आये ?" मीरकासिम ने कहा—"अभी कुछ ही रोज़ हुए, मुर्शिदाबाद आया हूँ। आप से मुझे कुछ कहना है।"

शास्त्री—जो कहना हो, कहिए।

मीरक़ासिम ने कहा—महाशय, वृद्ध नवाब अलीवर्दी खां आप के परामर्शानुसार सारा राज-काज करते थे, आप के उपदेशानुसार चलने के कारण ही वह निर्विघ्न राज्य-शासन करने में समर्थ हुए थे। उनका राज्य निष्कण्टक था, बड़े सुख से उन्होंने समय विताया। परन्तु मैं बंगाल की सूबेदारी प्राप्त करके कभी एक दिन भी सुख से विताने में समर्थ न हुआ। इस सूबेदारी के पद को प्राप्त करने की अपेक्षा इसकी रक्षा करने का काम अत्यन्त कठिन है। एक ओर तो अंगरेज़ो को प्रसन्न रखना पड़ेगा, और दूसरी ओर प्रजा का सर्वनाश न हो, यदि इसके प्रति यथोचित मनोयोग न दिया जायगा तो देश का राज-कर कभी न वसूल होगा। विशेषतः मैंने अंगरेजो को जो रुपया देने का वचन दिया था, उसी का परिशोध करने में राज्य का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया है। परन्तु इस समय फिर अंगरेज़ों के साथ विवाद छिड़ने का उपक्रम हुआ है। इसी लिए आप के साथ इस विषय पर कर्त्तव्या-कर्त्तव्य सम्बन्धी परामर्श करने के लिए आया हूँ। गत तीन रातो से मेरा पलक नहीं लगा है। सदा इसी चिन्ता में रहता हूँ कि किस उपाय का अवलम्बन करने पर उपस्थित-विपत्ति से रक्षा हो सकती है। कल रात सोचते-सोचते मन में यह आया कि वृद्ध नवाब अलीवर्दी खां सदा ही आपके परामर्शानुसार काम करते थे, अतएव मैं भी एक वार आपसे परामर्श करूँ। इसी लिए आज सध्या के बाद गुप्त रूप से आपके घर आया हूँ।"

शास्त्री—आप और अगरेज़ों के दर्मियान किस विषय पर विवाद छिड़ने का उपक्रम हुआ है ?

मीरकासिम—महाशय, क्या कहूँ, ऐसी स्वार्थ-पर, दुराशय अर्थ-लोलुप जाति संसार मे और कोई नही दिखाई देती। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी-गण अपने-अपने व्यापार की विक्रेय वस्तुओं के ऊपर महसूल नहीं देना चाहते थे। वाद मे कलकत्ते के गवर्नर वेन्सिटार्ट के साथ एक प्रकार का समझौता हो गया था। परन्तु कलकत्ता कौंसिल के अन्यान्य मेम्बरों ने उस समझौते को मजूर नही किया था। इन लोगों से किसी प्रकार महसूल नही वसूल हो सकता। यदि इस समय किसी तरह महसूल-अदायगी के नियम को स्वीकार भी कर ल तो महसूल अदा करते वक्त अवश्य ही कुछ न कुछ फसाद उठावेंगे। अव इस सम्वन्ध मे क्या करना उचित है, यही आपसे पूछने आया हूँ।

शास्त्री महाशय वहुत कुछ सोच-विचार कर कहने लगे—"देखा वेटा, तुम इस समय देश के राजा हो। तुम जो कुछ कह रहे हो, उसमें कुछ भी झूठ नही है। अगरेज़ लोग वड़े स्वार्थपरायण है। महसूल अदायगी के नियम से इस समय सहमत होने पर भी भविष्य में वे उस नियम का पालन नहीं करेंगे। दिनोंदिन उनका आधिपत्य वढता जाता है। परन्तु तुम अपना राजधर्म प्रतिपालन करो। महसूल अदायगी की प्रथा को एकदम उठा दो। सभी श्रेणियों और सभी जातियों की प्रजा का समान भाव से प्रतिपालन करने की चेष्टा करो।

मीरकासिम—अंगरेज लोग इसमें भी आपत्ति करेंगे। उनकी इच्छा है कि उन्हे महसूल-अदायगी से मुक्त रखा जाय, और अन्यान्य प्रजा से महसूल वसूल किया जाय।

शास्त्री—तुम यदि उनके इस प्रकार के प्रस्ताव से सहमत होगे तो तुम्हें अवश्य ही राज-धर्म से भ्रष्ट होना पड़ेगा। यदि ऐसा हो तो तुम निश्चय ही कायर हो। मैं संक्षेप में तुमसे एक वात कहता हूँ। शस्त्रहीन अवस्था में कभी शत्रु पर भी आक्रमण न करना, इससे तुम्हारा

राज्य चिरस्थायी होगा। कुकार्य एवं पापानुष्ठान के द्वारा मनुष्य अज्ञात भाव में सिर्फ़ अपनी ही शक्ति का ह्रास करता रहता है।

मीरकासिम—तो आप महसूल-अदायगी की प्रथा को एकदम उठा देने के लिए कहते हैं ?

शास्त्री—हां।

मीरकासिम—परन्तु ऐसा करने पर राज-कर एकदम कम हो जायगा।

शास्त्री—प्रजा के कल्याण से ही राजा का कल्याण होता है। प्रजा के घर में धन रहे तो राजा के लिए धन का अभाव नहीं होता। जिसमें प्रजा का कल्याण हो वही करो। इस युक्ति से दूसरे रूप में राज कर बढ जायगा।

मीरकासिम—परन्तु अंगरेज़ों की ऐसी अधीनता मुझे एकदम असहनीय हो रही है। सिर्फ़ इसीलिए मैंने मुंगेर जाकर अंगरेज़ी-प्रथा के अनुसार सैनिकों को युद्ध-प्रणाली की शिक्षा देनी आरम्भ की है। मैं देश का राजा हूँ। ये लोग दूर देश से आकर मेरे देश में व्यापार करते हैं। इन थोडे से अर्थलोलुप व्यापारियों की अधीनता स्वीकार करके राज्य करने की अपेक्षा उस राज्य को त्याग देना ही अच्छा। ये लोग बात-बात में कहते हैं कि "हमने तुम्हें सूबेदारी दी है, हमारी सब बातों को मान कर चलना पड़ेगा।"

शास्त्री—जब अंगरेज़ों की सहायता से सूबेदारी प्राप्त की है तो वे अवश्य ही ऐसा कहेंगे। सूबेदारी प्राप्त करने के लिए तुमने अंगरेज़ों की सहायता क्यों ली ? कुकर्म के फल से कोई नहीं छूट सकता। तुमने अवैध उपाय का अवलम्बन करके सूबेदारी का पद प्राप्त किया है। मुझे प्रतीत होता है, तुम्हारा राज्य कदापि चिरस्थायी नहीं होगा। परन्तु तुम

में मुझे यही एक उत्तम गुण दिखाई देता है कि तुम सदुपदेश के सामने सदा ही सिर झुकाते हो।

यह बात सुन कर मीरक़ासिम का हृदय कांप उठा। वह कहने लगा—"महाशय, पूर्व में जो कुछ हो चुका, उसके लिए अब क्या हो सकता है। परन्तु इस समय किस उपाय का अवलम्बन करने से मेरा राज्य चिरस्थायी हो सकता है, सो वताइये।"

शास्त्री जी ने कहा—सभी पापो का प्रायश्चित्त हो सकता है। मनुष्य पाप के पथ का परित्याग कर सन्मार्ग का अवलम्बन करके पूर्वकृत पाप से मुक्ति पा सकता है। तुम इस समय सदा के लिए सत्य और न्याय के पथ का अवलम्बन करो। अवश्य ही तुम्हारा राज्य चिरस्थायी होगा।

मीरक़ासिम—पण्डित जी! मैं आपके उपदेश को पालन करने की सदैव चेष्टा करूंगा। आप कृपा करके मेरे साथ मुंगेर चलें। आप पास रहेंगे तो आप से सदा ही सत्परामर्श प्राप्त होता रहेगा।

शास्त्री—मुझे इस समय साथ मुंगेर ले चलने से तुम्हारा कोई लाभ नहीं। मैं निश्चय रूप में तुमसे कहता हूं,—सदा ही प्रजा के कल्याण की कामना करो, तुम्हारा राज्य चिरस्थायी होगा।

मीरक़ासिम ने यह सुन कर अपने सिर की पगड़ी वापूदेव के चरणो में रखी, और उनसे विदा मांग कर निज स्थान को चले गये।

यथासाध्य वे सदा ही वापूदेव शास्त्री के उपदेश का प्रतिपालन करने की चेष्टा करते रहे। सर्व साधारण प्रजा के कल्याण के लिए उन्होंने विशेष उद्योग किया। परन्तु इस संसार में विविध प्रकार की विशेष-विशेष अवस्थाओं में पड कर मनुष्य सदा ही भ्रमजाल में पतित होता रहता है। अंगरेज़ों के साथ युद्ध आरम्भ होने के वाद मीरक़ासिम को हिताहित का

ज्ञान जाता रहा। ज्ञानहीन अवस्था में उन्होंने कुछ अंगरेज़ों का प्राण वध करके अपने हाथों को कलंकित किया। कृष्णदास इत्यादि तीन पुत्रों के सहित राजा राजवल्लभ के गले मे बालू का बोरा बँधवा कर उन्हें गंगा मे फिकवा दिया। राजा रामनारायण, उमेद सिंह, बुनियाद सिंह, फत्तेसिंह और सेठ-वंशीय कई प्रधान प्रधान आदमियों का प्राण विनाश किया। इस प्रकार राज्याभिनय को समाप्त कर मीरकासिम बंगाल से बहिष्कृत हुआ। परन्तु यह प्रजा-वत्सल नवाब था, इसमें कोई सन्देह नहीं। प्रतिकूल अवस्था में पड़ कर वह अपने को भूल गया, और इसी कारण उसने इस प्रकार के कु-कर्मों से अपने हाथों को कलंकित किया।

मीरकासिम यदि उपर्युक्त नर-हत्या के द्वारा अपने हाथों को कलङ्कित न करता, तो निश्चय ही वह सन्मुख-युद्ध में जय-लाभ करके अंगरेज़ों को देश से बाहर करने मे समर्थ होता। उसने बापूदेव के कई एक उपदेशों का प्रतिपालन किया था, इसी लिए भावी वंशजों के निकट वह एक प्रजा-हितैषी राजा कहा गया, उसके नाम का स्मरण आते ही बंगवासियों के हृदय में कृतज्ञता के भाव का संचार होता है।
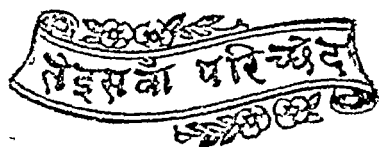
कारागार-दर्शन

पाठकों को जताने के लिए हमने इससे पहिले के कई परिच्छेदों में बापूदेव शास्त्री के संक्षिप्त जीवन-वृत्तान्त का उल्लेख किया है। अब पूर्वोक्त अनाथा कन्याश्रय का हाल ही लिखा जायगा। बापूदेव शास्त्री के

घर में सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को आश्रय प्राप्त हुआ। शास्त्री जी की कन्या प्रमदा देवी इन निराश्रया कन्याओं की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर आंसू वहाने लगीं। प्रमदा देवी का हृदय स्नेह और ममता से परिपूर्ण था। वे बारम्बार शास्त्री जी से कहने लगीं—"पिता, आज ही सावित्री के भाई और स्वामी तथा इन दोनों असहाय बालिकाओं के पिता को जेल से छुडा कर लाने का कोई उपाय निश्चित कीजिये।"

शास्त्री महाशय ने सहज ही समझ लिया कि सावित्री के भाई और स्वामी तथा मदनदत्त को अंगरेज़ों ने सिर्फ जुर्माने के रुपये के लिए कारागार में रख छोडा है। जुर्माने का रुपया अदा होते ही वे उन्हें मुक्त कर देंगे। परन्तु शास्त्री जी आजकल बडी तंगी से गुजर कर रहे थे। उनकी ज़िमींदारी की सारी प्रजा, प्रायः पांच बरस हुए, कासिमबाजार की रेशम की कोठी के साहबों की सख्ती से देश छोड गई थी। मृत स्त्री के गहने बेच-बाच कर ही वे इस समय अपनी जीविका चला रहे थे। अतएव बहुत कुछ सोच विचार कर भी वह इसका कुछ निश्चय न कर सके कि किस प्रकार इन लोगों के जुर्माने का रुपया अदा करे।

जिस दिन सावित्री आदि बापूदेव के घर पर आई थी, उसके दूसरे दिन वे उन्हें अपने साथ लेकर अंगरेज़ों के कलकत्ते के कारागार तक गये। बहुत खुशामद बरामद करने के बाद इस वृद्ध ब्राह्मण के अनुरोध से जेल के जमादार ने मदनदत्त, नवीनपाल तथा कालाचांद को अपने स्वजनों के साथ मुलाकात करने दी।

शास्त्री महाशय को जमादार ने कारागार के भीतर नहीं घुसने दिया। मदनदत्त, कालाचांद एवं नवीनपाल को बाहर लाकर उन्हें अपने स्वजनों के साथ मिलने की सुविधा प्रदान की। शास्त्री महाशय ने जो इस कारागार के भीतर प्रवेश नहीं किया, सो अच्छा ही हुआ। इस कारागार के भीतर का भीषण दृश्य—भयानक अत्याचार—बारारुद्ध हृत-

भाग्यों का आर्त्तनाद और करुण क्रन्दन सुन कर वासुदेव जैसे हृदयवान व्यक्ति का अवश्य ही प्राण-वियोग हो जाता।

पाठकों से इस कारागार के सम्बन्ध में हम विशेष कुछ बातें नहीं कहना चाहते। सिर्फ इतना ही कहते हैं कि इस घर में सर्वदा ही लगातार गहरी साँसें उठती हैं, सैकड़ों आदमी घुटनों में माथा रखे अधोमुख बैठे अपने अपने बाल-बच्चों की चिन्ता कर रहे हैं, उनकी आँखों के आँसुओं से सामने की भूमि भीग रही है, वे बारम्बार यही कहते हैं— "हा परमेश्वर, न जाने बाल-बच्चों की क्या दुर्दशा हुई होगी, कौन जाने, शायद स्त्री को जातिभ्रष्ट होना पड़ा हो।"

कहीं-कहीं पर कोई-कोई नमक-व्यवसायी बैठे हैं, और अन्यान्य कैदियों से कह रहे हैं—"भाई हम तो अब जीने की इच्छा नहीं रखते। हमारा सर्वनाश होचुका। धन माल सब गया। मौत आ जाय तो बस सारे कष्टों का अन्त हो।"

यह कहते-कहते वे अपनी आँखों से तीव्र अश्रुधारा गिराने और "जगत् में ईश्वर नहीं" यह कह-कह कर चिल्लाने लगते हैं।

इस गृह की क्रन्दन ध्वनि, इस गृह का आर्त्तनाद, इस गृह में उठी हुई गहरी साँसें प्रतिक्षण उस मङ्गलमय परमेश्वर के पास पहुँचती हैं। परन्तु जगत्पिता का प्रबोध-वाक्य इनके कर्ण-कुहरों में प्रवेश नहीं करता। ये हत-भाग्य बङ्ग-वासीगण इस समय भी यह न समझ सके कि पारस्परिक सहानुभूति से शून्य होकर जीवन बिताने के कारण ही हमारी यह दुर्दशा हुई है। यदि बङ्गवासियों को परस्पर एक दूसरे के साथ सहानुभूति होती तो क्या अंगरेज़ व्यापारी इनके ऊपर इस प्रकार का भयानक अत्याचार करने में समर्थ होते। ऐ कारारुद्ध कैदियो! तुम अपने अपने कु-कर्मों का फल भोग रहे हो। "जगत् में ईश्वर नहीं"— "ईश्वर नहीं" यह कह-कह कर तुम व्यर्थ ही चिल्लाते हो।

मदनदत्त, कालाचांद एवं नवीनपाल ने कारागार से बाहर होने पर देखा कि एक वृद्ध ब्राह्मण दूर पर खड़ा है। उसके पीछे तीन कन्याएं हैं। जमादार ने उनसे उसी वृद्ध के निकट जाने के लिए कहा।

कारागार के कष्टों के कारण ये तीनों ही बड़े दुर्बल हो रहे थे। मदनदत्त की दोनों कन्याएं अपने पिता को न पहिचान सकीं। परन्तु मदन ने उन्हें देखते ही पहचान लिया, दोनों हाथ पसार कर दोनों कन्याओं को अपनी छाती से चिपटा लिया और फूट-फूट कर रोने लगा। सावित्री अपने बड़े भाई को देखते ही गला पकड़ कर उच्च स्वर से रो उठी और तृष्णा भरी दृष्टि से पास में खड़े हुए पति की ओर देखने लगी।

सभाराम की मृत्यु का हाल कालाचांद और नवीनपाल ने आज तक नहीं सुना था। सावित्री अकेली कलकत्ते आई है, यह जान कर वे विविध प्रकार की चिन्ताएं करने लगे।

इनके परस्पर सम्मिलन में जैसी क्रन्दन-ध्वनि उठी और इन सब ने जिस प्रकार विलाप परिताप किया, उसका सविस्तर उल्लेख करके पुस्तक का कलेवर बढ़ाना व्यर्थ ही है।

पाठक और पाठिकाएं एक बार इस प्रकार की अवस्था में अपने आत्मीय स्वजनों के साथ मिलने की कल्पना करें, तभी वे इनके तत्कालीन हार्दिक भावों को समझने में समर्थ हो सकेंगे।

जब इन्होंने अपने-अपने प्रबल शोकावेग को सँभाला तो वापूदेव शास्त्री, नवीनपाल, कालाचांद एवं मदनदत्त को सावित्री का आद्योपान्त सारा वृत्तान्त सुनाने लगे। जिस प्रकार सावित्री की माता और भौजाई आदि की मृत्यु हुई, जिस प्रकार उस टूटे फूटे घर में रहते हुए सावित्री अपने पिता के सहित रामहरी के द्वारा क़ासिमबाज़ार में लाई गई, जिस प्रकार सावित्री को आरादून साहब की सहधर्मिणी ने आश्रय प्रदान किया,

बाद में कलकत्ते आने में जो-जो कष्ट भोगने पड़े, एक-एक करके उन्होंने वह सब हाल उन्हें कह सुनाया। तदनन्तर जिस प्रकार सावित्री के साथ मदनदत्त की बड़ी कन्या का साक्षात् हुआ, एवं मदन की बड़ी कन्या तथा स्त्री का प्राणान्त हुआ वह सारा हाल कहा।

मदन अपनी स्त्री और बेटी की शोचनीय मृत्यु का सम्वाद सुन कर मूर्च्छित हो गिर पड़ा। कुछ देर बाद चैतन्य होने पर "हा मेरी अन्नपूर्णा! तेरे भाग्य में इतना क्लेश बदा था,—" यह कहते हुए अपनी स्त्री और कन्या के शोक में उच्च स्वर से रोदन करने लगा।

इस ओर कालाचांद—माता, पिता, स्त्री तथा भौजाई की मृत्यु का सम्वाद सुन कर उन्मत्त सा होगया। नवीनपाल भी हाहाकार करके रोने लगा।

कुछ देर बाद जेल के जमादार ने आकर बापूदेव से कहा—"महाशय, अब अधिक देर तक हम क़ैदियों को बाहर नहीं रख सकते।"

मदनदत्त, कालाचाद एवं नवीनपाल बापूदेव के चरणों में लोट कर रोते-रोते बोले—"प्रभो, आप सचमुच देवता हैं। यदि आप आश्रय न देते तो इनके साथ इस जन्म में हमारा साक्षात् न होता।"

कालाचाद और नवीनपाल पहिले ही से बापूदेव को पहिचानते थे। बापूदेव कोई साधारण मनुष्य नहीं है—यह भी उन्हें ज्ञात था। परन्तु मदन को आज पहिले ही पहिल यह मालूम हुआ कि इस कराल कलिकाल में भी ब्राह्मण कुल में दो एक देवता मौजूद हैं। बापूदेव ने कहा—"तुम लोग कोई चिन्ता न करो। अपना सर्वस्व बेच कर भी मैं तुम्हारे जुर्माने का रुपया दाख़िल करके तुम्हें कारागार से मुक्त कराऊंगा।"

इस प्रकार के घोर आपद्काल में वृद्ध ब्राह्मण की यह बात सुनते ही उनके हृदय में बापूदेव के प्रति भक्ति-भाव का जो प्राबल्य हुआ, वह शब्दों से प्रकट नहीं हो सकता।

वापूदेव, सावित्री, जगदम्बा और अहल्या को साथ लेकर घर लौट आये ।

कारापिट आराटून

प्रमदा देवी ने सोचा था कि मेरे पिता, सावित्री के स्वामी और भाई तथा मदनदत्त को आज ही कारागार से छुडा कर ले आवेंगे। परन्तु जब उसके पिता इन तीनों कन्याओं को ही साथ लेकर घर लौटे तो उसे बड़ी निराशा हुई ।

वापूदेव कन्या को समझा कर कहने लगे—"बेटी, मेरे पास एक पैसा भी नहीं है, जुर्माने का रुपया कहां से अदा करूं ! सुना है, तीनों का जुर्माना मिल कर कोई एक हज़ार रुपया होगा। इसके लिए क्या उपाय किया जाय, कुछ समझ में नहीं आता।"

प्रमदा देवी ने अपने सब आभूषण बेच-बाच कर रुपया इकट्ठा करने का निश्चय किया। परन्तु वे अच्छी तरह जानती थीं कि यदि पिता जी इन आभूषणों को बेचने जायेंगे तो उन्हें इनका उपयुक्त मूल्य नहीं मिलेगा। क्रय-विक्रय के काम में विविध प्रकार की ठगाई का व्यवहार होता है। वापूदेव शास्त्री इस सम्बन्ध में क़तई अनभिज्ञ थे ।

प्रमदा देवी ने पिता के निकट आभूषणों को बेचने का इरादा प्रकट नहीं किया। पिता से सिर्फ़ यही कहा—"पिता, दादा से एक बार यहां आने के लिए कह देना।"

प्रमदा देवी बचपन ही से महाराज नन्दकुमार को दादा क
करती थी।

परन्तु उनके पिता ने यह बात सुन कर कहा—"नहीं बेटी, य
न होगा। नन्दकुमार मेरा शिष्य है। जब उसे मालूम होगा कि मु
रुपये की ज़रूरत है, तो वह जैसे कुछ होगा, रुपया देने की चेष्टा करेगा
मैं प्राण जाते भी उसके निकट रुपये का प्रार्थी नहीं हो सकता। उस
कहूँगा क्या, मेरी इच्छा नहीं कि किसी के निकट धन की याचना कर
विशेषतः नन्दकुमार पर इस समय घोर विपत्ति है। वह पद-च्युत हो
एक प्रकार से बन्दी-स्वरूप कलकत्ते में रह रहा है। इस समय मैं कि
प्रकार उससे रुपया नहीं मांग सकूंगा।"

प्रमदा ने कहा—"नहीं पिता, मैं दादा से रुपया नहीं चाहती।
अपने निज के आभूषण उन्हें बेचने को दूंगी। उनके द्वारा बिकवाने
आभूषणों का उपयुक्त मूल्य मिल सकेगा। परन्तु आप इन्हें बेचने
जांयगे तो लोग अवश्य ही आपको ठग लेंगे।"

सावित्री इन दोनों के हृदय में इतनी दया देख कर एक
हतबुद्धि रह गई। मन ही मन सोचने लगी कि मनुष्य के घर आई है
देवता के यहां? हम लोगों को किस प्रकार विपत्ति से मुक्त करें, इस
लिए ये अपना सर्वस्व तक बेचने को तैयार हैं।

इस प्रकार की चिन्ता करते-करते उसने प्रमदा देवी को सम्बोध
करके कहा—"माता! सैदाबाद के आरट्टन साहब की मेम मुझे बहु
प्यार करती हैं। आरट्टन साहब के लिए उन्होंने मुझे एक पत्र भी दि
है। वह पत्र मेरे पास है। यदि वहां पहुँच जाऊं तो सम्भवतः आरट्
साहब मुझे कुछ रुपया दे सकेंगे। ऐसा हुआ तो आपको इन सम
आभूषणों को बेचने की आवश्यकता न रहेगी।"

बापूदेव ने यह बात सुन कर कहा—"अच्छा बेटी, कल मैं तुम्हे साथ लेकर आराट्रन साहब के पास चलूंगा। परन्तु मैं तुम से यह पूछना चाहता हूं कि सभाराम के पास तो बहुत रुपया था, वह क्या सब कम्पनी के आदमी ले गये?"

सावित्री—सुना है, उन्होने हमारे गुप्त धन का पता नही पाया। पिता ने कुछ रुपया घर के भीतर किसी जगह मिट्टी के नीचे दबा रक्खा था, उसे मैं भी नही जानती। सिर्फ पिता, माता और मेरे बड़े भाई उसे जानते थे।

शास्त्री—मरते समय तुम्हारे पिता उसे किसी को बता नही गये?

सावित्री—मरते समय पिता ने कुछ कह ही नही पाया। मृत्यु-काल के पूर्व उनके मुह से सिर्फ़ "हलधर", "मोहर" यही दो शब्द निकले थे।

शास्त्री—सभाराम वास्तव में एक धार्मिक पुरुष थे। हलधर का रुपया और मोहरें मैने उनके पास रख दी थीं। मरते समय सम्भवत उन्होने उसी को बतलाने की चेष्टा की थी। हलधर का रुपया कहां रखा था, क्या तुम जानती हो?

सावित्री—मुझे नहीं मालूम।

शास्त्री—तुम हलधर को जानती थीं?

सावित्री—श्रीमान् वे मेरे मामा थे। सुना है, मेरा जन्म होने के पहिले मेरे पिता मेरे मामा के घर मे एक ही साथ रहते थे। बाद मे जागीर की ज़मीन मिलने पर अलग घर बना लिया।

शास्त्री—हां, ऐसा ही हुआ था। तुमने शायद हलधर के पुत्र को कभी नहीं देखा।

सावित्री—हा, मामा की मृत्यु के बाद फिर मैंने उसे कभी नहीं देखा। अब वह जीवित है या नहीं, यह भी मुझे नहीं मालूम। सुना था, मेरी मामी पुत्र को गोद में लेकर नदी में कूद पड़ी थीं। परन्तु पुत्र जब पानी पर उतराने लगा तो आपने उसे नदी से निकाल लिया।

शास्त्री—इस दु. खम्य के जिस बालक का प्रमदा प्रतिपालन कर रही हैं, यही बालक हलधर का पुत्र है।

यह सुन कर सावित्री को बड़ा आश्चर्य हुआ! प्रमदा देवी के पाव पकड़ कर बोली—"मा, आप मनुष्य नहीं हैं, निश्चय ही देवकन्या हैं। अनाथ कंगालों के प्रति आपके हृदय में इतनी दया! आप ब्राह्मण की बेटी होकर हम तन्तुकारों के बालक का इतने यत्न से प्रतिपालन कर रही हैं!"

यह कहते-कहते सावित्री की आंखों से बूंद बूंद आंसू टपकने लगे। वह प्रमदा के पास बैठे हुए बालक को गोद में लेकर उसका मुंह चूमने लगी।

गत तीन बरसों से प्रमदा देवी इस पितृ-मातृ-हीन बालक का प्रतिपालन कर रही है।

इसके दूसरे दिन सवेरे बापूदेव शास्त्री सावित्री को साथ ले फ़ौजदारी बालाखाने के पास आर्मीनियन मुहल्ले में आये। फ़ारिस्ट आराट्रन को वे खुद भी नहीं पहिचानते थे।

इस समय आराट्रन साहब अपने मुकदमे की पैरवी के लिए कलकत्ते में फ़ौजदारी बालाखाने के पास एक छोटे से इकतल्ला घर में रहते थे। बापूदेव शास्त्री के साथ सावित्री को देख कर उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। मुर्शिदाबाद के सभी लोगों में बापूदेव शास्त्री "बूढ़ नवाब के पण्डित"—इसी नाम से प्रसिद्ध थे। फ़ारिस्ट आराट्रन और उनके पिता मासुयल आराट्रन शास्त्री जी का बहुत आदर करते थे।

शास्त्री महाशय ने जैसे ही घर में प्रवेश किया, आराटून साहब ने बडे आदर से उठ कर उन्हें सलाम किया।

सावित्री ने अपने खूंट में से एस्थार बीबी का पत्र खोल कर आराटून साहब के हाथ मे दिया।

एस्थार बीबी कैसी सहृदया रमणी थी, पाठकगण उसे उनके लिखे हुए पत्र के अनुवाद को पढ कर ही जान सकेंगे। यह पत्र फारसी भाषा मे लिखा था। पत्र की अन्यान्य बातों को छोड कर, उन्होंने सावित्री के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा था, उसे हम नीचे उद्धृत करते हैं—

"नाथ! हमारे ऊपर इस समय जैसी विपत्ति है, उससे हम मे यह सामर्थ्य नहीं कि इस समय हम रुपये से किसी की सहायता कर सकें। परन्तु फिर भी मैं तुम से अनुरोध करती हूँ कि इस दुखिनी सावित्री के दुख-मोचनार्थ जितना रुपया आवश्यक हो, उतना इसे देना। अपनी एस्थार का यह अनुरोध तुम्हें रखना ही पडेगा। इस दुखिनी की दुर्दशा जब याद आती है तो मेरा हृदय फटने लगता है। इसके पिता, माता, भाई और भौजाई सभी मर गये है। सिर्फ एक भाई और इसका पति अभी तक जीवित है। रामहरी ने जब इस के धर्म को नष्ट करने का षडयन्त्र रचा तो मैंने इसे अपने घर में आश्रय दे लिया था। सावित्री पति-प्राणा है, इसी लिए वह पति का उद्धार करने कलकत्ते आरही है। जैसे हो, इसके भाई और स्वामी को कारागार से मुक्त करवा देना।

तुम्हारी चिरानुगत दासी,

एस्थार।"

पत्र को पढते ही आराटून साहब की आंखो से आंसू बहने लगे—"हा परमेश्वर!" यह कह कर उन्होंने गहरी सांस ली, और

बापूदेव शास्त्री को सम्बोधन कर के कहा—"पण्डित जी, अंग्रेजों के अत्याचार से मेरा रेशम का कारबार कतई बैठ गया। मेरे यहां के सब आदमियों को पकड़ ला कर वे अपनी कोठी मे उन से काम ले रहे हैं। डाकुओं की तरह मेरी दीनाजपुर वाली नमक की कोठी लूट लाये। उसी नमक की क़ीमत के लिए मैंने उनके विरुद्ध मुकदमा दायर किया है। इस मुकदमे के ख़र्च के लिए मैंने तीस हज़ार रुपया क़र्ज लिया है। इस वक्त हाथ में एक पैसा भी नहीं है। कोई मुझे एक पैसा उधार देने को भी तैयार नहीं होता। नौ मई की तारीख मुक़दमे के विचारार्थ निश्चित हुई है। आज से छः दिन के बाद ही मुक़दमे का विचार होगा। यदि इस मुक़दमे मे इन्साफ़ न हुआ तो सावित्री की तरह मेरी एलिज़ा भी पथ की भिखारिणी बन जायगी। मेरा जीना कठिन हो जायगा।' फिर यदि मुक़दमे की डिग्री हो तभी मैं ऋण चुका सकूंगा, और उस वक्त लोग भी मुझे दस-पाच रुपये उधार देने को इनकार न करेंगे। आप यदि आज से छः-सात दिन बाद सावित्री को लेकर मेरे पास आवें तो मैं आप से इसे रुपया दे सकने या न दे सकने के सम्बन्ध में निश्चित बात कह सकूंगा। यदि मुक़दमा डिग्री हो तो इसे जितने रुपये की ज़रूरत होगी, सब मैं दूंगा।"

आराट्टन साहब की इस दुरवस्था का हाल सुन कर बापूदेव शास्त्री बड़े दुखित हुए। फाराष्टि आराट्टन के पिता सामुयल आराट्टन के घर में एक लाख रुपये का लेन-देन होता था। परन्तु आज फाराष्टि को किसी से एक पैसा उधार मांगे नहीं मिलता। यह क्या थोड़े दुःख की बात है! बंगाल के अर्थ-लोभी गवर्नर वेरेलस्ट साहब की अर्थ लोलुपता के कारण फाराष्टि की यह दुर्दशा हुई है।

कुछ देर तक बापूदेव आराट्टन साहब के साथ अन्यान्य विषयों पर वार्तालाप करते रहे। बाद में सावित्री को साथ लेकर घर लौट आये

और प्रमदा से कहा कि आराटून साहब बडी दुरवस्था में है। वे रुपया दे सकेंगे, इसकी कोई सम्भावना नहीं।

प्रमदा देवी ने पिता की बात सुन कर महाराज नन्दकुमार को बुला लाने के लिए आदमी भेजा। तीसरे पहर महाराज नन्दकुमार आकर प्रमदा से मिले। अन्यान्य वार्त्तालाप के बाद प्रमदा ने कहा—"दादा, अपने गुमाश्ता चैताननाथ के द्वारा मेरे कुछ आभूषण विकवा दीजिये। मुझे रुपये की बडी ज़रूरत है। ये जो तीन कन्याएं आप देख रहे हैं, इनके आत्मीय कारागार मे है। उनके जुर्माने का रुपया अदा करके मैं उन्हें मुक्त कराऊँगी।"

भाई-बहिन

महाराज नन्दकुमार प्रमदा पर बहुत स्नेह करते थे। प्रमदा को देखते ही उनकी आंखों में आंसू भर आते थे। आज उसकी बात सुन कर उन्होंने कहा—"प्रमदा, तुम्हें ये आभूषण नहीं बेचने पडे गे। तुम्हारे आभूषणों के मूल्य का बहुत सा रुपया मेरे पास है।"

प्रमदा देवी ने अचम्भे मे आकर कहा—"यह क्या! मेरा कोई आभूषण तो पिता ने कभी बेचा नहीं।"

महाराज नन्दकुमार का जी भर आया, उन्होंने कहा—"प्रमदा, अत्यन्त बाल्यावस्था में मेरी मा का देहान्त हो गया था। मातृ स्नेह जैसे अमूल्य धन के सम्भोग का सौभाग्य मुझे नहीं प्राप्त हुआ। जब मैं

तुम्हारे घर रहता था, तुम्हारी माता मुझे पुत्र के समान प्यार करती थीं। उनकी कृपा से मैंने मातृहीन होकर भी मातृस्नेह का सुख भोगा था। मैं सदा ही उन्हें अपनी गर्भधारिणी जननी समझता रहा। हुगली में फौजदार के पद पर नियुक्त होते ही मैंने सोचा था कि उन स्नेहमयी जननी को और तुम्हें हीरक मण्डित कई एक स्वर्णालंकार उपहार स्वरूप प्रदान करूंगा। बाल्यावस्था से ही मैं तुम्हें छोटी बहिन के समान प्यार करता हूँ। परन्तु मेरे जैसा पापी शायद संसार में दूसरा नहीं! जननी को स्वर्णालंकार भेंट करना मेरे भाग्य में नहीं बदा था। हुगली से मुर्शिदाबाद को चलते वक्त मैं तुम्हारे और उस स्नेहमयी जननी के लिए कई एक हीरक मण्डित स्वर्णालंकार अपने साथ लाया था। तुम्हारे घर पहुँचते ही सुना कि जननी इस लोक से प्रस्थान कर स्वर्गलोक में जा बसीं, और तुम्हें इस अल्पावस्था में ही वैधव्य के कारण सांसारिक सुख-सौभाग्य से वंचित होना पड़ा। अतएव ऐसी दशा में वे समस्त आभूषण मेरे लिए एक नवीन दुःख के कारण हुए। एक बार मन में आया कि इन समस्त आभूषणों को आग में जला डालूं। परन्तु प्रायः पचास हजार रुपये के आभूषणों को जला डालने से भी कोई लाभ नहीं,—यह सोच कर मैंने निश्चय किया कि इन आभूषणों को बेंच कर इनके मूल्य को रुपया रख दूंगा, और इसलिए मैंने उन समस्त आभूषणों को रघुनाथ राय के द्वारा अपने अनुगत गुलाकीदास की दूकान में रख दिया था। एः ... से वे समस्त आभूषण गुलाकीदास की दूकान ही में पड़े थे। मुझ से वे फिर आगे न बेंचे गये। सीरकासिम और अंगरेजों के दर्मियान युद्ध छिड़ने पर गुलाकी की दूकान लुट गई, और उस समय वे समस्त आभूषण भी कहीं खो गये।

"अब मैं कलकत्ते आया तो गुलाकी ने मेरे पास आकर कहा कि आपके रखाये हुए आभूषणों का मूल्य मैं इस समय न...

सकूंगा। परन्तु उनके मूल्य की बाबत मैं ४८०२१ (अडतालिस हजार इक्कीस) रुपये का तमस्सुक लिख देना चाहता हूं। बाद में तमस्सुक का रुपया चुका दूंगा।

"मैंने पहिले बुलाकी को तमस्सुक लिखने के लिए मना किया। सोचा कि जब अमानत के गहने लुट गये तो अब उससे उनकी कीमत लेना उचित नहीं।

"परन्तु बुलाकी ने कहा—"महाराज, ये अलंकार बापूदेव शास्त्री की कन्या प्रमदा देवी के थे। वे परम साध्वी, साक्षात् भगवती स्वरूपा हैं। मैं उन्हें मानवी नहीं समझता। उनके आभूषण जब मेरे गुमाश्ता आदि की असावधानी से जाते रहे तो उनका मूल्य मैं कौडी-गडे से चुकाऊंगा, ब्राह्मण का धन है। उनका मूल्य न अदा करने पर मेरा सर्वनाश हो जायगा।"

"बुलाकी ने तुम्हारे उन आभूषणों के एवज़ में मुझे ४८०२१ रुपये का एक तमस्सुक लिख दिया। वह अपने कम्पनी के हिसाब का रुपया पाते ही यह रुपया चुका देगा। तुम्हें जिस समय जितने रुपये की ज़रूरत हो मुझ से लेती रहो, और यह समझो कि तुम्हारे उन आभूषणों की बाबत ४८०२१ रुपये मेरे पास अमानत हैं।"

ये सब बातें कह कर नन्दकुमार गुरु के चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को चले गये, और उसके दूसरे दिन उन्होंने अपने गुमाश्ता चैताननाथ के हाथ प्रमदा के पास २००० रुपये भेज दिये।

बापूदेव, चैताननाथ को साथ लेकर मदनदत्त, नवीनपाल एवं कालाचांद के जुर्माने का रुपया अदा करने आफिस को गये। उन तीनों पर, साढ़े बारह सौ रुपया जुर्माना हुआ था। जुर्माने का रुपया अदा करके शास्त्री जी उन्हें कारागार से मुक्त करवा कर अपने घर ले आये।

सावित्री एवं मदनदत्त की दोनों कन्याओं को जितना आनन्द हुआ, वह शब्दों से प्रकट नही हो सकता।

नवीनपाल और कालाचांद को फिर मुरिदाबाद जाने का साहस न हुआ। उनके गांव के सभी तन्तुकार घर छोड कर भाग गये हैं, सूने गाव मे अब उनसे कैसे रहा जायगा,—यह सोच कर वे शास्त्री जी के बाडे में ही छोटा सा घर बना कर रहने लगे। जिसमें वे अपना व्यवसाय चला सके, इसके लिए प्रमदा ने उन्हें कुछ रुपया दे दिया।

मदनदत्त भी अपने ग्राम निवासियो के निर्दय व्यवहार की बातें सुन कर फिर वहां नहीं गये। कालाचांद और नवीनपाल की तरह वे भी शास्त्री जी के बाड़े में ही अपनी दोनों कन्याओं को लेकर रहने लगे, और प्रमदा देवी के पास से तीन सौ रुपया लेकर उन्होंने भी एक छोटा सा कारबार आरम्भ किया।
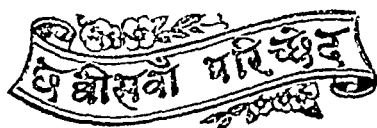
कारापिट आराटून साहब की मृत्यु

कारापिट आराटून ने सावित्री से दसवीं मई को आने के लिए कहा था। नवीं तारीख़ उनके मुकदमे के विचार के लिए नियत थी। परन्तु सावित्री को अब रुपये के लिए उनके पास जाने की आवश्यकता न रही थी।

दसवीं मई को सावित्री ने अपने स्वामी और बडे भाई से कहा— "आराटून साहब के मुकदमे में क्या हुआ, इसका पता लगाना उचित है।

आराट्टन साहब की मेम ने मुझे आश्रय प्रदान कर मेरे कुल, प्राण, मान एवं धर्म की रक्षा की है। उन्होंने मेरा बड़ा उपकार किया है। अतएव चलो, तीनों आदमी उनके पास चल कर कहे कि अब हमे रुपये की ज़रूरत नही है, और उनके मुकदमे में क्या हुआ, इसका भी पता ले आवे।"

नवीनपाल और कालाचाद सावित्री की बात सुनकर उसे साथ ले तत्काल ही आराट्टन साहब की कोठी पर गये। वहा जाकर देखा कि आराट्टन साहब के घर का दरवाज़ा बन्द है, उनका नौकर बाहर वरांडे मे बैठा है। पूछने पर मालूम हुआ कि आराट्टन साहब गवर्नर साहब के बॅगले पर गये हुए है, अभी लौटे आते होंगे। तीनों वहीं बैठ कर प्रतीक्षा करने लगे। परन्तु आध घण्टे के बाद देखा कि चार पाच आदमी आराट्टन साहब को कधो पर रखे लिये आ रहे हैं, आराट्टन साहब अचैतन्य हो रहे है। साथ में और भी पांच छ. आदमी है।

जो आदमी आराट्टन साहब को कधों पर रखकर लाये, थे, उनके साथ दो आदमी और थे। उनमे से एक का नाम था गोकुल। वह सोने का व्यवसाय करता था। दूसरे का नाम था रामनाथ दास।

आराट्टन साहब के घर मे प्रवेश करते समय गोकुल सुनार रामनाथ के साथ चुपचुपाते हुए कुछ बातें कर रहा था। स्पष्ट रूप में उनकी बातें कोई न समझ सका। अन्तिम बात का सिर्फ इतना अंश सुनाई दिया कि "जो कोई वेरेलस्ट साहब और वारवेल साहब को घूस दे देता है, गवर्नर साहब उसके नाम की नालिश का विचार नही करते।"

कुछ देर में रामनाथ और गोकुल सुनार दोनों चले गये। सावित्री, नवीन, कालाचांद एवं आराट्टन साहब के नौकर ने इस व्यापार का मर्म न समझ पाया।

नवीन और कालाचांद ने आराट्टन साहब के सिर पर पानी छोड़ना शुरू किया। कुछ देर में उन्हें कुछ होश हुआ, आँखें खोलीं, इधर-उधर देखने लगे। पलँग के पार्श्व में सावित्री को देखकर बोले—"मेरी एस्थार—मेरी प्यारी एस्थार! तुम कंगालिनी हुई, पथ-पथ की भिखारिणी हुई, मैं जाता हूँ।"

सावित्री ने कहा—"मैं एस्थार नहीं हूँ। मैं हूँ सावित्री। आप के मुक़दमे में क्या हुआ—यह जानने आई हूँ।"

मुकदमे की बात सुनते ही आराट्टन साहब माथे पर हाथ रख कर बोले—"मेरा सर्वस्व गया, मेरी एस्थार पथ की भिखारिणी हुई!"

इतना कह कर वे फिर बेहोश हो गये। उस समय सावित्री, कालाचांद और नवीनपाल सभी ने अनुमान किया कि शायद साहब मुक़दमा हार गये हैं, इसी लिए मानसिक दुख के कारण अचैतन्य हो रहे हैं।

वे पुन उनके सिर पर पानी छोड़ने लगे। कुछ देर बाद आराट्टन साहब ने "हा" कर के जल पीने की इच्छा प्रकट की। सावित्री ने उनके मुंह के पास पानी का गिलास रखा। पानी पीकर वे कुछ सावधान हुए, और पुन चेतनता प्राप्त हुई। परन्तु अत्यन्त दुर्बलता के कारण इस समय उन्हें बात करने में कष्ट प्रतीत होता था। वे सावित्री से बारम्बार कहने लगे—"मरते समय मैं अपनी प्राणप्यारी एस्थार को न देख सका।"

सावित्री ने कहा—मेरे भाई जेल से छूट कर आ गये हैं। एस्थार बीबी को खबर करने के लिए मैं उन्हें मुर्शिदाबाद भेज दूंगी।

आराट्टन साहब ने कहा—खबर करने से भी अब क्या होगा उनके यहां पहुँचने के पहिले ही मेरी मृत्यु हो चुकेगी।

उस समय कालाचाँद ने आराटून साहब के पास जाकर कहा—"बाबा साहब" (कालाचाँद आराटून साहब को बाबा साहब कहा करते थे) आप सावधान हों, मुकदमे की चिन्ता छोड़ दें ।"

कारापिट की आँखों से फिर आँसू गिरने लगे। ग्रिगरी खाजेमाल नामक एक अन्य आरमीनियन व्यापारी कारापिट साहब के घर के पड़ोस में रहते थे। यह कारापिट के घनिष्ट सम्बन्धियों में से थे। उन्हें बुला लाने के लिए कारापिट ने अपने नौकर को उनके पास भेजा। खाजेमाल ने आकर जब आराटून साहब की यह शोचनीय अवस्था देखी तो वे बड़े दुखित हुए, और उनकी इस दशा का कारण पूछने लगे।

कारापिट साहब पहिले की अपेक्षा कुछ सावधान होकर कहने लगे—"भाई, मेरा सर्वनाश हो गया। कल जैसे ही मेरा मुकदमा पेश हुआ, मैं अपने वकील के सहित अदालत में हाज़िर हुआ। परन्तु उसी वक्त गवर्नर वेरेलस्ट साहब का एक पत्र मेयर कोर्ट के प्रधान जज कर्नेलियस गुडविन (Cornelius Goodwin)* के पास पहुँचा। विचारपति गुडविन ने उस पत्र को पढ कर मुझ से कहा—"तुम अपना मुकदमा आपस मे मिल कर तय कर लो। यहा तुम्हारे मुकदमे का विचार नही होगा। तुम्हें अपना सब रुपया आपस के राज़ीनामे से मिल जायगा।"

"मैं बारम्बार कहने लगा कि मेरे साथ कभी किसी प्रकार के राज़ीनामे का प्रस्ताव नहीं हुआ है। मेरे वकील ने कहा कि हम कदापि राज़ीनामा नहीं करेंगे। परन्तु गुडविन साहब ने मेरी और मेरे वकील की बात न सुन कर 'राज़ीनामे से फैसला होगा'—यह कहते हुए मुकदमा खारिज कर दिया। जब मैंने बहुत कुछ खुशामद बरामद करके अपनी

* Vide note (21) in the appendix.

दुरवस्था का हाल बयान किया तो उन्होंने कहा कि ये सब बातें वेरेलस्ट साहब से कहना।

"आज दस बजे के बाद मैं वेरेलस्ट साहब के बँगले पर गया। मिलते ही पहिले तो वे मुझे गालियाँ देने लगे। बाद में कहा कि हम तुम्हारे मुक़दमे के विषय मे कुछ नही जानते। मैंने फिर कुछ कहना चाहा तो उन्होंने अपने नौकरों को मुझे निकाल देने की आज्ञा दी।

"भाई मुझे लूट लिया। मेरी ६०००० रुपये की नमक की गोदाम लूट ली। मैने तीस हज़ार रुपया कर्ज लेकर मुक़दमे में ख़र्च किया। परन्तु ये अँगरेज़ विचारकगण वास्तव में चोर प्रतीत होते हैं। इन्हें धर्माधर्म का तनिक भी ज्ञान नहीं। इनके गवर्नर एक डकैत हैं। इनके विचारकगण चोर हैं। मैंने इनका कभी कोई अपराध नहीं किया। इन्होंने केवल अर्थ-लोभ के कारण ही मेरा सब नमक छीन लिया। ऐसे कपटी और स्वार्थी मैने कहीं न देखे।

"भाई मेरा सर्वनाश हो गया, सब कुछ जाता रहा। अब मैं बचूंगा नहीं। मेरी प्राण-प्यारी एस्थार, मेरे दो बालक, मेरी विमाता सभी एकदम कङ्गाल बन गये।"

यह कहते-कहते कारापिट फिर अचैतन्य हो गये। ग्रिगरी खाजेमाल एक डाक्टर को बुला लाये। कारापिट के पास डाक्टर को देने के लिए दो रुपये भी न थे! डाक्टर ने उनकी शारीरिक अवस्था देख कर कहा कि थोड़ी ही देर में इनकी मृत्यु हो जायगी।

शाम के वक्त खाजेमाल अपने घर चले गये। सावित्री ने कालाचाँद और नवीनपाल से कहा—"तुम सैदाबाद जाकर एस्थार बीबी को खबर दो। उन्होंने मेरे ऊपर बड़े उपकार किये हैं। उनके पति बहुत बीमार हैं,—यह सम्वाद उनके पास अवश्य पहुँचाना चाहिए।"

कालाचाँद ने कहा—"नवीन के जाने की कोई ज़रूरत नहीं। मैं अकेला ही आज रात मे चला जाऊँगा। चार दिन के भीतर मैं सैदाबाद पहुँच जाऊँगा। तुम और नवीन यहीं रह कर साहब को चगा करने की कोशिश करना।"

कालाचाद ने तत्काल ही वापूदेव शास्त्री के घर आकर उनसे सब हाल कहा। वापूदेव ने कहा—"मदनदत्त यदि तुम्हारे साथ जाने को राज़ी हो तो उसे भी लेते जाओ। अकेले मुर्शिदावाद जाना ठीक नही।"

मदनदत्त अपने पहिले ज़माने में परोपकार के लिए किसी प्रकार का कष्ट उठाने को तैयार नही होते थे। परन्तु शास्त्री जी और सावित्री का आचरण देखकर उनका पहिले वाला कठोर हृदय अब एकदम नरम हो गया है। अब वे किसी के दुख को देख कर प्राणपण से उसे दूर करने की चेष्टा करते है। कालाचाद के साथ वे मुर्शिदाबाद जाने को तैयार हो गये। उनकी दोनों कन्याएं बापूदेव के यहां रहीं।

इस ओर आधीरात के वक्त कारापिट साहब को फिर होश हुआ। उस समय वे क्षीण स्वर मे कहने लगे—"मेरी एस्थार आई? थोड़ा सा पानी।" सावित्री ने पानी का गिलास उनके मुह के पास रखा।

पानी पीकर कहने लगे—"हाय! मेरी एस्थार को कौन पाले-पोसेगा?"

इसके बाद आराटून साहब क्रमशः अशक्त होते गये। रात के दो बजे उनका मृत्यु-काल उपस्थित हुआ। "एस्थार"—"एस्थार" —दो बार मुंह से ये शब्द निकलते निकलते उनकी जीवन-लीला समाप्त हो गई।

रात्रि का अन्त होने पर खाजेमाल ने आकर देखा कि कारापिट का प्राणान्त हो गया। उन्होंने कई अन्यान्य आरमीनियनों को बुलाया और कारापिट की मृत-देह को समाधिस्थ करने का प्रबन्ध किया।

सावित्री और नवीनपाल कारापिट की मृत्यु के दूसरे दिन मंगे बापूदेव के घर लौट आये।
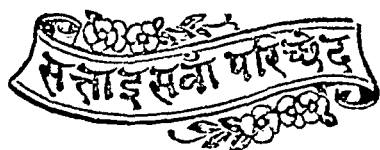
एस्थार बीबी का कलकत्ते की यात्रा।

कालाचांद और मदनदत्त ने सात आठ दिन में मुर्शिदाबाद पहुँच कर एस्थार बीबी और बदरुन्निसा से कारापिट आराटून की बीमारी का हाल कहा। पति-प्राणा एस्थार, स्वामी के साघातिक रोग का सम्वाद सुनकर एकदम उन्मत्त सी हो गई और मुर्शिदाबाद से पैदल कलकत्ते जाने का निश्चय किया। परन्तु बदरुन्निसा बड़ी दूरदर्शिनी और बुद्धिमती स्त्री थी। वह भलीभांति जानती थी कि एस्थार जैसी अमीर घराने की स्त्री के लिए मुर्शिदाबाद से पैदल कलकत्ता पहुँचना सर्वथा दुःसाध्य है। अतएव वह एस्थार को विविध प्रकार से समझा-बुझाकर सवारी का प्रबन्ध करने लगी।

अन्त में नाव पर सवार हो एस्थार बीबी और बदरुन्निसा ने कालाचांद एवं मदनदत्त को साथ ले कलकत्ते की यात्रा की।

चलते समय रामा की मां आई और रोते-रोते कहने लगी—"मेरी रामा, प्राय. एक महीना हुआ, घर छोड़ कर भाग गई है।

शायद कलकत्ते गई होगी। उसे खोजने के लिए मै भी कलकत्ते चलूँगी।"

एस्थार बीबी ने रामा की मा को भी साथ लिया। मुर्शिदाबाद से रवाना होने के दो तीन दिन बाद उनकी नाव एक बाजार के पास आ लगी। भोजन का सामान खरीदने के लिए नाव पर के आदमी बाजार गये। दैवात् इसी बाजार में रामा और उसकी माता का साक्षात् हो गया।

रामा की मां ने जैसे ही रामा को उच्च स्वर से "रामा" "रामा" कहकर पुकारा, वैसे ही रामा ने आकर मा का मुह दाब लिया, और चुपचुपाते हुए कहने लगी—"कम्पनी के आदमियो ने कहीं पकड लिया तो मुझे फासी दे देगे। मै रामहरी का कत्ल करके भागी हूँ।"

रामा की मा रामा को लेकर नाव पर आई। नाव पर सवार हो रामा भी इन सब के साथ कलकत्ते चली। पाच सात दिन के भीतर ये सब कलकत्ते आ पहुँचे।

एस्थार बीबी स्वामी की मृत्यु का सम्वाद सुनते ही उन्मत्त सी हो गई। सावित्री हर वक्त उनके पास रह कर उन्हें सान्त्वना देने की चेष्टा करती थी। "मृत्युकाल मे मेरे स्वामी ने क्या कहा था, उनका शरीर उस समय कैसा था—" एस्थार बीबी बारम्बार सावित्री से यही बातें पूछा करती थीं, और अहर्निशि अविराम अश्रुधारा बहाती रहती थी।

एस्थार और बँदरुन्निसां के पास जो गहने थे, उन सब को दो लाख रुपये में बेच कर उन्होंने मृत स्वामी का ऋण चुकाया। बाद में जिस घर में आराट्रून साहब की मृत्यु हुई थी, उस घर को खाजेमाल से खरीद कर कलकत्ते ही में रहने लगीं। भविष्य के भरण-पोषण के लिए इनके पास अधिक रुपया न रह गया।

सेनापति मीरमदन की कन्या, धनाढ्य आरमीनियन व्यापारी सामुयल आराट्टून की पुत्रवधू, आज नितान्त कंगालियों तरह कलकत्ते में रह रही है।
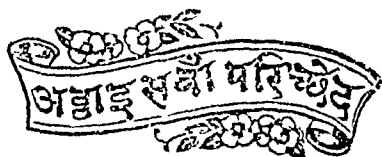
रामा और रामहरी।

रामा किस लिए सैदाबाद छोड कर भागी थी—यह पाठकों को अभी तक नहीं ज्ञात हुआ। रामहरी के विरुद्ध रामा के हृदय में बहुत दिनों से विद्वेषाग्नि प्रज्वलित हो रही थी। उसे निश्चय था कि रामहरी के कुपरामर्श के कारण ही अंगरेज़ो ने उसे तथा अन्यान्य जुलाहों को कारापिट साहब की कोठी से पकड लाकर क़ासिमबाज़ार की कोठी के काम में नियुक्त किया है। रामा एवं अन्यान्य जुलाहो ने इससे पहिले कारापिट आराट्टून साहब की रेशम की कोठी में काम करते हुए किसी प्रकार की तक़लीफ नही उठाई थी। आराट्टून साहब इन्हें कम से कम २॥) मासिक वेतन देते थे; परन्तु अंगरेज़ों ने सिर्फ १॥) महीना वेतन दिया।

अङ्गरेज़ों की कोठी में काम न करना पड़े, इस उद्देश्य से प्रायः इन सब जुलाहों ने पहिले पहिल अपने अपने दाहिने हाथ का अंगूठा काट डाला। परन्तु अंगरेज़ों ने इस पर भी इन्हें नहीं छोडा।

साइक साहब ने कलकत्ता-कौंसिल को पत्र लिखा कि जुलाहे लोग बड़े धूर्त्त हैं। उन्हें काम न करना पड़े, इसके लिए उन्होंने अपना अपना अंगूठा काटना शुरू किया है।

कलकत्ता-कौंसिल से हुक्म हुआ कि जिन समस्त जुलाहों ने इस प्रकार की धूर्त्तता करके अपना अंगूठा काटा है, उनका वेतन घटाना चाहिये। अतएव रामा इत्यादि को अंगरेज़ो ने अब सिर्फ़ एक रुपया मासिक वेतन देने का निश्चय किया।

जिस महीने से रामा आदि के वेतन घटाने का हुक्म हुआ था, उसके दूसरे महीने की बात है, पहिली तारीख़ के दिन क़ासिमबाज़ार की फैक्टरी के असिस्टेन्ट जेम्स हारग्रेव साहब (James Hargrave) रेशम की कोठी के बगडे मे बैठे जुलाहों को वेतन दिला रहे हैं। दो चौकियों के ऊपर एक मेज़ रक्खी हुई है। उसके ऊपर कैश बाक्स (Cash Box) रखा है। साहब एक कुर्सी पर बैठे बक्स खोल कर रामहरी के हाथ में रुपया देते जाते हैं। रामहरी फ़ेहरिश्त हाथ में लिये साहब के दाहने पार्श्व में खडे-खडे एक-एक जुलाहे को बुला कर उसकी तनख्वाह का रुपया उसके हाथ मे दे रहे हैं।

रामा को बुला कर रामहरी ने उसके हाथ में एक रुपया दिया। रामा ने कहा—"एक रुपया क्यों दिया? और आठ आने नही दोगे?"

रामा को मालूम न था कि उसका वेतन घटाने की आज्ञा हो चुकी है। उसने समझा कि मेरे वेतन में से आठ आना खुद हज्म करने की इच्छा से मुझे रामहरी ने सिर्फ़ एक रुपया दिया है।

रामा के इस प्रकार आपत्ति करने पर रामहरी को गुस्सा आया, और उस के एक लात जमा कर बोले—"बदमाश चुप रह।"

रामा के चरित्र का हाल पाठकों को ज्ञात ही है। दूसरे के निष्ठुर व्यवहार को वह कदापि सहन न कर सकती थी।

रामहरी ने जैसे ही उसके लात मारी, उसने तुरन्त ही हाथ में जो बांस की लाठी थी उसे ऊपर उठाते हुए कहा—"ले दुष्ट चाहे फांसी हो जाय—पर तुझे आज मार ही डालूंगी।"

यह कहते हुए रामा ने रामहरी को पीटना शुरू कर दिया उसकी पीठ और कमर मे लगातार बड़े ज़ोर से धमाधम लाठिया मारने लगी। रामहरी तुरन्त ज़मीन पर लोट गये। कमर और पाव चौकी के ऊपर रहे, और फिर चौकी के नीचे पृथ्वी पर घसिटने लगे। इसी अवस्था में पड़े हुए रामहरी की कमर मे रामा ने फिर जैसे ही बड़े ज़ोर से लाठी की चोट मारी, वैसे ही रामहरी की कमर की हड्डी एकदम टूट गई।

हारग्रेव साहब "बज्ज़ात् को पकड़ो" कहते हुए उठे ही थे कि रामा ने साहब की पीठ पर भी दो तीन लाठिया जमाईं।

हरगोविन्द मुकर्जी आदि दीवान तथा अन्यान्य मुहर्रिर जो कोठी के भीतर बैठे काम कर रहे थे, वे अपने अपने प्राणों के भय से भीतर ही भीतर दरवाजा बन्द कर बिलकुल ख़ामोश हो रहे।

हारग्रेव साहब ने दो ही तीन लाठी की चोट मे "रामसिंह, गोपालसिंह"—कह कर कोठी के ड्योढ़ीवान और जमादार को पुकारना शुरू किया।

रामसिंह और गोपालसिंह जब साहब के पास आते थे तो उन्हें चपकन पहिन कर आना पड़ता था। अपने स्थान पर वापिस जाते ही वे चपकन को उतार कर पास रख छोड़ते थे।

साहब ने जैसे ही उन्हें पुकारा, उन्होंने "गुलाम हाज़िर"—कह कह कर अपनी-अपनी चपकनें पहिननी शुरू कीं। चपकन की तनी बाँधने में कुछ समय लगता है, इस लिए उनके आने में ज़रा देर हुई। साहब स्वयं झटपट चौकी से कूद कर रिवाल्वर लेने के लिए अपने कमरे की तरफ चले गये। इस ओर रामा ने रामहरी को मृत-प्राय पर वहां से एक लगाई।

साहब का रिवाल्वर और बन्दूक दोनो उनके आराम कमरे में रखे थे, पर वहा मेमसाहब शाम के कपड़े बदल रही थीं इस लिए कमरे का दरवाज़ा बन्द था। साहब और मेमसाहब मे पहिले ही यह निश्चय हो चुका था कि तीन-चार बजे के बाद आफिस से लौटने पर साथ-साथ नदी के उस पार घूमने चलेंगे।

साहब बड़े ज़ोर से कमरे का दरवाज़ा खटखटा कर बोले—Open the door dear, open the door (प्रिये दरवाज़ा खोलो, प्रिये दरवाज़ा खोलो।)

मेम—Hargrave you are too early, it is not yet three. (तुम बडी जल्दी आगये—अभी तो तीन भी नही बजे)

साहब—Open the door dear, I want my revolver (दरवाज़ा खोलो, मैं अपना रिवाल्वर चाहता हू)

मेम—Wait a little, I will be ready in fifteen minutes (ज़रा देर ठहरो, पन्द्रह मिनट मे आती हूँ)

साहब—O dear what a silly girl you must be —Ram Hari is being murdered (प्रिये,तुम कैसी नासमझ हो—दरवाज़ा खोलो। रामहरी का खून हो गया)

मेम—That fool ought to be murdered, I had been telling him so often to get some Dacca muslin for me, but he has not brought it yet Hargrave! do you not recollect how pretty Miss Bensley looked, when she came to our house She put on a very fine dress made of

Dacca muslin. (रामहरी का मर जाना ही अच्छा। मैंने कई बार उससे ढाके की मलमल लाने के लिए कहा, आज तक नहीं लाया। हारग्रेव! तुम्हें याद नहीं, मिस वेन्स्ले उस दिन ढाके की मलमल के कपड़े पहिन कर हमारे घर आई थीं, कैसी सुन्दर लगती थीं)

साहब—बहुत ज़ोर से खटखटा कर—What a silly girl you are, I want my revolver—open the door dear (तुम बड़ी नासमझ हो, दरवाजा खोलो—मैं रिवाल्वर चाहता हूँ)

मेम—O you want your revolver—perhaps to shoot Ram Hari—very good. (तुम रिवाल्वर चाहते हो—रामहरी को गोली मारोगे—अच्छा, अच्छा)

यह कहते हुए मेमसाहब ने दरवाज़ा खोला। साहब दूसरी बात न कह कर बक्स खोल रिवाल्वर हाथ में ले बाहर आये। परन्तु रामा पहिले ही भाग चुकी थी। रामहरी की कमर और दोनों टांगें चौकी के ऊपर पड़ी हैं। सिर नीचे लटक रहा है। क्षीण स्वर में वे हरगोविन्द मुकर्जी को पुकार रहे हैं। मुकर्जी महाशय किसी एक मुहर्रिर से कह रहे हैं—"पहिले खिड़की खोलकर देख लो, रामा चली गई कि नहीं। अगर हो तो दरवाज़ा न खोलना।"

हारग्रेव साहब ने आते ही बड़े ज़ोर से रामहरी का हाथ पकड़ कर उन्हें उठाने की चेष्टा की। रामहरी ने चिल्ला कर कहा—"साहब, मरा—मरा—मेरा तो वैसे ही दम निकलता है, एकदम मत मार डालो। बस करो, बस करो।"

इतने में हरगोविन्द मुकर्जी दरवाज़ा खोलकर बाहर आये; बहुत कुछ गाली-गलौज करते हुए बोले—"अब तो भाग गई, समझता मैं हाड़-गोड़ एक कर देता।"

रामहरी की कमर और टांगों की हड्डी बिल्कुल टूट गई थी। खडे होने की ताकत नहीं रही थी, तकिये की धोक दिये बिना बैठा भी नहीं जाता था। प्रायः दो महीने तक कासिमबाजार मे रह कर रामहरी अपना इलाज करते रहे। परन्तु डाक्टरों ने कहा कि कमर और पीठ की हड्डी एकदम टूट गई है। यह अब नही जुड सकती। अन्त में विवश हो रामहरी को काम छोड कर चला आना पडा। इनका निवास-स्थान काटोया मे था।
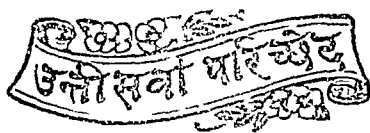
रामहरी।

रामहरी और हमारे पाठकों से फिर भेंट होने की अब कोई सम्भावना नही है। ईस्ट इण्डिया कम्पनी की गुमाश्तागीरी का काम उन्होने छोड दिया है। इसलिए यहां पर हम उनके पारिवारिक इतिहास और संक्षिप्त जीवन वृत्तान्त का उल्लेख कर देना चाहते हैं।

रामहरी एक कुलीन ब्राह्मण की सन्तान थे। इनके पिता जयगोविन्द चट्टोपाध्याय ने कोई पचास विवाह किये थे। विवाह करना ही उनका एकमात्र व्यवसाय था, इसी से वे अपनी जीविका चलाते थे। परन्तु दुर्भाग्यवश मुसलमानों के शासनकाल में जयगोविन्द चट्टोपाध्याय एक बार चोरी के अपराध में दण्डित हुए थे। इस घटना के बाद से लज्जा के कारण वे अपनी किसी ससुराल नहीं जाते थे।

में एक प्रतिष्ठित आदमी के यहा रसोइया के काम पर नियुक्त होकर वहीं रहने लगे थे।

पलासी-युद्ध के समय जब नवकृष्ण मुंशी क्लाइव के साथ मुर्शिदाबाद गये तो वहाँ इत्तफाक़ से उनके साथ मे जो ब्राह्मण रसोइया था उसकी मृत्यु हो गई। इस अवसर पर रामहरी के पिता नवकृष्ण के रसोइया नियत हुए और उनके साथ मुर्शिदाबाद से कलकत्ते आये।

इसके प्राय पन्द्रह बरस पहिले रामहरी की माता चरित्र-दोष के कारण घर से निकाल दी गई थीं। वे अपने पाच बरस के पुत्र रामहरी को साथ ले कलकत्ते चली गईं और वहा किसी अमीर आदमी के घर में रसोई बनाने के काम पर नियुक्त हो गईं।

कलकत्ता उस वक्त बहुत छोटा सा शहर था इस लिए शहर के रहने वालों में परस्पर एक दूसरे के साथ सहज ही जान पहचान हो जाया करती थी। नवकृष्ण मुंशी के साथ रामहरी के पिता जब कलकत्ते आये तो एक दिन गगा-स्नान करने जाने पर वहा रामहरी की माता से उनका साक्षात् हो गया। परस्पर एक दूसरे का परिचय सुनते ही दोनों को याद आई कि पहिले कभी परस्पर हम दोनो में विवाह हुआ था। रामहरी के पिता ने अपनी स्त्री और पुत्र को ग्रहण किया। यह सोच कर कि 'मैं अब वृद्ध हो रहा हूँ, भविष्य में रामहरी मेरा प्रतिपालन करेगा,—' रामहरी के पिता अपनी विवाहिता स्त्री और उसके गर्भजात पुत्र को साथ ले एक ही स्थान पर रहने लगे।

रामहरी की अवस्था अब लगभग बीस बरस की हो चुकी थी। वे प्राय. अपने पिता के साथ शोभा-बाज़ार मे नवकृष्ण मुंशी के घर रहते थे। नवकृष्ण मुंशी कितने ही ग़रीब कगालो को रोज़ी से लगा दिया करते थे। उनकी सिफ़ारिश से रामहरी अंगरेज़ों की क़ासिमबाज़ार की कोठी में गुमाश्ता के काम पर नियुक्त हुए।

रामहरी बडे चतुर और कार्यदक्ष थे। बहुत ही थोडे समय मे उन्होंने कासिमबाजार की कोठी के साहबों की प्रसन्नता प्राप्त करली। छिदाम विश्वास की मृत्यु के बाद बोल्टन साहब ने छिदाम के काम पर इन्हीं को नियुक्त किया। परन्तु छिदाम की मृत्यु के दो-तीन बरस पहिले ही रामहरी के पिता-माता दोनों की मृत्यु हो चुकी थी। पिता-माता की मृत्यु के बाद उन्होंने कलकत्ते का जाना-आना बन्द कर दिया था। कलकत्ते के लोग बातचीत में नवकृष्ण मुंशी के रसोइया का पुत्र कह कर रामहरी का परिचय दिया करते थे, और इसी पहचान से वे रामहरी को पहचानते थे, परन्तु रामहरी को इसमे अपना बडा अपमान समझ पडता था। छिदाम की मृत्यु के दो-तीन बरस पहिले ही रामहरी बहुत सा धन इकट्ठा कर चुके थे। उन्हीं दिनो वे अपना विवाह करने के उद्देश से अपने नाना के यहा चले गये। ननिहाल इनकी काटोया में थी, परन्तु नाना का देहान्त इसके पहिले ही हो चुका था, कोई पुत्र उनके था नहीं, एकमात्र विधवा कन्या थी, वही घर पर रहती थी। रामहरी अपने नाना के घर जाकर अपनी विधवा मौसी के साथ रहने लगे। उनकी मौसी उनके विवाह की चेष्टा करने लगी।

रामहरी की मां घर से निकाली गई थी, पर इसके लिए गांव के अन्यान्य ब्राह्मणों ने रामहरी को समाजच्युत नहीं किया। उन सब पिछली बातों के सम्बन्ध में ब्राह्मणो ने फिर कोई चर्चा भी नहीं उठाई। 'रामहरी इस समय कम्पनी की सरकार में नौकरी करता है, बहुत सा धन जमा कर चुका है'—यह सोच कर किसी को उसके साथ शत्रुता करने का साहस न हुआ। विशेषत: एक बात यह भी थी कि गाव के दो तीन प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मणो की कन्याएं सयानी हो रही थीं, बेचारे कन्या-ऋण से ग्रस्त थे,—योग्य पात्र मिल नहीं रहे थे। रामहरी इस समय प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण की सन्तान प्रसिद्ध ही थे। अतएव गांव के ही

ब्राह्मणों ने सोचा था कि 'रामहरी को कन्यादान करके कन्या-ऋण से उद्धार हों। रामहरी धनवान आदमी है। कन्या उन के यहां सुखी रहेगी।'

देवी वर के द्वारा ब्राह्मणों के श्रेणीबद्ध हो जाने के बाद से कितने ही कुलीन ब्राह्मणों की कन्याएं बहुत सयानी हो जाती थीं, पर वर नहीं मिलते थे; अतएव रामहरी को पाकर बहुतों के मन में आशा का संचार हुआ। और उनके साथ अपनी कन्या को ब्याहने का विचार करने लगे।

रामहरी ने पहिल-पहिल गांव के एक प्रतिष्ठित कुलीन ब्राह्मण भवतोष वन्धोपाध्याय की सत्तरह बरस की कन्या का पाणिग्रहण करके वन्धोपाध्याय महाशय को कन्या-ऋण से उद्धार किया। परन्तु इस कुलीन कन्या की अवस्था कुछ अधिक है—यह सोच कर उन्होंने दुबारा रामगति तर्क-पंचानन की कन्या के साथ विवाह किया। तर्कपंचानन महाशय की कन्या कुछ लड़ाकी थी। तथापि कुलीन ब्राह्मण की बेटी होते हुए भी उस में और कोई दोष नहीं था। एक दिन रामहरी से उससे झगड़ा हुआ, रामहरी उसे छोड़ देने पर तैयार हो गये। कुलटा कह कर उसे बदनाम किया और तीसरी बार रामहरी ने हरिनाथ वाचस्पति की ग्यारह वर्ष की कन्या का पाणिग्रहण किया। वाचस्पति जी की कन्या अभी कुछ सयानी न थी, परन्तु 'रामहरी के पास बहुत रुपया है'—यह सुन कर वाचस्पति जी की स्त्री ने अपने वृद्ध पति पर बहुत कुछ जोर डाल कर उन्हें रामहरी के साथ कन्या का विवाह करने के लिए बाध्य किया। स्त्री के अनुरोध से विवश हो अन्त में वाचस्पति जी ने रामहरी के साथ अपनी कन्या का विवाह कर दिया।

वाचस्पति जी की ग्यारह बरस की कन्या के साथ विवाह करने के दस पन्द्रह दिन बाद ही, १७५९ या १७६० ईसवी में रामहरी फिर कासिमबाजार चले गये। सिर्फ विवाह करने के उद्देश से ही तीन

महीने की छुट्टी लेकर वे काटोया आये थे। तीन महीने के भीतर सहज ही तीन विवाह कर लेने के बाद वे अपने काम पर वापस गये। तीनों ही स्त्रिया उनकी विधवा मौसी के साथ उनके नाना के घर हने लगी।

परन्तु इसके बाद सात बरस तक रामहरी को घर आने के लिए छुट्टी नही मिली। क़ासिमबाजार की रेशम की कोठी के अध्यक्ष साहब लोग रामहरी को छुट्टी देने के लिए तैयार न होते थे। सोचते थे कि रामहरी की अनुपस्थिति मे व्यापार का काम ठीक रूप में नही चलेगा।

रामहरी की पहिली और दूसरी स्त्री विवाह के बाद ही पति के प्रेम से वञ्चित हो गई थी। पति का प्रेम ही स्त्री को कुमार्ग से दूर रखता है। अतएव रामहरी की पहिली और दूसरी स्त्री पति-प्रेम से वञ्चित हो जाने पर मानव-प्रकृति की दुर्बलता के कारण शीघ्र ही कुपथ-गामिनी हो गईं। वे रामहरी के घर मे तो रहती थी, परन्तु गृह-कार्य में उनका तनिक भी मन नहीं लगता था। दुपहर को भोजनों के बाद गाव में, इस घर से उस घर, मारी-मारी फिरा करती थी। रामहरी की तीसरी स्त्री को उन की मौसी बड़े यत्न से पालती-पोसती थी। विवाह के समय उस की अवस्था सिर्फ ग्यारह बरस की थी।

रामहरी की मौसी उस समय बिल्कुल बूढ़ी हो आई थी। इनके पति ने कोई एक सौ विवाह किये थे। विवाह के बाद इन्हे अपने पति के साक्षात् का सौभाग्य भी कभी नहीं प्राप्त हुआ। पति की मृत्यु के प्रायः ग्यारह बरस बाद इन्हे यह ज्ञात हुआ था कि मैं विधवा हो गई हूँ।

उन दिनों हमारे देश की स्त्रियों में कहीं हज़ार में कोई दो एक स्त्रियां अपने आप पुस्तकें पढ़ सकती थीं। परन्तु उस समय स्त्रियों में पुस्तकों को सुनने का बड़ा रिवाज़ था। अपनी अपनी रुचि के अनुसार स्त्रियां विविध प्रकार की पुस्तकों का श्रवण किया करती थी।

आजकल बंगाल में जिस प्रकार दो श्रेणियों की स्त्रियां देखी जाती हैं उन दिनों भी हमारे देश मे इसी प्रकार भिन्न भिन्न रुचि की स्त्रियां थीं। वर्तमान समय में एक ओर अनेकानेक भद्र महिला विद्यासागर के सीतावनवास, अक्षयकुमार दत्त के धर्मनीति, देवेन्द्र ठाकुर के धर्मोपदेश, आनन्दचन्द्र विद्यावागीश लिखित विविध ग्रंथ, काली प्रसन्न सिंह रचित महाभारत, हेमचन्द्र भट्टाचार्य द्वारा प्रकाशित रामायण इत्यादि ग्रन्थों के पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने में रुचि रखती हैं, पर दूसरी ओर अन्यान्य अनेक स्त्रियां इन पुस्तकों को हाथ से नहीं छूतीं, वे विविध प्रकार की प्रेम-कथाओ और रसिक-ग्रन्थों को बड़े आदर से पढ़ा करती हैं।

उन दिनों भी हमारे देश में इसी प्रकार दो श्रेणियों की स्त्रियां थीं। कितनी ही स्त्रियां रामायण महाभारत इत्यादि ग्रन्थों का श्रवण करती थीं और कितनी ही रस और हँसी-मज़ाक की पुस्तकों को सुनना पसन्द करती थीं।

हरिदास तर्क पञ्चानन की कन्या सुदक्षिणा तथा रामदास शिरोमणि की कन्या श्यामसुन्दरी सदा रामायण और महाभारत ही पढ़ा करती थीं।

परन्तु रामहरी की मौसी बाल्यावस्था ही में रामायण और महाभारत सुनने में ऐसी रुचि नहीं रखती थीं। रस और हँसी-मज़ाक की पुस्तकों को सुनने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।

रामहरी के घर के पास ही बाबा अद्वैतानन्द का अखाड़ा था। इस से पहिले जिन बाबा ललितानन्द का ज़िक्र आ चुका है, वे इसी अखाड़े में रहते थे। विवाह करने के बाद रामहरी जब कासिमबाज़ार चले गये तो ललितानन्द प्राय रोज़ ही रामहरी के घर आकर उनकी

मौसी को विविध प्रकार की रसिक पुस्तके सुनाया करते थे। इस प्रकार की पुस्तकों में उस समय विद्यासुंदर का वहुत प्रचार था। इस घटना के दस ही वारह बरस पहिल विद्यासुंदर की रचना हुई थी। ललितानन्द प्रायः रामहरी के घर बैठ कर विद्यासुन्दर का पाठ किया करते थे।

रामहरी की मौसी और उनकी तीसरी स्त्री दोनो ही हर रोज़ इन सब पुस्तकों को बाबा ललितानन्द की ज़बानी बड़े प्रेम से सुना करती थीं। पहिली और दूसरी स्त्री का मन घर में क़तई नहीं जमता था। वे दोनों भोजनों से निपटते ही पडोसियों के घर घूमने चली जाती थीं। इस प्रकार रामहरी के विवाह के वाद प्राय सात बरस तक बाबा ललितानन्द शाम के वक्त हर रोज ही रामहरी के घर आकर पुस्तकें पढ़ा करते थे। सात बरस बाद रामहरी घर आये। उसके दो बरस पहिले ही से रामहरी की तीसरी स्त्री कभी कभी बाबा अद्वैतानन्द के अखाड़े में जाने लगी थी और ललितानन्द की कुटी मे बैठ कर विद्यासुन्दर और रासलीला आदि ग्रन्थों को सुना करती थी। रामहरी की मौसी उसे अखाड़े में जाने को कभी नहीं मना करती थी। वह समझती थी कि 'बाबा ललितानन्द बड़े धार्मिक और शास्त्रज्ञ पुरुष हैं, उन के घर जा कर ग्रंथो को सुनने में कोई दोष नहीं।' विशेषतः गांव की स्त्रियां शहर की स्त्रियों की तरह एकदम घर के भीतर बन्द नहीं रहतीं, वे जब तब अपने आत्मीय-स्वजनों के घर आया जाया ही करती हैं।

बाबा ललितानन्द अपने को एक विशेष शास्त्रज्ञ वैरागी समझा करते थे। उनका आचार-व्यवहार, भेप-भाव सभी कुछ वैष्णवोचित था।

सम्भव है हमारे पाठक बाबा ललितानन्द का पूर्व वृत्तान्त जानने के लिए उत्सुक हों, इसलिये यहाँ पर हम पाठकों को उनका पूरा परिचय प्रदान करते हैं।

बाबा ललितानन्द चाण्डाल-कुल-तिलक अभिराम मण्डल के पुत्र थे। उनका पहिला नाम केनाराम था। उनके पिता अभिराम, गांव के चाण्डालों के मुखिया थे। उनकी सालाना आमदनी सौ रुपये से कम न थी। उन्होंने अपने पुत्र केनाराम को बाल्यावस्था से ही गुरु महाशय की पाठशाला में भेज दिया था। केनाराम पाठशाला में लिखना-पढ़ना सीख कर कबीरपंथियों के एक दल का सरदार बन गया। परन्तु इस दल में कई एक कायस्थ और एक दो ब्राह्मण भी थे। भोजन के वक्त केनाराम को सब से अलग घर के बाहर बैठ कर भोजन करना पड़ता था। दल के साथ में जो नौकर था, वह अन्यान्य सभी लोगों की जूठन साफ किया करता था, परन्तु केनाराम को अपनी जूठन अपने हाथों ही उठानी पड़ती थी। केनाराम को मन ही मन इस में अपना बड़ा अपमान समझ पड़ता था। केनाराम एक प्रसिद्ध गायक भी थे। परन्तु नीच जाति के होने के कारण जब इन्होंने देखा कि हमें सब से अलग बाहर बैठ कर भोजन करना पड़ता है, और अपनी जूठन अपने आप ही धोनी पड़ती है तो वे कबीर-पन्थियों के दल को छोड़ कर बाबा अद्वैतानन्द के अखाड़े में चले आये और मूड़ मुड़ाकर वैष्णव-धर्म-ग्रहण कर लिया। वैरागियों के अखाड़े में ब्राह्मण, शूद्र, चाण्डाल सभी इकट्ठे बैठ कर भोजन करते हैं। अतएव यहां पर केनाराम को चाण्डाल होने के कारण कोई अपमान नहीं सहना पड़ा। बाबा अद्वैतानन्द ने केनाराम चाण्डाल को भेष प्रदान करते समय ललितानन्द नाम से सुशोभित किया।

बाबा ललितानन्द कबीर-पन्थियों के दल में रहने से कारण गाना खूब सीख गये थे। पुस्तकों को बड़ी अच्छी लय से पढ़ा करते थे। रामहरी की मौसी और तृतीया स्त्री ललितानन्द को परम शाक्त वैष्णव समझती थीं। फिर, ललितानन्द के प्रत्येक कार्य और भेष-भाव में साधु-पण्डित के लक्षण दिखाई देते थे। वे सदा ही शास्त्र वैष्णवें

और ब्राह्मण पण्डितों का अनुकरण करते थे। रामहरी जब नौकरी छोड कर घर आये तो भी बाबा ललितानन्द उनके घर आकर उनकी मौसी और तृतीया स्त्री को विद्यासुन्दर आदि ग्रन्थ सुनाया करते थे। रामहरी की मौसी रामहरी के निकट बाबा ललितानन्द की बहुत प्रशंसा किया करती थी।

रामहरी के अभी तक कोई सन्तान नहीं थी। रामहरी की मौसी इसके लिए सदा ही बहुत दुख प्रकट करती हुई कहा करती थी—"मेरे बेटा के पास इतना धन दौलत; परन्तु एक पुत्र न हुआ! हाय इस धन को कौन भोगेगा!"

रामहरी काम छोड कर १७६७ ई० के सितम्बर महीने मे घर आये थे। उन में इस वक्त उठने की भी ताकत न थी। हर वक्त बिछौने पर पडे रहते थे। उनकी मौसी पहिले तो दो-तीन दिन उनकी ऐसी दुर्दशा देख कर दुख के आंसू बहाती रही। परन्तु बाद में उनका यह दुख धीरे-धीरे दूर होने लगा। दो-तीन दिन बाद वे एक दिन रामहरी की चारपाई के पास बैठ कर कहने लगी—"बेटा, तुमने इतना धन जमा कर लिया है कि नौकरी न करो तो जन्म भर बैठे बैठे खा सकोगे। न सही नौकरी, इससे हानि ही क्या, परन्तु बेटा, तुम्हारे कोई पुत्र न हुआ, इस धन को कौन भोगेगा, इसी की मुझे बडी चिन्ता रहती है!"

जिस साल कुआंर के महीने में, कम से कम सात बरस बाद रामहरी घर लौटे थे, उसी साल कार्तिक के महीने मे उनकी तृतीया स्त्री ने पुत्र की कामना से कार्तिक व्रत किया। पाच ही महीने बाद माघ में उसके गर्भ से पुत्र का जन्म हुआ।

रामहरी की मौसी ने बड़ा आनन्द मनाया। मुहल्ले की नाइन, धोबिन इत्यादि स्त्रियां आ-आकर बडा आमोद-प्रमोद मनाने लगी।

रामहरी की मौसी इन सब स्त्रियों को सम्बोधन करके कहने लगी—तुम सब मेरे रामहरी के पुत्र को आशीर्वाद दो। मेरे रामहरी अभी पांच महीने हुए, घर आये हैं। पाँच ही महीने में पुत्र पैदा हुआ। बहुतेरे कहते हैं कि पाँच महीने की सन्तान जीवित नहीं रहती।

धोबिन बोली—"मेरे नैहर में एक स्त्री के तीन ही महीने में एक बालक पैदा हुआ था। उसने भी कार्तिक का व्रत रखा था, और इसी कारण उसके इतनी जल्दी सन्तान हुई। आज उस बालक की उमर दस ग्यारह बरस की है।"

गाव की और एक वृद्धा स्त्री कहने लगी—"पांच महीने हुए इसलिए एक ही हुआ, दस महीने हो जाते तो दो बालक एक साथ होते। कार्तिक की कृपा से सब कुछ हो सकता है।"

रामहरी के पांच ही महीने में पुत्र उत्पन्न होने के कारण अगले साल से गांव की प्रायः सभी स्त्रियों ने कार्तिक-व्रत रखने का निश्चय किया। सैकड़ों बांझ स्त्रिया भी कार्तिक-व्रत रख कर पुत्र लाभ की आशा करने लगीं। वर्द्धमान, वीरभूमि और बांकुड़ा में इस घटना से कार्तिक-व्रत का बड़ा प्रचार हो उठा। परन्तु 'सौत की बैरिन सौत'। रामहरी की द्वितीया स्त्री ने कार्तिक के इस महत्व की पोल खोलनी शुरू की। हम पहिले ही कह चुके हैं कि यह बड़ी वाचाल स्त्री थी। घर-घर जाकर कहने लगी—"केवल कार्तिक की कृपा से पुत्र क्यों न होता,—बाबा ललितानन्द के पास पुस्तकें सुनती रही, इसी पुण्य से पुत्र जन्मा है।"

रामहरी की तृतीया स्त्री के गर्भजात पुत्र की अवस्था क्रमशः छः महीने की हुई। रामहरी की मौसी ने बड़ी धूमधाम से उसका नाम करण कराया। रामहरी के पुत्र का नाम कृष्ण

रामहरी ने स्वयं किसी दिन भी अपने पुत्र को गोद मे नही लिया। उनकी मौसी कृष्णहरी को लेकर हँसते हुए रामहरी की गोद में देती थीं, परन्तु रामहरी अपने पुत्र पर विशेष स्नेह नहीं रखते थे। दूसरे उनकी टांगों की हड्डिया बिल्कुल टूटी हुई थी। कमर की हड्डी भी टूट गई थी। जब तक कोई उठा कर न बैठा ले, तब तक उठ कर बैठने की भी शक्ति न थी। ऐसी दशा मे वे पुत्र को गोदी लेते भी तो किस तरह।

रामहरी के तीन स्त्रिया थीं, परन्तु उनमे से एक भी रामहरी की सेवा-सुश्रूषा नही करती थी। कभी-कभी वे तीन-चार दिन लगातार मल-मूत्र ही मे पड़े रहते थे। उनकी स्त्रियो मे से कोई उनका बिस्तर भी बदलने नही आती थीं। तीन-चार दिन बाद जब उनके बिछौने से बडी दुर्गन्ध निकलने लगती तो उनकी पहली स्त्री उसे धो-धुला दिया करती थी।

इस प्रकार लगातार पाच सात बरस तक रामहरी को कष्ट-भोग करना पडा। मुद्दतों मल-मूत्र मे पडे रहने के कारण उनका शरीर दुर्गन्धि-मय हो गया। शरीर के भिन्न भिन्न स्थानो से रक्त बहने लगा। पीडा के मारे हर घडी चिल्लाते रहते थे। मागने पर पानी भी नही मिलता था।

उनकी प्रथमा और द्वितीया स्त्री तो दुपहर को भोजनों से निपटते ही पडोसियों के घर घूमने चली जाती थी। तृतीया स्त्री के पास पहिले की तरह अब भी बाबा ललितानन्द आते-जाते थे और पुस्तके सुनाया करते थे। ये पुस्तक-श्रवण मे ऐसी निमग्न हो जाती थीं कि रामहरी चाहे सौ बार भी चिल्ला कर पुकारते तो भी उन्हें कोई जवाब नहीं मिलता था।

एक दिन रामहरी ने बड़े गुस्से में आकर बाबा ललितानन्द से कहा—"साले वैरागी, तू आज से मेरे घर कभी न आना।"

रामहरी की तृतीया स्त्री बड़े क्रोधपूर्वक पति को तिरस्कार करती हुई बोली—"इस दुर्दशा में पड़े हो, तिस पर वैष्णव की निन्दा करते हो—वैष्णव को गाली देते हो—नही मालूम तुम्हारे भाग्य में अभी और क्या क्या बदा है?"

रामहरी बेचारे चारपाई पर पड़े-पड़े दोनों होठ चबाने लगे। यह ताकत न थी कि उठ कर ललितानन्द को ठीक करें।

सात बरस तक विविध प्रकार के क्लेश और यन्त्रणायें भोग कर वगीय कुलागार रामहरी ने इस संसार से कूच किया। उनकी तृतीया स्त्री के भाई राधाकान्त मुखोपाध्याय ने रामहरी के नाबालिग़ पुत्र कृष्णहरी के वली (अभिभावक) नियत होकर रामहरी के छोड़े हुए धन-माल की रक्षा का भार अपने जिम्मे लिया।

रामहरी ने बहुत जायदाद पैदा कर ली थी। हुगली, वर्द्धमान, बांकुडा इन तीनों ही ज़िलों में उनकी बहुत ज़मींदारी थी। उनके पुत्र कृष्णहरी बाबू के युवा होने के अनन्तर लार्ड कार्नवालिस के वक्त में रामहरी की कुल ज़मींदारी और साथ ही बङ्गाल के अन्यान्य अनेक ज़मींदारों की ज़मींदारी मे इस्तमरारी (स्थायी) बन्दोबस्त हो गया। रामहरी के बक्स में कितने ही साहबों के हस्तलिखित सार्टीफिकट रखे थे। कृष्णहरी बाबू लार्ड कार्नवालिस को ये सब सार्टीफिकट दिखाकर अङ्गरेज गवर्नमेण्ट के विशेष कृपापात्र बन गये थे।

कृष्णहरी बाबू बङ्गाल के एक प्रसिद्ध ज़मींदार हुए। वर्द्धमान बांकुडा, हुगली और वीरभूमि इन चार ज़िलों के ब्राह्मण-समाज के मुखिया माने जाने लगे। लोग उन्हें एक कुलीन ब्राह्मण की सन्तान

समझते थे, इस से उनका ऐश्वर्य और भी बढ़ रहा था। अतएव हिन्दू समाज मे फिर भला उनका प्राधान्य स्थापित न होता तो और किसका होता ? राजा राममोहन राय ने जिस वक्त सती प्रथा दूर कराने के लिए विलियम वेंटिंग के निकट प्रार्थना की थी, उस वक्त इन्हीं कृष्णहरी बाबू ने देश के अन्यान्य हिन्दू धर्मावलम्बियों के साथ मिल कर सती प्रथा क़ायम रखने के लिए विविध चेष्टाएँ की थी। क्यों न हो, ऐसे उच्च कुल में जन्म लेकर यदि यह इस प्रकार की चेष्टा न करते तो और कौन करता ? इस उद्योग में इन के साथ और भी बहुत से लोग शामिल थे। शोभाबाजार के राजा राधाकान्त देव, दीनाजपुर के महाराजाधिराज गाधाकान्त रायबहादुर, सैदाबाद के जगन्नाथ विश्वास के पौत्र महाराज वीरेन्द्रकृष्ण रायबहादुर—इन सभी ने कृष्णहरी बाबू के साथ मिल कर हिन्दू-धर्म की रक्षा के लिए विलियम वेन्टिंग के निकट आवेदन पत्र भेजा था ! परन्तु विलियम वेन्टिंग ने इन लोगों के आवेदन पत्र की पीठ पर अपने हाथ से लिखा था—"महाराज गाधाकांत और उनके दल के सभी लोगों की दरख्वास्त नामजूर।"

कृष्णहरी बाबू की मृत्यु के बाद से उनके पुत्र रामकृष्ण बाबू अब तक अपने पिता के प्रभुत्व की रक्षा कर रहे है। परन्तु रामकृष्ण बाबू को हुगली, वर्द्धमान, बांकुडा और वीरभूम के ग़रीब ब्राह्मण बुरी तरह कोसते है। उन्होंने शायद अनेकानेक ग़रीब ब्राह्मणों का ब्रह्मोत्तर माफ़ी की ज़मीन ज़ब्त कर लिया है। अपने पिता की तरह ब्राह्मण समाज पर इन का भी पूरा आधिपत्य है। द्वारकानाथ ठाकुर विलायत गये थे, इस पर इन्होंने हुगली, वर्द्धमान और बांकुडा के ब्राह्मणों से ठाकुरों के साथ खानपान का व्यवहार छुडवा दिया था। ठाकुरों को भ्रष्ट कह कर ये उन से घृणा करते हैं। विधवा-विवाह के मत का प्रतिपादन करने पर ईश्वरचन्द्र विद्यासागर को इन्हीं रामकृष्ण बाबू की

पार्टी के लोगों ने बिरादरी से बाहर किया था। ये अभी तक जीवित है।

इस प्रकार ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अभ्युदय के साथ ही साथ बङ्गाल में दो प्रतिष्ठित कुलीन घरानों का अभ्युदय हुआ। जगन्नाथ विश्वास के पुत्र पौत्रादि गण कायस्थ समाज के मुखिया हो कर कायस्थों पर प्रभुत्व जमा रहे है, और ब्राह्मण-समाज मे, रामहरी के पुत्र कहे जाने वाले, कृष्णहरी बाबू के पुत्र-पौत्रगण विशेष प्रधानता प्राप्त कर ब्राह्मणों के अगुआ हो रहे हैं।

दुर्भिक्ष

संसार में कुछ भी चिरस्थायी नहीं। कालक्रम से सभी कुछ रूपान्तरित और परिवर्तित होता रहता है। दुख के बाद सुख, सुख के बाद दुख, ज्वारभाटे की तरह क्रम क्रम से उपस्थित होकर मानव-मण्डली को क्रमिक उन्नति के पथ मे परिचालित करते रहते हैं। वर्तमान विपत्ति भावी सम्पत्ति का बीज वपन करती है और सम्पत्तिराशि समय समय पर विपत्ति की ओर खींचती रहती है।

परन्तु जिनके लिए विपत्ति और सम्पत्ति समान हैं, सुख और दुख सभी अवस्थाओ में जिनका भाव एक है, वे उस अविनाशी, अचिन्त्य, मङ्गलमय परमेश्वर की कृपा और करुणा पर निर्भर रह कर निर्भीक चित्त से संसार के समस्त कष्ट क्लेशों को सहन करने में समर्थ होते हैं। जिन्होने अपने को भूल-कर समग्र मानव-मण्डली की सुख-शान्ति के

लिए समाज मे फैले हुए पाप और अत्याचार के साथ अविराम युद्ध करने पर कमर बांधी, उनके लिए नित्य सुख है, नित्य शान्ति है। उनका सुख, उनकी शांति नाश-रहित है। वे चिर-सुखी है। संसार की नाना प्रकार की कष्ट-यन्त्रणायें और विविध प्रतिकूल अवस्थाएं उन्हें कभी परास्त नहीं कर सकती।

दूसरी ओर जिनकी स्वार्थपरता और अर्थलोलुपता के कारण विविध निष्ठुर व्यवहारों और अत्याचारो से संसार परिपूर्ण होता है, जिनका अन्यायाचरण ही संसार में व्याप्त शोक-संताप और अशान्ति का एकमात्र मूल कारण होता है, वे कदापि इस संसार में सुख-शान्ति को प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते।

निराश्रय, दुखिनी सावित्री ने अपने पति और भाई को जेल से छुड़वा लिया, उसके समस्त पूर्व-क्लेशों का अन्त होगया, विपत्ति की काली घटा विलुप्त हो गई। आज उसके सुख-सूर्य का क्रमशः विकास हो रहा है।

इधर सुख-सम्पदा की गोद से गिरी हुई सहृदया एस्थार बीबी पति-शोक मे दु सह क्लेश सहन कर रही है। उनका चिरहास्ययुक्त सुन्दर मुखकमल राहु-ग्रसित चन्द्रमा की तरह विषाद की मलीन छाया आवृत्त हो गया है। परन्तु वे पवित्र-हृदया, निर्मल चरित्रा पुण्यवती रमणी है। इस संसार में उन्हे अधिक दिनों तक कष्टभोग नहीं करना पडेगा। उनका दुख क्षणस्थायी है, शीघ्र ही उसका अन्त होने वाला है। उनकी क्रन्दनध्वनि ने मङ्गलमय पिता के कानों मे प्रवेश किया है, जगन्माता की गोद उनके लिए फैली हुई है। शीघ्र ही वे इस पाप और अत्याचार-परिपूर्ण नरक-सदृश बंगदेश का परित्याग कर अमृतमय की अमृतमयी गोद मे आश्रय प्राप्त करेगी।

महाराज नन्दकुमार जब बापूदेव शास्त्री के घर आते और शास्त्री जी उनसे बातचीत किया करते, उस समय रामा वहां खड़ी होकर उनके पारस्परिक वार्तालाप को सुना करती थी।

बापूदेव शास्त्री जब महाराज नन्दकुमार से अपने निज के बाहु बल से मुहम्मद रज़ा खां को पद-च्युत करने के लिए कहते थे तो उसे सुनकर रामा के चित्त में बड़ा आनन्द होता था। युद्ध की बात सुनकर उसका मन प्रसन्न हो जाता था।

कभी-कभी रामा के मन में आता था कि महाराज नन्दकुमार यदि फौज इकट्ठी करके युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए तो समरक्षेत्र में सब से पहिले मैं अपना जीवन विसर्जित करूँगी।

रामा का हृदय वीरोचित भावों से परिपूर्ण था। वह समय समय पर कहा करती थी—"सिर्फ़ तीन आदमी मेरे साथ हों तो मैं कासिमबाज़ार की रेशम की कोठी को गंगा में डुबा सकती हूँ।"

अशिक्षित होने पर भी रामा का हृदय सद्भावों से परिपूर्ण था। क्या उन दिनों, क्या आज, हमने सदा ही यह देखा है कि बङ्गाल में जो लोग शिक्षित कहे जाते है, उनमें घोर स्वार्थपरता भरी रही है। शिक्षित-समुदाय के अधिकांश आदमियो के कामों में स्वार्थपरता, कायरता और नीचाशयता के लक्षण दिखाई देते रहे हैं। परन्तु अशिक्षित रामा के सभी कामो मे आत्मत्याग के भाव वर्तमान थे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

यहां तक इस उपन्यास में जिन लोगों का विशेष रूप में उल्लेख हुआ है, वे प्राय सभी इस समय कलकत्ते में हैं। सिर्फ़ कृष्णानन्द नामधारी नवकिशोर चट्टोपाध्याय, उनके बहनोई शिवदास बन्द्योपाध्याय, हिन्दू समाज के अग्रणी हरिदास तर्क-पंचानन और रामदास शिरोमणि इत्यादि कुछ आदमी अब भी अपने अपने निवासस्थान ही में थे। इनके

सम्बन्ध में कुछ लिखने के पहले, सन् १७६६ ई० के दुर्भिक्ष मे देश की जैसी दुर्दशा हुई थी, और उस समय ईस्ट इण्डिया कम्पनी के प्रधान प्रधान कर्मचारियों तथा नायब सूबेदार मुहम्मद रज़ा खां ने जिस प्रकार का आचरण किया था उसका उल्लेख करते हैं।

दिनो-दिन ईस्ट इण्डिया कम्पनी का आधिपत्य बढने लगा। साथ ही अत्याचार भी बढता गया। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने लार्ड क्लाइव के द्वारा स्थापित वणिक-सभा की कार्य-प्रणाली एवं नमक-व्यापार के एकाधिकार-संस्थापन की नियमावली का समर्थन नहीं किया। भला वह किस प्रकार इसका समर्थन करता? यह तो व्यापार नही एक तरह की डकैती थी। देश का सारा नमक अंगरेज़ लोग बारह आना मन के भाव मे ख़रीद कर देशी व्यापारियों के हाथ उसे पाच रुपया मन के भाव मे बेचते थे, क्या यह डकैती न थी?

कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने नमक के एकाधिकार-संस्थापन की नियमावली को एकदम रद्द कर देने के लिए बारम्बार लिखा। परन्तु इस पर भी कलकत्ते के गवर्नर और कौंसिल ने गोलमाल करके दो बरस तक इस नियम को रद्द नहीं किया। दो बरस के बाद जब कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने देखा कि नमक का व्यापार ये लोग किसी प्रकार दूर नहीं करना चाहते, तब उन्होने दो रुपया मन के भाव में नमक बेचने की आज्ञा दी। इससे पहले अंगरेज़ लोग बारह आना मन के भाव में नमक ख़रीद कर पांच रुपया मन के भाव में बेचते थे। अब वे पाच रुपये के स्थान पर फ़ी मन का दाम दो रुपया लेने लगे।

परन्तु उनकी प्रबल धन-तृष्णा इस से न पूरी हुई। क्लाइव के भारतवर्ष से चले जाने पर, वेरेलस्ट साहब के वक्त से अँगरेज़ो ने धान और चावलों का व्यापार आरम्भ किया।

नवाब अलीवर्दी खा विदेशी व्यापारियों को धान और चावलों के व्यापार मे हस्तक्षेप नहीं करने देते थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि धान से बंगालियो की प्राण-रक्षा होती है, देश अगर धान-चावलों से खाली हो गया तो प्रजा का जीवन दु:साध्य हो जायगा। अतएव उनके शासन-काल में क्या आरमीनियन, क्या पुर्तगीज़, क्या फ़रासीसी, क्या अँगरेज़—धान और चावल के ख़रीदने-बेचने का अधिकार किसी को नहीं था।

परन्तु अंगरेज़ लोग धान के व्यापार का लोभ छोड़ने में असमर्थ हुए। सन् १७६६ ई० के बाद ही से उन्होंने धान का व्यापार आरम्भ कर दिया।

सन् १७६८ ई० में बङ्गाल मे बहुत थोड़ा अन्न उत्पन्न हुआ था। प्रजागण में लगान अदा करने की शक्ति न थी। परन्तु इस साल उनसे कौड़ी गण्डे से चुकता लगान लिया गया। किसानों को अपने अपने घर में बीज के लिए रखा हुआ धान भी बेच डालना पड़ा। प्रजा के घरों में प्रायः बीज का अन्न भी नहीं रहा। इस ओर अंगरेज़ व्यापारी बहुत सा धान ख़रीद-ख़रीद कर अधिकाधिक मूल्य पर बेचने के अभिप्राय से उसे मदरास आदि प्रदेशों में भेजने लगे।

इस के बाद १७६९ ई० में फिर पानी नहीं बरसा। एक ओर किसानों के घर में बीज तक का अभाव था, ऊपर से फिर अनावृष्टि! निदान इस साल १७६८ की अपेक्षा भी थोड़ा अन्न पैदा हुआ। प्राय: सभी खेत एक तरह से खाली ही पड़े रहे। कलकत्ते के गवर्नर ने दुर्भिक्ष की आशंका से फौज आदि के लिए पहिले ही से काफ़ी चावल ख़रीद कर रख लिया। सैनिकों की प्राण-रक्षा होने पर ही उनका न्यायसङ्गत व्यापार चल सकता था। देश के निवासियों के लिए कौन चिन्ता करता?

जो थोड़ा-बहुत अन्न उत्पन्न हुआ था, उसे बेचकर किसानों ने अपना-अपना लगान अदा किया। कार्टियर साहब इस समय कलकत्ते के गवर्नर थे। उन्होंने कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को लिखा—"कोई चिन्ता नहीं, अनावृष्टि के कारण देश मे अधिक अन्न न उत्पन्न होने पर भी लगान के वसूल होने मे कोई बाधा नहीं पड़ेगी।"

परन्तु साल का अन्त होते-होते भयानक दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। सारे बंगाल में हाहाकार मच गया। हज़ारों स्त्री-पुरुष, हज़ारों बालक-बालिकाएं दिनों दिन मृत्यु के मुंह मे पतित होने लगे। बंगाल एक दम श्मशान बन गया!

इक्कीसवाँ परिच्छेद

भीषण दृश्य

Dire scenes of horror, which no pen can trace,
Nor rolling years from memory's page efface.

बंगाल मानो राजा से शून्य है! बंगाल में इस समय कोई प्रजावत्सल राजा नहीं। इन दुर्भिक्ष पीड़ितों को जो एक मुट्ठी भी अन्न देकर इन के प्राण बचावे, ऐसा एक भी आदमी नज़र नहीं आता।

राज्य-शासन का भार उस मुहम्मद रज़ा खां के हाथों में है, जो राजमहल के भीतर सुन्दर सेज पर निश्चिन्त पड़ा रहता है। कभी स्वप्न में भी प्रजा की दुरवस्था का चिन्तन नहीं करता। इस दुष्ट के हृदय में

दया-धर्म का लेशमात्र भी नहीं, निर्दयी का नाम लेते भी हृदय शंकित होता है।

देश मे अनेक धनी बसते हैं; परन्तु इस बार उन धनिकों में भी कुछ करने की सामर्थ्य नही। क्या किसान, क्या धनी, क्या गरीब, क्या अमीर, किसी के घर में अन्न नही। धनिकों के यहां काफी रुपया है, काफी सोना है, काफी मोहरें हैं; परन्तु देश में खरीदने को चावल नहीं मिलता। अतएव अमीर, गरीब, किसान, ज़मींदार सब की दशा एक है। सभी कह रहे हैं—"माता अन्नपूर्णा, अन्न के बिना प्राण जाते हैं, माता अन्न दीजिये।" "अन्न—अन्न—अन्न" सब के मुंह से यही चीत्कार सुनाई पडता हैं। कहा जांय तो अन्न मिलेगा,—सब के चित्त में यही चिन्ता उत्पन्न हो रही है।

देश का बहुत सा अन्न खरीद कर अङ्गरेज़ व्यापारियों ने कलकत्ते में रख छोडा है। पुनिया, दीनाजपुर, बाकुडा, वर्द्धमान इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के कितने ही निवासी कलकत्ते को रवाना हुए। गृहस्थो के घर की कुलाङ्गनाएं अपने-अपने बच्चों को छाती मे चिपटा कर कलकत्ते की ओर चलीं। आह ! जिन्होने कभी चन्द्र-सूर्य का मुंह नहीं देखा, जिन्होने कभी घर के बाहर पाव नही रखा, आज वे ही कुलवधुएं बच्चों को गोद में दाब कर भिखारिणी के भेष में कलकत्ते को रवाना हुई। स्वर्ण-मुद्राएं तथा विविध प्रकार के बहुमूल्य आभूषणों को अपने-अपने अंचल मे बाध कर एक मुट्ठी अन्न मोल मिल जाने की आशा से घरबार छोड चलीं।

परन्तु इनमें से बहुतेरी कलकत्ते तक पहुँच भी न सकीं। सैकड़ों सुन्दरी कुलांगनाएं, सैकडों हट्टे-कट्टे पुरुष भोजनों के बिना रास्ते ही में प्राण खो बैठे। सन्तान-वत्सला माता ने सन्तान को छाती से चिपटा कर कलकत्ते की यात्रा की; परन्तु लघनों के कारण सन्तान का दू

निकल गया, माता की गोद सूनी होगई। सन्तान-शोक और भूख-प्यास की पीडा से व्यथित हो कुछ ही देर में माता ने भी अपनी मानव-लीला समाप्त की।

भ्रान्त स्त्री-पुरुषों! व्यर्थ आशा में भूल कर तुम कलकत्ते जा रहे हो। जो चावल कलकत्ते में जमा है, वे तुम्हें नहीं मिलेंगे। तुम मरो तो क्या और जियो तो क्या? तुम्हारे लिए कौन चिन्ता करे? आज क्या भारत में प्रजावत्सल राजा रामचन्द्र हैं? क्या उदारचेता बादशाह अकबर हैं? अर्थलोलुप लोग क्या कभी प्रजा के कल्याण की कामना करते हैं? उनके सैनिकों की प्राण-रक्षा हो यही उनके लिए काफ़ी है। वहां तो सैनिकों के लिए चावल संग्रहीत हैं। उनके प्राण बड़े मूल्यवान हैं। वे मर जायँगे तो मानव-मण्डली की स्वाधीनता के मूल में कुठाराघात कौन करेगा? कौन मुहम्मद रज़ा खां जैसे नरपिशाच के एकाधिपत्य का संरक्षण करेगा?

कृषकगण! तुम किस उम्मीद पर कलकत्ते जा रहे हो? तुम देश के अन्नदाता हो सही, पर तुम्हें कोई एक मुट्ठी अन्न नहीं देगा। ये देखो अमीरों के घर की कुलांगनाएँ सोने की मोहरें अपने अपने खूंटों में बांध कर चावल ख़रीदने के लिए कलकत्ते जा रही हैं। इन्हें शायद मिल जाय तो मिल भी जाय, इनकी गाठ में रुपया है। पर बिना दामों के ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारीगण किसी को एक दाना भी नहीं देंगे। कृषकगण! तुम घर लौट जाओ। तुम्हारे दीर्घ-जीवन का इस अवश्य ही अन्त आगया है। तुम इस संसार को छोड जाओ, अच्छा है। परमेश्वर अपनी अमृतमयी गोद में तुम्हें स्थान प्रदान नर-पिशाचों से परिपूर्ण इस श्मशान-सदृश वङ्गदेश में रह कर सुख-शांति लाभ नहीं कर सकते।

❀ ❀ ❀

विकराल दुर्भिक्ष उपस्थित है। दुर्भिक्ष-पीडित स्त्री-पुरुषों से दिनोंदिन कलकत्ते के मार्ग और घाट परिपूर्ण हो रहे हैं। गंगा के उस पार सैकडों नर-नारी अन्न के लिए हाहाकार कर रहे हैं। उनके आर्त्त-नाद को सुन कर गंगा अपनी कलकल ध्वनि में कह रही है—"मेरी छाती पर तुम्हारा श्मशान निर्मित हो रहा है, दुख और संताप का परि-त्याग करो, तुम्हारे समस्त क्लेशों, सारी यंत्रणाओं का अन्त हो जायगा। मैं तुम्हें अपने वक्ष में स्थान प्रदान करूंगी।"

भूख से व्याकुल हो हज़ारों आदमी मृत्यु के मुख में पतित होने लगे। गंगा की धारा उनके मृत शरीरों को बहा कर बंगसागर की ओर ले चली।

सैकडों माताएं अपने मृत बालकों को छाती में चिपटाये गंगा के उस पार अचैतन्य पडी हुई हैं। अभी उनके प्राणों का अन्त नहीं हुआ है, पर डोम और मेहतर उन्हें जीवित अवस्था में ही अन्यान्य मृत शरीरों के साथ गंगा में फेंक रहे हैं।

कहीं-कहीं कुछ लोग क्षुधा की वेदना में हिताहित को भूल कर वृक्षों की पत्तियां चाब रहे हैं। गंगा के किनारे स्थित बरगद के वृक्ष में एक पत्ता नहीं रहा। पेड़ के पेड़ पत्तों से सूने हो गये हैं।

शहर के भीतर सैकड़ों दुर्भिक्ष-पीड़ित स्त्रियां मारी मारी फिर रही हैं, बहुतेरी एक मुट्ठी अन्न के लिए अपनी गोद के बच्चों को बेंच डालने के लिए तैयार हैं। घोर दुर्भिक्ष ने माता के हृदय का स्नेह-शून्य कर डाला, नर-नारियों को राक्षस बना दिया।

पर-पीड़ा से पीडित बापूदेव शास्त्री प्रति दिन प्रातःकाल गंगा स्नान करने आया करते थे। इस भयानक दुर्दशा को देख-देख कर

उनका हृदय फटने लगता था। स्त्री-पुरुषों पर यह दारुण दुख देख कर वृद्ध ब्राह्मण कभी कभी मूर्छित हो गिर पड़ता था।

जो ब्राह्मण-कुलांगनाएँ शूद्र का छुआ पानी पीने में घृणा करती थी आज उन्हे शूद्र का जूठा अन्न मिल जाता है तो बड़ी खुशी से खा लेती हैं।

इनकी दुर्दशा देख कर बापूदेव का हृदय बहुत ही व्यथित हुआ। एक दिन उन्होंने चार-पांच छपरा अन्न लाकर गंगा के पार इन दुर्भिक्ष-पीडितों में बांटना शुरू किया। परन्तु बडी आफत आई! अन्न बँटता देख कर चारों ओर से कोई दो तीन सौ आदमी दौड़े आये। प्रत्येक ही एक दूसरे को पीछे ठेल-ठेल कर स्वयं बापूदेव के पास पहुँचने की चेष्टा करने लगा। विष्णुपुर की दो-तीन भले घरों की स्त्रियां अन्यान्य लोगों के पावों के नीचे कुचल कर मर गईं। वे बेचारी भी दो दानों के लिए बापूदेव के पास जा रही थीं। पीछे से जो लोग दौड़े आ रहे थे उन्होंने इन्हें धक्का दिया वे ज़मीन पर गिर पडी और सैकडों आदमी इनकी छाती पर पाव रखते हुए निकल गये। इसी दुर्दशा में उनकी मृत्यु हो गई!

सारा अन्न बँट चुकने के बाद सैकडों आदमी बापूदेव के पास आ-आकर अन्न मांगने लगे। इस भीड-भाड़ और घमाघसी में पड कर बापूदेव को अपने प्राण बचाना कठिन हो गया। रामा उनके साथ थी। वह भीड को हटा कर वृद्ध ब्राह्मण के प्राण बचाने की चेष्टा करने लगी। परन्तु वृद्ध ने अपनी विपत्ति की कुछ परवाह न की, किन्तु इसी चिन्ता में आंखों से आंसू बहाने लगा कि इन सैकडों आदमियों को मैंने तनिक भी अन्न न दे पाया। कोई पांच सौ मनुष्यों ने जब दुबारा "अन्न दो—अन्न दो" कहते हुए वृद्ध का पीछा पकड़ा तो वृद्ध ने आखों से आंसू बहाते हुए अपना दाहिना हाथ बाहर निकाल कर कहा—"मेरे इस हाथ

का भक्षण कर लेने से यदि तुम्हारी क्षुधा शान्त हो तो मैं यह हाथ तुम्हें दे सकता हूँ। परन्तु अन्न अब मेरे पास नहीं है, मैं ग़रीब ब्राह्मण हूँ।"

ब्राह्मण के इन कातर वचनों को सुन कर सब लोग चले गये। भीड़ कम हुई, कोलाहल शान्त हुआ। बापूदेव ने देखा कि अन्न देते वक्त दो भद्र महिलाएँ और आठ नौ बालक-बालिकाएँ लोगों के पावों से कुचल कर मर गई है।

बापूदेव घर की ओर चले। थोड़ी दूर जाकर देखा कि रास्ते के किनारे पर एक स्त्री पड़ी हुई है। उसकी छाती से चिपटा हुआ एक दो बरस का बालक लगातार मातृ-स्तनों को चूस रहा है। माता के स्तनों में दूध नहीं है। दूध के स्थान पर स्तन से रक्त निकल रहा है और बूंद बूंद रक्त बालक के मुंह मे प्रवेश कर रहा है।

बापूदेव ने जैसे ही बालक को उठाया, उसकी माता चौंक पड़ी। शास्त्री महाशय इस स्त्री को साथ ले घर की ओर चल दिये। परन्तु थोड़ी कुछ दूर आगे चल कर बड़ा भयानक दृश्य देखा, यह क्या भीषण दृश्य— यह कहते हुए शास्त्री जी मूर्छित हो पृथ्वी पर गिर पड़े।

वास्तव में यह दृश्य भीषण ही है। परन्तु दरिद्रता और अन्न कष्ट क्या मातृ-हृदय को इस प्रकार स्नेह-शून्य कर सकता है? क्या दारिद्र-दुख मे मनुष्य सचमुच ही मनुष्यत्व को भूल जाता है? यदि ऐसा है, तब तो दरिद्रता ही सारे पापों का मूल कारण है। तब तो मानव-समाज में जब तक दरिद्रता रहेगी, तब तक पाप-ताप, शोक दुख संसार में बने ही रहेंगे। दरिद्रता क्या मनुष्य को राक्षस-प्रकृति बना देती है? दरिद्रता क्या मनुष्य को पिशाच बना डालती है? उफ़! यह क्या भीषण दृश्य! जननी अपनी गोद में स्थित मृत सन्तान का मांस भक्षण कर रही है!

मातृ-स्नेह की संसार मे कोई सीमा नहीं कही जा सकती। प्रशात महासागर भले ही शुष्क हो जाय, परन्तु माता का हृदय कभी स्नेह-रस से रिक्त नहीं होता। पर हा! प्रशात महासागर की अपेक्षा कहीं अधिक विशाल और गम्भीर मातृ-हृदय भी आज स्नेह-रस से शून्य हो गया!

दुर्भिक्ष के दुख में, क्षुधा की वेदना मे, जब माता का हृदय ही स्नेह-शून्य हो सकता है, तब इस ससार के अन्यान्य स्नेह, अन्यान्य प्रेम सभी वृथा है, सभी असार है। सम्पद् काल मे लोगों का स्नेह-प्रेम, लाड-प्यार सभी कुछ सुरक्षित रहता है, परन्तु विपद् काल में इन सब का कूच हो जाता है। तो क्या इस ससार का सारा स्नेह प्रेम सिर्फ अवस्था पर निर्भर रहता है? नहीं—कभी नहीं—मातृ-स्नेह, साध्वी जननी का प्रेम कभी नष्ट नही होता। यह भीषण दृश्य समग्र मानव-मण्डली की जीवनावस्था पर घटित नही हो सकता।

पाठक! इस भीषण दृश्य की बात को छोडिये। चलिये, एक बार कलकत्ते के आरमीनियन मुहल्ले मे चले। एस्थार बीबी जिस छोटे से इकतल्ला घर में मृत्युशय्या पर पडी हुई हैं, वहा चलिये। आप देखेंगे कि क्या दुख, क्या दारिद्र, कोई भी कारण साध्वी के प्रेम को, जननी के स्नेह को, नष्ट नही कर सकते।

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

दुर्भिक्ष के कारण कलकत्ते में चावलो का मूल्य दस गुना बढ गया है। सावित्री और प्रमदा देवी एस्थार बीबी को जो थोड़ा सा रुपया दे पाती हैं, उससे उनका सब ख़र्च पूरा नही पडता।

एस्थार बीबी, बदरुन्निसा और एस्थार बीबी के दो पुत्र आज कल दोपहर को सिर्फ एक बार भोजन पाते हैं, सबेरे और शाम को उन्हें भोजन नही जुडता।

पुत्रों को भोजनों का कष्ट देख देख कर सन्तान-वत्सला एस्थार का हृदय फटा जाता है। वह स्वयं कुछ भी नहीं खाती हैं, अपने हिस्से के चावल अलग रख छोड़ती हैं। तीसरे पहर उन चावलों को बाट बूंट कर दोनों पुत्रों और माता सदृशी बदरुन्निसां को दे देती हैं।

बदरुन्निसां एस्थार को प्राणों से अधिक प्यार करती थी। वह इस प्रकार एस्थार को निराहार नहीं रहने देती थी। परन्तु बदरुन्निसां के हज़ार आग्रह करने पर भी एस्थार बीबी अपने हिस्से के चावल मुट्ठी भर खाकर, शाम के वक्त गुप्त रूप से अपने दोनों बालकों को खिला देती थी। तीन ही चार लंघनों के बाद वे चारपाई से लग गईं। यह हालत देख कर बदरुन्निसां भी अपने मुंह में कौर नहीं देती थी, और बारम्बार एस्थार से भोजन करने का अनुरोध करती थी; परन्तु एस्थार बीबी उससे कहती थीं—"मां, मैं मर जाऊंगी तो तुम भीख मांग कर भी मेरे इन पुत्रों का प्राण बचा लोगी। परन्तु तुम यदि लंघन करके मर गईं तो मेरे यह बच्चे नहीं जियेंगे।"

बदरुन्निसां ये बातें सुन कर रोने-चिल्लाने लगती थी! वह चाहती थी कि मैं स्वयं भूखी रह कर एस्थार को भोजन कराऊं। परन्तु एस्थार की इच्छा इसके विपरीत थी, वह स्वयं लंघी रह कर बदरुन्निसां के प्राण बचाना चाहती थी।

एस्थार का हृदय बदरुन्निसां की अपेक्षा भी कोमल था। अतएव बदरुन्निसां हज़ार चेष्टायें करके भी एस्थार को भोजन न करा सकती थी। आज एस्थार बीबी मृत्युशय्या पर पड़ी हुई हैं। सावित्री यह हाल सुन कर उन्हें देखने आई है और सिसकती हुई उनकी चारपाई के पास बैठी है।

एस्थार कह रही है—"सावित्री मैं जाती हूँ। मेरे दोनों बच्चे और माता बदरुन्निसां की प्राण-रक्षा हो—ऐसा उपाय करना।"

"मां तुम जाती हो। तुमने माता की भांति मुझे अपने घर में आश्रय दिया था। तुम्हारी बात सुन कर मेरी छाती फटी जाती है।" यह कह कर सावित्री एस्थार के गले लग कर रोने लगी।

एस्थार—मैंने तुम्हें अपनी सन्तान ही की तरह प्यार किया, और तुम भी सन्तान ही की तरह मेरे काम आईं। मृत्युशय्या पर पडे हुए मेरे पति के मुंह मे तुमने पानी डाला था—इसे मैं कभी न भूलूंगी। मुझे इस संसार को छोड जाने में तनिक भी दुख नहीं है। सिर्फ इन दो बच्चों और मां बदरुन्निसा के भविष्य की सोच रही हूं, और इसी सोच में चित्त व्याकुल हो रहा है।

सावित्री—तुम्हें मैं कदापि न जाने दूंगी। जैसे कुछ होगा, तुम्हें बचाऊंगी। यह देखो प्रमदा देवी ने रामा के हाथ तुम्हारे लिए कुछ पथ्य भेजा है। लो, इसे खाओ तो।

प्रमदा देवी का नाम सुन कर एस्थार की आंखों से आंसू बहने लगे। कुछ देर बाद बोली—"प्रमदा देवी बडी दयावान हैं। मैं एक बार उन्हें देखना चाहती हूँ।"

सावित्री—"मा, वह वास्तव में मानवी नहीं, देवी हैं। मै उनसे कहूँगी, वे अभी आकर आप को देख जायँगी।"

एस्थार की बात सुनते ही रामा तुरन्त ही बापूदेव शास्त्री के पास जाकर बोली—"कारापिट साहब की मेम मृत्यु-शय्या पर पडी हैं। प्रमदा देवी को वे एक बार देखना चाहती ।"

बापूदेव कन्या को साथ ले एस्थार के पास आये, प्रमदा देवी को देखते ही एस्थार की आंखों से कृतज्ञता के आंसू बहने लगे।

एस्थार ने कहा—"आपने मेरी और मेरे बच्चों की प्राण-रक्षा की है। मैं आपकी चिर-ऋणी हूं।"

प्रमदा देवी—(आंखों में आसू भर कर) आप थोड़ा सा द
पियें अभी चङ्गी हो जायँगी।

एस्थार—अब मेरे बचने की कोई आशा नहीं।

एस्थार बीबी की यह बात सुन कर प्रमदा देवी की आंखों
तीव्र अश्रु धारा बहने लगी। प्रमदा देवी शब्दों के द्वारा हृदय के भ
को कभी न प्रकट कर सकती थीं, प्रायः अवाक् रह जाती थीं। कि
कभी उन्हें बहुत बातें करते नहीं सुना। उनके हृदय-स्थित, प्रगाढ़
नि स्वार्थ-प्रेम और दया का भाव क्या शब्दों के द्वारा प्रकट किया
सकता है? वैसा स्वर्गीय प्रेम वैसी अपूर्व दया संसार में विरले ही
देखी जाती है और यही कारण है कि मानव-भाषा में हृदय के उस भा
को प्रकट करने के लिए उपयुक्त शब्दों की रचना ही आज
नहीं हुई।

एस्थार बीबी का शरीर क्रमशः अशक्त होने लगा। कण्ठ रु
गया। ज़ोर से सांस चलने लगी।

बदरुन्निसा—बेटी, मुझे छोड़ चली?

एस्थार—(अपने दोनों पुत्रों का हाथ पकड़ कर) इन
बच्चों को तुम्हें सौंपे जाती हूं।

बदरुन्निसा—तुम्हारे बिना मैं इस संसार में कैसे रहूंगी।

एस्थार—मेरे दोनों बच्चों को छाती से लगाओ।

सावित्री—मां! मेरी मां की मृत्यु के बाद आप मेरी मां
थीं। आज किस अपराध पर मुझे छोड़ चलीं? मां, मैं तुम्हें
जाने दूंगी।

एस्थार—(सावित्री के हाथ पर हाथ रख कर) परमेश्वर तुम्हें सुखी रखे, मैं जाती हूँ।

इस प्रकार इन सबको शोकाकुल देख कर प्रमदा देवी अवाक् हो रहीं। दोनों आखों से अविराम अश्रु धारा बहने लगी। मुह की ओर देखने से जान पडता था मानो उनका हृदय विदीर्ण हो रहा है।

इसके कुछ ही देर वाद एस्थार वीवी का गला कतई रुक गया। वात करने की शक्ति न रही। वदरुन्निसा और सावित्री हाहाकार करती हुई राने लगी। इनका आर्त्तनाद सुन कर प्रमदा देवी एकदम अचैतन्य होगईं।

एस्थार वीवी का अन्त समय आ पहुँचा। टकटकी बाधे दोनो बच्चो की ओर देख रही थी। "कारापिट"—वस इतना ही कहते कहते उनकी देह निर्जीव हो गई। पाप और अत्याचार परिपूर्ण नरक-तुल्य बंग-देश का परित्याग कर उनकी निर्मल आत्मा स्वर्ग लोक में जा पहुँची।

हा परमेश्वर! सेनापति मीर मदन की कन्या अतुल ऐश्वर्यशाली आर्मीनियन व्यापारी सामुयल आराटून की पुत्रवधू एस्थार वीवी आज दरिद्रता के कारण निराहार रह कर अकाल ही में काल-ग्रास हुईं। जो प्रतिदिन सैकडो भूखे कगालों को अन्न वितरण किया करती थीं, जिनकी उदारता और दान-शीलता के कारण सैदावाद मे किसी भिखारी को कभी भूखा नहीं रहना पडा था, आज उन्हीं दयावती लक्ष्मी स्वरूपा एस्थार वीवी ने अन्न-कष्ट में प्राण-त्याग किया। धिक्कार है संसार के उन अर्थ-लोलुपों को, जो अपने अर्थ-लोभ के कारण मङ्गलमय परमेश्वर के इस मङ्गलमय राज्य में आये दिन ऐसे हृदयभेदी दृश्य उपस्थित करते हैं!

बापूदेव शास्त्री और मुहम्मद रज़ा खां

एस्थार बीबी की मृत्यु-शय्या के निकट प्रमदा देवी अचैतन्य पड़ी थीं। उनके पिता उन्हें उसी अचैतन्यावस्था में घर लिवा लाये। परन्तु दिनों दिन इन दुर्भिक्ष-पीड़ितों की नाना प्रकार की कष्ट-यन्त्रणाओं की बातें सुन सुन कर उनका हृदय बहुत ही व्यथित होने लगा। रात में उन्हें नींद नहीं आती थी। इस मानसिक कष्ट के साथ ही साथ धीरे धीरे उनका शरीर भी दुर्बल होता गया। बापूदेव ने समझ लिया कि कोमल-हृदया प्रमदा अब अधिक दिन तक इस संसार में न रह सकेगी।

एस्थार की मृत्यु के दो-तीन दिन बाद ही प्रमदा देवी इतनी कमज़ोर हो गईं कि उठने की शक्ति न रही। उनके पिता उनकी चारपाई के पार्श्व में बैठे हुए हैं। सावित्री उनके पावों के पास बैठी आंसू बहा रही है।

कुछ देर में प्रमदा देवी ने कहा—"पिता इन दुर्भिक्ष-पीड़ितों का क्लेश दूर करने के लिए कोई उपाय नहीं है?"

शास्त्री—"बेटी, ग़रीब ब्राह्मण हूं, मैं क्या कर सकता हूं!"

प्रमदा—पिता, दादा ने कहा था कि मैंने तुमको और तुम्हारी मां को भेंट के लिए जो आभूषण मोल लिये थे, उनके मूल्य का रुपया जब तुम चाहोगी, मैं दूंगा। मैं उनसे वह रुपया कभी न मांगती; परन्तु यदि इस समय वह रुपया लाकर इन अनाथों के कष्टनिवारण की चेष्टा की जाय तो अच्छा हो न?

शास्त्री—तुम्हारी इच्छा हो तो तुम उनसे वह रुपया मांग सकती हो, परन्तु मै स्वयं इस विषय में नन्दकुमार से कुछ नही कहना चाहता।

प्रमदा—तो उन्हें बुलवा लीजिये।

बापूदेव शास्त्री ने महाराज नन्दकुमार को बुलाने के लिए आदमी भेजा। परन्तु उस आदमी ने लौट कर कहा कि "महाराज बुलाकीदास के यहां गये हैं। सेठ बुलाकीदास की मृत्यु हो गई है, उनकी सम्पत्ति के विषय मे उनकी स्त्री और गङ्गाविष्णु मे झगड़ा हो रहा है।"

प्रमदा देवी को यह मालूम ही था कि उन आभूषणों की क़ीमत के बावत बुलाकीदास ने महाराज नन्दकुमार को एक तमस्सुक लिख दिया है। परन्तु बुलाकीदास की मृत्यु का संवाद सुन कर वे सोचने लगी कि अब उन आभूषणों की कीमत का रुपया शायद नही मिलेगा, अतएव उस रुपये से उन्होंने मन ही मन दुर्भिक्ष पीड़ितो की सहायता करने का जो निश्चय किया था वह उन्हें त्याग देना पड़ा। चित्त में बड़ा क्लेश हुआ।

कुछ देर सोच-विचार कर प्रमदा देवी ने कहा—"पिता, इस से पहिले भी कभी इस देश में दुर्भिक्ष पड़ा था?"

बापूदेव—अनावृष्टि अथवा किसी अन्य दैवी दुर्घटना से समय-समय पर दुर्भिक्ष पड़ा ही करता है। परन्तु इस प्रकार की भयानक शोचनीय अवस्था और भी कभी इस देश में उपस्थित हुई हो,—यह मैं नहीं कह सकता।

प्रमदा—पहिले जब कभी दुर्भिक्ष पड़ा होगा तो शायद देश के धनवान आदमियों ने ग़रीबों की प्राण-रक्षा की होगी।

बापूदेव—बेटी, दुर्भिक्ष पड़ने पर प्रजा की प्राण-रक्षा के लिए राजा ही को उद्योग करना पड़ता है। परन्तु देश इस समय बिना राजा

का है। मुहम्मद रज़ा खां के ऊपर देश के राज्य-शासन का भार है। वह सिर्फ इसी की चेष्टा में रहता है कि किस प्रकार कम्पनी के आदमियों को घूस दे दिला कर अपने पद की रक्षा करे, और कम्पनी के आदमी सिर्फ इसी का उपाय खोजते रहते हैं कि किस प्रकार इस देश का सारा धन बटोर लें। प्रजा का दुख इस वक्त कौन देखे? देश में प्रजापालक राजा हो तो दुर्भिक्ष में एक भी आदमी का प्राण नाश नहीं हो सकता।

प्रमदा देवी—पिता, तो फिर आप एक बार उस रज़ा खां से लोगों की इस दुर्दशा का हाल कहें। अवश्य ही उसे दया आवेगी।

शास्त्री—बेटी इस संसार में कैसे कैसे आदमी हैं, तुम नहीं जानती, इसी लिए ऐसा कह रही हो। सुना है, रज़ा खां ने बहुत सा चावल ख़रीद कर रख छोड़ा है। भाव और अधिक मँहगा होने पर वह उसे बेचेगा। प्रजा के सुख दुख को वह भला कब देखने वाला है।

प्रमदा देवी—नहीं पिता, लोगों की दुरवस्था का वृत्तान्त सुन कर उसे अवश्य दया आवेगी। भला कहीं ऐसा सम्भव है? मनुष्य मनुष्य का इतना दुख देख सकता है? जिस पर वह देश का राजा है।

शास्त्री—बेटी, रज़ा खां बड़ा निर्दयी आदमी है वह कभी प्रजा की सहायता के लिए तैयार नहीं होगा। मैंने स्वयं एक बार अपने मन में सोचा था कि मुर्शिदाबाद जाकर उससे इस सम्बन्ध में बातचीत करूँ। परन्तु नन्दकुमार से इस विषय में राय लेने पर मैंने समझ लिया कि इससे कोई फल न होगा। जिस पर आज कल तुम्हारी जैसी कुछ अवस्था है, उसे देखते हुए मैं तुम्हें छोड़ कर कहीं न जा सकूँगा।

प्रमदा देवी—पिता, मेरे लिए आप कोई चिन्ता न करें। इन लोगों का कष्ट देख कर मुझे रात को नींद नहीं आती। इसी से मैं दुर्बल हो रही हूँ। आप इसी वक्त मुर्शिदाबाद जाकर उससे सब हाल

कहें। मेरे लिए तनिक भी चिन्ता न करें। सावित्री यहा मेरी सेवा-शुश्रूसा करती रहेगी।

शास्त्री—बेटी, मुहम्मद रज़ा खां से ये सब बातें कहने से कोई फल न होगा। क्यो व्यर्थ ही मुझे उसके पास भेजती हो ?

प्रमदा—नही पिता, आप अभी मुर्शिदाबाद चले जांय, क्षणमात्र की देर न करें। प्रति दिन हज़ारो आदमी मरते जा रहे हैं। पहिले के नवाब तो आपकी राय पर चला करते थे।

शास्त्री—बेटी, तुम कुछ नहीं समझती। रज़ा खां जैसा नर-पिशाच आदमी मेरी बात कभी न मानेगा। शायद घृणा प्रकट करके वह अपने दरवाज़े से मुझे दुत्कार देगा। मुझसे मुलाक़ात तक नहीं करेगा।

बापूदेव शास्त्री ने इससे पहिले भी मुहम्मद रज़ा खां के पास जाने का विचार किया था। इधर प्रमदा देवी ने बहुत ज़ोर दिया। दुर्भिक्ष पीडितो का दुख देख कर वे स्वयं भी बडे दुखी हो रहे थे। निदान बहुत कुछ सोचा-विचारी के अनन्तर अन्त मे उन्होंने मुर्शिदाबाद जाने का ही निश्चय किया। रामा को साथ ले शीघ्र ही मुर्शिदाबाद के लिए रवाना हुए।

रामा अगरेज़ों के भय से भाग कर कलकत्ते आई थी, परन्तु परोपकार का कोई अवसर हाथ आ जाय तो उस समय वह अपने कष्ट की तनिक भी परवाह नहीं करती थी।

बापूदेव की अवस्था अस्सी बरस से अधिक हो चुकी है। परन्तु आज भी उनके प्रत्येक कार्य मे यौवनसुलभ उत्साह दिखाई पडता है। कलकत्ते से चल कर पांच सात दिन में वे मुर्शिदाबाद पहुंच गये। रास्ते मे सैदाबाद और कासिमबाज़ार के निकटवर्ती ग्रामों की दुरवस्था देख कर बापूदेव की आंखो से आसू बहने लगे। ये घनी आबादी के गांव एक-दम वीरान दिखाई पड़ते थे।

मुर्शिदाबाद के प्रायः सभी लोग बापूदेव को पहिचानते थे। अलीवर्दी ख़ां के ज़माने में मुहम्मद रज़ा ख़ां जैसे सैकड़ों आदमी बापूदेव की कृपा के अभिलाषी रहते थे। अतएव उन्होंने निर्भीक चित्त से मुहम्मद रज़ा ख़ां के पास एक आदमी के द्वारा अपने आने की ख़बर भेजी और मुलाक़ात करने की इच्छा प्रकट की। परन्तु मुहम्मद रज़ा ख़ां ने उनसे मुलाक़ात करने की अनिच्छा प्रकट करते हुए कहला भेजा कि मेरी शारीरिक अवस्था अच्छी नहीं है, इस लिए मिलने में असमर्थ हूं।

मुहम्मद रज़ा ख़ां ने जब इस प्रकार मुलाक़ात करने में असमर्थता प्रकट की तो वृद्ध-ब्राह्मण की कोपाग्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्होंने बड़े गुस्से में आकर मुहम्मद रज़ा खां के आदमी से कहा—"अभी-अभी जाकर अपने मालिक से कहो कि यदि वह अपना भला चाहता है तो इसी क्षण मुझ से मुलाक़ात करे, अन्यथा उसके लिए अच्छा न होगा।"

मुहम्मद रज़ा ख़ां का आदमी वृद्ध-ब्राह्मण के ये वाक्य सुन कर कुछ डर गया, और फौरन ही अपने मालिक के पास जाकर बापूदेव की बात ज्यों की त्यों कह सुनाई।

इस संसार में स्वार्थ-परायण, अर्थ-लोलुप और नीचाशय मनुष्य प्रायः कायर हुआ करते है। सद्-व्यवहार अथवा मीठे वचनों के प्रयोग से इन कायरों को कदापि वशीभूत नहीं किया जा सकता। जब तक भय-प्रदर्शन न किया जाय, ये कभी किसी के साथ सद्-व्यवहार करने को तैयार नहीं होते। जिनके अन्त करण में वीरता का भाव है उनके प्रति सद्-व्यवहार किया जाय तो वे भी दूसरे के साथ सद्-व्यवहार करने को प्रस्तुत हो जाते हैं। परन्तु कायरों को भय दिखाने ही पर वे विनीत-भाव का अवलम्बन करते हैं। मुहम्मद रज़ा ख़ां निहायत कायर आदमी था नौकर की ज़बानी बापूदेव शास्त्री की फटकार सुन कर बहुत डर गया कि सम्भव है, कलकत्ते के गवर्नर अथवा कौंसिल के मेम्बरों के साथ बापूदेव

शास्त्री का मेलजोल हो—यह सोच कर तुरन्त ही नौकर के द्वारा उसने शास्त्री जी को अपने कमरे में बुला भेजा।

बापूदेव जैसे ही कमरे मे घुसने लगे, रज़ा खां ने बड़े आदर और नम्रता के साथ उन मे बैठने के लिए कहा।

बापूदेव बैठ गये और कहने लगे—"महाशय आपके हाथों मे इस वक्त राज्य-शासन का भार है। प्रजा की जो दुर्दशा हो रही है, क्या उसकी आपको तनिक भी चिन्ता नहीं ?"

रज़ा खां—पण्डित जी ! शारीरिक अवस्था के कारण दो-तीन महीने से मैं बडे कष्ट में हूँ—कहिये, प्रजा की दुर्दशा का कोई समाचार तो मैंने सुना नही, हां मालगुज़ारी वसूल होने में इस साल ज़रूर बडी अडचन पड रही है।

शास्त्री—देश में घोर दुर्भिक्ष उपस्थित है। दिन रात हज़ारो आदमी मरते जा रहे है, क्या आप यह नहीं देखते ?

रज़ा खां—तो शायद इसी लिए मालगुज़ारी वसूल होने मे बाधा पड रही है। किस उपाय से मालगुज़ारी वसूल होगी, अभी तक कुछ निश्चय नही कर सका हूँ।

शास्त्री—तुम्हें सिर्फ मालगुज़ारी वसूल करने की चिन्ता है। देश उजाड हो रहा है, उसकी कोई फिक्र नही ?

रज़ा खां—पण्डित जी ! मनुष्य की मौत के लिए मैं क्या करूंगा ! खुदा की मर्ज़ी। मैं किसी की उमर तो नही बढ़ा सकता।

शास्त्री—देश के आदमी भूखों मर रहे हैं, उनके भोजनों का कोई प्रबन्ध तुमसे नहीं होता ?

रज़ा खां—इतना सामर्थ्य मुझ में कब है कि मैं सारे देश को भोजन दे सकूं ?

शास्त्री—तुम इस वक्त बङ्गाल के नायब सूबेदार हो। प्रजा
जिससे प्राण-रक्षा हो, उसकी चेष्टा तुम्हीं को करनी चाहिये।

रज़ा खां—महाशय, मैं किस प्रकार प्रजा की प्राण-रक्षा कर
सकता हूँ। मालगुज़ारी की वसूली के लिए ही परेशान हो रहा हूँ।
तिस पर तीन महीने से बीमार हूँ। इतना भी सामर्थ्य नहीं कि गल्ले
की प्राप्ति के लिए कुछ उद्योग करूं। अब क्या मुझे इसकी चिन्ता भी
अपने जिम्मे लेनी पड़ेगी कि कौन मरता है कौन जीता है?

शास्त्री—तुम मेरी बात सुन कर शायद कुछ नाराज हो गये
परन्तु तुम्हारे जैसे घृणित मुसलमान कुलाङ्गार से मैं नहीं डरता। नाराज
होने की जरूरत नहीं, मैं पूछता हूँ,—तुम प्रजागण की प्राण-रक्षा के लिए
कुछ करोगे या नहीं?

हम पहिले ही कह चुके हैं कि धमकाने फटकारने पर कायर लोग
विनीतभाव अवलम्बन करते हैं। रज़ा खां शास्त्री की बात सुन कर कुछ
भयभीत हो बोले—"पण्डित जी महाराज, क्रोध न कीजिये। मैं शारी-
रिक अस्वस्थता के कारण बड़े क्लेश में हूँ। मुझ में कोई काम काज
देखने की तनिक भी शक्ति नहीं है।"

शास्त्री—काम-काज देखने की शक्ति नहीं है तो तनख्वाह क्यों
लेते हो? रुपया लेते शरम नहीं आती?

रज़ा खां—(अधिक भयभीत हो कर) महाराज, कम्पनी बहादुर
ने मेहरबानी करके जब मुझे यह पद प्रदान किया है तो मैं अवश्य
तनख्वाह लेने का हक़दार हूँ।

शास्त्री—कम्पनी बहादुर शायद अपने घर से तुम्हें तनख्वाह देती
है? सर्वसाधारण प्रजा से जो रुपया वसूल होता है, उसी में से तनख्वाह

पाते हो न? जब ऐसा है तो फिर प्रजा के सुख दुख की ओर कैसे नहीं देखोगे?

रज़ा ख़ां—पण्डित जी महाराज, मैं मानता हूँ कि रुपया दो रुपया दान देने से अवश्य ही पुण्य होता है। हमारे कुरान में भी ऐसा ही लिखा है। सखावत कर मिले तो अच्छा ही है।

शास्त्री—तुम तो बहुत अच्छे सखी हो!

रज़ा ख़ां—तो आप क्या कहते हो?

शास्त्री—अरे नराधम म्लेच्छ! दुर्भिक्ष के समय प्रजा की प्राण-रक्षा करना क्या कोई सखावत है? यह तुम्हारे पितृ श्राद्ध का दान नहीं है, प्रजा के दिये हुए रुपये से ही सारा राज-काज चलाते हो। इस समय वह भूखों मर रही है। उसकी प्राण-रक्षा करना तुम्हारा कर्त्तव्य है। तुम्हारा यह म्लेच्छ हृदय यदि प्रजा की पीड़ा से व्यथित नहीं होता तो अनन्तः यही सोच कर प्रजा के प्राण बचाने की चेष्टा करो कि यदि प्रजा सब मर मिटेगी तो तुम्हारा कर कहां से वसूल होगा?

रज़ा ख़ां—पण्डित महाराज, आपकी यह आखिरी बात मैं मानता हूँ। प्रजागण के मर जाने पर वास्तव में कर नहीं वसूल होगा।

शास्त्री—तो फिर प्रजा की प्राण-रक्षा के लिए चावल बांटने का उद्योग करो। मैंने सुना है, तुमने तीन लाख मन चावल खरीद कर महँगे भाव से बाज़ार में बेचने के लिए गोदाम में बन्द करके रख छोड़ा है। उनमें से कुछ चावल बांटने के लिए कलकत्ते भेजो, अन्यथा तुम अवश्य ही पद-च्युत हो जाओगे।

मुहम्मद रज़ा खां यह अच्छी तरह जानता था कि नवाब अली-वर्दी ख़ां, नवाब मीरकासिम आदि सभी बापूदेव शास्त्री का आदर करते थे। इस लिए वह सोचने लगा कि बापूदेव शास्त्री इस वक्त कलकत्ते में

रह रहे हैं। हो न हो, कलकत्ते के गवर्नर और कौंसिल के मेम्बर भी इनका यथेष्ट सम्मान करते हैं। ऐसी दशा में यदि मैंने इनकी बात न मानी तो ये कलकत्ते के गवर्नर से मुझे पद-च्युत कर देने का अनुरोध करेंगे।

कायर रज़ा ख़ां मन ही मन ऐसा सोच कर पचास हज़ार मन चावल कलकत्ते भेजने पर राज़ी हुआ। दुर्भिक्ष-पीडितों की प्राण-रक्षा के लिए तुरन्त ही ये चावल कलकत्ते रवाना कर दिये गये।

परन्तु ईस्ट इण्डिया कम्पनी के गवर्नर और कौंसिल के मेम्बरों का घृणित व्यवहार देखो कि दुर्भिक्ष-पीडितों को मुफ्त बांटने के लिए जो चावल भेजे गये, उन्हें बहुत महँगे भाव मे बेच कर वे रुपया इकट्ठा करने लगे।* यही तो खीष्टधर्मावलम्बी महात्माओं के लिए समुचित व्यवहार था! जब विलायत वालो को यह बात मालूम हुई तो ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारी गण नि:सङ्कोच कह उठे—"बङ्गाली गुमाश्तों की जात से यह काम हुआ।" परन्तु डाइरेक्टरों को इसका पता लग गया कि हमारे उच्च पदस्थ अंगरेज़ कर्मचारियों ने ही यह सब कुछ किया था। सारा दोष बंगालियों के मत्थे मढ़ कर वे सिर्फ अपने को निर्दोष सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं।

---

*Vide Note (74) in the appendix.

स्वर्गारोहण

दुर्भिक्ष-पीड़ितों की सहायतार्थ मुर्शिदाबाद से चावल रवाना हो जाने के बाद बापूदेव शास्त्री कलकत्ते वापस आये। उनकी अनुपस्थिति में प्रमदा देवी की शारीरिक अस्वस्थता क्रमशः बढ़ती गई थी। शास्त्री जी जब कलकत्ते पहुँचे तो देखा कि प्रमदा के जीवन की कोई आशा नहीं है। एक दो दिन के भीतर ही वह इहलोक से प्रस्थान करेगी।

बापूदेव शास्त्री के मुर्शिदाबाद जाने के बाद महाराज नन्दकुमार उनके घर आये थे। प्रमदा की शारीरिक अवस्था देख कर उन्हें अत्यन्त दुख हुआ। बापूदेव की अनुपस्थिति के दिनों मे वे प्राय हर रोज़ ही तीसरे पहर के वक्त एक बार आकर प्रमदा को देख जाते थे, किसी-किसी दिन दो दफ़े भी आते थे।

बापूदेव के कलकत्ता पहुँचने के दूसरे दिन सवेरे प्रमदा देवी की अस्वस्थता बहुत बढ़ गई, शरीर अशक्त हो गया। बात करने की ताक़त न रही। शास्त्री जी महाराज, नन्दकुमार, सावित्री, रामा, सावित्री के पति और भाई एवं मदनदत्त सभी उद्विग्न चित्त प्रमदा की चारपाई के आस पास बैठे है। सब चुप हैं, किसी के मुंह मे बात नहीं। सावित्री की आंखों से अविराम अश्रुधारा बह रही है।

प्रमदा देवी कभी-कभी अचैतन्य होकर प्रलाप करने लगती हैं, कभी तनिक होश आ जाता है तो पिता से दुर्भिक्ष-पीड़ितों के दुखों का हाल पूछने लगती हैं।

प्राय. दो घण्टे बीत गये, प्रमदा देवी बिलकुल चुपचाप अंधेरे पड़ी हुई हैं। नींद अच्छी तरह आती ही न थी। अनिद्रा के कारण ही उनकी यह दशा हुई है। प्रायः चार-पांच वरस हो गये, सर्व साधारण के दुख-दारिद्रय की अवस्था का चिन्तन करते रहने के कारण उन्हें रात को सँभल कर नींद कभी नहीं आई। इसी असह्य चिन्ता के कारण उनका शरीर जीर्ण हो गया और उनकी आयु का अन्त समीप आ पहुँचा। दो घण्टे के बाद होश आने पर प्रमदा ने जल पीने की इच्छा प्रकट की। पिता ने बूंद-बूंद करके मुंह में जल डालना शुरू किया। जल पीकर प्रमदा कहने लगी—

"पिता, कब तक संसार मे इन लोगों का दुख दूर होगा! ओह! हलधर की कन्या पर कैसी विपत्ति पड़ी थी!"

बापूदेव—बेटी इन सब बातों की चिन्ता करने-करते तुमने अपना शरीर बरबाद कर लिया। कुछ दिनों के लिए अब यह चिन्ता छोड़ दो।

प्रमदा—पिता हज़ार चेष्टायें करने पर भी मेरे चित्त से ये चिन्ताएं दूर नहीं होतीं। दिन-रात में किसी समय भी यह मेरे हृदय से विस्मृत नहीं होती। भुलाना चाहती हूँ, पर फिर याद आ जाती है। पिता, कब तक इस दुर्भिक्ष का अन्त होगा?

बापूदेव—दुर्भिक्ष सदा नहीं बना रहेगा। अगले साल फसल अच्छी होते ही लोगों का सब दु.ख दूर हो जायगा।

प्रमदा – पिता, परमेश्वर मङ्गलमय है, परम दयालु है। तथापि लोगों का यह दुख देख कर उन्होंने कुछ भी नहीं किया, सो क्यों?

बापूदेव—बेटी, तुम्हारे आरोग्य हो जाने पर फिर किसी वक्त मैं तुम्हें ये सब बातें समझाऊंगा। परमेश्वर वास्तव में मङ्गलमय हैं, परम दयालु हैं। परन्तु इस वक्त तुम्हें ये सब बातें समझाने का अवसर नहीं है।

प्रमदा—पिता, मैंने निश्चय समझ लिया है कि मैं अब आरोग्य नहीं होऊंगी। ऐसा जान पड़ता है कि आज कल ही के भीतर मुझे यह संसार छोड़ देना पड़ेगा। आपको जो कुछ समझाना हो इसी वक्त समझा दें।

बापूदेव—बेटी! इस स्वार्थमय संसार में प्रत्येक मनुष्य को अपने कु-कर्म का फल भोगना पड़ता है। जब तक वह स्वार्थ-परता से शून्य नही होता और आत्मत्याग को स्वीकार नही करता, तब तक वह इस संसार मे पूर्ण सुख स्वच्छन्दता प्राप्त नही कर सकता। मनुष्य दूसरे के दुखो की ओर दृष्टिपात न करके सिर्फ अपने सुख की खोज में तल्लीन रहता है। परन्तु इस मार्ग का अवलम्बन करके अन्त मे उसे दुख ही भोगना पड़ता है।

प्रमदा—पिता जो लोग ज्यादा उमर के हैं समझदार हैं, जिनमें भले बुरे को पहिचानने की शक्ति है उनके विषय में माना कि वे अपने अपने कर्मो का फल भोग रहे है, परन्तु इन बेचारे एक-एक दो-दो बरस के बालकों का दुख दूर करने के लिए परमेश्वर ने कोई उपाय क्यों न किया? ये तो अभी कर्म-कुकर्म कुछ जानते ही नहीं।

इतने में प्रमदा फिर बेहोश हो गई। पिता के मुंह से इस प्रश्न का उत्तर न सुन सकी। अज्ञानावस्था मे इस प्रकार प्रलाप करने लगी—"आहा! हलधर का निराश्रय बालक, यह भी नहीं जानता कि मेरे माता पिता कौन थे। आह एस्थार बीबी—कैसी पवित्र आत्मा—अन्न के बिना—भोजनो के बिना चल बसी—सावित्री—! आह! इस दुखिनी ने कैसा क्लेश पाया!—दादा के मुर्शिदाबाद से लौट कर आने के पहिले ही यदि मेरी मृत्यु न होगई तो मैं उनसे अपने समस्त आभूषणों के मूल्य का रुपया एस्थार बीबी के दोनो बच्चों के भरण-पोषणार्थ दे देने के लिए

कहूँगी—हाय, कितने मृत शरीर गङ्गा में बहते जा रहे हैं—दादा को यदि रुपया देना है तो इसी वक्त दे—जिससे सैकड़ों आदमियों को अन्न मिले।"

प्रलाप में इस प्रकार की अनमिल बेजोड़ बातें कहते कहते प्रमदा फिर निस्तब्ध हो गई। सांस ज़ोरों से चलने लगी।

महाराज नन्दकुमार इस वक्त भी उनकी चारपाई के पास बैठे हुए हैं। प्रमदा देवी के निस्तब्ध हो जाने पर उन्होंने शास्त्री जी से कहा—"गुरुदेव! प्रमदा को उपहार स्वरूप प्रदान करने के लिए मैंने जो आभूषण खरीदे थे, वे बुलाकीदास की दुकान से खो गये। प्राय: चार-पांच बरसें हुईं। बुलाकी ने उन आभूषणों के मूल्य की बाबत मुझे ४८०२१ रुपये का एक तमस्सुक लिख दिया था। आज लगभग एक साल हुआ, बुलाकी की मृत्यु होगई। मृत्यु से कुछ देर पहिले उसने मुझे अपने घर बुलवाया था और कहा था कि आप मेरे कम्पनी के कागज़ों (Company's Bonds) को बेच कर अपने तमस्सुक का पावना रुपया वसूल करलें। पांच-छ: महीने हुए, वह मुझे मिल गया है। आप वह सब रुपया लेकर दुर्भिक्ष-पीडितों को अन्न वितरण करें। वह सारा रुपया प्रमदा का है। प्रमदा जिस शुभकार्य में उसे खर्च करने के लिए कह रही है, उसी में उसे खर्च करना उचित है।"

यह कह कर महाराज नन्दकुमार गुरु-चरणों में प्रणाम कर अपने स्थान को चले गये। उनके जाने के आध घण्टे बाद प्रमदा देवी फिर जाग्रत हो प्रलाप करने लगीं—"अर्थ-लोभ के लिए क्या मनुष्य मनुष्य को इतना दुःख दे सकता है? आह! हलधर की कन्या—उफ़, कैसी लज्जा की बात है! अर्थलोभी को क्या लज्जा नहीं होती। ओह, कैसे निष्ठुर, निष्ठुर! स्त्रियों को इतना कष्ट देते हैं। हा परमेश्वर! हलधर की निरपराधिनी कन्या। उस दुखिया को अपनी अमृतमयी गोद

स्थान प्रदान कीजिये। यह ससार दुख का आगार है—मां मुझे ले जाओ—पिता मुझे बिदा दो।"

"पिता विदा"—ये शब्द प्रमदा के मुह से निकलते ही बापूदेव शास्त्री आंखों में आंसू भर कर कहने लगे—"बेटी, मैं तुम्हें विदा देता हूँ। इस दुखमय संसार में तुम्हे बडा क्लेश हो रहा है—परलोक में पहुँच कर तुम अपनी माता से मिलोगी—तुम्हारे सब दुख दूर होंगे। तुम्हारी माता परम साध्वी और पुण्यवती थीं। इसी लिए उन्हें तुम्हारा यह दुख न देखना पड़ा।"

"माता"! कैसा मधुर शब्द है! इस दुख-परिपूर्ण संसार में भी माता के श्रीचरण—माता के स्नेहपूर्ण मुख-कमल को देख कर किसका हृदय आनन्द से पुलकित नहीं होता? अतएव "माता"—यह शब्द सुनते ही प्रमदा ने चैतन्य लाभ किया। टकटकी बांध कर पिता की ओर देखने लगीं। मुख-कमल पर किञ्चित हास्य के चिन्ह दिखाई देने लगे। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो माता के दर्शनों की आशा से उनका मन आनन्दित हो रहा है।

इस संसार में प्रमदा देवी की यह अन्तिम जागृतावस्था है। उनके जीवन का अन्त सन्निकट है, उनकी पावन स्वर्गीय आत्मा स्वर्ग जाने को तैयार है।

प्रमदा देवी में बहुत बातें करने की आदत कभी न थी। अन्त समय मे भी उन्होंने फिर और कुछ बातें न कीं। मृत्यु के कुछ देर पहिले से वे परमेश्वर का चिन्तन करने लगी थीं। बीच-बीच में उनके मुंह से "दयामय ईश्वर" यह शब्द निकलता सुनाई पडता था। कुछ देर बाद वे टकटकी बांध कर स्वर्ग की ओर देखने लगीं।

पिता ने पूछा—"प्रमदा क्या देखती हो?"

प्रमदा ने मन्द स्वर में उत्तर दिया—"विश्वमाता को, जननी को, प्राणेश्वर को।"

पिता ने फिर कहा—"प्रमदा तो क्या आज ही मुझे छोड़ चलीं?"

कोई उत्तर नहीं।

वापूदेव ने फिर कहा—प्रमदा! प्रमदा! तुम ऊपर की तरफ क्या देखती हो?

"जननी—प्राणेश्वर—सभी समुज्वल"।

वापूदेव—बेटी, मुझे कब तक इस संसार में रह कर कष्ट भोगना पड़ेगा?

प्रमदा—(बहुत क्षीण स्वर में) शीघ्र ही पुनर्मिलन होगा।

वापूदेव—कब? कहां पुनर्मिलन होगा?

प्रमदा—पिता की अमृतमयी गोद में—अमृतधाम में—स्वर्ग में।

वापूदेव शास्त्री बड़े ज्ञानी पुरुष थे। संसार के दुख शोक में वे कभी अभिभूत नहीं होते थे। परन्तु सन्तान का शोक सम्भवतः किसी से भी सहन नहीं होता। कन्या की बात सुनते ही उनकी आंखों में आंसुओं के बूंद टपकने लगे।

प्रमदा देवी ने पिता के मुंह की ओर देख कर अपना हाथ उठाने की चेष्टा की। ऐसा प्रतीत हुआ कि हाथ उठा कर वे पिता के आंसुओं को पोंछने की चेष्टा करने वाली थीं। परन्तु हाथ उठाने की शक्ति न रह गई थी।

उनके पिता ने स्वयं उनके हाथ को ऊपर उठा लिया। प्रमदा के मुख-कमल पर फिर प्रसन्नता के भाव दिखाई दिये। पिता के चरणों पर हाथ रखते ही आंखें मुंद गईं। पवित्र-हृदया, पर-दुःख-कातरा, पुण्यवती प्रमदा देवी ने पिता के चरणों में प्रणाम कर 'स्वर्गारोहण' किया।

सावित्री, जगदम्बा, अहल्या, रामा आदि हाहाकार कर उठीं। इनके आर्त्तनाद और करुण-क्रन्दन से घर में कोलाहल मच गया। प्रमदा देवी की मृत्यु से आज ये मानो मातृहीन हो गईं।

श्यामा और बाबा कृष्णानन्द

इस घोर दुर्भिक्ष के समय में बंगाल के सभी प्रदेशों में चावल का मूल्य प्रायः दस गुना बढ़ गया था। भिन्न-भिन्न प्रदेशों के भलेमानस ग़रीब ग्रामीणों को बड़े कष्ट से जीवन बिताना पड़ा।

रामदास शिरोमणि सावित्री को श्राद्ध का मन्त्र पढ़ा कर समाज-च्युत होने के बाद से बड़े कष्टपूर्वक जीविका-निर्वाह कर रहे थे। उनकी सहधर्मिणी तथा द्वितीया और तृतीया कन्या की मृत्यु दुर्भिक्ष से पहिले ही हो चुकी थी। इस वक्त उनकी सन्तानों में सिर्फ एक विधवा कन्या श्यामा और बारह वर्ष की सब से छोटी कन्या इन्दुमती ही जीवित हैं।

श्यामा कभी कभी जनेऊ बना कर अपने पिता और छोटी बहिन के भोजनों का प्रबन्ध करती थी, और कभी कभी अपने घर के पड़ोस में रहने वाले एक बालक के द्वारा अपने बाग में पैदा हुए फल-मूल बाज़ार से बिकवा मँगाती थी। इससे जो दो-चार पैसे मिल जाते, उन्हीं से अपने पिता और छोटी बहिन का पालन पोषण करती थी। गांव में रहने वाले दुष्ट लोगों के कु-परामर्श के कारण कोई आसामी उसके पिता की

ब्रह्मोत्तर-जमीन (दान में मिली हुई माफ़ी) का लगान क़तई नहीं देना था।

श्यामा स्वयं एक दिन छोड़कर दूसरे दिन भोजन करती थी। परन्तु पिता और बहिन का कष्ट दूर करने के लिए रात-दिन परिश्रम करती रहती थी। इस घोर दुर्भिक्ष के समय में श्यामा हज़ार चेष्टाएँ करके भी, हज़ार कष्ट सह कर भी, पिता के लिए हर रोज भोजन नहीं जुटा पाती थी। बीच-बीच में एक दो दिन उसके पिता को लंघन करना पड़ता था। वृद्ध शिरोमणि ने इसी क्लेश में इह-लोक से प्रस्थान किया। उनकी मृत्यु के बाद श्यामा अपनी छोटी बहिन के साथ पिता ही के घर रहने लगी।

उसकी छोटी बहिन की अवस्था इस वक्त तेरह बरस की थी। अब उसे यह चिन्ता लगी कि इसका विवाह कैसे हो। शिरोमणि महाशय समाज-च्युत होने के बाद जातवैष्णव हो गये थे। जात-वैष्णवों के दल में ब्राह्मण, शूद्र सभी एक साथ बैठ कर खाते पीते हैं। जातिभेद का कोई विचार नहीं होता। इन जात-वैष्णवों का चरित्र अखाड़े के वैष्णवों से कुछ अच्छा रहा हो सो बात नहीं। क्या जात-वैष्णव और क्या अखाड़े के वैष्णव इन में सच्चरित्र और धार्मिक व्यक्ति प्रायः नज़र नहीं आते थे। शक्ति-सम्प्रदाय के लोगों में ग्राम्य-दलबन्दियों के कारण जो कोई भी समाज-च्युत होता था, वह प्रायः वैष्णव धर्म ग्रहण कर लेता था। इसके अतिरिक्त, सुनार, कोरी, तेली, चाण्डाल इत्यादि नीची श्रेणियों के आदमी ब्राह्मण जैसा उच्च पद प्राप्त करने की आशा से कभी कभी वैष्णव धर्म ग्रहण करके सामाजिक पद-प्रभुत्व लाभ करने की चेष्टा करते थे।

वैष्णवों में इस समय सच्चा धार्मिक भाव दिखाई नहीं देता था। कृष्ण-लीला का बहाना करके ये लोग विविध प्रकार के व्यभिचारों और

कु-कर्मों में लिप्त रहते थे। हिन्दुओं मे विधवा-विवाह प्रचलित न होने के कारण हिन्दू महिलाएं प्राय वैष्णवाश्रम मे प्रवेश कर के अपनी-अपनी कु-वासनाओं को तृप्त करती थी। निदान ये लोग धर्म के नाम पर विविध भांति के असत् कर्म कर के चैतन्य देव के प्रचारित वैराग्य धर्म को एकदम कलङ्कित कर रहे थे।

ये समस्त वैष्णव और वैष्णवी स्त्रिया कहा करती थीं—"जगद्गुरु श्रीकृष्ण ने वृन्दाबन में गोपियो के साथ जो लीलाएं की है, प्रत्येक वैष्णव और वैष्णवी का कर्त्तव्य है कि सम्पूर्ण रूप मे उन्हीं लीलाओं का अनुकरण करें।" इस प्रकार धर्म के नाम पर इन लोगों के द्वारा सभी तरह के कु-कर्म होते रहते थे।

श्यामा वैष्णवों के इन निन्दनीय आचरणों को बडी घृणा की दृष्टि से देखती थी। उसने न चाहा कि मैं जात-वैष्णवो के सम्प्रदाय में किसी के साथ अपनी बहिन का विवाह करू। दिन-रात इसी की चिन्ता में रहने लगी कि किस प्रकार मै अपनी बहिन का विवाह किसी कुलीन सत्पात्र के साथ कर सकूं। बहुत कुछ सोच-विचार कर स्थिर किया कि मेरे पिता के शिष्य नवकिशोर यदि वैष्णवो का अखाड़ा छोड कर फिर मे गार्हस्थ्य धर्म अङ्गीकार कर ले तो मै उन्हीं के साथ अपनी बहिन को ब्याह दूंगी।

श्यामा नवकिशोर को बहुत ही सच्चरित्र समझती थी। वह बिना ही अपराध के समाज-च्युत हुए थे, यह भी उससे छिपा नहीं था। नवकिशोर के प्रति अपने पिता के निर्दय व्यवहार को याद कर मन ही मन श्यामा बडी दुखित होती थी। नवकिशोर ने वैर-प्रतिशोध की इच्छा से प्रेरित हो बाद में श्यामा के पिता को भी समाज-च्युत कराया था, परन्तु इसके लिए वह नवकिशोर को विशेष दोषी नहीं ख्याल करती थी। वास्तव मे सहृदया स्त्रियों के हृदय में स्थित न्याय-परता का भाव पुरुषों

की अपेक्षा हज़ार गुना श्रेष्ठ होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं। वर्तमान समय में संसार के भिन्न भिन्न देशों के नारी-जीवन को रूप से परीक्षा करके देखने पर नारी-हृदय स्वार्थ-परता का आधार पड़ता है। सुसभ्य जातियों में नारी शिक्षा का अभाव हो रहा है। के अभाव और समाज में प्रचलित कु-शिक्षा के प्रभाव ने ही नारी-को ऐसा घृणित बना डाला है।

"यदि नवकिशोर को स्वीकार होगा तो मैं अपनी बहिन ब्याह दूंगी"—मन ही मन ऐसा निश्चय कर एक दिन श्यामा आप ही बाबा कृष्णानन्द (नवकिशोर) के पास गई।

बाबा कृष्णानन्द अब भी उन्हीं बाबा प्रेमदास के अखाड़े रहते हैं। परन्तु अन्यान्य वैष्णवों की तरह वे आज तक कभी व्यभिचारादि कुकर्मों मे लिप्त नहीं हुए। माता की शोचनीय मृत्यु— का स्मरण आते ही उनकी आंखों से आंसू गिरने लगते थे। मातृ- आज भी उनका हृदय जला रहा था। इस प्रकार की शोकाकुल अवस्था चित्त कभी भी कुकर्मों की ओर धावित नहीं होता। अनेक अवसरों शोक और दुख ही मनुष्य को कुकर्मों से बचा रखते हैं। अतएव की दृष्टि से हृदयस्थित शोक और दुख मनुष्य का सच्चा मित्र है, कोई सन्देह नहीं।

बाबा कृष्णानन्द एकान्त में बैठ कर नित्य ही भगवद्गी- श्रीमद्भागवत आदि ग्रन्थों का पाठ किया करते थे। आज तीसरे जिस वक्त वह एक संस्कृत-ग्रन्थ में यह श्लोक पढ़ रहे थे—

" अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तः पार्श्वं गतां छायां नोप संहरति द्रुमः ॥"

अकस्मात इतने में श्यामा उनकी कुटी के द्वार पर आ खड़ी हुई। नवकिशोर जब शिरोमणि की पाठशाला में पढ़ते थे तब ये

बहिन के समान श्यामा का आदर करते थे। श्यामा भी छोटे भाई के समान उन पर स्नेह रखती थी।

कृष्णानन्द (नवकिशोर) श्यामा को अपनी कुटी के द्वार पर खड़ा देख बड़े चकित हुए। मन ही मन सोचने लगे कि शिरोमणि के साथ मेरी शत्रुता रहने के कारण श्यामा शायद मुझ से बात भी नहीं करेगी। किसी और की तलाश में यहां आई होगी भूल से मेरी कुटी के द्वार पर आ गई है।

सरला श्यामा ने उनकी कुटी के भीतर प्रवेश करके कहा—"नवकिशोर, मैं तुझ से एक बात पूछने आई हूँ। मेरे पिता के साथ शत्रुता रहने के कारण मुझे भी अपना शत्रु मत समझना।"

सहृदया श्यामा के इस सरलतापूर्ण वाक्य का प्रत्येक शब्द नवकिशोर के हृदय को मानो विदीर्ण करने लगा। श्यामा को फटा-पुराना वस्त्र पहिरे देख कर वे अपने आसुओं को न सँभाल सके। तुरन्त उसके बैठने के लिए एक कुशासन बिछा दिया। शिरोमणि के साथ शत्रुता करने के कारण श्यामा को मुंह दिखाते हुए उन्हें मन ही मन लज्जा प्रतीत होने लगी।

कुशासन पर बैठने के अनन्तर श्यामा ने कहा—"नवकिशोर, मैं पहिले भी तुम्हें अपने छोटे भाई के समान समझती थी, आज भी तुम्हारे प्रति मेरा वही भाव है; परन्तु दुर्भाग्यवश पिता की बुद्धि कुछ ऐसी बिगड़ी कि उससे तुम्हारा भी घोर अनिष्ट हुआ और वे खुद भी इस संसार में विविध कष्ट भोग कर परलोक सिधारे।

कृष्णानन्द (नवकिशोर) ने कहा—"दीदी आप और आप की माता मेरे दुख से अत्यन्त दुखित हुई थीं, यह मैं पहिले भी सुन चुका हूँ। बदला लेने की इच्छा से प्रेरित होकर मैंने आपके पिता को जो विशेष कष्ट दिया, उसके लिए समय-समय पर मुझे बड़ा पछतावा आता है।

इस वक्त आपको मुंह दिखाते भी मुझे लज्जा आती है। विशेपतः आज आपको इस दुरवस्था में देख कर उक्त पछतावे की आग मेरे हृदय में सौगुने ज़ोर से जल उठी है।

श्यामा—नवकिशोर, पहिले की सब बातों को एकदम जाने दो। इस वक्त मैं तुमसे एक बात कहने आई हूँ। परन्तु पीछे तुम न जाने अपने मन मे क्या समझोगे, यही सोच कर कहने मे हिचकती हूँ।

नवकिशोर—आप जो कुछ कहेंगी, मैं यथाशक्ति उसे पालन करने की चेष्टा करूंगा।

श्यामा—वैरागियो के इस अखाड़े को छोड कर तुम फिर से गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करोगे?

नवकिशोर—दीदी! भला बताइये तो सही, मैं क्या अपनी खुशी से वैरागी हुआ हूँ। गांव के लोगो ने मुझे व्यर्थ ही समाज-च्युत कर डाला। कहीं रहने को जगह न रह गई। लाचार वैरागी हो गया; परन्तु अब फिर से किस प्रकार गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन कर सकता हूँ? भद्र-समाज में मुझे कौन ग्रहण करेगा?

श्यामा—यदि यहा से कही दूसरी जगह जाकर किसी ब्राह्मण की कन्या के साथ विवाह कर लो, तब तो भद्र-समाज में सम्मिलित हो सकोगे?

नवकिशोर—ऐसा करने में बहुत छल-कपट करना पड़ता है। विशेपत. जब मुझे अपनी माता के प्राणान्त की घटना याद आती है तो इस संसार मे प्रवेश करने की इच्छा सर्वथा ही विलुप्त हो जाती है। सदा ही मृत्यु की कामना करता रहता हूँ। शास्त्र में आत्म-हत्या को बड़ा भारी पाप कहा गया है, नहीं तो मैं अब तक आत्म-हत्या कर के अपने सारे कष्टों का अन्त कर चुका होता।

श्यामा—तो क्या आजीवन वैरागियों के अखाड़े ही में रहने का निश्चय किया है ?

नवकिशोर—दीदी, वैरागियों का अखाडा साक्षात् नरक का नमूना है। ब्राह्मण, शूद्र, सुनार, नाई, धोबी, चाण्डाल इत्यादि सभी जातियों के लोगो में जो लोग सर्वथा दुश्चरित्र होते है वे या तो समाज-च्युत होकर अथवा समाज-च्युत होने की आशका से वैरागियो के अखाड़े में आ दाखिल होते हैं। फिर, इनमे से कितने ही एक-एक दुश्चरित्रा स्त्री को साथ लेकर वैरागी होते है। ऐसे कुमार्गी आदमियो के सहवास मे क्या कोई भला आदमी रह सकता है ?

श्यामा—तो यह वैरागियो का अखाड़ा छोडते क्यो नहीं ?

नवकिशोर—छोडने के लिए मन ही मन निश्चय कर चुका हूँ। पिछले कई बरसों से मांग-जाच कर मैंने कुछ रुपया इकट्ठा कर लिया है, कुछ और हो जाय तो बस तुरन्त ही काशीधाम को चला जाऊँ। अखाडे के इन दुराचारी वैरागियों के साथ मैं कभी कोई सम्बन्ध नहीं रखता! इनके लीला आदि उत्सवो मे भी मैं कभी नहीं शामिल होता।

श्यामा—तो अब तुम गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन नहीं करोगे ?

नवकिशोर—गार्हस्थ्य धर्म और कहते ही किसे हैं, इसी को न कि स्त्री को ग्रहण कर गृहस्थ की तरह जीवन बिताना, यही तो गार्हस्थ्य धर्मका अवलम्बन कहलाता है, सो कोई भला आदमी मुझे अपनी कन्या देगा नहीं। यदि मुझे स्त्री ग्रहण की इच्छा हो तो किसी वैष्णव ही को स्त्री-रूप में ग्रहण करना पडे; परन्तु ऐसी इच्छा मैंने कभी स्वप्न में भी नहीं की, न आगे करूंगा।

श्यामा—यदि कोई भला आदमी तुम्हें कन्यादान करे तो गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन करोगे ?

नवकिशोर—अब कोई भलामानस मुझे अपनी कन्या नहीं ब्याहेगा।

श्यामा—यदि ब्याहे ?

नवकिशोर—(कुछ हँस कर) दीदी, मैं आपको बहुत भोली-भाली और सरल-स्वभावा समझता था। आप ऐसी बातें भी करना जानती हैं,—यह मुझे कतई नहीं मालूम था। जब मैं आपके पिता की पाठशाला में पढ़ता था, मैंने आपके मुंह से कभी एक बात भी ऐसी नहीं सुनी। आपकी इस वक्त की बातों से कुछ ऐसा प्रतीत होता है कि आपके चित्त में कोई विशेष अभिप्राय है। आप तो मानों मुझे गृहस्थ ही बनाने आई है!

श्यामा—हां, मैं इसी के लिए आई हूँ। यदि किसी भले आदमी की कन्या मिले तो तुम विवाह करने को तैयार हो या नहीं,—यही जानना चाहती हूँ।

नवकिशोर यह बात सुन कर बहुत देर तक बिलकुल खामोश रहे। बाद में गहरी सांस लेकर बोले—"विवाह करके क्या मैं इस संसार में सुखी हो सकूंगा, मेरी माता की मृत्यु-घटना क्या आप भूल गईं ?"

श्यामा—मेरी समझ में तुम गार्हस्थ्य धर्म का अवलम्बन कर के सुख से रहोगे।

नवकिशोर—अपने हार्दिक अभिप्राय को स्पष्ट शब्दों में प्रकट कीजिये। बाद में मैं जो उचित समझूंगा, कहूँगा।

यह बात सुन कर श्यामा कहने लगी—"मेरे पिता ने भी समाज-च्युत होकर जात-वैष्णव धर्म-ग्रहण किया, परन्तु जात-वैष्णव भी प्रायः वैसे ही दुश्चरित्र हैं। मेरी छोटी बहिन इस समय तेरह बरस की है। जात-वैष्णवों के दल में किसी आदमी के साथ मैं उसका विवाह नहीं करना चाहती। तुम हम लोगों की समान श्रेणी के ब्राह्मण हो। यह भी मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तुम बिना ही किसी अपराध के समाजच्युत हुए हो। तिस पर तुम एक अच्छे विद्वान और शास्त्रज्ञ हो।

तुम यदि उसके साथ विवाह करके यहां से अन्यत्र जाकर गार्हस्थ्य धर्म ग्रहण करो तो मैं तुम्हारे साथ उसका विवाह करने के लिए तैयार हूँ।"

श्यामा के मुंह से यह हितकर वार्ता सुन कर नवकिशोर को बड़ा आश्चर्य हुआ! श्यामा के प्रति उनकी श्रद्धा सौगुनी बढ़ गई। कुछ देर तक वे फिर चुपचाप रहे। सोच-विचार के अनन्तर उन्होंने श्यामा के प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। कई दिन बाद बाबा प्रेमदास का अखाड़ा छोड कर वे शिरोमणि के घर चले आये और श्यामा के साथ रहने लगे।

परन्तु यह देख कर गांव के वैरागी लोग तथा पास-पडोस के अन्यान्य गृहस्थ जहां-तहां कहने लगे—"श्यामा को वैष्णवी करने के लिए बाबा कृष्णानन्द शिरोमणि महाशय के घर मे रहने लगे हैं।"

गांव वालों की इस तरह की बातों को सुन कर नवकिशोर को मन ही मन बडा दुख प्रतीत होता था। अन्त में उन्होने गांव छोड देने की ठानी। श्यामा के साथ परामर्श कर निश्चय किया कि कलकत्ते चल कर इन्दुमती के साथ विवाह करें और वहीं रहें। परन्तु इन लोगों के कलकत्ते को रवाना होने के तीन-चार दिन पहिले नवकिशोर के बहनोई शिवदास वन्द्योपाध्याय की मृत्यु हो गई। शिवदास की स्त्री और उनकी अविवाहिता तीन कन्यायें एकदम अनाथा होगई। शिवदास के ऊपर जो कर्ज़ा था, वह उनका सब घर-बार और माल-असबाब वेच डालने से भी चुकता नहीं हुआ। लाचार हो शिवदास की स्त्री अपने छोटे भाई नवकिशोर के पास आई।

नवकिशोर ने बहिन को धीरज बँधाया और कहा कि आप मेरे पास रहें। जैसे कुछ हो सकेगा मैं आपका भरण-पोषण करूंगा।

शिवदास वन्द्योपाध्याय अपनी मृत्यु के पहिले रोगशय्या पर पड़े हुए प्रायः प्रलाप किया करते थे, परन्तु प्रलाप करते समय वे और कुछ

दिया था। अस्तु। इस प्रकार क्रय-विक्रय का निश्चय हो जाने के बाद वेरन् इनूहफ ने हेस्टिंग्स के ख़र्च से जर्मनी के अन्तर्गत फ्रांकोनिया प्रदेश के विचारालय में स्त्री-परित्याग का मुक़दमा दायर किया। परन्तु प्रायः एक साल बीत गया, इनूहफ के इस मुक़दमें का निपटारा नहीं हुआ। हेस्टिंग्स और इनूहफ़ के बीच क्रय-विक्रय की बात क़तई निश्चित हो चुकी थी; परन्तु मुक़दमे के निपटारे से पहिले रुपये का लेना देना न हो सका। अतएव इनूहफ को मय स्त्री के हेस्टिंग्स के साथ-साथ रहना पड़ा।

हेस्टिंग्स साहब जहाज़ से उतर कर पहले कुछ दिनों मदरास में रहे। वेरन् इनूहफ भी स्त्री के सहित मदरास ही मे रहने लगे। इसके बाद सन् १७७१ ई० मे हेस्टिंग्स साहब बंगाल के गवर्नर नियुक्त होकर कलकत्ते को रवाना हुए; इनूहफ भी स्त्री को संग ले उनके साथ-साथ कलकत्ते आये। कुछ दिन बाद हेस्टिंग्स के साथ वेरन् इनूहफ़ की परित्यक्त स्त्री का विवाह हो गया।

बंगाल में बहुत से लोग हेस्टिंग्स को जानते थे। वे पहिले कम से कम पन्द्रह बरस बंगाल में रह चुके थे। अतएव हेस्टिंग्स के आने से मुन्शी नवकृष्ण आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। परन्तु महाराज नन्दकुमार की दीवानी-प्राप्ति की आशा का एकदम अन्त हो गया।

इधर महाराज नन्दकुमार दीवानी-प्राप्ति की आशा में ऐसे निमग्न हो रहे थे कि यह आशा उनके हृदय से किसी प्रकार दूर नहीं होती थी।

मनुष्य जब किसी वस्तु को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त लालायित होता है—किसी लाभ की आशा में जब वह एकदम उन्मत्त हो जाता है—तो वह वस्तु चाहे कैसी ही दुष्प्राप्य क्यों न हो, वह लाभ चाहे कैसी ही कठिनाइयों से प्राप्त क्यों न हो; परन्तु वह उसकी आशा का परित्याग करने में समर्थ नहीं होता—महाराज नन्दकुमार की यही दशा थी। अंगरेज़ों से शत्रुता होने पर भी वे मन ही मन यह कल्पना

कर रहे थे कि अंगरेज़ों की सहायता से दीवानी हासिल करके धीरे-धीरे मुसलमानों के राज्य का लोप कर देंगे और उसके बाद षड्यन्त्र द्वारा अंगरेज़ों को भी देश से बाहर निकाल देंगे।

हेस्टिंग्स जब कलकत्ते पहुँचे तो नन्दकुमार पूर्व-शत्रुता को भुला कर उनके साथ मित्रता स्थापित करने की चेष्टा करने लगे। परन्तु चालाकी और धोखेबाजी के व्यवहार में हेस्टिंग्स उनसे बहुत बढ़े-चढ़े हैं, यह अभी तक उनकी समझ में नहीं आया था।

मुहम्मद् रजा खां और शिताबराय का विचार

महाराज नन्दकुमार ने मुहम्मद रज़ा ख़ां के कुकर्मों और असद्-आचरणों को कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के कानों तक पहुँचाने के लिए इससे पहिले ही इङ्गलैण्ड में एक एजन्ट (Agent) नियुक्त कर रक्खा था।

इस ओर दुर्भिक्ष के बाद मालगुजारी वसूल होने में बड़ी अड़चनें उपस्थित हुईं। कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स ने नन्दकुमार के नियत किये हुए एजन्ट की ज़बानी रज़ा ख़ां के असद्-आचरणों की बातें सुन कर निश्चय किया कि वास्तव में रज़ा ख़ा मालगुज़ारी वसूल करके खुद हज़म कर रहा है। वास्तव में मालगुज़ारी का बहुत सा हिस्सा वह हज़म कर चुका [illegible], इसमें कोई सन्देह नहीं। विशेषत. दुर्भिक्ष के समय कलकत्ते के [illegible]ओं की तरह उसने भी बहुत सा चावल खरीद कर अधिक मूल्य

में बेचने के अभिप्राय से बन्द करके रख छोड़ा था, यह भी अच्छी तरह साबित हो चुका था।

हेस्टिंग्स साहब मुँह से तो रज़ा ख़ां के साथ मित्र-भाव प्रकट करते थे; परन्तु मन ही मन उनकी यह इच्छा थी कि किसी प्रकार रज़ा ख़ां पद-च्युत हो तो मालगुज़ारी वसूल करने का भार स्वयं अपने ऊपर ले लें।

मुहम्मद रज़ा ख़ां के विरुद्ध नन्दकुमार के एजन्ट ने जो समस्त अभियोग उपस्थित किये थे, कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने हेस्टिंग्स को उनका फ़ैसला करने की आज्ञा दी। अन्त में मुहम्मद रज़ा ख़ां को पद च्युत कर देने के लिए भी लिखा।

अकस्मात् हेस्टिंग्स के पास डाइरेक्टरों का यह हुक्मनामा पहुँचा। उन्होंने कौंसिल के किसी अन्य मेम्बर को इस हुक्मनामे का हाल बताने के पहिले ही मुहम्मद रज़ा ख़ां को गिरफ़्तार करके कलकत्ता भेज देने के लिए मुर्शिदाबाद के रेज़ीडेण्ट मिडल्टन साहब को लिख भेजा।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

करीब आधी रात का समय है। अनेक सुन्दरी रमणियों से घिरा हुआ मुहम्मद रज़ा ख़ां एक सुन्दर सुकोमल सेज पर निश्चिन्त सो रहा है। पलङ्ग के पाइंती ओर बैठी हुई दो मुसलमान महिलाएं उसके पांव दाब रही हैं। दो स्त्रियां पलङ्ग के दोनों पार्श्व में खड़ी हुई ताड़ का पंखा झल रही हैं। शयन-गृह के पार्श्व-स्थित कमरे में तीन-चार स्त्रियां जागती हुई बैठी हैं। नवाब के जागते ही इन्हें हुक्के की गुड़गुड़ी हाथ में लेकर नवाब के शयन-गृह में जाना पड़ेगा।

अकस्मात् महल के बाहर बहुत से लोगों के पांवों की [illegible] सुनाई दी। देखते-देखते सारा राजमहल सैकड़ों सिपाहियों और

से परिपूर्ण हो गया। रणभेरी (Bugle) की ध्वनि से रजनी की गम्भीर निस्तब्धता भङ्ग हुई। पहरेवालों ने महल के भीतर घुस कर मुहम्मद रज़ा ख़ां को इसकी ख़बर दी।

मुहम्मद रज़ा ख़ां ने एकाएक जाग कर देखा कि राजमहल असंख्य सैनिकों से घिरा हुआ है। कांपते-कापते कह उठा—"ऐ खुदा, मेरी तक़दीर में जो लिखा हो वही हो—तेरा जो कुछ हुक्म है, सब तामील हो—किस्मत में जो लिखा है इलाही शिताब हो।"

अर्थ-लोलुप कायरो के हृदय में उनकी स्वाभाविक भीरुता से ईश्वर के प्रति एक प्रकार की निर्भरता और भक्ति का भाव वर्तमान रहता है। ऐसे आदमी विपत्ति पडने पर ही सहायता के लिए ईश्वर को पुकारते हैं, और संसार के धन-सम्पत्ति एवं पद-प्रभुत्व को प्राप्त करने के लिए ही ईश्वर के शरणागत होते हैं। परन्तु सच्चा ईश्वर-प्रेम और ईश्वर के प्रति सच्चा भक्ति-भाव इनके जीवन में कभी नहीं दिखाई देता। निःस्वार्थ भाव से ये ईश्वर में लौ लगाना नहीं जानते। इनके निकट ईश्वर केवल असीम शक्ति का आधार है। परन्तु इसके अतिरिक्त ईश्वर न्यायवान है, प्रेममय है, इसे ये नहीं समझ पाते। इसी लिए संसार में वे कितने ही आदमी, जिन्हें लोग धर्मानुरागी कहते हैं, घोर स्वार्थपरता के रङ्ग में रँगे रहते हैं। निःस्वार्थ प्रेम की नींव पर इनका धार्मिक विश्वास स्थित नहीं होता। कायरता और भीरुता ही इनके धर्म-विश्वास का मूल कारण होती है।

रज़ा ख़ां के धर्म-विश्वास का मूल कारण उसकी स्वाभाविक भीरुता थी। अतएव अपने को आसन्न-विपद् में देख कर वह एकदम ईश्वर की शरण में जा पड़ा, और इस प्रकार ईश्वर के प्रति भरोसा रख महल से बाहर निकला। दरवाज़े पर पहुँचते ही मिडल्टन साहब से

साक्षात् हुआ। उन्होंने झटपट उसे सारी बातें कह सुनाईं और फिर वह उसको बन्दी करके कलकत्ते भेजने का प्रबन्ध करने लगे।

इस ओर शिताबराय भी पटने से बन्दी के रूप में कलकत्ते भेजे गये।

मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय की ऐसी दुर्दशा देख कर महाराज नन्दकुमार के आनन्द का वारापार न रहा। शिताबराय के साथ भी उनकी शत्रुता थी। दिल्ली के सम्राट् ने महाराज नन्दकुमार के लिए एक पालकी भेजी थी। पटना तक वह पालकी पहुँची थी कि शिताबराय ने उसे बीच ही में रोक लिया। इसी बात पर नन्दकुमार और शिताबराय के बीच मनोमालिन्य का सूत्रपात्र हुआ था।

नन्दकुमार अब मन ही मन कल्पना करने लगे कि मुहम्मद रज़ा खां का दोष प्रमाणित होते ही नायब सूबेदारी का पद हमें मिल जायगा। इसी आशा से उन्होंने मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय के विरुद्ध प्रमाण संग्रह करने के लिए प्राणपण से उद्योग करना प्रारम्भ किया।

इधर वारन हेस्टिंग्स साहब ने साल भर के भीतर भी रज़ा खां और शिताबराय के अभियोग का फैसला नहीं किया। प्रायः चौदह महीने तक इन्हें कैदी के रूप में कलकत्ते में रहना पड़ा। हेस्टिंग्स साहे इन चौदह महीनों तक इस बात की परीक्षा करते रहे कि देखें मार गुजारी वसूल करने का काम ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों के द्वा चलाया जा सकता है या नहीं। दूसरे, किसी मुकद्दमे के बहुत तक विचाराधीन रहने से कुछ अधिक आमदनी की सम्भावना रहती

चौदह महीने के बाद मुहम्मद रज़ा खां का अपराध ० प्रमाणों से प्रमाणित न होने के कारण उसे छोड़ दिया गया। शिताब क्रतई निर्दोष सिद्ध हुए। हेस्टिंग्स ने नायब सूबेदारी का पद एकदम

दिया और मालगुजारी वसूल करने का भार ईस्ट इंडिया कम्पनी की तरफ से अपने हाथों मे ले लिया। महाराज नन्दकुमार ने हेस्टिंग्स की चालबाज़ी से सरासर धोखा खाया। उनकी दीवानी प्राप्ति की आशा समूल नष्ट हो गई। परन्तु हेस्टिंग्स साहब नन्दकुमार से डरते थे। इस आशङ्का से, कि पीछे नन्दकुमार कहीं उनके घूस वगैरह लेने के रहस्य को प्रकट न कर दें—उन्होंने महाराज नन्दकुमार के पुत्र महाराज गुरुदास को नवाब के दीवान ख़ास—घरऊ दीवान के पद पर नियुक्त किया।

नवाब के अभिभावक की नियुक्ति के सम्बन्ध मे हेस्टिंग्स साहब बड़े संकट मे पडे। कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने किसी सत्पुरुष को नवाब के अभिभावक के पद पर नियुक्त करने को लिखा है, परन्तु किसी सत्पुरुष को इस पद पर नियुक्त करने से घूस का मामला नहीं गठेगा। किसी स्त्री को इस पद पर नियुक्त करना अच्छा होगा। परन्तु कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स के आदेश-पत्र मे किसी पुरुष को नियुक्त करने का उल्लेख है, अतएव उसके आदेश का प्रतिपालन करते हुए स्त्री को इस पद पर नियुक्त किया नहीं जा सकता।

इस प्रकार बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर हेस्टिंग्स ने नवाब की विमाता मणि बेगम को नवाब के अभिभावक और संरक्षक के पद पर नियुक्त करके कोर्ट आफ डाइरेक्टर्स को लिख भेजा—"आपके पत्र के आशय के अनुसार ही नवाब का संरक्षक और अभिभावक नियुक्त कर दिया गया है। आपने किसी सत्पुरुष को नियुक्त करने के लिए लिखा है। भारतवर्ष मे सत्पुरुष बड़ी कठिनता से मिलते है। इस देश मे पुरुष और स्त्री के बीच सिर्फ इतना अन्तर देखा जाता है कि पुरुष तो प्रकट रूप में बाहर निकलते पैठते है और स्त्रियां पर्दे मे रहती हैं। इसके अतिरिक्त बंगाल में पुरुष-स्त्री के बीच और कोई अन्तर नहीं देखा जाता। परन्तु मणि बेगम नवाब के महल में दाखिल होने से पहिले बराबर बाहर

निकलती पैठती थी अतएव वह पुरुष ही है, इसमें कोई सन्देह नहीं। नवाब की बेगम होने के बाद वह विशेष 'सत' बन गई है। उसे छोड़ बंगाल में दूसरा सत्पुरुष नहीं है। मैंने इसी लिए उसी को सत्पुरुष समझ कर नवाब के अभिभावक के पद पर नियुक्त कर दिया है।"

मणि बेगम, बिसूबेग नामक व्यक्ति के डेरे की एक नटनी थी। बाद में वह सौभाग्य से कहीं वृद्ध मीरज़ाफर की नज़र चढ़ गई। मीरज़ाफ़र ने उसे अपने महल में ले लिया। नवाब के यहां आकर पर्दानशीन होने से पहिले वह खुले ख़ज़ाने बाहर निकलती पैठती थी, अतएव हेस्टिंग्स साहब की व्याख्या के अनुसार वह उस वक्त पुरुष थी। नवाब के महल में आकर हो गई 'सत'। फिर क्या मणि बेगम अच्छी ख़ासी "सत्पुरुष" थी इसमें सन्देह ही क्या रहा !

मणि बेगम को इस पद पर नियुक्त करके हेस्टिंग्स और मिडल्टन आदि सभी ने थोड़ा बहुत लाभ उठाया।

रज़ा खां एकदम पद-च्युत हो गया। नायब सूबेदार होने के पहिले वह ढाके में जिस पद पर नियुक्त था, वह पद भी उसे नहीं मिला। शिताबराय निर्दोष सिद्ध हो जाने के बाद अपने अपमान को सहन करने में समर्थ न हुए, और कुछ ही दिनों में उन की मृत्यु हो गई।

नई कौंसिल और सुप्रीम कोर्ट

मुहम्मद रज़ा ख़ां की पद-च्युति के बाद सन् १७७३ ई० में भारतवर्ष के प्रति पहिले पहिल इंगलैण्ड के पार्लामेंट की दृष्टि आकर्षित

हुई। बंगाल की मेयरकोर्ट के अविचारों का निवारण करने के उद्देश से उसने कलकत्ते में एक सुप्रीम कोर्ट स्थापित की और उसमें इलाइजा इम्पी को प्रधान जज और चेम्बर्स, हाइड तथा लिमेइस्टर को सहकारी जजों के पद पर नियुक्त कर के भारतवर्ष भेजा।

इधर शासन-कार्य चलाने के लिए वारन हेस्टिंग्स को गवर्नर जनरल के पद पर और रिचार्ड वारवेल, जनरल क्लेवारिं, कर्नल मन्सन एवं फिलिप फ्रांसिस को कौंसिल के मेम्बरों के पद पर नियुक्त किया।

अब तक वारन हेस्टिंग्स गवर्नर के पद पर नियुक्त रह कर यथेच्छा व्यवहार करते थे, कौंसिल के अन्यान्य तेरह मेम्बर उनके कामों के सम्बन्ध मे किसी प्रकार का प्रतिवाद नहीं करते थे, परन्तु अब तीन उदारचेता, स्वतन्त्र पुरुष कौंसिल के मेम्बर नियुक्त होकर आये। पूर्व में गवर्नर हेस्टिंग्स और अन्यान्य तेरह मेम्बरों के योग से कौंसिल सगठित थी। परन्तु अब उस के स्थान पर हेस्टिंग्स साहब गवर्नर जनरल एवं सभापति हुए। अन्यान्य चार मेम्बरों में से रिचार्ड वारवेल साहब पहिले ही से बंगाल में रहते थे। असद् व्यवहार, अत्याचार तथा घूस खोरी में इन्होंने वोल्ट्स साहब को भी मात कर दिया था।

पाठकों को याद होगा कि विलियम वाल्ट्स साहब ने मुर्शिदाबाद प्रदेश के जुलाहों तथा अन्यान्य देशी व्यवसाइयों का रक्त चूस कर कोई बानवे लाख रुपया जमा कर लिया था। परन्तु रिचार्ड वारवेल ने भी ढाके के जुलाहों और नमक के व्यवसाइयों का सर्वनाश करने में कोई कसर न उठा रखी। ढाके के जुलाहे लोग जब एक बार कलकत्ता कौंसिल में इन के विरुद्ध अभियोग उपस्थित करने के लिए आये तो इन्होंने उन्हें पकड़ कर बंदी के रूप में सिपाही के साथ सीधा ढाके को वापस कर दिया। उसके बाद वे लोग दो दफ़े फिर

इनके विरुद्ध मुकद्दमा दायर करने के लिए आये थे, परन्तु उससे कोई फल नहीं हुआ ।*

कौंसिल के अन्यान्य तीन मेम्बर इससे पहिले कभी भारतवर्ष नहीं आये थे। ये तीनों वास्तव में प्रतिष्ठित घरानों के और सज्जन तथा सहृदय पुरुष थे। भारतवर्ष में रहने वाले तत्कालीन अन्यान्य अँगरेजों की कार्यावली में नीचाशयता, स्वार्थपरता एवं प्रवञ्चना-मूलक व्यवहार दिखाई पड़ता था, परन्तु इन नवागत कौंसिल के तीनों मेम्बरों (जनरल क्लेवारिं, कर्नल मन्सन और फिलिप फ्रान्सिस) के आचार-व्यवहार में प्रवञ्चना और नीचाशयता कभी नहीं देखी गई। घूस लेकर इन्होंने अपने हाथों को कभी नहीं कलङ्कित किया। हेस्टिंग्स आदि के अत्याचारों का निवारण करने के लिए ये प्राणपण से उद्योग करते रहे।

इस ओर घूसखोर रिचार्ड बारवेल ने हेस्टिंग्स का पक्ष लिया। नव-कौंसिल में दो पक्ष हुए। इधर जनरल क्लवारिं, कर्नल मन्सन और फिलिप फ्रासिस अंगरेज़ व्यापारियों के अत्याचार निवारणार्थ उद्योग करते थे, उधर हेस्टिंग्स और बारवेल अधिकाधिक अर्थ-लाभ की चिन्ता में लीन रहते थे।

क्लाइव ने इससे पहिले नमक के व्यापार पर जो एकाधिकार स्थापित किया था, कई साल बाद कोर्ट आफ़ डाइरेक्टर्स ने उसे एकदम रद्द कर दिया, परन्तु सन् १७७२ ई० में हेस्टिंग्स साहब ने एक दूसरे रूप में यह एकाधिकार फिर स्थापित कर दिया। क्लाइव के बनाये हुए नियम के अनुसार ईस्ट इंडिया कम्पनी के कर्मचारियों द्वारा जो वणिक-सभा संगठित हुई थी वही वणिक-सभा नमक के व्यापार की मूलधनी थी। पर अब हेस्टिंग्स साहब ने स्वयं ईस्ट इंडिया कम्पनी को मूलधनी

*Vide Note (25) in the appendix.

किया। हेस्टिंग्स के सस्थापित नियमानुसार नमक-महाल के अँगरेज़ों को कम्पनी के पास से पेशगी रुपया लेकर नमक तैयार कराना पडता था, और तैयार किया हुआ सारा नमक ईस्ट इण्डिया कम्पनी को देना पडता था। ऐसा निश्चय हो चुका था कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कर्मचारी कदापि इस व्यापार मे लिप्त न होंगे। परन्तु रिचार्ड वारवेल साहब किसी न किसी बंगाली के नाम से और हेस्टिंग्स साहब अपने प्रिय ख़ज़ांची कान्त पोद्दार, कमालुद्दीन इत्यादि कुछ धूर्त आदमियों के नाम से नमक-महाल का ठेका ले लिया करते थे।

पहिले की तरह अबकी वार भी इस नमक व्यापार के द्वारा देशी लोगो को विविध प्रकार के क्लेश भुगतने पडे। इस ओर पुन वारवेल साहब, बगालियों के नाम से जिन समस्त नमक-महालो का ठेका लेते थे, उन सभी महालों का ठेका उन लोगों की तरफ़ से, जिनके नाम से ठेका लिया जाता था, फिर से देशी व्यापारियों को दिला देते थे। इस प्रकार जो लोग वारवेल साहब के पास से नमक-महालों का ठेका लेते थे, उन्हें कम्पनी का दिया हुआ पूरा रुपया मिलने की कोई आशा न थी। कम्पनी जो रुपया देती थी, उसमें से अधिकांश वारवेल साहब खुद हडप जाते थे*। सिर्फ थोडा सा अपने अधीनस्थ ठेकेदारों को देते थे।

कौंसिल के नवागत मेम्बर जनरल क्लेवरि, कर्नल मन्सन और फ़िलिप फ्रांसिस ने जब हेस्टिंग्स और वारवेल के इन अनुचित व्यवहारों का प्रतिवाद करना आरम्भ किता तो हेस्टिंग्स साहब बडे चक्कर मे पडे। परन्तु तत्काल प्रचलित राजनैतिक कौशल में हेस्टिंग्स ख़ूब दक्ष थे। बड़ी चतुरता से उन्होंने सुप्रीम कोर्ट के नवागत चारों जजों के साथ ख़ूब मेल जोल पैदा कर लिया। ये जज लोग सदा ही ऐसी चेष्टा करते रहे,

*Vide Note (56) in the appendix

जिससे हेस्टिंग्स का प्रभुत्व स्थिर और सुरक्षित रहे। इन जजो के आचरणो को विशेष जाँच-पडताल करके देखने पर बोध होता है कि ये भी हेस्टिंग्स और बारवेल ही की श्रेणी के आदमी थे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

महाराज नन्दकुमार की नायब सूबेदारी के पद को प्राप्त करने की आशा जब सर्वथा ही नष्ट हो गई तो उनके हृदय में हेस्टिंग्स के विरुद्ध घोर विद्वेषानल प्रज्वलित होने लगी। मन ही मन उन्होंने हेस्टिंग्स के सारे अत्याचारो और अवैध आचरणों के रहस्य को प्रकट करने का निश्चय किया।

अभियोग

हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब के अत्याचारों को निवारण करने का उपाय निश्चित करने के लिए महाराज नन्दकुमार के कलकत्ते वाले भवन मे राजशाही, मुर्शिदाबाद, नदिया, बाँकुडा, वर्द्धमान, ढाका, दीनाजपुर इत्यादि भिन्न-भिन्न प्रदेशों के ज़मींदार इकट्ठ हुआ करते थे। इन में से बहुतों के ऊपर राज-कर की वसूली के बहाने हेस्टिंग्स एवं बारवेल विविध अत्याचार करते रहते थे। ज़मीन पर, ज़मींदार लोगों का भी कुछ स्वत्व है, इसे हेस्टिंग्स एवं बारवेल कभी नहीं स्वीकार करते थे। वे कहते थे कि जब ईस्टइण्डिया कम्पनी दिल्ली के बादशाह से बङ्गाल, विहार और उड़ीसा की दीवानी प्राप्त कर चुकी है तब कम्पनी अपनी इच्छानुसार

किसी भी ज़मीदार को उसकी ज़मीदारी से बर-तरफ़ कर सकती है। परन्तु फिलिप फ्रांसिस इस मत का समर्थन नहीं करते थे। वे कहते थे कि ज़मीन पर ज़मीदारों का परिमित स्वत्व (Limited Right) है और मुसलमान राजाओं ने भी इसे स्वीकार किया है; अतएव बिना किसी अपराध के ज़मीदारों को उनकी ज़मीदारी से बरतरफ करने का कम्पनी को कोई अधिकार नहीं।

रङ्गपुर के अन्तर्गत बाहिरबन्द परगने की ज़मीदारी का स्वत्व रानी भवानी के पास था। हेस्टिंग्स साहब ने बिना किसी अपराध के ही रानी भवानी को उक्त परगने की ज़मीदारी से बर-तरफ़ कर के कान्त पोद्दार को वहाँ का ज़मीदार बना दिया। कान्त पोद्दार के नाबालिग पुत्र लोकनाथ नन्दी के नाम इस परगने की लिखा-पढ़ी हो गई। कान्त पोद्दार हेस्टिंग्स का ख़जाची था। हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब को वह घूस लेने में सहायता देता था। अतएव हेस्टिंग्स ने पुरस्कार-स्वरूप उसे बाहिरबन्द परगना की ज़मींदारी प्रदान की।

हेस्टिंग्स साहब को शीघ्र ही इसकी ख़बर लग गई कि उनके अत्याचार निवारणार्थ महाराज नन्दकुमार के यहाँ ज़मीदारों की गोष्ठी हुआ करती है, अतएव वे भी अपने अनुचर गङ्गागोविन्द सिंह, कान्त पोद्दार, मुन्शी नवकृष्ण इत्यादि से मिल कर महाराज नन्दकुमार के नाश का उपाय सोचने लगे।

हेस्टिंग्स के विरुद्ध कोई अभियोग उपस्थित होने पर सफाई के लिये गवाहों की कमी न हो, अथवा हेस्टिंग्स और बारवेल को नन्दकुमार के नाम कोई झूठा अभियोग उपस्थित करना हो तो उसके लिए फ़रियादी और गवाह सहज ही प्राप्त हो सकें—इस अभिप्राय से कान्त पोद्दार ने मोहनप्रसाद एवं मुंशी सदरुद्दीन आदि कई प्रधान प्रधान धूर्तों को मुट्ठी मे कर रखा था।

११ मार्च, सन् १७७५ ई० को महाराज नन्दकुमार ने वारन् हेस्टिग्स के कुकार्यों का सविस्तार उल्लेख करके कौन्सिल के सुयोग्य मेम्बर फिलिप फ्रांसिस के निकट एक आवेदन पत्र भेजा। इस आवेदन पत्र में हेस्टिंग्स के विरुद्ध बहुत सी बातो का जिक्र था। इस स्थान पर हम इस आवेदन पत्र के सिर्फ कुछ अंशों को उद्धृत करते हैं :—

"आवेदन पत्र में उल्लिखित बातों को पढ़ कर सम्भवतः कौंसिल के मेम्बर गण मुझे भी एक दुश्चरित्र आदमी समझ बैठेंगे। परन्तु प्रकट करने की अपेक्षा इन बातों को छिपा रखने से मेरे चरित्र मे अधिक धब्बा लगेगा। इसलिये हेस्टिंग्स साहब की समस्त कुक्रियाओं को मैं कौंसिल के निकट प्रकट करता हूँ। हेस्टिंग्स साहब बंगाल के शासन-कर्त्ता हैं। स्वार्थ-रक्षा के लिए बाध्य होकर मुझे उनकी अनेक कुक्रियाओं में सहायता करनी पड़ी है।

"हेस्टिंग्स साहब ने गवर्नर के पद पर नियुक्त होकर कलकत्ते आने के बाद मुझसे कहा था कि मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय ने बहुत सा राज-कर हजम कर लिया है, यह मैं बहुत अच्छी तरह जान चुका हूँ। उन्होंने मुहम्मद रज़ा खां और शिताबराय को पदच्युत करके मुझे नायब सूबेदारी के पद पर नियुक्त करना स्वीकार किया था।

"उन्हीं के अनुरोध से मैंने मुहम्मद रज़ा खां के दिये हुए हिसाब किताब की जाँच पड़ताल की थी।

"जब रज़ा खां के ज़िम्मे लगभग तीन करोड़ रुपये का ग़बन उसके ज़माने के हिसाब-किताब से साबित हुआ तो उसने दो लाख रुपया मुझे और ग्यारह लाख रुपया हेस्टिंग्स साहब को रिश्वत में देने का प्रस्ताव किया।

"मैंने हेस्टिंग्स साहब से इस रिश्वत के प्रस्ताव का ज़िक्र किया, उन्होंने रिश्वत लेने से इनकार किया। परन्तु इसके कुछ ही दिन बाद हेस्टिंग्स साहब रज़ा खां के प्रति विशेष अनुग्रह प्रकट करने लगे। इसी से अनुमान होता है कि हेस्टिंग्स ने रज़ा खां से रिश्वत लेकर उसे छोड़ दिया।

"दुर्भिक्ष के समय रज़ा खां ने बहुत सा चावल ख़रीद कर अधिक मूल्य में बेचने के लिये रख छोड़ा था, यह भी अच्छी तरह प्रमाणित हो गया था।

"हेस्टिंग्स ने बिना किसी अपराध के ही रानी भवानी को बाहिरबन्द परगने की ज़मींदारी से बर-तरफ करके अपने ख़ज़ाञ्ची कान्त पोद्दार को उक्त ज़मींदारी दे दी है।

"दिल्ली-सम्राट ने पुरस्कार-स्वरूप मेरे लिए एक पालकी भेजी थी। पटने तक पहुँचने पर शिताबराय ने उसे रोक रखा। जब मैंने हेस्टिंग्स साहब से इसका ज़िक्र किया तो उन्होंने वह पालकी पटने से मँगा कर अपने यहां रख ली। उन्होंने आज तक वह पालकी मुझे नहीं दी।

"हेस्टिंग्स ने मेरे पुत्र महाराज गुरुदास को नायब दीवानी के पद पर और मणिबेगम को नवाब के अभिभावक के पद पर नियुक्त करते समय बहुत घूस ली है।

"प्रथमतः मैंने स्वयं उन्हें अपने गुमाश्ता चैतन्यनाथ की मारफत, उनके नौकर जगन्नाथ एवं बालकृष्ण तथा उनके ख़ज़ाञ्ची कान्त पोद्दार आदि के द्वारा तीन थैली मोहरें प्रदान की हैं। इनमें से एक थैली में १४७१ मोहरें, दूसरी में भी १४७१ और तीसरी में ६८० मोहरें तथा २०० अध-मोहरें थी। दूसरी दफ़े उन्हें १४७० मोहरें दी गई हैं।

"हेस्टिंग्स ने मुर्शिदाबाद जा कर नवाब मुबारकउद्दौला की माता बब्बूबेगम को पद-च्युत कर के मणिबेगम को गृह-सम्बन्धी अधिकार प्रदान करते वक्त एक लाख रुपया घूस में लिया है।

"इसके बाद जब वे मुर्शिदाबाद से कलकत्ते वापस आ गये तब मणिबेगम ने महाराज गुरुदास के द्वारा मुझ से पुछवा भेजा कि गवर्नर साहब का बाकी डेढ़ लाख रुपया किस के हाथ भेजा जाय। मैंने इस विषय में जब हेस्टिंग्स साहब से पूछा तो उन्होंने क़ासिमबाज़ार से कान्त पोद्दार के भाई नूरसिंह के पास उक्त रुपया भेज देने के लिए कहा। बाद में महाराज गुरुदास ने मुझे लिखा था कि वह डेढ़ लाख रुपया नूरसिंह के पास पहुँचा दिया गया।

"हेस्टिंग्स साहब के ये सब रहस्य मेरे द्वारा प्रकट होंगे, इस आशङ्का से वे सदा ही मेरे नाश की चेष्टा करते रहे हैं। मेरे घोर शत्रु मोहनप्रसाद के साथ वे मित्रता संस्थापन की चेष्टा करते हैं। मोहन-प्रसाद एक तुच्छ आदमी है। परन्तु गवर्नर जनरल वारन हेस्टिंग्स उसे अपने बंगले पर बुला कर उसका बहुत आदर-सम्मान करते हैं और बराबर वाले की तरह उस के साथ वार्तालाप करते हैं।"

महाराज नन्दकुमार का यह आवेदन-पत्र जब कौंसिल में पढ़ा गया तो हेस्टिंग्स साहब क्रोधाग्नि से प्रज्वलित हो उठे। भावी विपत्ति की आशंका करके वे एकदम हतबुद्धि से हो गये। अन्त में उच्च स्वर से फ़िलिप फ्रांसिस और जनरल क्लेवरिंग को सम्बोधन करते हुए कहने लगे—'आप लोगों ने षड्यन्त्र करके नन्दकुमार के द्वारा ये समस्त अभियोग उपस्थित कराये हैं।

फ्रांसिस ने कहा—महाराज नन्दकुमार के आवेदन-पत्र में जिन समस्त अभियोगों का उल्लेख है, वे सत्य हैं या मिथ्या; इसका निर्णय करना उचित है।

हेस्टिंग्स—नन्दकुमार ठग, धूर्त और नीचाशय है। वह कोई अभियोग उपस्थित करे तो उसके निर्णय की आवश्यकता नहीं।

जनरल क्लेवरिंग—महाराज नन्दकुमार इस देश के एक प्रतिष्ठित आदमी है। वे सूबे के दीवान थे। आपकी अपेक्षा भी ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित थे। उनके आवेदन-पत्र से उल्लिखित अभियोगों का निर्णय अवश्य ही करना पडेगा।

हेस्टिंग्स—आप लोग अगर इस विषय पर विचार करना आरम्भ करेंगे तो मैं इसी क्षण कौंसिल बरखास्त कर दूंगा। मैं हिन्दुस्तान का गवर्नर जनरल हूँ। अभियुक्त के रूप मे मैं कदापि यहा उपस्थित नही हो सकता।

कर्नल मन्सन—आप के निर्दोषी सिद्ध होने पर आपके पद की कोई अप्रतिष्ठा नही होगी।

हेस्टिंग्स—मेरे विरुद्ध किसी अभियोग पर विचार करने का आप लोगों को कोई अधिकार नही।

फ्रांसिस—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के कुव्यवहार, अन्यायाचरण, छल-कपट आदि के निवारणार्थ ही इस नव-कौंसिल का सङ्गठन हुआ है। अतएव ईस्ट इण्डिया कम्पनी के किसी भी कर्मचारी के विरुद्ध अभियोग उपस्थित होने पर उसका विचार हमी लोगों को करना होगा।

हेस्टिंग्स—तो मैं इसी वक्त कौंसिल छोड़े देता हू।

हेस्टिंग्स के कौंसिल छोड कर चल देने पर उन के साथी घूसखोर बारवेल भी उनके पीछे पीछे चल दिये। अन्यान्य तीनों मेम्बर महाराज नन्दकुमार को कौंसिल-गृह में बुला कर उनका इजहार लेने लगे।

महाराज नन्दकुमार ने बिना किसी छल-कपट के हेस्टिंग्स की भारी कुक्रियाओं को प्रकट किया। प्रमाण के लिए उन्होंने कितने ही साक्षियों का उल्लेख किया हेस्टिंग्स के प्रीति-पात्र कान्त पोद्दार तक को उन्होंने साक्षी गिना।

इसके दूसरे दिन कौंसिल के इन तीनों मेम्बरों ने कान्तपोद्दार का इज़हार लेने के लिए उसे कौंसिल में बुला भेजा। परन्तु हेस्टिंग्स ने कान्त पोद्दार को कौंसिल-गृह में जाकर गवाही देने के लिए मना कर दिया। कान्त पोद्दार कौंसिल के मेम्बरों की आज्ञा का उल्लंघन कर कहने लगा—हेस्टिंग्स साहब जब तक कौंसिल में न हों, कौंसिल का अधिवेशन नहीं हो सकता। इसलिए हेस्टिंग्स-शून्य कौंसिल में गवाही देने के लिए मैं बाध्य नहीं।

कान्त पोद्दार की यह बात सुनकर जनरल क्लेवरिं बड़े क्रुद्ध हुए और कान्त पोद्दार को बेंतों से पीटना स्थिर किया।

परन्तु उसके दूसरे दिन हेस्टिंग्स साहब ने जनरल क्लेवरिं से कहा—"कान्त को जो कोई बेंतों से पीटेगा, मैं कान्त का पक्ष लेकर उसे बेंतों से पीटूंगा।"

जनरल क्लेवरिं यह बात सुन कर बड़े गुस्से में आये। फ़िलिप फ्रांसिस और कर्नल मन्सन ने देखा कि कौंसिलगृह में ही हेस्टिंग्स और क्लेवरिं में हाथापाई की नौबत आना चाहती है अतएव उन्होंने क्लेवरिं को शान्त किया। इसके बाद तुरन्त ही कौंसिल बरखास्त हो गई।

कौंसिल के मेम्बर फ्रांसिस,मन्सन और क्लेवरिं ने निश्चय किया कि महाराज नन्दकुमार के आवेदन-पत्र में उल्लिखित अभियोग सत्य हैं।

पहला षड़यन्त्र

चैत का महीना है। गर्मी की ज़्यादती के कारण धूप के वक्त लोग घर से बाहर नहीं निकलते। परन्तु हेस्टिंग्स के दीवान गङ्गागोविन्द सिंह, ख़ज़ाञ्ची कान्त पोद्दार और उनके परम शुभचिन्तक मुंशी नवकृष्ण आज कल हर वक्त चैत मास की इस प्रचण्ड धूप में शहर के भीतर चक्कर लगाते रहते हैं।

शाम के वक्त ये लोग वापस आकर हेस्टिंग्स के बंगले पर इकट्ठे होते थे। कमरे का दरवाज़ा बन्द कर विविध वार्तालाप करते थे। बाद में प्रायः हर रोज़ रात के आठ बज चुकने पर हेस्टिंग्स साहब सुप्रीम कोर्ट के जज इलाइजा इंपी के बंगले पर जाकर उनसे विविध परामर्श किया करते थे। कभी कभी सुप्रीम कोर्ट के सभी जज एकत्र होकर एकान्त में हेस्टिंग्स साहब से बातचीत करते थे।

हेस्टिंग्स के मुंह पर अब वह प्रसन्नता नहीं देखी जाती। विषाद की छाया ने उनके मुखमंडल को आवृत कर रखा है।

कान्त पोद्दार कभी गङ्गाविष्णु के घर आकर मोहनप्रसाद के साथ गुप्त वार्तालाप करते हैं, कभी मुर्शिदाबाद को आदमी भेजते हैं। पोद्दार बाबू को आज कल दम मारने की फ़ुर्सत नहीं है।

महाराज नन्दकुमार ने जिस वक्त हेस्टिंग्स साहब के विरुद्ध अभियोग उपस्थित किया, उसके बाद एक महीने तक हेस्टिंग्स, गङ्गागोविन्द सिंह, मुंशी नवकृष्ण तथा कान्त पोद्दार बड़े व्यस्त रहे। बीच-बीच में मोहनप्रसाद भी हेस्टिंग्स साहब के पास आते-जाते रहते थे। एक महीने

के बाद अकस्मात् सुप्रीम कोर्ट के चारो जजों के पास से निम्न लिखित पत्र हेस्टिंग्स साहब को मिला—

The Honorable Warren Hastings Esqr.

Sir,

A charge having been exhibited, upon oath, before us against Joseph and Francis Fowke, Maharaja Nand coomar and Radha Charan, for a conspiracy against you and others, we have summoned the parties to appear to-morrow, at ten o'clock in the forenoon, at the house of Sir Elijah Impey where we must require your attendance.

Calcutta,
April 19th 1775

We are Sir,
Your most obedient humble servants,

E. Impey
Rob Chambers
S. C Lemaistre
John Hyde

अनुवाद।

माननीय वारन् हेस्टिंग्स महोदय,

महाशय,

जोज़ेफ फाउक, फ्रांसिस फाउक, महाराज नन्दकुमार एवं राधाचरण राय के विरुद्ध हमारे यहां इस आशय का अभियोग उपस्थित

हुआ है कि ये लोग आपके तथा अन्यान्य कुछ लोगों के विरुद्ध षड-यन्त्र करने को उद्यत हुए थे। हमने उक्त अभियुक्तों को कल दस बजे दिन के इलाइजा इम्पी के बगले पर हाज़िर होने के लिए तलब किया है। आप उक्त समय पर वहा उपस्थित रहे।

आपके अनुगत सेवक—

कलकत्ता, १९, अपरैल, १७७५

इलाइजा इम्पी
रावर्ट चेम्बरर्स
एस० सी० लिमेइस्टर
जान हाइड

पहले अभियोग का विचार

२० अपरैल, १७७५

सुप्रीम कोर्ट के प्रधान जज इलाइजा इम्पी के बंगले पर आज बडी भीड है। हेस्टिंग्स, बारवेल, वेन्सिटार्ट,* राजा राजवल्लभ,† कान्त पोद्दार और दीवान गंगागोविन्द सिंह, कमालुद्दीन अली खा नामक एक व्यक्ति को साथ लेकर दस बजे के पहले ही इलाइजा इम्पी के बगले पर आ उपस्थित हुए।

---

*ये दूसरे वेन्सिटार्ट हैं, गवर्नर वेन्सिटार्ट नहीं।

†ये कायस्थ कुलोद्भव ख़ालसा डिपार्टमेंट वाले राजा राजवल्लभ हैं, विक्रमपुर वाले राजा राजवल्लभ नहीं।

महाराज नन्दकुमार, राय राधाचरण रायबहादुर, जोजेफ़ फाउक एवं फ़ानिस फ़ाउंक अभियुक्त के वेश में जजों के सामने आ खड़े हुए।

फ़रियादी कमालुद्दीन अली खां ने झुक कर सलाम किया और शपथ-ग्रहणपूर्वक इस प्रकार कहना आरम्भ किया—

"मेरा नाम कमालुद्दीन अली ख़ां है। मैं सरकार बहादुर के हिजली पर्गने के नमक-महाल का ठेकेदार हूं। सरकार बहादुर ने नमक की दादनी की बाबत मुझे जो रुपया दिये जाने का हुक्म दिया था, उस रुपये में से २६,००० रुपया दीवान गंगागोविन्द सिंह ने हज़्म कर लिया। उनसे उक्त रुपया वसूल करने का उपाय निर्धारित करने के उद्देश से मैं कलकत्ते आया और महाराज नन्दकुमार के पास गया। यह छब्बीस हज़ार रुपया प्राप्त करने के लिए मैंने गंगागोविन्दसिंह के विरुद्ध दो दरख्वास्तें लिखी थीं। यह दरख्वास्तें मैंने महाराज नन्दकुमार के पास रख दी थीं। रुपया वसूल करवा देने की हालत में मैंने महाराज नन्दकुमार को छ हज़ार रुपया देना स्वीकार किया था।

बाद में मैंने मुंशी सदरुद्दीन के पास जाकर इस मामले का जिक्र किया। उन्होंने कहा, हम आपस में इसे तय करवा कर दीवान गंगागोविन्दसिंह से तुम्हारा रुपया वसूल करवा देंगे। ऐसी दशा में मैंने महाराज नन्दकुमार से अपनी दरख्वास्तें वापस मांगीं। उन्होंने दरख्वास्तें लौटाना अस्वीकार किया, और अपने दामाद राय राधाचरण राय को साथ करके मुझे फाउक साहब के पास भेजा। फाउक साहब ने मुझे बहुत कुछ डरा धमका कर हेस्टिंग्स और बारवेल साहब के विरुद्ध घूस के अभियोग की एक दरख्वास्त लिख देने के लिए मजबूर किया। मैं बहुत डर गया था। फाउक साहब के कहने के अनुसार मैंने हेस्टिंग्स और बारवेल साहब के विरुद्ध घूसखोरी के अभियोग की दरख्वास्त लिख दी। अपने हाथ से मैंने वह दरख्वास्त लिखी थी, और उस पर अपने नाम की मोहर लगाई थी।

इलाइजा इम्पी—तुमने अपने हाथ से दरख्वास्त क्यों लिखी ?

कमालुद्दीन—धर्मावतार ! मुझे बहुत डर दिखाया गया था। उस वक्त वे मुझ से जो कुछ भी कहते, मैं वही लिख देने को तैयार हो जाता।

इलाइजा इम्पी—Go on—अच्छा आगे चलो।

"धर्मावतार ! मै दिन मे सात दफे नमाज़ पढ़ता हूँ। झूठ कभी नही बोलता। मैंने उस दरख्वास्त को दूसरे दिन वापस मागा, उस वक्त फाउक साहब मुझे मारने को तैयार हुए। बाद मे फाउक साहब के लड़के ने कहा—"कल महाराज नन्दकुमार यहा आवेंगे, तभी आना। जैसा उचित होगा किया जायगा।"

"दूसरे दिन मै फिर फाउक साहब की कोठी पर गया। उस वक्त फाउक साहब और महाराज नन्दकुमार कुछ परामर्श कर रहे थे। फाउक साहब और महाराज नन्दकुमार ने बारम्बार मुझ से हेस्टिंग्स तथा बारवेल साहब के विरुद्ध अर्जी देने के लिए कहा। जब मैंने अर्जी देना स्वीकार न किया तो मुझे कैद कर लेने को तैयार हुए। मैं झटपट अपनी पालकी पर सवार हो भाग कर गवर्नर साहब के पास चला आया।"

इलाइजा इम्पी तथा सुप्रीम कोर्ट के अन्यान्य तीन जजों ने ये इज़हार सुन कर कहा—"फाउक साहब के पुत्र के विरुद्ध कोई अपराध प्रमाणित नही होता। अतएव फ़ासिम फाउक को बरी किया जाता है। महाराज नन्दकुमार, राय राधाचरण एव जोजेफ फाउक साहब के विरुद्ध हेस्टिंग्स तथा बारवेल साहब यदि मुक़दमा चलाना चाहें तो तीन दिन के भीतर हमें सूचित करें।'

इकतालीसवाँ परिच्छेद

दूसरा षड़यन्त्र
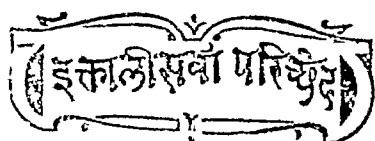
हेस्टिंग्स, बारवेल, कान्त पोद्दार एवं गंगागोविन्द मुक़दमे की हालत देख कर बड़े व्यथित हुए। किंकर्त्तव्यविमूढ़, से हो गये। सुप्रीम कोर्ट के जजों ने उनके उठाये हुए मुकदमे को विचाराधीन रखा, क़तई फ़ैसला नहीं हुआ।

इधर महाराज नन्दकुमार देश के अन्यान्य ज़मींदारों के साथ मिलकर हेस्टिंग्स एवं बारवेल साहब की अन्यान्य सैकड़ों कुक्रियाओं को प्रकट करने की चेष्टा करने लगे। इसी प्रकार प्राय दस-पन्द्रह दिन बीत गये। जनरल क्लेवरिंग, फिलिप फ्रांसिस इत्यादि समय-समय पर नन्दकुमार के घर आकर उन से मिल जाते थे।

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

अकस्मात् छठी मई को नन्दकुमार के विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट से गिरफ्तारी का परवाना निकला। वे पकड़ कर उसी दिन कारागार में ठेल दिये गये। कलकत्ते के समस्त निवासी एकदम आश्चर्य-चकित हो उठे। सुप्रीम कोर्ट का व्यवहार देखकर देशी लोग बड़े भयभीत हुए। किस लिए महाराज नन्दकुमार इस प्रकार एकाएक कारागार भेजे गये— इसके रहस्य को कोई न समझ सका।

बाद में ज्ञात हुआ कि महाराज नन्दकुमार के परमशत्रु मोहन-प्रसाद नामक एक व्यक्ति ने जाली तमस्सुक बनाने के अपराध में उनके विरुद्ध सुप्रीम कोर्ट के समक्ष अभियोग उपस्थित किया था, इसीलिए सुप्रीम कोर्ट के जजों ने उन्हें कारागार भेजा है।

पाठकों के जानने के लिए मोहनप्रसाद के लम्बे चौड़े इज़हार का सारांश मात्र हम नीचे उद्धृत करते हैं—

६ मई, १७७५

"मेरा नाम मोहनप्रसाद है। मैं मृत बुलाकीदास की जायदाद के वली (संरक्षक) गंगाविष्णु और हीगूलाल का आटर्नी (मुख्तार) हूँ। १७६६ ई० के जून मास में बुलाकीदास की मृत्यु हो गई। मृत्यु के पहिले बुलाकीदास ने एक वसीयतनामा लिखा था। इस वसीयतनामे के अनुसार उन्होंने अपनी सम्पत्ति का चौथाई अंश अपने योग्य पुत्र पद्मसोहनदास को दिया था। पद्मसोहनदास को और मुझे उन्होंने अपनी जायदाद का 'मुख्तार-आम' नियत कर रखा था। प्रायः तीन बरसें हुईं, पद्मसोहनदास का भी देहान्त हो गया। इस वक्त मैं अकेला बुलाकीदास के वली गंगाविष्णु तथा हीगूलाल की तरफ से बुलाकीदास की छोड़ी हुई सारी जायदाद का हिसाब-किताब और लेन-देन करता हूँ। बुलाकीदास की रियासत से जितना रुपया वसूल होता है उसके ऊपर मुझे फी सैकड़ा पांच रुपया कमीशन मिलता है।

"मृत्यु से कुछ ही देर पहिले बुलाकीदास ने महाराज नन्दकुमार को अपने पास बुला भेजा था। मरते समय उन्होंने अपनी स्त्री, कन्या और पद्मसोहनदास को महाराज नन्दकुमार के हाथों में सौंपा था और फिर महाराज नन्दकुमार से कहा था कि "आप मेरी स्त्री, कन्या तथा पद्मसोहनदास की देखभाल करते रहें।"

"मृत बुलाकीदास और महाराज में लेन-देन का व्यवहार था। बुलाकी के ज़िम्मे महाराज नन्दकुमार का कुछ रुपया पावना था। बुलाकी ने अपने कम्पनी के कागज़ों को बेच कर महाराज नन्दकुमार का रुपया चुकाने की बात कही थी।"

"बुलाकी की मृत्यु के प्रायः पांच महीने बाद महाराज नन्द-कुमार, गंगाविष्णु और पद्मभोहन को साथ लेकर हेस्टिंग्स साहब के यहां से बुलाकी के कम्पनी के कागज ले आये और उन्हें अपने पास रख लिया। बुलाकी की स्त्री ने कहा—'महाराज नन्दकुमार ने कृपा करके ये सब कागज ला दिये हैं अतएव सब से पहले उन्हीं का रुपया अदा किया जाय।'

"बुलाकीदास ने मेरे नाम जो मुख्तारनामा-आम लिखा था, उसमें महाराज नन्दकुमार को सिर्फ दस हज़ार रुपये देने लिखे थे। मैंने गंगाविष्णु से इसका ज़िक्र किया था। परन्तु बुलाकीदास के कम्पनी वाले काग़ज़ लाने के चौदह या पन्द्रह दिन बाद पद्मभोहनदास मुझे और गंगाविष्णु को साथ लेकर महाराज नन्दकुमार का हिसाब-किताब साफ करने के लिए उनके पास गये। महाराज नन्दकुमार उस वक्त दुतल्ले पर बैठे थे। हिसाब की बातचीत होने पर उन्होंने बुलाकीदास के लिखे हुए तीन अदद तमस्सुक, ऊपरी भाग फाड़ कर, पद्मभोहनदास के हाथ में दिये, और इन तीनों तमस्सुकों का पावना रुपया चुकाने के लिए उन्होंने कम्पनी के सत्तरह अदद काग़ज़ों में से आठ अदद काग़ज़ अपने पास रख लिये। इन तीन तमस्सुकों में से एक तमस्सुक में ४८०२१) रुपया देना लिखा था। महाराज नन्दकुमार ने बतलाया कि हमारे अमानत रक्खे हुए आभूषणों की क़ीमत के बाबत बुलाकीदास ने हमें यह तमस्सुक लिख दिया था। तमस्सुक फ़ारसी भाषा में लिखा था। मैं फारसी नहीं जानता। इस तमस्सुक की सत्यता के सम्बन्ध में मुझे उसी वक्त सन्देह हुआ था। परन्तु पद्मभोहनदास बराबर मुझ से यही कहते रहे कि यह तमस्सुक सच्चा है।

"ये सब तमस्सुक, जिनका ऊपरी भाग फटा था, बुलाकीदास की जायदाद के अन्यान्य काग़ज़ पत्रों के साथ प्रोबेट (Probate) लेने

के वक्त मेयरकोर्ट में दाखिल हुए थे, और तब से ये बराबर मेयरकोर्ट ही में थे। परन्तु मैंने इन सब तमस्सुको की एक-एक नकल अपने पास ले ली थी।

"महाराज नन्दकुमार का हिसाब साफ हो जाने के कुछ महीने बाद एक दिन मैंने कमालुद्दीन अली खा से बुलाकीदास का जायदाद का पावना रुपया मागा।

"कमालुद्दीन अली खा ने मेरे घर पर आकर कहा—'बुलाकीदास के सिर्फ छ सौ रुपये मेरे ज़िम्मे चाहिये। परन्तु इस वक्त मेरे पास रुपया चुकाने की कोई सुरत नही है। मैं बडी दुरवस्था में हूँ।'

"मैंने उस वक्त कमालुद्दीन को महाराज नन्दकुमार के चुकता (Surrendered) तमस्सुकों की नकलें दिखलाईं। कमालुद्दीन ने तीनों तमस्सुकों की नकलें पढ कर उनमें से ४८०२१) रुपये वाले तमस्सुक के विषय में कहा—'इस तमस्सुक मे गवाह के स्थान पर मेरा नाम लिखा है और मेरे नाम की मोहर है; परन्तु मैंने ऐसे किसी तमस्सुक में गवाही नहीं की है।'

"इस घटना के पांच-छ महीने बाद कमालुद्दीन ने एक बार फिर मेरे पास आकर कहा कि 'महाराज नन्दकुमार मेरे नमक-महाल के ज़ामिन हुए थे, परन्तु अब कहते है कि हमारे कहने के अनुसार तीन काम नहीं करोगे तो हम तुम्हारे ज़ामिन नही रहेंगे। वे जिन तीन कामो के लिए कह रहे है उनमे पहला काम यह है कि बुलाकीदास के विरुद्ध उन्होंने ४८०२१) रुपये का जो जाली तमस्सुक बनाया है, उसे प्रमाणिक बताने के लिए मैं गवाही दूँ। दूसरा काम यह कि बार्मिटन साहब के विरुद्ध घूसखोरी का दावा करूँ और तीसरा यह कि बसन्तराय के ऊपर भी घूसखोरी की नालिश करूँ। परन्तु मैं ऐसे धर्म-विरुद्ध कामों

के लिए कदापि तैयार न हो सका। ऐसी दशा में उन्होंने मुझ से कहा—'अपना दूसरा ज़ामिन तलाश कर लो।'

"कमालुद्दीन की यह बात सुन कर मैं अत्यन्त चकित हुआ और तुरन्त ही मैंने मुहम्मद अली से यह सब हाल कहा।

"इसके बाद महाराज नन्दकुमार के ऊपर मैंने अदालत में बुलाकीदास के कम्पनी के काग़ज़ों की कीमत के रुपये का दावा किया।

"इस मुक़दमे की जवाबदेही में महाराज नन्दकुमार ने कहा—"बुलाकीदास के ज़िम्मे मेरा तीन तमस्सुकों का रुपया लेना था। इन तमस्सुकों का रुपया कम्पनी के काग़ज़ों की कीमत से अदा हो गया। तीनों तमस्सुक मैंने वापस दे दिये"। इस पर अदालत ने मेरा मुक़दमा ख़ारिज कर देना चाहा, तब मैंने पंच-फ़ैसले को मानना स्थिर किया; परन्तु इस मामले में कोई पंच नहीं बना।

"अब जब कि यह नवीन सुप्रीम कोर्ट स्थापित हुई तो मेयर कोर्ट के सारे काग़ज़ात सुप्रीम कोर्ट में आ गये। मैंने सुप्रीम कोर्ट में दरख़्वास्त देकर महाराज नन्दकुमार के चुकता (Surrendered) तमस्सुकों में से ४८०२१) रुपये वाला तमस्सुक वापस ले लिया है, और मैं उनके ऊपर जाली तमस्सुक तय्यार करने की नालिश कर रहा हूँ। बुलाकीदास ने महाराज नन्दकुमार के आभूषणों की क़ीमत के बाबत कभी कोई तमस्सुक नहीं लिखा। महाराज नन्दकुमार ने यह जाली तमस्सुक बनाया है। अतएव मैं उनके नाम जाली काग़ज़ बनाने का दावा दायर करता हूँ।"

मोहनप्रसाद के इन इज़हारों के समर्थन में पहले मुक़दमे के फ़रियादी कमालुद्दीन ने कहा—"इस दाख़िल शुदा तमस्सुक में मेरा नाम लिखा है और मेरे नाम की मोहर है। महाराज नन्दकुमार ने मेरा

जाली नाम बना लिया था, इसे उन्होंने (नन्दकुमार ने) स्वयं मेरे निकट स्वीकार किया है।"

परन्तु इस गवाह का नाम था कमालुद्दीन अली खां और तमस्सुक में जिस गवाह का उल्लेख था, उसका नाम था आबिद कमालुद्दीन। अतएव यहां पर ज़रा अड़चन उपस्थित हुई। परन्तु चालाक कमालुद्दीन अली खां गवाह कह उठा—"अब मैं पहले की अपेक्षा कुछ विशेष प्रतिष्ठित आदमी बन गया हूँ, इसलिये मेरे नाम के पीछे एक अली और जुड़ गया है। बाल्यावस्था में मेरा नाम आबिद कमालुद्दीन ही था।"

पाठकों को याद होगा कि इसी कमालुद्दीन अली खां ने १६ अपरैल को महाराज नन्दकुमार और फाउक साहब आदि के ऊपर मुकदमा दायर किया है। नूतन सुप्रीम कोर्ट के दो विज्ञ जजों—लिमेस्टर और हाइड साहब—ने इलाइजा इम्पी के साथ परामर्श करके इन्हीं दोनों के इशहारों पर नन्दकुमार को फ़ौरन कारागार भेज कर विचारार्थ सेशन-सुपुर्द कर दिया।

हेस्टिंग्स, बारवेल, वेन्सिटार्ट, राजा राजवल्लभ, दीवान गंगागोविन्द सिंह, कान्त पोद्दार इत्यादि के षड्यन्त्र से इस प्रकार महाराज नन्दकुमार कारागार में ठेल दिये गये। वे देश के अन्तर्गत एक उच्च श्रेणी के ब्राह्मण थे। कारागार में भोजन करना उन्होंने स्वीकार न किया। कोई तीन चार दिन तक वे जेल में भूखे ही पड़े रहे। सुप्रीम कोर्ट के जजों के पास उन्होंने अपने भोजनों का स्वतन्त्र प्रबन्ध कर देने के लिए दरख्वास्त भेजी।

कौंसिल के मेम्बर फ़िलिप फ़ान्सिस, कर्नल मन्सन और जनरल क्लेवरिं सुप्रीम कोर्ट का यह अन्यायाचरण देख कर बड़े दुखित हुए। महाराज नन्दकुमार को सान्त्वना देने के लिए जनरल क्लेवरिं साहब की कन्या और लेडी मन्सन ने स्वयं कारागार में जाकर उनसे मुलाक़ात की।

इधर फिलिप फ्रांसिस ने सुप्रीम कोर्ट के जजों से कहला भेजा कि महाराज नन्दकुमार उच्च श्रेणी के ब्राह्मण है। वे कारागार में कदापि भोजन नहीं करेंगे। अतएव यदि उन्हें कारागार में रखना ही है तो उनके लिए भोजनों का स्वतन्त्र प्रबन्ध कर देना उचित है।

परन्तु हेस्टिंग्स आदि की उत्तेजना के कारण सुप्रीमकोर्ट के जजों ने तीन चार दिन के भीतर भी इसका कोई प्रबन्ध नहीं किया। शायद प्रथमतः उन्होंने षडयन्त्र करके कारागार में नन्दकुमार को भूखों मार डालना ही स्थिर कर लिया था। परन्तु बाद में सुप्रीम कोर्ट के जजों ने इस मामले में देशी पण्डितों की राय लेने के अभिप्राय से देश के प्रसिद्ध प्रसिद्ध पण्डितों को तलब किया।

हेस्टिंग्स के दाहिने हाथ कान्त पोद्दार ने मुर्शिदाबाद जा कर तीन चार दिन के भीतर हरिदास तर्कपंचानन को ला हाजिर किया।

स्त्री की मृत्यु के बाद हरिदास तर्क-पचानन के दोनों पुत्रों का भी देहान्त हो गया था। इन पडित जी से हमारे पाठक अच्छी तरह परिचित हैं। इससे पहिले ये अपनी कन्या को विष देकर मार चुके हैं। परन्तु समाज में आज भी इनका विशेष प्राधान्य है। बग-समाज में ऐसे नरपिशाच सहज ही प्राधान्य प्राप्त कर सकते हैं। उस समय हिन्दू शास्त्र के सम्बन्ध में इनका मत बहुत प्रामाणिक माना जाता था। इन्होंने सुप्रीम कोर्ट के जजों के प्रश्न के उत्तर में कहा—"कारागार में भोजन करने से कोई ब्राह्मण पतित नहीं हो जाता। हां जिन ब्राह्मणों को कारागार में भोजन करना पड़ता है वे कारागार से छूटने पर किसी धार्मिक ब्राह्मण को थोड़ा सा स्वर्णदान देकर अथवा सिर्फ बारह ब्राह्मणों को भोजन करवा कर इस छोटे से पाप का प्रायश्चित्त कर सकते हैं।"

नन्दकुमार जिस वक्त दीवान थे, उस वक्त हरिदास तर्क-पचानन समय-समय पर उनके कृपाभाजन हो चुके हैं। परन्तु धार्मिक कहलाने

वाले इस बंगकुलांगार ने कान्त पोद्दार से कुछ रुपया लेकर इस प्रकार की व्यवस्था दे दी ।

महाराज नन्दकुमार ने अन्यान्य कुछ पंडितों को तलब कर के उनका मत लेने की प्रार्थना की । पूर्वोल्लिखित नवकिशोर चट्टोपाध्याय इस वक्त कलकत्ते ही में रहते थे, उन्होंने कहा कि कारागार में भोजन करने पर शास्त्रानुसार ब्राह्मणों को पतित हो जाना पड़ता है । पण्डितों में इस प्रकार का मतभेद देख कर जजों ने कारागार में नन्दकुमार के भोजनों के लिए स्वतन्त्र स्थान दिये जाने की आज्ञा दे दी ।

देश के अन्तर्गत जो लोग वास्तव में सज्जन और भलेमानस थे, उन्होंने इस दुरवस्था के समय में भी महाराज नन्दकुमार के प्रति सहानुभूति प्रकट की । हर रोज़ सैकड़ों आदमी जेल में जाकर महाराज नन्दकुमार से मुलाक़ात करते थे । जेल के अन्दर भी उनका दरबार सा लगा रहता था ।

विचार या नरहत्या

३री जून १७७५ ।

इंगलैण्डेश्वर बनाम महाराज नन्दकुमार ।

उपस्थित ।

सर इलाइजा इम्पी, नाइट चीफ जस्टिस, राबर्ट चेम्बर्स, स्टीफेन सिजर लिमेस्टर, जान हाइड, सहकारी जजत्रय ।

सुप्रीम कोर्ट आदमियों की भीड से भर गई। देश के हजारों भद्र पुरुष महाराज नन्दकुमार को अभियुक्त के वेश में देख कर अत्यन्त दुखित हुए। जज लोग लोहित वस्त्र पहिने धीरे-धीरे टहलते हुए आकर विचारासन पर विराजमान हुए। महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतन्यनाथ, उनके दामाद राय राधाचरण राय बहादुर, सुप्रीम कोर्ट के बैरिस्टर फेरर साहब पीछे आकर खडे हो गये।

इस ओर फ़रियादी के गवाह तथा कान्त पोद्दार इत्यादि हेस्टिंग्स के सहचरगण दर्शकों के बैठने की जगह पर आ डटे।

महाराज नन्दकुमार के ऊपर जाली कागज़ तैयार करना, जाली कागज़ को इस्तेमाल करना, जाली कागज़ को प्रकाशित करना, जाली कागज़ को दूसरे के हाथों में देना, जाली कागज को छूना आदि कोई बीस अभियोग लगाये गये थे।*

ये समस्त अभियोग जब उन्हें पढ़ कर सुनाये गये तो उन्होंने कहा—"मैं निर्दोष हूँ।"

इस पर जजों ने पूछा—"आप किस के द्वारा अपना विचार चाहते हैं?"

महाराज नन्दकुमार ने कहा—"मैं चाहता हूँ कि परमेश्वर मेरा विचार करे, मेरे देशनिवासी, मेरे सजातीय मेरा विचार करें।"

परन्तु बंगालियों को जूरर (Juror) होने का कोई अधिकार नहीं था। अतएव बारह अंगरेज़ जूरर चुने गये। इन में से प्रायः सभी के साथ महाराज नन्दकुमार की पुरानी शत्रुता थी।

---

*यह मुक़दमा फैसल हो जाने के बाद प्रकट हुआ था कि नन्दकुमार के विरुद्ध मोहनप्रसाद ने जो पहली दरख़्वास्त दाखिल की थी उसका मसविदा (पांडु लिपि) सुप्रीम कोर्ट के जजों ने तैयार कर दिया था। लेखक।

सुप्रीम कोर्ट के प्रधान इन्टरप्रेटर विलियम चेम्बर की अनुपस्थिति में हेस्टिंग्स तथा इम्पी के अनुगत अलेक्ज़न्डर इलियट इन्टरप्रेटर के स्थान पर काम करने के लिए चुने गये। महाराज नन्दकुमार के बैरिस्टर ने इलियट साहब को इन्टरप्रेटर नियुक्त करने के सम्बन्ध में आपत्ति की; परन्तु इम्पी ने क्रोध पूर्वक उनकी इस आपत्ति को अस्वीकार कर दिया।

इसके बाद क्लर्क आफ दी क्राउन (Clerk of the Crown) ने अभियोग-पत्र (अर्ज़ीदावा) पढ़ा, तदनन्तर गवाहों के इज़हार शुरू हुए।

पहिले गवाह स्वयं फरियादी मोहनप्रसाद थे। इनके इज़हार को यहां उद्धृत करने की विशेष आवश्यकता नहीं। दावे में इन्होंने जैसा कुछ इज़हार किया था, वैसा ही अब भी किया, बीच-बीच में सिर्फ कई एक हिसाब के कागज़ पेश किये थे।

दूसरे गवाह, पहले मुकदमे के फ़रियादी, कमालुद्दीन अली खां ने शपथ लेकर कहा—

"मेरा नाम कमालुद्दीन अली खां है। मीरजाफर के शासन-काल में मैं मुर्शिदाबाद की जेल में क़ैद रहा था। क़ैद से छूटने के बाद मैंने मीरजाफर के पास एक दरख़्वास्त भेजी थी। महाराज नन्दकुमार इस वक्त मीरजाफर के दीवान थे। उन्होंने मुझको लिखा कि अपने नाम की मोहर लगा कर दरख्वास्त भेजो। तब मैंने अपने नाम की मोहर, अपनी भेजी हुई दरख्वास्त पर छाप लेने के लिए, महाराज नन्दकुमार के पास भेज दी। उस वक्त से आज चौदह वर्ष होने आये, मेरे नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार ही के पास है। उन्होंने वह मोहर फिर मुझे वापस नहीं दी।"

जिस तमस्सुक को जाली बता कर महाराज नन्दकुमार के विरुद्ध यह अभियोग उपस्थित किया गया था, वह तमस्सुक जब इस गवाह को

देखाया गया तो गवाह ने उसे देख कर कहा—"इस तमस्सुक में जो मोहर लगी है, वह मेरे नाम की मोहर है। अब से चौदह वर्ष पहले मैंने महाराज नन्दकुमार के पास यह मोहर भेजी थी, मेरा नौकर हुसेन अली इस बात का गवाह है। तदतिरिक्त इस से पहले मैंने ख्वाजा पेट्रूज़ और मुंशी सदरुद्दीन से भी इस मामले का ज़िक्र किया था।"

इलाइजा इम्पी—इस तमस्सुक की मोहर देखकर तुम कहते हो कि यह हमारे नाम की मोहर है। परन्तु तुम्हारा नाम कमालुद्दीन अली खाँ है, और इस तमस्सुक में आबिद कमालुद्दीन की मोहर और आबिद कमालुद्दीन का नाम है, सो क्यों?

गवाह—धर्मावतार, मैं कभी झूठ नहीं कह सकता। दिन में सात दफे नमाज़ पढ़ता हूँ। पहले मेरा नाम आबिद कमालुद्दीन था, परन्तु अब मैं पहले की अपेक्षा कुछ अधिक प्रतिष्ठित आदमी बन गया हूँ। इसीलिए लोगों ने मेरे नाम का अगला भाग छोड़ कर पीछे की तरफ एक "अली" जोड़ दिया है। हमारे यहां प्रतिष्ठित मुसलमानों के नाम के पीछे "अली" और "खां" इत्यादि शब्द जोड़ दिये जाते हैं।

जज हाइड—इस तमस्सुक पर तुम्हारे नाम की मोहर लगाई गई और गवाह के स्थान पर तुम्हारा नाम लिखा गया—यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?

गवाह—धर्मावतार! झूठ कभी नहीं बोलूंगा। महाराज नन्दकुमार ने खुद ही मुझ से कहा था कि हम ने इस तमस्सुक में गवाह के स्थान पर तुम्हारा नाम लिख रखा है और तुम्हारे नाम की मोहर लगा दी है। उन्होंने मुझ से यह भी कहा था कि "इस तमस्सुक के सबूत में तुम्हें गवाही देनी पड़ेगी।" परन्तु मैंने उनसे कहा कि मैं झूठी गवाही नहीं दे सकूंगा, अधर्म कार्य मैं कभी नहीं करूंगा।

जिरह—सवाल—मोहनप्रसाद ने गवाही देने के लिए तुम्हे कुछ रुपया दिया है ?

कमालुद्दीन—श्रो अल्लाह—श्रो अल्लाह—तोवा—तोवा—ऐसा काम मैं कर सकता था ?

गवाह ने यह भी कहा कि 'मेरे भेजे हुए दस्तखत और मोहर की प्राप्ति स्वीकार के लिए महाराज नन्दकुमार ने मुझे एक पत्र लिखा था।' इसके लिए गवाह ने एक जाली पत्र अदालत में दाखिल भी किया, परन्तु उसमें मोहर की बात का उल्लेख नहीं था।

तीसरे गवाह हुसेन अली ने शपथ लेकर कहा—"मेरा नाम हुसेन अली है। मैं कमालुद्दीन का नौकर हूँ। कमालुद्दीन के साथ यहा आया हूँ। कमालुद्दीन ने इस से पहले भी महाराज नन्दकुमार और फाउक साहब के ऊपर एक मुकदमा दायर किया है। उस वक्त से बराबर हम लोग यहीं हैं। प्राय चौदह बरस हुए, कमालुद्दीन ने अपने नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास भेजी थी। जिस थैली में रखकर मोहर भेजी गई थी उस थैली की सिलाई मैंने की थी। इसीसे मैं जानता हूँ कि कमालुद्दीन ने अपने नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास भेजी थी।"

चौथे गवाह ख्वाजा पेट्रूज़ ने शपथ लेकर कहा—"मेरा नाम ख्वाजा पेट्रूज़ है। मै आरमीनियन हूँ। मैं हिन्दी और फारसी भाषा जानता हूँ। कमालुद्दीन को मै पहिचानता हूँ। चार बरस हुए, एक बार कमालुद्दीन ने मुझसे कहा था कि मेरे नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार के पास है।"

पाचवें गवाह मुशी सदरुद्दीन ने शपथ लेकर कहा—"११६६ साल १७७२ ई० के अषाढ मास में एक बार कमालुद्दीन ने मेरे पास

आकर कहा—"महाराज नन्दकुमार ने मेरे नाम की मोहर एक जाली तमस्सुक पर छाप ली है और मुझ से उस तमस्सुक की तस्दीक के लिए झूठी गवाही देने को कहते हैं। यदि मैं यह झूठी गवाही नहीं दूँगा तो वह (महाराज नन्दकुमार) मेरे ज़ामिन नहीं रहेंगे।" मैंने कमालुद्दीन से पूछा कि तुम्हारे नाम की मोहर महाराज नन्दकुमार को कैसे मिली? कमालुद्दीन ने कहा—"चौदह-पन्द्रह बरस पहिले मैंने नवाब मीरजाफर के पास एक दरख्वास्त भेजी थी। उस दरख्वास्त पर मेरी मोहर नहीं लगी थी। बाद में दरख्वास्त पर मोहर लगा लेने के लिए मैंने महाराज नन्दकुमार के पास अपने नाम की मोहर भेज दी थी। तब से वह मोहर महाराज नन्दकुमार ही के पास है।"

छठे गवाह थे राजा नवकृष्ण। इनके इज़हारों को यहा पर उद्धृत करने के पहले मुकदमे के सम्बन्ध की अन्यान्य एक दो घटनाओं का उल्लेख कर देना आवश्यक है।

जिस तमस्सुक को जाली कह कर महाराज नन्दकुमार पर अभियोग चलाया गया था, उस तमस्सुक में सिर्फ तीन आदमियों की गवाही थी। पहिले गवाह का नाम आबिद कमालुद्दीन, दूसरे का नाम शीलावत और तीसरे का माधवराय था। इस घटना के कई बरस पहले आबिद कमालुद्दीन, शीलावत और माधवराय का देहान्त हो चुका था। नवकृष्ण मुंशी ने यह कहा था कि मैं मृत शीलावत सिंह के दस्तखत पहिचानता हूँ। अतएव उक्त तमस्सुक में शीलावत के दस्तख़त सच्चे हैं या जाली, इसकी जांच के लिए नवकृष्ण मुंशी की गवाही ली गई।

राजा नवकृष्ण ने शपथ लेकर कहा—"मेरा नाम है नवकृष्ण देव। मैं लार्ड क्लाइव का मुन्शी था। बुलाकीदास के ज़माने से मैं शीलावत के दस्तख़त पहिचानता हूँ। शीलावत समय-समय पर, बुलाकीदास

की तरफ से लार्ड क्लाइव को पत्र आदि लिखा करते थे, इसी से मैं उनके हस्ताक्षरों को पहिचानता हूँ।"

मोहनप्रसाद का बताया हुआ जाली तमस्सुक राजा नवकृष्ण के हाथ में देकर जजों ने पूछा—"इस तमस्सुक पर शीलावत सिंह के जो दस्तख़त हैं, ये शीलावत के असली दस्तख़त हैं या नहीं?"

राजा नवकृष्ण—मैं कुछ कहना नहीं चाहता। मैं कायस्थ हूँ, अभियुक्त ब्राह्मण है। मुक़दमा साबित हो गया तो अभियुक्त को प्राणदण्ड होगा। ऐसी हालत में साफ़-साफ़ कहना कोई सहज काम नहीं है।

इलाइजा इम्पी—तुमने शपथ ली है, सच्ची बात तुम्हें अवश्य कहनी पड़ेगी। ये दस्तख़त शीलावत के दस्तख़तों की तरह दीख पड़ते हैं या नहीं?

राजा नवकृष्ण—अपने मन की बात प्रकट करने को मेरा जी नहीं चाहता। ब्राह्मण के प्राणों का मामला है। बड़े असमंजस का विषय है। धर्मावतार! मुझे माफ़ कीजिये।

इलाइजा इम्पी—सच-सच कहो, ये शीलावत के दस्तख़त या नहीं?

राजा नवकृष्ण—श्रीमान्! ये शीलावत के दस्तख़त नहीं हैं। शीलावत के दस्तख़त इतने सुन्दर नहीं होते थे।

वादी के सारे गवाहों का इज़हार हो जाने के बाद जजों ने देखा कि नन्दकुमार के ऊपर जाली तमस्सुक तैयार करने का अपराध किसी तरह साबित नहीं होता। कम से कम नौ दफ़े मोहनप्रसाद को गवाह की बेंच पर लाया गया। परन्तु उनकी गवाही में इतना बराबर साबित

होता रहा कि बुलाकीदास की मृत्यु के बाद पद्मसोहन ने इस तमस्सुक को सच्चा स्वीकार किया था।

जज, जूरी, हेस्टिंग्स और बारवेल इत्यादि सभी बड़े चिन्तित हुए। नन्दकुमार को प्राणदण्ड न हुआ तो घूस लेने और देश लूटने में सुविधा न होगी। अब किस उपाय का अवलम्बन किया जाय।

बुलाकीदास के गुमाश्ता कृष्णजीवनदास कोई चौबीस दफे गवाह की बेंच पर लाये गये, किसी तरह मुकदमा न साबित हुआ। अन्त में हित के विपरीत परिणाम की नौबत आई। कृष्णजीवनदास ने स्पष्ट शब्दों मे स्वीकार किया कि बुलाकीदास ने अपनी मृत्यु के पहिले पद्मसोहनदास के हाथ के लिखे हुए एक इक़रारनामे को स्वयं अपने दस्तख़तों से तसदीक़ किया था। यह मुक़दमा चलाने के चार-पांच बरस पहले मोहनप्रसाद ने वह इकरारनामा अपनी आंखों से देखा है। यह इक़रारनामा पढा गया, इसमें स्पष्ट अक्षरों में यह लिखा था कि बुलाकीदास ने ४८०२१ रुपये की बाबत सन् १७६९ ई० मे महाराज नन्दकुमार को एक तमस्सुक लिख दिया था।

कृष्णजीवनदास के इज़हारों से यह बात प्रकट होते ही सुप्रीम-कोर्ट के जजों तथा हेस्टिंग्स आदि के सिर पर एकदम मानों वज्र टूट पड़ा। इलाइजा इम्पी बड़े चतुर थे। वे कह उठे—"कृष्णजीवनदास ने सारी बातें बिना किसी छल-फरेब के साफ-साफ कही हैं। परन्तु अभी इक़रारनामे की बात कहते वक्त उनका गला रुक गया था, शरीर कांप उठा था। अतएव कृष्णजीवन की यह आखिरी बात क़तई झूठ —पद्मसोहन ने महाराज नन्दकुमार के साथ साज़िश कर के अपने मरने से पहले यह इक़रारनामा तैयार किया था।"

इस ओर कान्त पोद्दार, नवकृष्ण मुंशी, गंगागोविन्द सिंह, कायस्थ कुलोद्भव द्वितीय राजा राजबल्लभ और स्वयं हेस्टिंग्स नये

गवाह इकट्ठे करने का उद्योग करने लगे। बहुत कुछ खोजा-खाजी करने के बाद हमारे पूर्वोल्लिखित—नमक की कोठी के एजन्ट जान्सन साहब के खानसामा— आज़िमअली चाचा को ला हाज़िर किया।

आज़िमअली ने जान्सन साहब के साथ कलकत्ता आने के बाद से खानसामागीरी छोड़ कर लाल बाज़ार में जूतों की दूकान खोल ली थी। क्लाइव के द्वारा प्रतिष्ठित वणिक-सभा के अध्यक्षों ने इस व्यक्ति को पहले सरकारी गवाह नियुक्त किया था। उस वक्त सरकारी वकील नियुक्त नहीं होते थे। एक सरकारी गवाह रहा करता था। जब कभी किसी व्यक्ति के ऊपर गुप्तरूप से नमक खरीदने-बेचने का मुकदमा दायर होता था तो आज़िमअली को उसके जुर्म के सबूत में गवाही देनी पड़ती थी। परन्तु वणिक-सभा के रद्द हो जाने पर आज़िमअली का पद भी टूट गया। अब वे कलकत्ते में एक स्त्री के साथ निकाह कर के लाल-बाज़ार में रहने लगे थे और जूता बेच कर अपनी जीविका चलाते थे।

गवाही देने के काम में आज़िमअली बड़े प्रवीण हैं, इसे हेस्टिंग्स आदि अच्छी तरह जानते थे। इस लिए फरियादी की तरफ से इन्हें प्रधान साक्षी के रूप में उपस्थित किया गया।

पाठकों के ज्ञातार्थ इस स्थान पर हम यह कह देना चाहते हैं कि सुप्रीम कोर्ट की अनुमति के अनुसार नन्दकुमार के मुक़दमे की जो रिपोर्ट छप कर प्रकाशित हुई थी उसमें आज़िमअली गवाह के नाम का उल्लेख नहीं था। पाठक गण शायद कहें कि यह गवाह लेखक का कपोल-कल्पित है, परन्तु बात ऐसी नहीं है। हमारी समझ में रिपोर्टर की भूल से आज़िमअली का नाम छूट गया है। इसके अतिरिक्त इङ्गलैण्ड में नन्दकुमार के मुकदमे की रिपोर्ट प्रकाशित होने के बाद मेकिन्टस नामक अङ्गरेज़ ने एक पुस्तक प्रकाशित की थी। जिसमें उन्होंने लिखा था,— सुप्रीम कोर्ट के जजों ने सारी बातों को प्रकट नहीं किया। स्वेच्छा

मे उन्होने मुक़दमे की कितनी ही बातो को छिपा रखा था। कितने ही गवाहों के इज़हार तक बदल डाले थे। यदि मेक्निन्टस का कथन सत्य है तो शायद इसी लिए आजिमअली के इज़हार भी रिपोर्ट में नहीं दिखाई देते।

परन्तु इस मुक़दमे के सम्बन्ध में हमने जो कुछ भी सुना है, उस सब का उल्लेख करना उचित है। अतएव मुकदमे के प्रधान साक्षी आज़िमअली चाचा के इजहारो को विस्तारपूर्वक हम नीचे उद्धृत करते हैं।

तीसरी जून को इस मुकदमे के फरियादी के गवाहो के इज़हार शुरू हुए; और ग्यारहवी जून को फरियादी के अन्यान्य सब गवाहों की गवाही समाप्त हुई। बारहवी जून को फरियादी की तरफ से आजिम-अली गवाह पेश हुआ। सेशन अदालत के आईन के अनुसार इस प्रकार एक नये गवाह की गवाही लेना उचित न था। परन्तु महाराज नन्दकुमार के मुकदमे में जज लोग आईन के अनुसार काम करने को बाध्य न थे। यदि आईन के अनुसार काम किया जाता तो मुंशी सदरुद्दीन और ख्वाजा पेट्रूज की गवाही भी नहीं ली जा सकती थी।

आजिमअली चाचा सुप्रीम कोर्ट में आकर गवाह के रूप में हाजिर हुए। उन्हें गवाह की बेंच पर जाते देख कर महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैतननाथ और महाराज के दामाद राय राधाचरण राय बहा-दुर के सिर पर वज्र सा टूट पड़ा। इन्होंने अच्छी तरह समझ लिया था कि जहां किसी गवाह के मुंह से इतनी बात निकल गई कि मैंने महा-राज नन्दकुमार को जाली तमस्सुक बनाते देखा है कि बस, जज लोग महाराज को दोषी ठहरा देंगे। अङ्गरेज़ी प्रथा के अनुसार विचार हो रहा है। आईन के मुताबिक सिर्फ प्रमाण के अभाव में जज लोग कुछ

आगा पीछा सोच रहे हैं, अन्यथा नन्दकुमार का दोष विचार आरम्भ होने के पहिले ही साबित हो चुका होता।

नन्दकुमार के गुमाश्ता चैताननाथ धूर्तता और चालबाजी मे हेस्टिंग्स के सहचरों से कुछ कम न थे। जैसे ही आज़िमअली ने इज़हार देना शुरू किया, चैताननाथ ने फौरन अंगुलियों के इशारे से उसे पहिले एक सौ, फिर दो सौ, बाद मे तीन सौ रुपया तक देना स्वीकार किया। आज़िमअली इतने पर राज़ी न हुआ और शपथ लेकर इज़हार देने लगा—

"मै महाराज नन्दकुमार का घर जानता हूँ। महाराज नन्दकुमार के गुमाश्ता चैताननाथ बाबू मेरी दूकान से जूता ख़रीद ले जाते है। मैं उनके हाथ उधार भी जूता बेचता हूँ। १७६९ ई० के जुलाई महीने में मै एक बार चैताननाथ बाबू से जूतों के दाम लेने महाराज नन्दकुमार के यहां गया था। उसके दस रोज पहले बुलाकीदास की मृत्यु हुई थी। चैताननाथ बाबू उस वक्त बड़े व्यस्त थे। उन्होंने मुझ से कहा—'थोड़ी देर बैठो, इस वक्त मैं महाराज के काम मे लगा हूँ।' मैंने चैताननाथ बाबू से पूछा—आप किस काम मे लगे है? उन्हों ने कहा—'महाराज एक तमस्सुक बना रहे है, उसी में लगा हूँ।' उसके बाद महाराज नन्दकुमार अपने बैठके मे आये और बक्स खोल कर उसमें से प्रायः पचीस तीस नामों की मोहरें निकालीं*; और चश्मा लगा कर उन मोहरों के नाम पढ़ने लगे। सब मोहरों में से एक मोहर निकाल कर चैताननाथ से कहा—'देखो तो यह कमालुद्दीन के नाम की मोहर है या नहीं।' चैताननाथ ने उस मोहर को हाथ मे लेकर कहा—"हां, यह कमालुद्दीन ही के नाम की मोहर है।"

*Vide Note (10) in the appendix.

आज़िमअली के यहा तक कहते ही जज लोग बडे प्रसन्न हुए। इतने दिनो के बाद अब जाकर प्रत्यक्ष प्रमाण प्राप्त हुआ। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर लेकर जज लोग कहते थे—"Go on—Go on" उसके बाद—उसके बाद।

आज़िमअली—हुजूर, उसके बाद तमस्सुक की तरह एक काग़ज़ पर वह मोहर छाप ली।

जज हाइड—Go on—Go on—उसके बाद—उसके बाद।

आज़िमअली—उसके बाद चैतानाथ बाबू से कहा—जिस स्थान पर यह मोहर लगाई गई है, उसके पास ही आबिद कमालुद्दीन का नाम लिख लो।

जज लिमेस्टर—Go on—उसके बाद।

आज़िम अली—उसके बाद चैतान बाबू ने उस काग़ज़ पर आबिद कमालुद्दीन का नाम लिख लिया।

जज चेम्बर्स—तुम लिखना पढ़ना जानते हो ?

आज़िमअली—हुजूर अब आंखों से कम दीखता है, इसलिए अब नहीं लिख-पढ पाता हूं। पहिले फ़ारसी लिख-पढ सकता था।

इलाइजा इम्पी—Go on—आगे चलो।

आज़िमअली—हुजूर, उसके बाद उस तमस्सुक पर महाराज नन्दकुमार ने गवाह की जगह पर शीलावत सिंह और माधव राय का नाम लिख लिया।

गवाह के यहां तक कहते ही राय रायाचरण घोर विपत्ति की आशंका करके चुपके-चुपके चैतानाथ से कहने लगे—"आज़िमअली को एक हज़ार रुपया देने कहो।"

चैतननाथ ने अंगुली के इशारे से आज़िमअली को एक हजार रुपया देना मंज़ूर किया।

इस पर आज़िमअली ने चैतननाथ को आश्वासन-सूचक इशारा किया।

इधर जज लोग और फरियादी के वकील अज़िमअली से कहने लगे—उसके बाद, उसके बाद।

आज़िमअली—उसके बाद जब सब गवाहों का नाम तमस्सुक पर लिख गया तो महाराज नन्दकुमार उसे अपने मुह के पास रख कर पढ़ने लगे। उनके पढ़ते वक्त मैंने सुना कि वह तमस्सुक बुलाकीदास की तरफ से लिखा गया था।

सभी जज—(अत्यन्त आनन्दित होकर) Go on—उसके बाद।

आज़िमअली—पढ़ चुकने पर महाराज नन्दकुमार ने उसे बक्स में रख लिया।

सभी जज—Go on—उसके बाद।

आज़िमअली—हुजूर, इतने में घर के भीतर से मुर्गी चीख उठी, मेरी नींद टूट गई। मेरी छोटी बीबी कहने लगी—"मियां, उठोगे नहीं, आंगन में धूप आ गई।"

इन्टरप्रेटर इलियट साहब गवाह की यह बात सुन कर 'हां' करके उस की तरफ देखने लगे। जजों ने जल्दी जल्दी इंटरप्रेटर से गवाह की यह आख़िरी बात इन्टरप्रेट (अनुवाद) करने के लिए कहा और इधर गवाह से बोले—"Go on, Go on"।

आज़िमअली—हुजूर, उसके बाद मैंने अपनी छोटी बीबी से कहा—"मीर की बेटी! मैं ख़्वाब देख रहा था कि मैं महाराज नन्द-

कुमार के यहां गया हूँ, वहां वे दुलाकी बाबू के नाम एक जाली तमस्सुक बना रहे हैं।"

इन्टरप्रेटर इलियट साहब ने जब गवाह की ये आखिरी दोनों बातें जजों को समझाईं तो वे चकित हो कर आज़िमअली का मुंह ताकने लगे।

आज़िम अली ने फिर कहना शुरू किया— 'धर्मावतार ! जो जो देखा है, वही कहूँगा। जान चली जाय पर झूठ हर्गिज़ नहीं कह सकता। मेरी छोटी बीबी ने कहा—"मियां क्या ख्वाब देखा?" मैंने कहा—"बस बड़े मजे का ख्वाब देखा। ख्वाब में देखा कि मैं चैतान बाबू के पास जूतों के दाम लेने गया हूँ। चैताननाथ और महाराज नन्दकुमार एक जाली तमस्सुक बना रहे हैं।" यह बात सुनकर मेरी छोटी बीबी ने कहा—"मियां ! तुम साहब, सूबा, राजा, नवाब, अमीरों के यहां हमेशा आया-जाया करते हो—उनके संग साथ में रहते-सहते हो—इसलिए ख्वाब भी उन्हीं का देखते हो।"

सुप्रीम कोर्ट के चारो जज एकदम भौंचक्के हो रहे ! समझ न सके, क्या मामला है। अन्त में जज चेम्बर्स ने इन्टरप्रेटर से कहा—"इस गवाह से पूछो कि क्या इस ने ख्वाब में जो कुछ देखा था, वही अपने इज़हारों में कहा है?"

इन्टरप्रेटर ने जब आजिम अली से उपर्युक्त प्रश्न किया तो आज़िम अली ने कहा—"हुजूर, मैंने ख्वाब में जो कुछ देखा था, वही सब कहा है। तीन-चार दिन हुए, मैंने मोहन प्रसाद से कहा था कि महाराज नन्दकुमार ने जो जाली तमस्सुक बनाया है, उसे मैंने देखा है। मोहनप्रसाद बाबू मेरी पूरी बात न सुन कर बीच ही में बोल उठे— "तो तुम्हे गवाही देनी पड़ेगी।" मैंने कहा—"जो देखा है, वही कहूँगा।" जहाँपनाह, जो कुछ मैंने देखा था, वही यहां कहा। एव

भी बात मैंने झूठी नहीं कही। धर्मावतार! मैं कोई छोटा आदमी नहीं हूं, मेरी छोटी बीबी मीर घराने की लड़की है। जिले के अफसर मौलवी अबदुल लताफत मेरे सगे ससुर हैं। मौलवी अबदुल रहमान मेरे सौतेले साले है।"

इतने मे पीछे से चैतानाथ कह उठे—"भला, बेटा, अपने को प्रतिष्ठित मुसलमान बता रहा है। लाल बाजार की रहमानी की लड़की के साथ निकाह किया है। कहता है, मौलवी अब्दुल लताफत मेरे ससुर हैं।"

आज़िमअली (चिल्ला कर) दुहाई धर्मावतार!—मैं चैतानाथ बाबू के ऊपर हतक-इज़्ज़ती का दावा करूंगा—ये मेरी सास को लाल बाज़ार की रहमानी बता रहे हैं। धर्मावतार! मेरी सास अब पर्दानशीन हो गई है। हां, पहले वह लाल बाजार में कुछ दिनों ज़रा बेपर्दा रही थी। आज प्रायः छ महीने हुए, मौलवी साहब ने निकाह करके उसे पर्दानशीन बना लिया है। तभी तो मौलवी साहब मेरे ससुर हुए।

आज़िमअली गवाह की बातचीत सुन कर और उसका हाव-भाव देख कर जज, वकील, इन्टरप्रेटर—सभी चक्कर में पड़ गये। किसी ने कुछ न कहा, चुप साध कर बैठ रहे।

बहुत देर के बाद इलाडजा इम्पी ने अभियुक्त के बैरिस्टर फेरर साहब से कहा—"Mr Farrer, have you any legal objection to your using this man's statement in evidence?" मिस्टर फेरर, इस गवाह के इज़हारों को प्रमाण-स्वरूप ग्रहण करने के सम्बन्ध में आप को कोई आपत्ति है?

फेरर—My lord, how his statement can be considered admissible in evidence? I can not

understand He stated what he saw in a dream. मैं नहीं समझता कि ये इजहार किस प्रकार प्रमाण-स्वरूप ग्रहण किये जा सकते हैं। इस व्यक्ति ने तो स्वप्न में जो कुछ देखा था, वही बयान किया है।

इलाइजा इम्पी—Mr. Farrer, in this hot climate of India, there is hardly anything like sound sleep. In Bengal even when we are supposed to be asleep, we are almost half awakened. I think under these peculiar climate circumstances, Lord Thurlow would not hesitate to accept in evidence a statement of fact observed or perceived, seen or heard in a half awakened state. मिस्टर फ़ेरर! इस अत्यन्त उष्ण देश (भारतवर्ष) में पूरी नींद कभी नहीं आती, हम लोग निद्रित अवस्था में प्रायः आधे जागते रहते हैं। ऐसी अवस्था में यदि किसी व्यक्ति के आँख, कान, नाक इत्यादि किसी इन्द्रिय के द्वारा कोई विषय इन्द्रियगोचर हो तो उस विषय के सम्बन्ध में उसकी गवाही ग्रहण कर लेने को लार्ड थार्लो शायद अनुचित नहीं समझेंगे।

फ़ेरर—My lord, I have nothing to do with Lord Thurlow's opinion on the subject. But if your Lordship is inclined to use Azimali's statement in evidence, I hope my objection to the admissibility of such statement in evidence should be recorded. लार्ड थार्लो की सम्मति के विषय में मैं कुछ नहीं कहना चाहता। आप यदि आज़िमअली की गवाही को

प्रमाण-स्वरूप ग्रहण करना चाहें तो इस सम्बन्ध में मेरी आपत्ति का उल्लेख कर रखें।

इलाइजा इम्पी ने अन्यान्य तीन जजों के साथ परामर्श कर के निश्चय किया कि आजिमअली की गवाही प्रमाण स्वरूप ग्रहण की जा सकती है। अतएव उन्होंने अभियुक्त के बैरिस्टर को सफ़ाई के गवाह पेश करने की आज्ञा दी।

अभियुक्त के बैरिस्टर फेरर साहब ने कहा—'अभियुक्त के विरुद्ध जाली तमस्सुक बनाने का अपराध प्रमाणित नहीं हुआ। अतएव हम सफ़ाई के गवाह पेश नहीं करेंगे। अभियुक्त यों ही छोड़े जाने का हक़दार है।

सुप्रीम कोर्ट के जजों ने कहा कि अभियुक्त के विरुद्ध अपराध प्रमाणित हो गया है। अतएव सफाई के गवाह पेश न करने पर हमें जूरी के निकट सबूत की समालोचना करनी पड़ेगी।

बुलाकीदास ने महाराज नन्दकुमार को तमस्सुक लिखा था—इस बात के सबूत के लिए महाराज नन्दकुमार की तरफ से कितने ही गवाह हाज़िर थे। एक एक करके उन सब का इज़हार शुरू हुआ।

इस स्थान पर सफाई के उन समस्त गवाहों का हम सिर्फ नामोल्लेख किये देते हैं। सब के इज़हारों को उद्धृत करके उपन्यास का कलेवर बढ़ाना अनावश्यक है। इस मुक़दमे में गवाहों के इज़हार लेना सिर्फ एक तरह के दिखावे के सिवाय और क्या हो सकता था? मुक़दमे की दायरी से पहले ही सुप्रीम कोर्ट के चारों जजों के साथ हेस्टिंग्स साहब का पक्का समझौता हो चुका था।

महाराज नन्दकुमार की तरफ से तेजराय, बाबू हुजूरीमल्ल, बाबू काशीनाथ, रूपनारायण चौधरी, जयदेव चौबे, मीरअसद अली, शेख़

यारमाहम्मद, शेर अली खा, चैताननाथ आदि कितने ही गवाहों के इज़हार लिये गये। फरियादी के गवाहो में मनोहर, रामनाथ दास तथा कृष्णजीवन दास आदि की भी गवाही ली गई।

दोनो पक्षों की गवाही हो जाने के बाद चीफ जस्टिस इलाइजा इम्पी ने जूररों को सम्बोधन करके सबूत की समालोचना शुरू की। इस मौके पर उन्होंने एक बड़ी लम्बी चौडी वक्तृता दी। वक्तृता देते हुए बीच-बीचमें कोई सौ दफे उन्होने यह कहा—

"जूरर महाशयो ने बडे धैर्यावलम्बन-पूर्वक गवाहो के इज़हार सुने हैं, इसलिए कुछ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं प्रतीत होती। परन्तु विचार जिस से न्याय-सङ्गत हो, उस के प्रति आप लोग विशेष मनोयोग प्रदान करें।" "न्याय सङ्गत"—"न्याय सङ्गत"—कह कर वे कोई पचास दफे चिल्लाये। जूररों से उन्होने यह भी कहा कि 'ऐसा अनुमान किया जाता है, बुलाकीदास के पोष्य-पुत्र मृत पद्ममोहनदास ने नन्दकुमार के साथ मिलकर साज़िश की थी।' जब उन की वक्तृता समाप्त हुई तो जूरर लोग परस्पर परामर्श करने के लिए एक दूसरे कमरे मे चले गये। आध घण्टे बाद जूररो में से प्रधान व्यक्ति (Foreman) वेरिन्सन साहब ने कहा कि 'समस्त जूररो की विवेचना में महाराज नन्दकुमार के ऊपर जाली तमस्सुक बनाने का अपराध सच्चा साबित हुआ।'

"महाराज नन्दकुमार अपराधी हैं।"

जूररों के यह राय देने पर सुप्रीम कोर्ट के चारो जज बडे आनन्दित हुए। इलाइजा इम्पी ने महाराज नन्दकुमार के प्राण दण्ड की आज्ञा दी।

—ooॐoo—
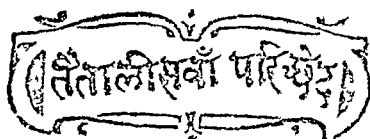
गुरु और शिष्य

महाराज नन्दकुमार के प्राणदण्ड की आज्ञा के अनन्तर उनके वकील फेरर साहब ने जजों के निकट प्रार्थना की कि इस दण्डाज्ञा को कुछ काल के लिए स्थगित किया जाय। परन्तु सुप्रीम कोर्ट के जजों ने इस प्रार्थना को अस्वीकार किया।

महाराज नन्दकुमार के आत्मीय स्वजनों ने सोचा था कि यह भीषण दण्डाज्ञा यदि जज लोग कुछ काल के लिए स्थगित कर देंगे तो इंगलैंडेश्वर के निकट दण्डाज्ञा को रद कर देने की प्रार्थना करेंगे। परन्तु हेस्टिंग्स और सुप्रीम कोर्ट के जज अच्छी तरह जानते थे कि इंगलैंडेश्वर की मन्त्रि-सभा मुक़दमे की हालत देखकर अवश्य ही नन्द-कुमार को छोड़ देगी। ऐसी दशा में हमारा सारा षड्यन्त्र निष्फल होगा। इसलिए उन्होंने फाँसी के हुक्म को थोड़े समय के लिए भी स्थगित करना नामन्जूर किया।

इस के बाद देश के समस्त प्रधान प्रधान तालुक़दार, ज़मींदार कोई दस हजार आदमियों ने एकत्र होकर नन्दकुमार की फाँसी के हुक्म को स्थगित रखने के लिए प्रार्थना की। परन्तु सारे देशनिवासियों की बात पर जजों ने तनिक भी ध्यान न दिया।

अन्ततः नन्दकुमार के वकील ने जूरों (Jurors) के घर जाकर उनसे प्रार्थना की कि वे इस दण्डाज्ञा को स्थगित रखने के लिए जजों से अनुरोध करें। परन्तु इन अंगरेज़ जूरों ने कहा कि हम लोग

जब नन्दकुमार को दोषी ठहरा चुके है तब इस प्रकार का अनुरोध करना हमारे लिए सर्वथा असंगत है।

देश के समस्त निवासियो ने महाराज नन्दकुमार की दुरवस्था देखकर हाहाकार मचाना शुरू किया। हेस्टिंग्स और बारवेल ने जब यह देखा कि सुप्रीम कोर्ट के जजो के प्रति देश निवासियो के हृदय में अत्यन्त घृणा उत्पन्न हो रही है, तब वे सुप्रीम कोर्ट के प्रधान जज इलाइजा इम्पी को एक अभिनन्दन पत्र दिलाने की चेष्टा करने लगे। इन दोनों महात्माओ के मनोरजनार्थ कान्त पोद्दार, गगा गोविन्द सिंह और राजा नवकृष्ण ने इस काम के लिए बहुत कुछ उद्योग करके प्राय: चालीस पचास आदमियों को ला कर जमा किया।

इन चालीस पचास आदमियो में प्रतिष्ठित आदमी एक भी न था। कुछ तो लाल बाजार के जूतों के दुकानदार थे, दो बारवेल साहब के और दो हेस्टिंग्स साहब के खानसामा थे। तथा नन्दकुमार के मुक़दमे के विचारार्थ जो बारह अंगरेज़ जूरर चुने गये थे, उन में के आठ जूरर थे,—इन लोगो ने एकत्र होकर इलाइजा इम्पी को एक अभिनन्दनपत्र प्रदान किया! इस अभिनन्दनपत्र में कान्त पोद्दार, गंगागोविन्द सिंह और नवकृष्ण आदि के भी हस्ताक्षर थे।

अभिनन्दनपत्र में लिखा गया कि "पहले जब हम लोगों को यह ज्ञात हुआ था कि सुप्रीम कोर्ट इंगलैण्ड के आईन के अनुसार कलकत्ता-वासियो के मुकदमो का विचार करेगी तो हम लोग बड़े भीत हुए थे। परन्तु महाराज नन्दकुमार के मुकदमे में जैसा सद्विचार हुआ, उससे हम लोगों को आश्वासन मिला है, और प्रधान जज इलाइजा इम्पी तथा अन्यान्य तीन जजों ने जिस परिश्रम के साथ मुकदमे की छान-बीन की है और उसकी असली हालत को समझा है, उसके लिए हम लोग उनके प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।"

राजा नवकृष्ण ने जब यह अभिनन्दन पत्र इलाइजा इम्पी के हाथों में दिया तो इलाइजा इम्पी को, आये हुए अभिनन्दन पत्र-दाताओं में आठ जूरर, नवकृष्ण, कान्त पोद्दार और गंगागोविन्द सिंह के अतिरिक्त एक भी प्रतिष्ठित आदमी न दिखाई दिया। ऐसी दशा में वे सोचने लगे कि इन में से किस को सम्बोधन कर के अभिनन्दनपत्र का उत्तर दें। कान्त पोद्दार और गंगागोविन्द सिंह हेस्टिंग्स के अनुगत आदमी हैं। यदि यह प्रकट करते हैं कि इन से अभिनन्दनपत्र प्राप्त हुआ तो इस अभिनन्दन का कोई मूल्य नहीं रह जाता। राजा नवकृष्ण एक तो हेस्टिंग्स के अनुगत दूसरे फरियादी के गवाह। बाकी जो रह गये वे सब या तो खानसामा या जूतियाँ बेचने वाले। अन्ततः बहुत कुछ सोच-विचार के अनन्तर इलाइजा इम्पी ने अभिनन्दनपत्र पर हस्ताक्षर करनेवाले आठ जूररों को सम्बोधन करके कहा—

"आप ही लोगों के उद्योग और परिश्रम से इस मुकद्दमे का सुविचार हुआ है। यदि आप (जूरर) लोगों की सहायता न मिलती तो नागरी भाषा में लिखे हुए इन समस्त खातों एवं काग़ज़-पत्रों को हम लोग अच्छी तरह न समझ सकते। अतएव अपने तीनों भाइयों के सहित मैं आप लोगों को हार्दिक धन्यवाद देता हूं।"

दो-चार दिन के भीतर अभिनन्दन की धूम-धाम समाप्त हो गई। नन्दकुमार की फांसी का हुक्म स्थगित नहीं हुआ। पांचवीं अगस्त फांसी का दिन नियत किया गया।

जून मास के अन्त में नन्दकुमार के प्राणदण्ड का आदेश हुआ था। जजों की इच्छा थी कि जुलाई में उन्हें फांसी दे दी जाय। परन्तु हेस्टिंग्स ने अपने एक अन्य अन्दरूनी अभिप्राय को सिद्ध करने के लिए फांसी की तारीख कुछ हटा कर रखने की राय दी।

हेस्टिंग्स ने सोचा कि यदि नन्दकुमार को बाध्य करके उन से यह कहला लिया जाय कि उन्होंने फिलिप फ्रांसिस, कर्नल मन्सन और जनरल क्लेवरिं की उत्तेजना से उनके (हेस्टिंग्स के) ऊपर घूस लेने का अभियोग उपस्थित किया है तो मैं एकदम सारे शत्रुओं के विनाश-साधन में कृत-कार्य होऊंगा। इस आशा से उन्होने इम्पी के साथ सलाह करके फांसी की तारीख पांचवी अगस्त रखवाई। परन्तु नन्दकुमार जीते जी यह कहने के लिए तैयार न हुए। मृत्युकाल में भी उन्होने फिलिप फ्रांसिस, कर्नल मन्सन और जनरल क्लेवरिं को आशीर्वाद दिया कि देश के अत्याचार-निवारण में परमेश्वर आप लोगो की सहायता करें।

फांसी का दिन निश्चित हो जाने के बाद भी देश के सैकड़ों आदमी कारागार मे जाकर महाराज नन्दकुमार से मुलाकात करते थे। अब भी कारागार मे नन्दकुमार का दरबार सा लगा रहता था। जेल के अध्यक्ष माक्रेबी साहब महाराज नन्दकुमार के प्रति विशेष सहानुभूति प्रकट करते थे।

बापूदेव शास्त्री अब भी कालीघाट ही मे रहते थे। महाराज नन्दकुमार के कारारुद्ध होने के बाद, मुक़दमे के विचार से पहले, एक बार कारागार में जाकर वे महाराज नन्दकुमार से मिले थे। परन्तु अब इस भीषण दण्डाज्ञा की बात सुन कर वे अत्यन्त दुखित हुए। प्रमदा की मृत्यु के बाद उन्होने काशी चले जाने का निश्चय किया था। परन्तु अब वे प्रति दिन महाराज नन्दकुमार के घर पर जाकर उनकी स्त्री और कन्याओं को सान्त्वना देने की चेष्टा करने लगे। महाराज नन्दकुमार की स्त्री बापूदेव को पिता कह कर सम्बोधन करती थी।

बापूदेव के प्रति महाराज नन्दकुमार के हृदय में अगाढ़ श्रद्धा थी फांसी के पन्द्रह दिन पहले उन्होने बापूदेव से कहला भेजा कि आप कारागार में आकर मुझ से मिल जांय। बापूदेव कारागार में जाकर महा

राज से मिले। * वे नन्दकुमार पर पुत्रवत् स्नेह रखते थे। नन्दकुमार की दुरवस्था देखकर वे आसू बहाने लगे। कारागार में परस्पर एक दूसरे को देख कर अवाक् हो, बडी देर तक दोनों एक दूसरे के मुह की ओर देखते रहे।

बडी देर के बाद महाराज नन्दकुमार ने कहा—"गुरुदेव! प्राय बारह बरस हुए—एक दिन जिस वक्त आप से और मुझ से हलधर तन्तुकार के निराश्रय बालक के पालन-पोषण के सम्बन्ध मे वार्त्तालाप हो रहा था, उस वक्त आपने कहा था—"नन्दकुमार तुम्हारे लिए फासी का फंदा तैयार है।" बडे आश्चर्य की बात—मैं पूछता हू, भविष्य के गर्भ मे जो कुछ निहित था, उसे आपने कैसे जान लिया था?"

बापूदेव—बेटा! भविष्य के गर्भ में जो कुछ निहित रहता है, उसे परमेश्वर के अतिरिक्त कोई नहीं जान सकता। परन्तु कर्त्तव्य का पालन न करने पर मनुष्य को इस संसार में दण्डित होना पडता है, इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं। यह संसार मगलमय परमेश्वर के न्याय विचार के अनुसार परिशासित होता है। इलाइजा इम्पी अथवा हेस्टिग्स, किसी मे तुम्हारा बाल भी बाका करने की शक्ति नहीं थी। तुम अपने ही दुष्कर्मों का फल भोग रहे हो।

नन्दकुमार—गुरुदेव! आप की सहधर्मिणी को, जिन्हें मैं अपनी माता से कम नहीं समझता था, और आप की पुत्री और परम पुण्यवती बहन प्रमदा को उपहार स्वरूप प्रदान करने के लिए जो स्वर्णाभरण खरीदे गये थे, और जिन आभरणों के मूल्य से हज़ारों दुर्भिक्ष-पीडितों को अन्न वितरित किया गया था, वही आभरण मेरी मृत्यु के कारण हुए। क्या अब भी आप यह कहते हैं कि परमेश्वर के न्याय विचार के अनुसार यह संसार शासित होता है? उधर मुहम्मद रज़ा खां ने देश का सारा चावल खरीद कर गोदाम में बन्द कर रख छोडा था, जिसके कारण देश

के हज़ारों आदमी भूकों छटपटा कर मर गये, परन्तु उसका क्या विचार हुआ ?

बापूदेव—बेटा ! मृत्यु क्या कोई दण्ड है ? मृत्यु की अपेक्षा भीषण दण्ड क्या संसार में और नहीं है ?

नन्दकुमार—स्वाभाविक मृत्यु भले ही दण्ड न हो, परन्तु इस प्रकार के अविचार-द्वारा अपमृत्यु होने की अपेक्षा भीषण दण्ड संसार में और कौन है ? तिस पर यह कलङ्क चिरकाल तक मेरे नाम के साथ संयुक्त रहेगा कि जाली काग़ज़ बनाने के अपराध मे मुझे फांसी हुई।

बापूदेव—मृत्यु किसी दशा मे भी कष्ट का कारण नही। मृत्यु को दण्ड नहीं कहा जा सकता। हां, यह अवश्य ही दुख का विषय है कि जाली कागज़ बनाने के कलङ्क से तुम्हारा नाम कलङ्कित हुआ। परन्तु यह कलङ्क तुम्हारे निज के कुकर्मों का अवश्यम्भावी फल है।

नन्दकुमार—मैंने ऐसा कौन सा कुकर्म किया है ? क्या आप यह विश्वास करते हैं कि मैंने अपने अनुगत बुलाकीदास की निराश्रय विधवा को ठगने वा धोखा देने के उद्देश से थोड़े से रुपयों के लिए जाली तमस्सुक बनाया था ? क्या आप को नही मालूम कि जब गंगाविष्णु, हिंगूलाल और मोहनप्रसाद ने षड्यन्त्र रचकर बुलाकी की विधवा स्त्री को ठगने की चेष्टा की तो मैंने उस निराश्रया विधवा का पक्ष ग्रहण किया था ? इसी से तो मोहनप्रसाद के साथ मेरी शत्रुता का सूत्रपात हुआ।

बापूदेव—बेटा, मैं अच्छी तरह जानता हूं कि तुमने जाली तमस्सुक नहीं बनाया। परन्तु मनुष्य के जीवन के पूर्व-कृत पाप और कर्त्तव्य की अवहेलना इत्यादि विविध घटनाएं उसे विपत्ति की ओर खींचती रहती हैं, और उन्हीं घटनाओं के स्रोत में बहते-बहते वह एक दिन विपत्ति सागर में निमग्न हो जाता है।

नन्दकुमार—मैंने पूर्व मे ऐसे कौन से पाप किये हैं—कौन से कर्त्तव्य की अवहेलना की है—जो मुझे जन-समाज में इस प्रकार निन्दित और कलङ्कित होना पडा ?

वापूदेव—कर्त्तव्य—अवहेलना की तो चारों ओर भरमार है। प्रतिदिन, प्रतिक्षण हम लोग कर्त्तव्य की अवहेलना किया करते हैं। परन्तु तुमने इस जीवन में कितने ही पाप भी किये है। क्या तुम हेस्टिंग्स की तरह सदा ही घूस नहीं लेते रहे ? अपने स्वार्थ की रक्षा के लिए क्या तुमने चालाकी और धोखेबाज़ी का व्यवहार नही किया ? यदि तुम मेरी शिक्षा के अनुसार देश के अत्याचार निवारणार्थ युद्ध क्षेत्र में प्राण-विसर्जन करने के लिए तैयार होते तो एक ओर तुम्हारे जीवन के कर्त्तव्य का प्रतिपालन होता, दूसरी ओर पापानुष्ठान का मौका भी तुम्हारे सामने कभी न उपस्थित होता। सम्भव था कि युद्ध मे विजय प्राप्त करके तुम मुसलमानो के राज्य को सर्वथा विलुप्त कर देने मे समर्थ होते।

नन्दकुमार—परन्तु 'युद्ध करने पर तुम्हें विजय-प्राप्त होगी' यह बात तो आपने मुझ से कभी नहीं कही। आप तो सदा ही यह कहा करते थे कि 'जय पराजय ईश्वर की इच्छा पर निर्भर है'। इसी लिए मैंने उस पथ का परित्याग कर कौशल के पथ का अवलम्बन किया था।

वापूदेव—जय-लाभ की आशा का प्रलोभन देकर यदि मै तुम्हे युद्धक्षेत्र मे भेजता तो तुम अवश्य ही पराजित होते। मनुष्य को आत्म-विस्मृत होकर युद्धक्षेत्र मे अग्रसर होना पडता है। जो आत्म विस्मृत बनने में असमर्थ है उसके लिए युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर होना ही सर्वथा निरर्थक है। तुम में मैंने आत्म-विस्मृति के लक्षण कभी न देखे। वरन् तुम सदा इसी के लिए जी-जान से चेष्टा करते रहे कि किसी तरह दीवानी का पद प्राप्त करें।

नन्दकुमार—मैंने सोचा था कि दीवानी का पद प्राप्त ... मैं देश का अत्याचार दूर कर सकूंगा।

बापूदेव—मैं सदा ही तुम से यह कहता रहा कि तुम्हें दीवानी का पद प्राप्त हो जाने से देश का कोई उपकार होने की सम्भावना नहीं है। तुम्हें देशवासियों का उपकार करने की इच्छा न थी। किन्तु दूसरे लोग देशवासियों पर अत्याचार करते हैं, प्रभाव जमाते हैं, यह तुम से नही सहन होता था। तुम्हारे हृदय का भाव यह था कि मेरे रहते दूसरा कोई इन पर क्यो प्रभाव जमावे? यही तुम्हारा देशानुराग था, यही तुम्हारी देशहितैपिता थी। मुह से यह कहते थे कि हम देश के अत्याचार निवारणार्थ दीवानी प्राप्त करने की चेष्टा कर रहे हैं।

नन्दकुमार—यदि दीवानी हासिल कर पाता तो देश जिस से सुशासित होता, उस के लिए भी उद्योग करता, तब भी तो देश का कल्याण हीं होता।

बापूदेव—देश को सुशासित करने के लिए तुम्हें आदमी कहां से मिलते? इस वक्त देश के शासन का भार ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने अपने हाथों में ले रखा है। गंगागोविन्दसिंह, कान्त पोद्दार, राजा राजवल्लभ इत्यादि उसे इस शासन-कार्य में सहायता देते हैं। तुम यदि दीवानी पद प्राप्त करके देश का शासन-भार अपने ज़िम्मे ले लेते तो तुम्हें भी ऐसे ही आदमियों के द्वारा देश का शासन करना पड़ता। इस वक्त जैसा अत्याचार फैला हुआ है तुम्हारे सुशासन में भी ऐसा ही अत्याचार जारी रहता! तुम उस वक्त आत्म-सुख में लीन होकर सब कुछ भूल जाते। प्रजा के क्लेशो की ओर आंख उठा कर भी न देखते।

नन्दकुमार—युद्ध में जय-लाभ करके बंगाल की सूबेदारी प्राप्त करने पर भी तो इन्हीं गंगागोविंदसिंह और कान्त पोद्दार जैसे लोगों के

द्वारा शासन-कार्य चलाना पड़ता। ऐसी दशा में आप जो संग्राम में प्राण-विसर्जन करने के लिए कहते थे, उससे भी कोई लाभ न था।

बापूदेव—बेटा ! किसी प्रदेश की वायु दूषित हो जाने पर प्रबल आंधी के द्वारा जिस प्रकार वहां की वायु विशुद्ध हो जाती है, उसी प्रकार संग्राम के द्वारा जातीय-जीवन समुन्नत हो सकता है। मैं पहले ही कह चुका हूं कि आत्म-विस्मृत बनने में असमर्थ रहने पर कोई मनुष्य संग्राम-क्षेत्र में अग्रसर नहीं हो सकता। आत्म-विस्मृत के अभाव में मनुष्य का हृदय घोर स्वार्थपरता और नीचाशयता का आधार बन जाता है। इस देश के लोग क्यों ऐसे नीचाशय और स्वार्थ-परायण बन गये हैं ? इसका एक मात्र उत्तर यही है कि इन में आत्म-विस्मृति का अभाव है। यदि एक बार तुम इन बंगवासियों को युद्ध-क्षेत्र में अग्रसर करने में समर्थ होते तो ये अवश्य ही नव-जीवन प्राप्त कर सकते, और देश के हित के लिए प्राण निछावर करना सीख जाते। उस वक्त यह बंगाल गंगागोविंद और कान्त पोद्दार जैसे नीति-निपुण पण्डितों एवं संतान-घाती हरिदास तर्क-पञ्चानन जैसे धर्म-शिक्षकों से परिपूर्ण न रहता।

नन्दकुमार—तो आप का कहना है कि संग्रामाग्नि प्रज्वलित होने पर देशनिवासियों की प्रकृति और स्वभाव बदल जाता ?

बापूदेव—हां अवश्य ही।

नन्दकुमार—तो ये सब बातें आपने पहले मुझ से समझा कर नहीं कहीं।

बापूदेव—उस वक्त समझा कर कहने से भी तुम्हारी समझ में हर्गिज़ न आतीं। दीवानी लाभ की चिन्ता ने पूर्ण रूप से तुम्हारे अन्तरात्मा पर अधिकार जमा रखा था। अन्य कोई चिन्ता, कोई बात तुम्हारे मन में नहीं समाती थी।

नन्दकुमार—आपने मुझे अपने बाहु-बल से मीरजाफ़र को परास्त करके सूबेदारी प्राप्त करने का परामर्श दिया था। आपका वह परामर्श सर्वथा उचित था, यह मैंने अब जान पाया। परन्तु आप जो यह कह रहे है कि ईश्वर के न्याय-विचार के अनुसार संसार शासित होता है, इस पर अभी तक मुझे विश्वास नहीं आता। अवश्य ही परमेश्वर परम न्यायवान् है; परन्तु उनके राज्य में कितने ही अन्यायाचरण होते है।

बापूदेव—संसार में अनेक अन्यायाचरण होते हैं, इस मे कोई संदेह नहीं; परन्तु किसी व्यक्ति का जब तक अपना कोई पाप न हो तब तक कोई उसका बाल भी बांका नहीं कर सकता। परमेश्वर स्वयं उसकी रक्षा करते हैं। औरों की बात जाने दो, जिस सावित्री नाम्नी कन्या को तुमने मेरे घर देखा है, इस बेचारी का धर्म नष्ट करने के लिए एक अंगरेज़ इसे कासिम बाज़ार लिवा ले गया था। परन्तु ईश्वर की कैसी अपार महिमा! अकस्मात् एक ऐसी घटना संघटित हुई कि साहब को अपनी कुप्रवृत्ति चरितार्थ करने के अवसर से बञ्चित होना पड़ा। ईश्वर की कृपा से इसका धर्म सुरक्षित रहा।

नन्दकुमार—उस कन्या का धर्म सुरक्षित रहा अवश्य, परन्तु यही तो सिर्फ़ एक घटना हुई, संसार की हजारों घटनाओं में ऐसा देखा जाता है कि साधु पुरुषों को बिना ही किसी अपराध के कष्ट-भोग करना पड़ता है। औरों की बात दूर रही, आप जैसा परम धार्मिक पुरुष मैंने दूसरा नहीं देखा। आपकी स्त्री परम साध्वी थी, अतिशय पुण्यवती थी। तदतिरिक्त प्रमदा भी साक्षात् भगवती सदृशी, परम साध्वी और पुण्यवती थी। परन्तु क्यों उसे विधवा होना पड़ा, क्यों उसके भाग्य में यह भीषण दुर्घटना घटित हुई?

बापूदेव—प्रमदा के विधवा हो जाने पर मेरे हृदय में भी यह प्रश्न उत्पन्न हुआ था। कोई तीन महीने तक मैं इसी विषय का चिन्तन

करता रहा। पर अब मुझे यह दृढ विश्वास हो चुका है कि इस घटना मे भी ईश्वर का कोई शुभ उद्देश निहित है। परन्तु कौन सा शुभ उद्देश निहित है, यह मनुष्य के जानने की बात नही। तथापि अनुमान के द्वारा हम इस घटना के भीतर छिपे हुए दो एक शुभ उद्देशों को जान सकते हैं।

नन्दकुमार—आप के अनुमान में इस के भीतर कौनसा शुभ उद्देश निहित है ?

बापूदेव—मैं जिस किसी उद्देश का अनुमान करता हू, उसे किसी दूसरे के निकट प्रकट नही करता, कारण यह कि अनुमान कभी कभी भ्रमात्मक भी हो सकता है।

नन्दकुमार—इस वक्त मेरे निकट प्रकट करने मे कोई हर्ज नही। मैं तो अब इस ससार से जा रहा हू। आप का मत भ्रमात्मक भी हो, वह औरो पर प्रकट न होगा।

बापूदेव—प्रमदा की इस भाग्य-जनित विपत्ति के भीतर मै ईश्वर के अनेक शुभ उद्देशो को देख रहा हू। बेटा, यह ससार चिरकाल के लिए हमारा वास-स्थान नही है, ससार सिर्फ मनुष्य का कार्यक्षेत्र है। हमारे सामने अनन्त जीवन वर्त्तमान है। अतएव इस ससार के क्षणस्थायी कष्टो को ज्ञानी लोग विपत्ति मे नही गिनते। ऐसा विचार करके देखने पर निश्चय होता है कि प्रमदा की यह विपत्ति कोई भारी विपत्ति न थी। तदतिरिक्त संसार यदि काव्य से सूना हो तो यहा के विषयासक्त स्त्री-पुरुषो का हृदय सर्वथा रूक्ष हो जाय। प्रमदा की विपद्राशि एक काव्य के रूप में उपस्थित हो कर संसार के विषयासक्त स्त्री-पुरुषों के हृदयो को द्रवित करेगी। पितृवत्सल भगवान रामचन्द्र का वनवास न होता तो यह ससार एक अपूर्व काव्य से वञ्चित रह जाता। इसी प्रकार प्रमदा की विपद्राशि संसार में काव्य-वितरण करेगी।

नन्दकुमार—इस प्रकार के विचार में मैं कोई न्यायपरता नहीं देखता। संसार के कल्याण के हेतु प्रमदा को यह दुसह वैधव्य यंत्रणा सहनी पड़ी, सो क्यों ?

वासुदेव—प्रमदा की इस भाग्य-जनित विपद्‌राशि के अन्तर्गत मुझे परमेश्वर के और भी कई शुभ उद्देश दिखाई देते हैं।

नन्दकुमार—सो कौन कौन ?

वासुदेव—वत्स ! यह सब कुछ मैं अनुमान से कह रहा हूं। जिस बात की पूर्ण सत्यता के सम्बन्ध में ठीक निश्चय न हो, उसे किसी दूसरे के निकट प्रकट करना उचित नहीं। क्योंकि इस से किसी भ्रमात्मक मत के फैल जाने की आशङ्का रहती है। परमेश्वर की माया अगम्य है, मनुष्य उसकी सृष्टि के रहस्यों को नहीं समझ सकता। एक छोटे से वृक्ष के पत्ते के भीतर परमेश्वर के कितने कौशल, कितने रहस्य वर्त्तमान हैं, मनुष्य यह भी नहीं जान सकता। फिर भला ऐसी दशा में हम यह कैसे निर्धारित कर सकते हैं कि उसकी दृष्टि में क्या न्याय है और क्या अन्याय ! इन समस्त विषयों के चिन्तन का अन्त कभी नहीं आता। मैं सिर्फ इतना ही निश्चयरूप से समझ सका हूं कि परमेश्वर मंगलमय हैं। विपद्-सम्पद, दुख-सुख सभी अवस्थाओं में स्नेहमयी जननी की तरह वे हम सब का रक्षणावेक्षण करते हैं।

नन्दकुमार—तो मेरी इस अपमृत्यु के अन्तर्गत परमेश्वर का कोई शुभ उद्देश अवश्य ही वर्त्तमान है—इसमें तनिक भी सन्देह नहीं। परन्तु कौन सा शुभ उद्देश वर्त्तमान है, इसे निश्चय रूप से मनुष्य कभी नहीं कह सकता।

नन्दकुमार—अनुमान से इस घटना में आपको परमेश्वर का कौन सा शुभ उद्देश प्रतीत होता है ?

बापूदेव—अनुमान से कही हुई बात सर्वदा निर्भ्रान्त ही नहीं होती, वरन् कभी-कभी भ्रमात्मक भी हो सकती है। इसी तरह कभी कभी ऐसा भी होता है कि हम लोग जो कुछ अनुमान करते हैं, वही ठीक उतरता है।

नन्दकुमार—तो आप विचार कर बतलावें कि इस घटना में कौन से शुभ उद्देश के अस्तित्व की सम्भावना हो सकती है।

बापूदेव—मेरा अनुमान है कि तुम्हारी इस अपमृत्यु के द्वारा देश का अत्याचार अधिकांश में दूर हो जायगा।

नन्दकुमार—यह तो आप बिलकुल ही उलटी बात कह रहे हैं। इस के विपरीत यदि मैं जीवित रहता तो घूसखोर मिथ्यावादी अङ्गरेज़ों के ऊपर दो एक अभियोग चलाता। मेरी मृत्यु के बाद तो कोई चूं भी नहीं करेगा। हेस्टिंग्स और बारवेल दिन रात घूस लिया करेंगे, लोगों का सर्वनाश करके देश का सारा धन बटोर लेंगे। सुना है, मेरे मुकदमे के उपलक्ष में सुप्रीम कोर्ट के जजों को हेस्टिंग्स ने बहुत कुछ घूस देनी स्वीकार की है। वह सब रुपया इस देश के लोगों का सर्वनाश करके ही तो इकट्ठा होगा। मैं तो नहीं समझता कि मेरी मृत्यु के द्वारा देश का कुछ भी उपकार हो।

बापूदेव—वत्स! तुम कार्य-जगत की फलाफल-शृंखला को नहीं देखते। मेरी समझ में ऐसा आता है कि हेस्टिंग्स और इम्पी ने षडयन्त्र करके तुम्हारा प्राणनाश किया—इस विषय पर विलायत में घोर आन्दोलन मचेगा। सम्भव है, नरहत्या के अपराध में इनका भी विनाश हो। भद्र-समाज में ये मुंह दिखाने योग्य न रह जायगे। बारवेल इत्यादि घूसखोर अंगरेज़ों के प्रति सर्वसाधारण के चित्त में घृणा उत्पन्न होगी, और ऐसी दशा में ईस्ट इण्डिया कम्पनी भारतवर्ष में सत्पुरुषों को भेजने के लिए

बाध्य होगी। इम्पी और हेस्टिंग्स को ब्रह्महत्या के लिए अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे, इस में रत्ती भर भी सन्देह नहीं।

नन्दकुमार—यदि सचमुच ही मेरी मृत्यु से इस देश के निवासियों का उपकार हो तो मैं अत्यन्त सन्तुष्ट चित्त से मृत्यु का आलिंगन करने में समर्थ होऊंगा।

बापूदेव—मैं निश्चय कह रहा हूं कि तुम्हारी मृत्यु के द्वारा देश का विशेष कल्याण साधित होगा।

नन्दकुमार—मेरी मृत्यु के पहले क्या आप और एक दिन मुझे देखने आवेंगे ?

बापूदेव—पाँचवीं अगस्त तुम्हारी फांसी का दिन निर्धारित हुआ है। चौथी तारीख़ को मैं फिर यहां आकर तुम्हारे साथ अन्तिम साक्षात् कर जाऊंगा।

यह कह कर बापूदेव चलने को तैयार हुए। महाराज नन्दकुमार गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर कारागार के द्वार तक उनके पीछे पीछे चले आये।

चौआलीसवाँ परिच्छेद
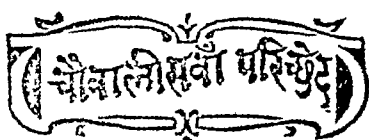
द्वितीय बार गुरु दर्शन

बापूदेव शास्त्री ने महाराज नन्दकुमार से जो कुछ कहा था, उसमें से कुछ भी न मिथ्या हुआ। समय पर उनके सभी वाक्य सत्य सिद्ध हुए।

इस घटना के प्राय: दस-बारह बरस बाद नन्दकुमार की हत्या के लिए इंगलैंड में इलाइजा इम्पी के विरुद्ध एक गुरुतर अभियोग उपस्थित

हुआ। इस अभियोग में इम्पी यद्यपि दण्डित नहीं हुए, तथापि भद्र-समाज में वे मुंह दिखाने योग्य न रह गये। उनका नाम आज भी इतना कलङ्कित हो रहा है कि इलाइजा इम्पी के पुत्र वारवेल इम्पी ने अपने पिता के कलङ्क का निराकरण कराने के लिए इम्पी की मृत्यु के बाद भी बहुत कुछ उद्योग किया। थरन्टन साहब जिस वक्त अंगरेज़ी शासनाधीन भारतवर्ष का इतिहास लिख रहे थे, उस वक्त इलाइजा इम्पी के पुत्र उपर्युक्त वारवेल इम्पी ने थरन्टन साहब से अनुरोध किया था कि वे अपने इतिहास में इलाइज़ा इम्पी के पक्ष का समर्थन करें। परन्तु थरन्टन साहब ने इस पर कुछ ध्यान न दिया। इसके बाद वारवेल इम्पी ने पिता के कलङ्क को मिटाने के लिए स्वयं ही एक पुस्तक लिखी। परन्तु अंगारे को जितना ही धोइये, उतना ही काला पड़ता है। वारवेल इम्पी किसी तरह पितृ-कलङ्क को दूर करने में समर्थ न हुए, वरन् वह कुछ और अधिक स्पष्ट हो गया।

इधर टामस वेविन्टन मेकाले ने इम्पी के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा है, वह इंगलैण्ड के सर्व साधारण के हृदय में दृढ़तापूर्वक जमा हुआ है। जब तक चन्द्र-सूर्य रहेंगे, तब तक मेकाले की यह बात सभ्यजगत के सामने ज्वलन्त अक्षरों में देदीप्यमान रहेगी—

"Impey, sitting as a judge put a man unjustly to death in order to serve a political purpose. No other such judge has dishonoured the English Ermine, since Jafferies drank himself to death in the Tower—"

इम्पी ने विचारासन पर बैठकर अन्यायपूर्वक एक नर-हत्या की थी। नरपिशाच जेफरिज की मृत्यु के बाद इम्पी के अतिरिक्त और किसी के द्वारा विचारासन इस प्रकार कलंकित नहीं हुआ।

हेस्टिंग्स को भी कुछ थोड़ा क्लेश न हुआ। कोई आठ बरस तक अभियुक्त के वेश में उन्हें कालयापन करना पड़ा।

वास्तव में यदि नन्दकुमार की मृत्यु घटना और हेस्टिंग्स की अन्यान्य कुक्रियाओं के सम्बन्ध में इंगलैंड में आंदोलन न मचता तो आज भी भारतवर्ष में अनेकानेक इम्पी विचारासन को कलङ्कित करते, और अनेकानेक हेस्टिंग्स, वेल विडियर यहां विचरण करते। सिर्फ समय की उन्नति से ही देश की अवस्था उन्नत नहीं होती, किन्तु समय की उन्नति के साथ ही साथ जनसाधारण के मतामत की उन्नति होने और जनसाधारण में समाज के प्रचलित पापों और कुकार्यों के प्रति घृणा उत्पन्न होने पर ही देश की अवस्था उन्नत या रूपान्तक होती है।

जगद्विख्यात मद्वक्ता महात्मा एडमंड वर्क की सुगम्भीर कण्ठध्वनि से सारा इंगलैण्ड गूंज उठा। अत्याचार-पीड़ित बंगवासियों की दुख कहानी सुन कर इंगलैण्ड के जनसाधारण का हृदय विगलित हुआ। अत्याचार-निवारणार्थ विविध उपायों का अवलम्बन किया गया।

* * * *

चौथी अगस्त को बापूदेव शास्त्री ने पुनः कारागार में आकर महाराज नन्दकुमार से साक्षात् किया।

आज महाराज नन्दकुमार बड़े प्रसन्न दिखाई दिये। 'मेरी मृत्यु के द्वारा देश का विशेष उपकार होगा—यही विश्वास उनके हृदय में शान्ति और आनन्द की धारा बहा रहा था।'

बापूदेव ने जैसे ही अन्दर प्रवेश किया, महाराज नन्दकुमार ने उनके चरणों में प्रणाम करते ही पूछा—"गुरुदेव, मेरा यह कलङ्क कितने दिनों में दूर होगा?"

बापूदेव—वत्स! बंगवासीगण जिस समय स्वतन्त्र-खोज के द्वारा बंगाल का इतिहास लिखेंगे, उस समय देश के लोगों को ज्ञात हो जायगा

कि तुम बिना ही अपराध के दण्डित हुए थे; देश-निवासी उस वक्त यह जान लेंगे कि अंगरेजों ने कौंसिल-पुस्तक में तुम्हारे विरुद्ध जो कुछ लिखा है, वह सब मिथ्या है; उसी समय देश के लोग यह समझ सकेंगे कि तुमने कुचरित्र अङ्गरेजों के अत्याचार का अवरोध करना चाहा था, इसी लिए वे तुम्हारे चरित्र के सम्बन्ध में अनेकानेक मिथ्या अपवादों का उल्लेख कर गये है। परन्तु बंगाल में तुम कभी एक देशहितैषी व्यक्ति नहीं गिने जाओगे। बहुत कालपर्यन्त इस देश में तुम्हारे जैसे स्वार्थपरायण आदमी देश-हितैषिता का बाना बना कर अपने को देशहितैषी प्रकट किया करेंगे। परन्तु भावी वंशज उनकी वास्तविक स्थिति को सहज ही पहिचान लेंगे।

इस प्रकार की बातचीत के अनन्तर महाराज नन्दकुमार ने बापूदेव शास्त्री के हाथ में, फ़ार्सी भाषा में लिखे हुए दो टुकडे कागज के दिये और कहा—"इन में से एक कागज फिलिप फ्रांसिस को दे दीजियेगा और एक जनरल क्लेवरिं को।" बापूदेव शास्त्री ने दोनों कागज ले लिये, और नन्दकुमार से विदा ले कर चले आये।

'हेस्टिंग्स और सुप्रीम कोर्ट के जजों ने षड्यंत्र करके मुझे प्राण-दण्ड दिया है'—इस काग़ज़ में यही लिखा था। फिलिप फ्रांसिस इस कागज़ को अपने साथ इंगलैण्ड ले गये थे। परन्तु जनरल क्लेवरिं ने इसे यहीं कौंसिल में पेश किया। उस समय हेस्टिंग्स ने कहा कि इसकी एक प्रतिलिपि सुप्रीम कोर्ट के जजों के पास पहुंचनी चाहिये। हेस्टिंग्स ने सुप्रीम कोर्ट के जजों के साथ मिल कर जैसा भीषण व्यापार आरम्भ किया था, उससे फिलिप फ्रांसिस और कर्नल मन्सन भी भय-भीत हो गये थे। उन्होंने सोचा कि हेस्टिंग्स और इम्पी जैसे नरपिशाच इस काग़ज़ को जनरल क्लेवरिं का जाली बनाया हुआ बता कर दो गवाह पेश करके उन्हें भी कारागार में भेज सकते हैं। इस आशङ्का से उन्हों ने कहा कि 'जजों को इस काग़ज़ की नकल देने की

कोई आवश्यकता नहीं। इसमें जजों के विरुद्ध कितने ही अपवादों का उल्लेख है, अतएव इसे जला देना उचित है।' यह कह कर उन्हों ने उस कागज़ को जला डाला। परन्तु हेस्टिंग्स ने गुप्त रूप से उसकी एक प्रतिलिपि इजाइजा इम्पी के पास भेज दी थी।

पैंतालिसवाँ परिच्छेद
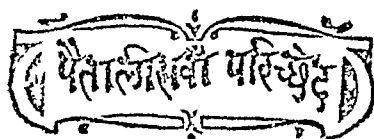
ब्रह्म-हत्या

चौथी अगस्त शुक्रवार को सायङ्काल के समय कारागार के अध्यक्ष माक्रेबी साहब बड़े दुखित भाव में कारागार के भीतर आये, और महाराज नन्दकुमार के पास आकर बैठ गये। वे महाराज को जो सम्वाद देने आये हैं, वह उनके मुह से न निकला। अतएव महाराज के साथ उन्होंने अन्यान्य बातें करनी शुरू की। महाराज नन्दकुमार प्रसन्नता पूर्वक उन से वार्त्तालाप करने लगे। माक्रेबी साहब इस प्रकार महाराज को प्रसन्न-मुख बातचीत करते देखकर बड़े चकित हुए। मन ही मन प्रश्न उठा—"महाराज को क्या यह नहीं मालूम कि कल हमें फाँसी होगी?"

बहुत से वार्त्तालाप के अनन्तर माक्रेबी ने आंखों में आंसू भर कर कहा—"महाराज! मेरा अन्तिम सम्मान-चिन्ह ग्रहण कीजिये। कल आप को इस संसार से कूच करना पड़ेगा। यदि आप को किसी बात की आवश्यकता हो, अथवा किसी से आप मिलना चाहते हों तो मुझ से कहें। यथाशक्ति मैं आप की आज्ञा का प्रतिपालन करने में त्रुटि न करूंगा।"

महाराज नन्दकुमार ने कहा—"आप की सज्जनता के लिए मैं आप का परम कृतज्ञ हूं। मेरे भाग्य में जो कुछ बदा था, वह हुआ। भगवान् की इच्छा को कोई नहीं मेट सकता। फिलिप फ्रांसिस, जनरल क्लेवरि और कर्नल मन्सन से आप मेरा आशीर्वाद कहें, और कहें कि कृपा कर वे मेरे गुरुदास की देख-भाल करते रहें।"

ये बातें कहते वक्त भी महाराज नन्दकुमार किञ्चित मात्र उदास न दिखाई दिये। खेद-व्यञ्जक एक गहरी सांस भी उन्होंने न ली। इसके थोडी ही देर बाद महाराज के दामाद राय राधाचरण रायबहादुर ने उन से सदा के लिए बिदा मांगी। चलते वक्त राय राधाचरण रोने लगे, पर महाराज नन्दकुमार ने स्वयं उन्हें सान्त्वना दी।

माक्रेवी साहब के चले जाने के बाद महाराज नन्दकुमार सायङ्काल की सन्ध्या-क्रिया समाप्त करके अपना हिसाब-किताब देखने लगे। राजा गुरुदास को किस प्रकार अपनी जायदाद का काम संभालना पडेगा, इस सम्बन्ध में उन्होंने बहुत सी बातें लिख कर रख छोडीं। उन की दृढ़ता को देख कर माक्रेवी साहब बडे विस्मित हुए।

रात में महाराज नंदकुमार को खूब नींद आई। सवेरा होने के पहिले ही प्रायः दो घण्टे तक वे भगवान का नाम जपते रहे। महाराज नन्दकुमार समय-समय पर अनेक धर्म-सङ्गीतों की रचना किया करते थे। इस अवसर पर उन्होंने कई एक स्वरचित पद और भजन गाये।

सवेरा हुआ। हज़ारों आदमी कारागार के दरवाज़े पर आ इकट्ठे हुए। इन में कितने ही महाराज नन्दकुमार के आत्मीय स्वजन भी थे। बहुतों को अब भी यह विश्वास नहीं आता था, कि महाराज नन्दकुमार को फ़ांसी होगी। कितने ही आपस में एक दूसरे से कहने लगे, "क्या यह भी सम्भव है! कम्पनी के आदमी क्या ब्रह्म-हत्या करेंगे?" किसी

किसी ने कहा—"फिरंगियों के लिए कुछ भी असाध्य नहीं। अर्थलोभ में इन्होंने स्त्री-हत्या तक की है।"

साढ़े सात बजे के वक्त जेल के अध्यक्ष मार्केबी साहब महाराज नन्दकुमार के सामने आ उपस्थित हुए।

महाराज ने कहा—"मैं खुद ही तैयार हूं। परन्तु कोई अन्य जातीय पुरुष मेरे मृत शरीर का स्पर्श न करें—इसके लिए मैंने अपने अनुगत तीन ब्राह्मणों से आज सबेरे के वक्त यहां आ जाने के लिए कह दिया था। वे अभी तक नहीं आये।"

मार्केबी ने कहा—"आप इसके लिए उत्कण्ठित न हों। मैं उन के आ जाने का इन्तज़ार करूंगा।"

कुछ ही देर में महाराज के अनुगत वे तीनों ब्राह्मण रोते चिल्लाते आ उपस्थित हुए। नन्दकुमार के चरणों में पड़कर रोते-रोते कहने लगे—"प्रभो हम लोगों का निर्वाह कैसे होगा?"

महाराज नन्दकुमार ने उन्हें धीरज बधाते हुए कहा—"तुम लोग कुछ चिन्ता न करो, राजा गुरुदास मेरे सभी आश्रितों का प्रतिपालन करेंगे।"

इसके बाद महाराज पालकी पर सवार हुए। जिस स्थान पर फांसी का काठ तैयार हुआ था, बेहरा लोग पालकी को उसी स्थान की तरफ ले चले। खिदिरपुर के पुल के उत्तर पूरब की ओर स्थित जिस स्थान को आज कल कुलीबाज़ार कहते हैं, वहीं पर महाराज नन्दकुमार को फांसी लगी थी। मार्केबी साहब एक दूसरी पालकी पर महाराज की पालकी के पीछे पीछे चले।

फांसी-काठ के चारों तरफ हज़ारों आदमी स्तम्भित खड़े थे। कलकत्ता उस वक्त बहुत छोटा सा शहर था। कुल आबादी दस हज़ार

से अधिक न थी। इन में से लगभग छः-सात हज़ार आदमी नन्द-कुमार की फांसी के स्थान पर उपस्थित थे।

इन उपस्थित लोगों के करुण-क्रन्दन और हाहाकार को सुनकर माक्रेबी इत्यादि सभी आँसू बहाने लगे। परन्तु महाराज नन्दकुमार अब भी प्रफुल्लित-मुख बैठे हुए हैं।

पालकी से उतरते ही महाराज ने पुनः चारों ओर नज़र घुमाकर देखा परन्तु उनके अनुगत वे तीनों ब्राह्मण जो उनके मृत शरीर को ले जाने के लिए आये थे, जब उन्हें इधर उधर कहीं न दिखाई दिये तो वे फिर किंचित उत्कंठित हुए।

माक्रेबी साहब ने कहा—"आप कुछ चिन्ता न करें, जब तक वे (ब्राह्मण) नहीं आ जावेंगे, हम लोग कोई कार्रवाई नहीं करेंगे।"

हज़ारों की भीड मे धींगा-मुश्की के साथ बडे कष्ट पूर्वक उन ब्राह्मणों को वहां तक पहुँच मिला, माक्रेबी साहब के सामने आ उपस्थित हुए। उनके आते ही माक्रेबी साहब ने अन्यान्य लोगों से हट जाने के लिये कहा। माक्रेबी का ख्याल था कि शायद महाराज इन ब्राह्मणों से गुप्तरूपेण कुछ कहना चाहें। परन्तु नन्दकुमार ने माक्रेबी साहब को निषेध करते हुए कहा—"लोगों को हटाने की कोई आवश्यकता नहीं।"

तदनन्तर महाराज फांसी-काष्ठ के पास आये। किसी के बिना ही कहे दोनों हाथ स्वयं ही पीठ की तरफ रख लिये और अपने अनुगत एक ब्राह्मण से हाथ बांधने के लिए कहा। ब्राह्मण ने पास आकर रोते रोते महाराज के हाथ बांध दिये।

फांसी के काष्ठ पर चढने के बाद, माक्रेबी साहब ने कहा—"आप स्वयं जिस समय इशारा करेंगे, उसी समय गले मे रस्सी डाली जावेगी।"

महाराज कुछ देर तक नेत्र मूंद कर परमेश्वर का चिन्तन करते रहे। हाथ बंधे हुए थे। दो तीन मिनट के बाद उन्हों ने पाव से इशारा किया। मुह ढांकने के वक्त मार्केवी साहब ने एक सिपाही को सामने कर के कहा—"यह व्यक्ति भी ब्राह्मण है, यही आप का मुह ढाक देगा।"

महाराज ने कहा, 'मेरे निजी आदमी यहा हैं'। उनके अनुगत उन्हीं ब्राह्मणों ने वस्त्र द्वारा उनका मुह ढांक दिया। गले में रस्सी डाली गई, पाव के नीचे का काष्ठ गिरते ही दर्शक समूह में घोर आर्त्त-नाद और करुण कोलाहल उपस्थित हुआ। हज़ारों आदमी तत्क्षण दौड़-दौड़कर गंगा मे कूदने लगे! "ब्रह्म हत्या हुई"—"ब्रह्म हत्या हुई"—"कलकत्ता अपवित्र हुआ"—"देश पाप से परिपूर्ण हुआ"—"फिरंगियो को धर्माधर्म का ज्ञान नहीं"—इस प्रकार चीत्कार करते करते दिशाओं के ज्ञान से शून्य हो ऊपर को मुह उठाये लोग चारों ओर दौड़ने लगे।

विचारवान् भद्र पुरुषों ने उस दिन कलकत्ते में भोजन नहीं किया। सभी गंगापार हवड़ा शिवपुर इत्यादि स्थानों मे जाकर भोजनों का प्रबन्ध करने लगे।

इसके दूसरे दिन कलकत्ते के कितने ही ब्राह्मणों और प्रतिष्ठित पुरुषों ने कलकत्ते का घर मकान छोड़ कर गंगा के उस पार अपने अपने घर बनवाने शुरू कर ब्रह्म हत्या के द्वारा अपवित्र हुआ कह कर वे कलकत्ते को छोड़ गये।

इस ओर ढाका, राजशाही इत्यादि विभिन्न स्थानों में यह समाचार फैलते ही सारे देश में हाहाकार मच गया। सच्चे देशहितैषी न होने पर भी महाराज नन्दकुमार को देश के अधिकांश निवासी एक धार्मिक और परोपकारी पुरुष मान थे।

महाराज नन्दकुमार की फासी के कई दिन बाद सुप्रीम कोर्ट के जजों ने कमालुद्दीन अली खा के उठाये हुए पहिले मुक़दमे का विचार प्रारम्भ किया। उस मुक़दमे मे महाराज नन्दकुमार, फाउक साहब और राय राधाचरण अभियुक्त थे। परन्तु नन्दकुमार, इहलोक से कूच कर चुके थे। राधाचरण का विचार सुप्रीम कोर्ट की अधिकार-सीमा के अन्तर्गत है या नही,—इस सम्बन्ध मे बहुत कुछ वाद-विवाद उपस्थित हुआ। अन्तत फाउक साहब का विचार प्रारम्भ होने पर उन के एक आत्मीय स्वजन ने वारवेल साहब को भय दिलाते हुए लिख भेजा कि यदि इस मुकदमे मे फाउक साहब को कुछ दण्ड हुआ तो मै आपकी सारी कुक्रियाओं को प्रकट कर दूंगा। वारवेल साहब ने इस घुड़की से डर कर सुप्रीम कोर्ट के जजो को लिखा कि फाउक साहब को बहुत हल्का दड दिया जाय। जजो ने फाउक साहब के ऊपर सिर्फ कुछ रुपया जुर्माना कर दिया।

बापूदेव शास्त्री कालीघाट छोड कर काशी चले आये। मदनदत्त ने इससे पहले अपनी दोनो कन्याओ को कलकत्ते के निवासी दो स्वर्ण-वणिकों को ब्याह दिया था। बापूदेव ने अपना कालीघाट वाला मकान सावित्री के स्वामी और मदनदत्त को दे दिया। शास्त्री जी के काशी को प्रस्थान करते समय सावित्री, जगदम्बा और अहल्या पृथ्वी पर गिर कर उनके चरणो में प्रणाम करती हुई कहने लगी—"प्रभो ! हम आप को साक्षात् भगवान समझती रही है, हमे यह वर दीजिये कि हमारे वंशजों को कभी तन्तुकारी अथवा स्वर्णकारी का व्यवसाय न करना पड़े। इन

लोगों के प्रति जो घोर अत्याचार हुआ है, उसकी याद आते ही शरीर कांप उठता है।"

बापूदेव ने आशीर्वाद देते हुए कहा—"तन्तुकार और स्वर्णकार आदि व्यवसायियों को ईस्ट इण्डिया कम्पनी के अत्याचार से अत्यन्त पीडित होना पडा है, परमेश्वर करे भविष्य मे इन लोगों के वंशज राज-सरकार में उच्च पद प्राप्त करें, और राज-पुरुषों के कृपा-भाजन हों।"

वर्तमान समय मे तन्तुकार, स्वर्णकार तथा तेली इत्यादि नीच जातियों के लोगों में कितने ही डिपटी कलेक्टर और सब-जजों के पद पर काम कर रहे है। कितने ही राय बहादुर, राजाबहादुर आदि उपाधियों से विभूषित है। सम्भवतः बापूदेव के ही आशीर्वाद से इन्होंने इस प्रकार उन्नति-लाभ किया हैं। तन्तुकार लोगों मे से कितने ही सावित्री के गर्भ-जात सन्तानो के वंशज हैं, इस में कोई सन्देह नहीं। इसी प्रकार अनेकानेक स्वर्णकार जगदम्बा और अहल्या के गर्भजात सन्तानों के वंशज प्रतीत होते हैं।

रामा भी विवाह कर के कलकत्ते ही में रहने लगी। सावित्री के भाई कालाचांद ने सावित्री के अनुरोध से दूसरा विवाह कर लिया।

हरिदास तर्क-पञ्चानन वृद्धावस्था मे अन्धे हो गये, और बुढापे में बहुत कुछ कष्ट झेल कर उन्हें इहलोक से प्रस्थान करना पडा।

बापूदेव कालीघाट से विदा हो कर नवकिशोर से मिलने के लिए शोभाबाज़ार आये। नवकिशोर शोभाबाज़ार ही के पास किसी जगह पर रहते थे। नन्दकुमार के मुकदमे के दिनों में बापूदेव के साथ नवकिशोर चट्टोपाध्याय की जान पहिचान हुई थी। नवकिशोर पहले ही से बापूदेव को जानते थे, परन्तु बापूदेव इसके पूर्व उन्हें नहीं पहचानते थे।

नवकिशोर की ज़बानी उनकी माता का मृत्यु-वृत्तान्त सुन कर बापूदेव ने कहा—"बेटा हमारे देश में प्रचलित जाति-भेद और कुलाभि-

मान विविध बुराइयो और विपदाओं का कारण हो रहा है। मेरे वृद्ध प्रपितामह वासुदेव शास्त्री ने शाक्त होने पर भी चैतन्य-मत-प्रचार के लिए विशेष उद्योग किया था। सुना है, वह कहा करते थे कि चैतन्य का मत सर्वमान्य और सर्वसम्मत हो जाने पर देश की जाति-भेद प्रथा अवश्य ही दूर हो जायगी। क्या यह थोड़े दुख का विषय है कि तुम्हारी माता, एक परम साध्वी ब्राह्मण कन्या, के छुए हुए जल को बाग्दी के घर की दासी ने अपवित्र समझा!"

नवकिशोर—"बाग्दी के घर की दासी नहीं, वरन् वह जगन्नाथ विश्वास के घर की दासी थी। जगन्नाथ विश्वास शूद्र है।"

बापूदेव ने कुछ हँसते हुए कहा—"बेटा! जगन्नाथ विश्वास शूद्र नहीं। जगन्नाथ और छिदाम के पिता का नाम निताई बाग्दी था। इनकी माता का नाम रायमणि था। निताई त्रिवेणी में रहते थे। एक बकरी की चोरी के अपराध मे हुगली के फौजदार के कर्मचारी ने उन्हें यहां तक पीटा कि उनके प्राण ही निकल गये। रायमणि अपने दोनों बालकों के सहित त्रिवेणी मे ही जगन्नाथ वाचस्पति के घर के पड़ोस में रहती थी। तुम्हारे बहनोई शिवदास वन्द्योपाध्याय ने रायमणि को कुपथ-गामिनी किया। बाद में जब शिवदास के कुकार्य के प्रकट होने की नौबत आई तो शिवदास और हरिदास तर्क-पञ्चानन ने मिलकर रायमणि को विष दे मार डाला। उसके दोनो बालक सर्वथा निराश्रय बन गये। शिवदास और हरिदास मेरे साथ एक ही पाठशाला में शास्त्राध्ययन करते थे। उक्त बालकों को विपद्‌मुक्त करने के उद्देश्य से मैंने अपने आसामी कृपाराम की मां से इन दोनों बच्चों का पालन पोषण करने के लिए कहा। उसने इन्हें पाला पोसा, अन्यान्य लोगों के पूछने पर वह इन बालकों को शूद्र बतलाया करती थी, इसी से ये शूद्र प्रसिद्ध हो गये।"

यह बात सुनकर नवकिशोर बडे चकित हुए। शिवदास वन्द्योपाध्याय ने मरते समय जिस लिए "रायमणि, रायमणि" कह कर चीत्कार किया था, उसका गूढ़ तत्व उन्होंने अब जान पाया।

पुनः बापूदेव कहने लगे—"हमारे देश में इस जाति-भेद-प्रथा के कारण ही वास्तविक इतिहास का भी अभाव हो रहा है। निम्न श्रेणियों के लोग जब-जब समुन्नत हो कर किसी प्रदेश के राजा अथवा प्रभावशाली पुरुष बने, तब-तब उन्होंने अपने पूर्व-पुरुषों के नाम-धाम को छिपाने की चेष्टा की; कभी-कभी उन्होंने अपने पूर्व-पुरुषों के जन्म अथवा उन्नति-विकास के साथ किसी अलौकिक या ईश्वरीय घटना को सम्बद्ध कर दिया है।* परन्तु जिस जाति के लोगों का सच्चा इतिहास नहीं, उसमें जातीय-जीवन भी नहीं होता। वत्स नवकिशोर! मैं तुमसे एक अनुरोध करता हूं—तुम मेरे शिष्य नन्दकुमार के जीवन का इतिहास लिख रखना। अंगरेज़ों ने अपने सरिश्ते के काग़ज़-पत्रों में नन्दकुमार को समय-समय पर मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और धूर्त लिख रखा है। नन्दकुमार अंगरेज़ों के अत्याचार का अवरोध करते थे, इसी कारण उनके विषय में उन्होंने इच्छापूर्वक ये सब झूठी बातें लिखी हैं† ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आदमियों के समान झूठे आदमी इस संसार में और हैं या नहीं—इसमें सन्देह है। इनके प्रधान गवर्नर क्लाइव साहब ने एक जाली काग़ज़ बनाकर उमीचंद को ठगा था। सिर्फ़ इनके सरिश्ते के काग़ज़-पत्रों को देख कर यदि इतिहास का संग्रह किया जायगा तो वह भ्रमात्मक होगा। तुम ऐसी चेष्टा करना, जिस से देश के सच्चे इतिहास का संरक्षण कर सको।"

*The Story or Legend about the origin of Bishnapur Raj family will prove this fact

†Vide note (26) in the appendix

यह कह कर बापूदेव शास्त्री नवकिशोर से बिदा ले काशी को चल दिये।

नवकिशोर ने उस समय की बहुत सी बातें लिख कर रख छोड़ी थीं। उन्हीं की लिखी हुई पुस्तक को देख कर "महाराज नन्दकुमार" अथवा तत्कालीन बंगाल की सामाजिक अवस्था की रचना की गई है।
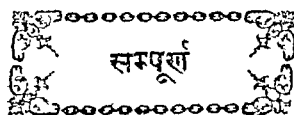
APPENDIX.

KEY TO

MAHARAJAH NANDA KUMAR KO PHANSI.

NOTE 1.

After the defeat of Seraja Dowlah, in 1756, the new Nawab was made to engage, "that he or his officers should, on no account interfere with the Gomastas of the English; but that care should be taken that their business might not be obstructed in any way." And these Gomastas so well availed themselves of this new aquired power. that after the Company, had made their first Nawab. Jaffar Ally Khan, in the year 1757, their black Gomastas in every district assumed a jurisdiction which even the authority of Rajas and Zemindars in the country durst not withstand. Instances of this influence, so detrimental to the country, are to be met with in every page of Mr. Vansittart's Narrative.—*Bolts on India affairs, page 191.*

NOTE 2.

His (Clive's) family expected nothing good from such slender parts and such a head-strong temper. It is not strange therefore, that they

gladly accepted for him, when he was in his eighteenth year, a writership in the service of the East India Company and shipped him off to make a fortune or to die of a fever at Madras—*Lord Macaulay.*

Clive was a man to whom deception, when it suited his purpose, never cost a pang.—*James Mill*

Whether the young adventurer, (Hastings) when once shipped off, made a fortune or died of a liver complaint, he equally ceased to be a burden to any body—*Macaulay on Hastings.*

NOTE 3.

"But for the better understanding of the nature of these oppressions, it may not be improper to explain the methods of providing an investment of piece goods as conducted either by the export-warehouse keeper and the Company's servants at the subordinate factories, or by English gentlemen in the service of the Company, as their own private ventures In either case, factors or agents called Gomastas are engaged at monthly wages by the gentleman's Banyan, there being generally, on each expedition into the country, one head Gomasta, one mohurrir or clerk, and one cash-keeper appointed with some peons and hircarahs, the latter being for the se of intelligence, or carrying letters to ,

which, for want of regular posts, every merchant does at his own expense.

These are despatched, with a Perwanah from the Governor of Calcutta, to the Zemindar of the district where the purchases are intended to be made, directing him not to impede their business, but to give them every assistance in his power.

Upon the Gomasta's *arrival at the* Aurung, or manufacturing town, he fixes upon a habitation which he calls his Cutchery, to which, by his peons and hircarahs he summons.. the weavers: whom, after receipt of the money despatched by his masters, he makes to sign a bond for the delivery of a certain quantity of goods, at a certain time and price, and pays them a part of the money in advance. The assent of the poor weaver is in general not deemed necessary, for the Gomastas, when employed in the Company's investment, frequently make them sign what they please ; and upon the weavers refusing to take the money offered, it has been known they have had it tied in their girdles, and they have been sent away with a flogging. . . . .

A number of these weavers are generally also registered in the books of the Company's Gomastas, and not permitted to work for any others, being transferred from one to another as so many slaves subject to the tyranny and roguery of every succeeding Gomasta.

The cloth, when made, is collected in a warehouse for the purpose called a Khattab: where it is kept marked with the weaver's name, till it is convenient for the Gomasta to hold a Khattab, for fixing the price of each piece. . . .

The roguery practised in this department is beyond imagination, but all terminates in the defrauding of the poor weaver; for the prices which the Company's Gomastas . . . . fix upon the goods, are in all places at least fifteen percent, and in some even forty percent, less than the goods so manufactured would sell for in the public bazar, or market, upon a free sale The weaver therefore, desirous of obtaining the just price of his labour frequently attempts to sell his cloth privately to others particularly to the Dutch and French Gomastas, who are always ready to receive it This occasions the English Company's Gomasta to set his peons over the weaver to watch him, and not unfrequently to cut the piece out of the loom when nearly finished. With this power and influence, the Gomastas, in the meantime, are never deficient in providing as many goods as they can on their own accounts, and for the Banyans of their English employers, . . .

In the time of the Mogul Government and even in that of the Nawab Aliverdy Khan, the weavers manufactured their goods freely, and without oppression.—*Bolt on India affairs, pages 192—94.*

NOTE 4.

With every species of monopoly, therefore, every kind of oppression has daily increased; in so much that weavers, for daring to sell their goods (to other people), and Dullas or Pykars for having contributed to or connived at such sales, have, by the Company's agent, been frequently seized and imprisoned, confined in irons, fined considerable sums of money, flogged, and deprived, in the most ignominious manner, of what they esteem most valuable, their caste.

Weavers also upon their inability to perform such agreements as have been forced from them by the Company's agents, universally known in Bengal by the name of Mutchulkas, have had their goods seized, and sold on the spot to make good the deficiency.—*Bolts on India affairs, page 194.*

NOTE 5.

Eight members of the Council, Messrs. Johnstone, Watts, Marriot, Hay, Gartier, Billers, Batson and Amyatt recorded their opinion, that a regard for the interests of their employers compelled them to call upon the Nawab to revoke his determination to relieve the inland trade of his dominions from duties, and to require him, while suffering the servants of the Company to trade on their own account without charge, to tax the trade of his own subjects for their benefit.

Selfishness has rarely ventured to display itself under so thin a veil as was believed sufficient on this occasion to disguise it.—*Thornton's History of British Empire in India, Vol. I, page 439*

NOTE 6

The trading therefore in *salt*, betel and tobacco, having been one cause of the present disputes. I hope these articles will be restored to the Nawab, and your servants absolutely forbidden to trade in them. This will be striking at the root of the evil. . . . . . .

As a means to alleviate, in some measure, the dissatisfaction that such restrictions upon the commercial advantages of your servants may occasion in them, *it is my full intention not to engage in any kind of trade myself.—Extract from Clive's letter, dated Berkeley-square, the 27th April 1794*

NOTE 7.

You are hereby ordered and directed, as soon after the receipt of this as may be convenient, *to consult the Nawab* as to the manner of carrying on the inland trade in salt, betel-nut and tobacco. . . . . . .

You are therefore to form a proper and equitable plan for carrying on the said trade and

transmit the same to us.. ...In doing this as before observed you are to have a particular regard to the interest and entire satisfaction of Nawab .. ..In short this plan must be settled *with his free-will and consent —Extract from the Court of Director's letter 1st. June 1794*

NOTE 8.

AT A SELECT COMMITTEE, HELD AT FORT WILLIAM,

The 10th August 1799

PRESENT·

William Brightwell Sumner, Esq.—*President.*

Harry Verelst, Esq.

In Conformity to the Honourable Company's order, contained in their letter of the 1st June, 1794, the committee now proceed to take under their consideration the subject of the inland trade in the articles of salt, betel-nut and tobacco, the same having frequently been discoursed of at former meetings, and Mr. Sumner having lately collected the opinions of the absent members at large on every circumstance, it is now agreed and resolved : That the following plan for conducting this trade shall be carried into execution, the committee esteeming the same the *most correspondent to the Company's order* and conducive to the ends which they have in view, when they require that the trade should be put upon such a footing as may appear most

equitable for the benefit of their servants, least liable to produce disputes with the country Government, and wherein their own interests and that of the Nawab shall at the same time be properly attended to and considered.

Firstly.—That the whole trade shall be carried on by an exclusive Company formed for that purpose, and consisting of all those who may be deemed justly entitled to a share

Secondly—That the salt, betel-nut and tobacco *produced in or imported into Bengal*, shall be purchased by this established company and public advertisement shall be issued strictly prohibiting all other persons whatsoever, . . to deal in those articles

Thirdly—That application shall be made to the Nawab to issue the like prohibition to all his officers and subjects of the districts where any quantity of either of these articles is manufactured or produced.

. . . .

Fourthly.—That the salt shall be purchased by contract on the most reasonable terms. . .

. . . .

Ninthly— . . . . . That application be made to the Nawab for Perwanahs on the several Zemindars of those districts. . . strictly ordering and requiring them to contract for all

the salts that can be made on their lands, with the *English alone* and forbidding the sale to any other person or persons whatsoever. . . .

Tenthly—That the Honourable Company shall either share in this trade as proprietors, or receive an annual duty upon it.

Eleventhly—That the Nawab shall in like manner be considered as may be judged most proper, either as a proprietor, or by an annual Nuzzeranah to be computed upon inspecting a statement of his duties on salt in former years—*Bolts on India affairs pages 166 to 168.*

NOTE 9.

Translation of the Perwanah issued by Nawab on the requisition of the English Trading Company to the Gomasta of Lukminarain Chowdry of the Pergunnah of Jollamootha.

Be it understood, that a request has been made by the Governor and the gentlemen of the Committee and Council, to this purport, that until the contracts for salt of the said gentlemen are settled, no salt shall be made, or got ready in any District, that a Gomasta be sent to attend on the said gentlemen, and having given a bond, he may then proceed to his business, and make salt, but till the bond be given to the Governor and the gentlemen of the Committee and Council, they should make none.

Therefore, this order is written, that you send, without delay, your Gomasta to the said gentlemen in Calcutta, and give your bond, and settle your business, and then proceed to the making of salt In case of any delay, it will not be for your good Regard this as a strict order —*Bolts on India affairs, page 176.*

FORM OF MUTCHULKA

I Jaduram Chowdry of the Pergunnah of Deroodumna, in the district of Ingellee, agreeably to an order which has issued from the Nawab to this purpose, "that I should attend upon the Gentlemen of the Committee and Council, in order to settle my trade in salt, and that I should not deal with any other person ;" do accordingly oblige myself, and give this writing that, except the said gentlemen called:—"*The English society of merchants for buying and selling all the salt, betel-nut and tobacco in the Provinces of Benal, Behar and Orissa etc*, I will on no account trade with any other person for the salt to be made in the year 1173 ; and without their order I will not otherwise make away with, or dispose of a single grain of salt ; but whatever salt shall be made within the dependencies of my Zemindary, I will faithfully deliver it all without delay, to the said society, and I will receive the money according to the agreement which I shall make in writing, and I will deliver the whole and entire quantity of the salt produced, and, without the leave

of the said Committee, I will not carry to any other place, nor sell to any other person a single measure of salt If such a thing should be proved against me, I will pay to the Sarcar of the said society a penalty of five rupees per every maund."—*Bolts on India affairs page 177*

NOTE 10

AT A SELECT COMMITTEE, HELD AT FORT WILLIAM.

The 18th September 1765.

PRESENT

The Right Hon'ble Lord Clive—*President.*
William Brightwell Sumner Esq.
John Carnac Esq.
Harry Verelst Esq
Francis Sykes Esq.

Resuming the consideration of the plan for carrying on the inland trade, in order to determine with respect to the Company and the classes of proprietors, the Committee are unanimously of opinion, that whatever surplus-monies the Company may find themselves possessed of after discharging their several demands at this Presidency, the same will be employed more to their benefit and advantage in supplying largely, that valuable branch of their commerce, the China trade and in assisting the wants of their other settlements, and that it will be more for their interest to

be considered as *superiors* of this trade and receive a handsome duty upon it, than to be engaged as proprietors in the stock

Bestowing therefore, all due attention to the circumstance of the Company's being at the same time the head and masters of our service, and now come into the place of the country-government by His Majesty's Royal Grant of the Dewani, it is agreed, that the inland trade of the above articles shall be subject to a duty to the Company, after the following rates, which are calculated according to the best judgement we can form of the value of the trade in general, and the advantage which may be expected to accrue from it to the proprietors.

On salt, thirty-five per cent, valuing hundred maunds at the rate of ninety Arcot rupees . . . With respect to the proprietors it is agreed and resolved, that they shall be arranged into three classes, that each class shall be entitled to so many shares in the stock. . . . .

According to this scheme it is agreed, that class first shall consist—of the Governor, five shares, the second three shares, the General, three shares; ten gentlemen of the Council, each two shares; . . . . two Colonels each two shares . . in all thirty-five shares for the first class

That class second shall consist of one *Chaplain*, fourteen junior merchants, and three Lieutenant Colonels, in all eighteen persons, who

shall each be entitled to one-third of a Councillor's proportion, or two-thirds of a share. . . . . . .

That class third shall consist of thirteen factors, four Majors, four first Surgeons at the Presidency, two first Surgeons at the army, one Secretary to the Council, one Sub-Accountant, one Persian translator, &c . . . *Bolts on India affairs, page 171-72.*

The Trading Company used to pay 75 rupees per hundred maunds to the native merchants

---

NOTE 11.

The Chaplain was a second class sharer in the profits of this oppressive salt monopoly as it will appear from the note 10.

NOTE 12.

Upon the establishment of the private co-partnership, or society, of the gentlemen of the committee among themselves, there was an Armenian merchant, named Parseek Aratoon, who had about 20,000 maunds of salt lying in ware-houses upon the borders of the Rungpore and Dinagepore Provinces.

The Armenian, sensible, as well as the gentlemen of the committee, that the price of salt would rise, ordered his Gomasta to fasten up his ware-houses, and not to sell As the retailing

of this salt in those parts might hurt the partnership sales, it was thought expedient at any rate, if possible, to get possession of it. Upon failure of the artifices which were practised to induce the Gomasta to sell it, the Armenian merchant's ware-houses ware broken open, the salt forcibly taken out and weighed off, and a sum of money, estimated to be the price of it was forced upon the Armenian Gomasta, on his refusing to receive it.—*Bolts on India affairs, P 185—86*

NOTE 13.

The winders of raw silk, called Nagads, have been treated also with such injustice, that instances have been known of their cutting off their thumbs, to prevent their being forced to wind silk.

These workmen were pursued with such rigour during Lord Clive's late Government in Bengal, from a zeal for increasing the Company's investment of raw silk, that the most sacred laws of Society were atrociously violated, for it was a common thing for the Company's Sepoys to be sent by force of arms, to break open the houses of the Armenian merchants, established at Sydabad, and forcibly take the Nagads from their works, and carry them away to the English Factory.—*Bolts on India affairs, P. 195.*

NOTE 14.

Mr William Bolts—who is called by Dr. Hunter "Notorious Bolts" is said to have amassed nine lacs of rupees during his three year's stay at Kasim Bazar.

He was shipped off to England under custody by Governor Verelsts for his alleged swindling habit.

NOTE 15.

Vide the Parwannah issued upon Lackmi Narain Chowdry of Jolla Mutha Pergunnah in note (9).

NOTE 16.

In 1763 a consternation of a different kind and from a different source threatened Mr. Kiernander's little charge again. The abuse of the transit duties by the Company's servants their grasping cupidity and oppressive exaction, fastened on the people with a power from which they had no escape, threw the whole country into disorder . . . .

Mr. Kiernander in speaking of these things to the Society adds, that he feared the mission would be destroyed Not only did he find these contentions unfavourable to the exercise of ristian liberality among his fellow Europeans,

but the natives were so exasperated against the Company's servants for their evil practices, that the missionary found them utterly unwilling to lend an ear to truths, which his fellow Christian heeded so little.

He is not the only missionary who has found the sins of Europeans, a powerful barrier against the progress of the Gospel and has had those sins retorted on him by natives as an excuse and colour for their own.—*Calcutta Review, January 1847*

NOTE 17.

There is a tradition that Nawab Aliverdi Khan was being guided by the advice of a Hindu astrologer who was an old Brahmin Aliverdi also treated the Begums of his predecessor with respect and kindness as it appears from Siyar-ul-Mutakherin in which it is said :—"On advancing to the place and before taking his seat, he struck off to the right and went to the apartments where Zineten-nissa Begum, daughter of Jafar Khan and mother to the late Serefraz Khan, resided. He stopped at the gate and assumed a respectful posture, and in a moving tone of voice, having first made a profound bow, he supplicated her forgiveness, and sent in the following message."

"Whatever was predestined in the book of fate has come to pass and the ingratitude of this

worthless servant is now registered in the unfading records of history. But I swear, that so long as life exists, I shall never swerve from the path of respect and the duties of the most complete submission to your Highness, and I hope that the guilt of this poor humbled and afflicted slave may in time be effaced from your memory."
Siyarul Mutakherin P 462

NOTE 18

Mr. Henry Beveridge in his most impartial as well as a very clever article on "Warren Hastings in Lower Bengal" observes. Whether justly or not, it seems evident that Hastings nourished strong resentment against Nand Kumar In a letter of November 1558, he writes that the Nawab is greatly enraged against Nanda Kumar, and adds that he thinks he would be wanting in his duty if he did not acquaint Clive with the Nawab's sentiments.—*Calcutta Review, October 1877*

NOTE 19.

There is a tradition that the jewels which are alleged to have been deposited by Maharajah Nanda Kumar with Bolaki Dass, and for the value of which, Bolaki Dass executed to him a bond, which was ultimately declared to be a forged document, were purchased by the Maha-

rajah for one of his nearest female relations who had become widow before the jewels were presented to her

---

NOTE 20.

The servants of the Company obtained not for their employers, but for themselves a monopoly of almost the whole internal trade They forced the natives to buy dear and to sell cheap They insulted with impunity the tribunals, the police, and the fiscal authorities of the country. They covered with their protection a set of native dependents who ranged through the provinces spreading desolation and terror wherever they appeared . . . Enormous fortune was thus rapidly accumulated at Calcutta, while thirty millions of human beings were reduced to the extremity of wretchedness *They had been accustomed to live under tyranny, but never under tyranny like this —Lord Macaulay*

NOTE 21.

In consequence of most extraordinary oppression in the inland parts of the country . . an Armenian merchant named Parseek Aratoon on the 15th September 1767, filed a bill in the Mayor's Court against the Gomastas or agents of Governor Harry Verelst and Francis Sykes Esqrs., for 60,432 current rupees, or about 7,500

pounds sterling, principal amount of salt, said to have been forcibly taken out of the plaintiff's ware-houses. The cause was brought to an issue; and in the month of August 1768, on a day appointed for hearing, and all the proceedings and depositions were read and fully considered, the demand of the plaintiff established to all appearance, and judgment upon the point of being pronounced when the Mayor, (Cornelius Goodwin) while sitting in judgment received a *private letter* or note, sent from the Governor to put a stop to the proceedings because, as was alleged, he the said Governor, was partly concerned in the cause, and was in expectation of settling matters by a private compromise To the astonishment of the plaintiff's solicitor, who declared he knew of no compromise, and had received no instructions from his client upon this matter, the request contained in the letter or note was complied with, and a stop was *at once* put to the proceeding, the plaintiff being left without any satisfaction.—*Bolts on India affairs, P 91—92.*

NOTE 22.

Something more remains to be told. shameful frauds appear to have been practised during the famine by persons in office. They were known to have dealt in grain imported for the supply of the famishing multitude, to have made

false returns of its distribution, and to have appropriated the exorbitant price it brought The council tried to throw the blame upon the subordinates who were natives The Directors refused to be thus duped, said plainly that they believed the guilt lay at the door of their own countrymen high in office, and called for the disclosure of their names but the names were never audibly disclosed. One who held an important place at the time, returned to his own country, a wealthy man, founded a family, since ennobled, and amid "honour, love, obedience, troops of friends" lay down to spend the evening of his days in peace.' But that best of blessings was denied him. His nights were haunted by images and sounds which would not let him sleep and though a man of what is called iron frame and of ready courage, to his dying hour he never would allow the lights to be extinguished round his bed.—*W. M Tarrens' Empire in Asia, P. 77.*

NOTE 23

The Dacca merchants begin by complaining that in November, 1773 Mr. Richard Barwell, then chief of Dacca, had deprived them of their employment and means of subsistance, that he had extorted from them 44224 Arcot rupees (£4731) by the terror of his threats by long imprisonment, and cruel confinement in the stocks; that afterwards they were confined in a small room

near the factory gate under a guard of Sepoys; that their food was stopped, and they remained starving a whole day; that they were not permitted to take their food till next day at noon and were again brought back to the same confinement, in which they were continued for six days, and were not set at liberty until they have given Mr. Barwell Banyan a certificate for forty thousand rupees; that in July, 1774, when Mr. Barwell had left Dacca, they went to Calcutta to seek justice; that Mr. Barwell confined them in his house at Calcutta and sent them back under a guard of peons to Dacca —*Edmund Burke's, Vol. IV P. 80.*

NOTE 24.

In March 1775, a petition was presented to the Governor-General and Council by a person called Coja Kaworke, an Armenian merchant, resident at Dacca (of which division Mr Barwell had lately been chief), setting forth in substance, *that in November, 1772, the petitioner* had formed a certain salt district called Savagepur (Shabazpur) and had entered into a contract with the committee of circuit for providing for and delivering to the India Company the salt produced in that District; that in 1773 he formed another, called *Selimabad,* on similar conditions. He alleges, that in February, 1774, when Mr. Barwell arrived at Dacca, he charged

the petitioner with 1,25,500 rupees (equal to £ 13,000) as a contribution, and in order to levy it, did the same year deduct 20,799 rupees from the amount of the *advance money*, which was ordered to be paid to the petitioner, on account of the India Company, for the provision of salt in the two farms, and after doing so compelled the petitioner to execute and give him four different bonds for 77,627 rupees, in the name of one *Porran paul*, for the remainder of such contribution, or unjust profit.—*Burke's Work, Vol IV page 110*

The facts stated, or admitted, by Mr Barwell are as follows that the salt-farms of Selimabad and Saragepur were his, and re-let by him to the two Armenian merchants, Michael and Kaworke on condition of their paying him 1,25,500 rupees, exclusive of their engagements to the Company, that the engagement was written in the name of *Bussant Roy* and *Kissen Deb Singh*; and Mr Barwell says, that the reason of its being "in these people's names was because *it was not thought consistent with the public Regulations that the names of any Europeans should appear*—*Burke's work, Vol. IV page 112*

NOTE 25.

The author of Siyarul Mutakherin, Gollam Hossain Khan, was a deadly enemy of Maharajah Nanda Kumar. He alone says that a casket of

seals, bearing the names of different persons, was found in the house of the Maharajah, after his death. This is absolutely false statement.

NOTE 26

That the servants of the East India Company used to villify and mis-represent Nanda Kumar's character and conduct is quite apparent even from Mr Barwell's letters to his sister recently published by Sir James Stephen in his book on "Nun Coomer and Impey."